समष्टि आर्थिक विश्लेषण

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

Unit-I

अध्याय 1	परम्परावादी मॉडल	5
अध्याय 2	मूल रूप में केन्ज़ीयन मॉडल	18
अध्याय 3	विस्त त मॉडल : स्थिर कीमत-स्तर	32
अध्याय 4	हिक्स हैन्सन एकीकरण	42
अध्याय 5	राजकोषीय नीति का कुल माँग पर प्रभाव	45
अध्याय 6	मौद्रिक नीति का माँग पर प्रभाव	57
अध्याय 7	विस्त त मॉडल : परिवर्तनशील कीमत स्तर	65
अध्याय 8	मज़दूरी-कीमत लोचशीलता था पूर्ण रोज़गार सन्तुलन	72
अध्याय 9	मौद्रिक-रोजकोषीय नीतियां तथा पूर्ण रोज़गार सन्तुलन	79

Unit-II

अध्याय 10	उपभोग के सिद्धांत या आय तथा उपभोग के मध्य सम्बन्ध	82
अध्याय 11	स्थाई आय परिकल्पना	87
अध्याय 12	जीवन चक्र परिकल्पना	91
अध्याय 13	निवेश का वर्तमान मूल्य सिद्धांत	97
अध्याय 14	निवेश माँग या पुंजी की सीमान्त उत्पादकता तथा निवेश	101
अध्याय 15	निवेश के त्वरक का सिद्धान्त	108
अध्याय 16	निवेश का वित्तीय सिद्धान्त	112
अध्याय 17	परम्परावादी मांग का सिद्धान्त - मात्रात्मक सिद्धान्त - फिशर समीकरण तथा कैमब्रैज मात्रात्मक सिद्धान्त	115
अध्याय 18	केन्ज़ का मुद्रा की मांग का सिद्धान्त	132
अध्याय 19	बॉमल का मुद्रा की माँग सम्बन्धी सिद्धान्त	138
अध्याय 20	फ्राईडमैन का मुद्रा की माँग का सिद्धान्त	141
अध्याय 21	मुद्रा का अधुनिक सिद्धान्त या मुद्रा पूर्ति तथा मुद्रा गुणक	146

Unit-III

अध्याय 22	मुद्रा स्फीति तथा बेरोज़गारी	160
अध्याय 23	अनुकूलनीय तथा विवेकपूर्ण प्रतयाशाएं	169
अध्याय 24	आर्थिक व द्वि का हैरड-डोमर मॉडल	172
अध्याय 25	मुद्रा सहित तथा मुद्रा रहित नव-परम्परावादी माडॅल	179
अध्याय 26	खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण	198
अध्याय 27	अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का हस्तान्तरण	208
अध्याय 28	स्थिर तथा परिवर्तनशील विनिमय दर के अन्तर्गत हस्तान्तरण	212
अध्याय 29	मुंडेल-फलैमिंग मॉडल	217
अध्याय 30	मुद्रा स्फीति के प्रभाव	224
अध्याय 31	मुद्रा-स्फीति के मांग पक्ष तथा पूर्ति पत्र सिद्धान्त	237

M.Com (Previous)

Macro Economic Analysis

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Unit-1: **Determination of Output and Employment:** Classical Approach: Keynesian Approach (Two Sector Model Three Sector Model, and Four Sector Model): Kicks-Hanson Synthesis (Extended Model with Fixed Price Level): Equibrium income and the interest rate in the product market and money market; Fiscal Policy effects on demand, Monetary Policy effect on demand, the Interaction of Monetary and fiscal policies. Extended model with Variable Price Level; Price and Output Level; Wage price flexibility and the Full Employment Equilibrium; Monetary - Fiscal Policies and the Full Employment Equilibrium.

Unit-2 : **Behavioural Foundation:** Theories of Consumption: The Absolute Income Hypothesis; Relative Income Hypothesis, The Permanent Income Theory of Consumption; The Life cycle Theory of Consumption: Theories of Investment: The Present Value Criterion for Investment; The marginal Efficiency of Capital and Investment; The Accelerator Theory; The Financial Theory of Investment; The Deand for and Supply of Money: Classical Approach to Demand for Money - Quality Theory Approach, Fisher's Equilibrium; Cambridge Quantity Theory; Keyne's Liquidity Approach - Transaction, Precautionary and Speculative Demand for Money - Aggregate Demand for Money. Friedman, Pstinkin, Baumal and Money Multiplier.

Unit-3 **Inflation, Unemployment, Economic Growth and Internatinal Adjustment:** Effects of Inflation; Demand side and Supply Side Theories of inflation. Inflation and Unemployment: Pressure Curve, Trade Offs (Trae off and Non Trade Off between Inflation and Unemployment). Adaptive Expeclation and Rational Expeclations.

Economic Growth: Harrod Domar Model, Neo-Classifical Model with money and without money. International Adjustment: The Determination of National Income in open Economy; The International Transmission of disturbances: Transmission under Fixed Exchange Rates, Transmission under Floating Exchange Rates. Mundell-Eleming Model. Issue in Agriculture Price Policy, Its role and functions, Price determination, Evolution of Agriculture.

Unit-1

अध्याय-1
परम्परावादी मॉडल
(Classical Model)

परम्परावादी मॉडल
(Classical Model)

परम्परावादी अर्थशास्त्री कौन थे ? परम्परावादी-अर्थशास्त्री की धारणा का प्रयोग सर्वप्रथम 1930 में जे. एम. केन्ज़ द्वारा किया गया। केन्ज़ के अनुसार 1930 से पहले जिन अर्थशास्त्रियों ने समष्टि सम्बन्धी विचार व्यक्त किये वे सभी परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि उन सभी की समष्टि अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में सोच लगभग एक जैसी थी। परन्तफ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार, एडम स्मिथ की सुप्रसिद्ध पुस्तक, "Wealth of Nation" (1776) के प्रकाशन से लेकर डॉ. अलफर्ड मार्शल द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Economics' (1890) तक के अर्थशास्त्रियों को परम्परावादी अर्थशास्त्री माना गया। इस श्रेणी के प्रमुख अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, जे. बी. से, डेविड रिकार्डो, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि हैं। इन अर्थशास्त्रियों द्वारा दूसरी श्रेणी के अर्थशास्त्री 1890 से 1933 की समयावधि में रखे गयेजिन को नव-परम्परावादी (Neo-classical) अर्थशास्त्री कहा गया। इस श्रेणी के प्रमुख अर्थशास्त्री Alfred Marshall (Principles of Economics) और A.C. Pigou (The Theory of unemployment, 1933) आदि हैं। परन्तु इन दोनों श्रेणियों के अर्थशास्त्रियों के समष्टि अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचार एक जैसे हैं। उनके विचारों में भिन्नता व्यष्टिगत अर्थशास्त्र को लेकर अधिक प्रसिद्ध रही है। इसलिए समष्टि अर्थशास्त्र के द ष्टिकोण से इन दोनों श्रेणियों के सभी अर्थशास्त्रियों को परम्परावादी अर्थशास्त्री कहा गया है।

1929 की विश्वस्यापी मन्दी से पहले के मन्दी के वर्षों, जैसे 1908 और 1920 आदि में रोज़गार व आय के निर्धारण सम्बन्धी प्रश्न उत्पन्न हुए थे। परिणामतः बहुत से व्यापार चक्र सम्बन्धी सिद्धान्तों की रचना हुई, जो समष्टिगत अर्थशास्त्र का विषय है। अन्यथा व्यष्टिगत अर्थशास्त्र ही परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के ध्यान का केन्द्र बिन्दु बना रहा। परन्तु 1929 की विश्वव्यापी मन्दी ने समष्टिगत अर्थशास्त्र का अध्ययन अति महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य बना दिया। केन्ज़ की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'The General Theory of Employment, Interest and Money' (1936) इसी विश्व-व्यापी मन्दी की देन है। केन्ज़ की विचारधरा परम्परावादियों से मेल नहीं रख पाई। इसलिए यह पुस्तक केन्ज़ीयन क्रान्ति (Keynesian Revolution) के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह क्रान्ति रूढ़िवादी (Orthodoxy) विचारधारा के विपरीत थी।

उत्पादन और राज़गार का निर्धारण (Output and Employment Determination)—परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार कुल उत्पादन का उपादानों (inputs) से कार्यात्मक सम्बन्ध (functional relationship) है। इन उपादानों जैसे श्रम [labour (N)] और पूँजी के स्टॉक तथा तकनीक [(machines, tools and technology) (K), में व द्धि करके उत्पादन (Q) को बढ़ाया जा सकता है और इनमें कमी करके कुल उत्पादन को घटाया जा सकता है। इस फलन को निम्न प्रकार से दर्शाया जासकता है—

$$Q = f(N, K)$$

K के स्थिर होने पर कुल उत्पादन (Q) श्रमिकों की उस मात्रा (N) पर निर्भर करता है जिनको उत्पादन प्रक्रिया में रोज़गार प्रदान किया जाता है। इस फलन को चित्र 1 में दर्शाया गया है जो यह संकेत करता है कि उत्पादन फलन बढ़ते प्रतिफल, समान प्रतिफल और घटते प्रतिफल तीनों ही अवस्थाओं का सामना करता है। उत्पादन अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया को इतना बढ़ा देते हैं कि घटते सीमांत प्रतिफल की अवस्था प्राप्त हो जाती है। परम्परावादी अर्थशास्त्र इसी अवस्था में ही अर्थव्यवस्था के सन्तुलन की कल्पना करता है। उत्पादन फलन का ढाल श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता

MPP $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta N}\right)$ को दर्शाता है जो प्रारम्भ में MPP बढ़ता हुआ $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta N}\right)_1$, दूसरी अवस्था में MPP स्थिर $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta N}\right)_{11}$ और तीसरी अवस्था में घटते सीमान्त प्रतिफल $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta N}\right)_{111}$ को दर्शाता है।

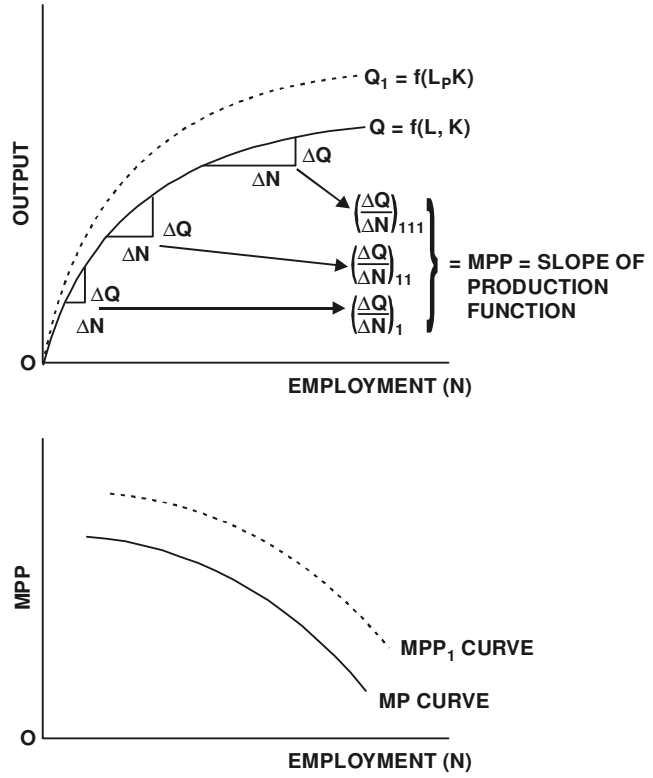

चित्र 1

उत्पादन फलन से स्पष्ट है कि किसी समय में K के स्थिर रहने पर उत्पादन का स्तर (Q) क्या होगा यह रोज़गार स्तर (N) पर निर्भर करता है। इसी उत्पादन फलन [Q = f (L, K)] के आधार पर MPP वक्र स्थिर रह कर $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta D}\right)_{11}$ फिर गिरता जाता हैं जिसको MPP Curve द्वारा नीचे वाले चित्र में दर्शाया गया है। परन्तु K के बढ़ने पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि उत्पादन फलन ऊपर सरक कर $Q_1 = f(N,K)$ बन जाएगा जिसको टूटी रेखा (dotted line) द्वारा दर्शाया गया है।

Q1 = f (N, M) के आधार पर MPP1 Curve निकाला गया है जो बताता है कि उत्पादन फलन के ऊपर सरकने से इसको ढाल में व द्धि होती है अर्थात् MPP $\left(\frac{\Delta Q}{\Delta D}\right)$ बढ़ जाता है। इसलिए MPP वक्र दाईं ओर सरकता है तथा टूटी रेखा द्वारा दर्शाया गया है इससे श्रमिकों की माँग में व द्धि हो जाती है क्योंकि श्रमिकों की मांग MPP पर निर्भर करती है जिसकी व्याख्या निम्न ढंग से की गई है। चाहे कुछ भी हो, K के स्थिर रहने पर उत्पादन का स्तन क्या होगा यह रोज़गार स्तर पर ही निर्भर करता है। रोज़गार का स्तर क्या होगा यह श्रम बाज़ार में श्रम की माँग और श्रम का पूर्ति पर निर्भर करता है।

श्रम की माँग
(Demand for Labour)

समष्टि स्तर पर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का श्रम की कुल माँग सम्बन्धी अलग से कोई सिद्धान्त नहीं है। व्यष्टि स्तर पर

अध्याय-2

मूल रूप में केन्ज़ीयन मॉडल

(The Basic Keynesian Model)

मूल रूप में केन्ज़ीयन मॉडल
(The Basic Keynesian Model)

केन्ज़ ने सन्तुलित उत्पादन स्तर को एक आदर्श स्थिति के रूप में स्वीकार किया; क्योंकि अर्थव्यवस्था इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए सदा प्रयास करती रहती है। परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि सन्तुलित उत्पादन स्तर पूर्ण रोज़गार का स्तर भी हो जैसा कि परम्परावादी मॉडल में माना गया है। केन्ज़ के अनुसार, सन्तुलित उत्पादन स्तर पूर्ण रोज़गार से कम, पूर्ण रोज़गार वाला या पूर्ण रोज़गार से अधिक स्थिति (over full employment) वाला हो सकता है। सन्तुलित उत्पादन स्तर वहाँ होता है जहाँ उत्पादन की कुल माँग (AD) कुल पूर्ति (Y = AS) के बराबर होती है :

$$Y = AD$$

केन्ज़ीयन मॉडल में सन्तुलित उत्पादन (Y = AD) का स्तर किसी भी रोज़गार स्तर पर हो सकता है।

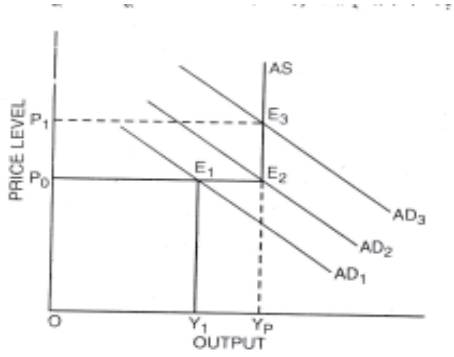

चित्र 1

केन्ज़ तर्क देता है कि मन्दी की अवस्था में तकनीक के स्थिर रहने पर पूर्ति वक्र पूर्णतः लोचशील होता है, अर्थात् माँग के बढ़ने पर अतिरिक्त श्रम लगा कर कीमतों को स्थिर रखते हुए उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। मन्दी की अवस्था में कुल पूर्ति वक्र (AS) x-axis के समानान्तर रहता है। जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार स्तर प्राप्त कर जाती है तब यदि माँग बढ़ने के कारण उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जाता है तो पूर्ति वक्र पूर्णतः लम्बवत् होगा—क्योंकि पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Y_p) प्राप्त होने के बाद उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता जैसा कि अतिरिक्त श्रम आदि उपलब्ध नहीं होते। निम्न चित्र 1 की सहायता से यह स्थिति स्पष्ट की गई है।

किसी समसय अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Potential level of output : Y_p) पर उत्पादन कर रही है या इससे कम या अधिक स्तर पर यह AD की स्थिति पर निर्भर करता है।

जैसा चित्र 1 में दर्शाया गया है। यदि अर्थव्यवस्था AD_1 माँग वक्र पर है जो AS को E_1 बिन्दु पर काटती है तो सन्तुलित उत्पादन स्तर Y_1 निर्धारित होगा जो पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Y_p) से कम है। पूर्ण रोज़गार स्तर प्राप्त करने के लिए केन्ज़ कहता है कि AD को बढ़ाना होगा। इसको बढ़ा क AD_2 कर दिया जाए तो पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Y_p) प्राप्त किया जा सकता ह। इसके बाद यदि AD को और बढ़ाया जाए तो उत्पादन में व द्धि नहीं होगी बल्कि कीमत स्तर बढ़ता है जैसा कि AD बढ़ कर AD_3 होने पर चित्र में कीमत स्तर P_0 से बढ़ कर P_1 हो जाता है अर्थात् केवल कीमतें बढ़ती हैं उत्पादन नहीं।

इस प्रकार केन्ज़ीयन मॉडल में यह स्पष्ट है कि उत्पादन AD का अनुसरण करता है। ध्यान रहे, यह परम्परावादी मॉडल के बिल्कुल विपरीत है—क्योंकि परम्परावादी मॉडल 'स' के बाज़ार नियम पर आधरित है जिसके अनुसार पूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है। (Supply creates its own Demand) अर्थात् माँग उत्पादन का अनुसरण करती है जबकि केन्ज़ीयन मॉडल में उत्पादन माँग का अनुसरण करता है।

1. मान्यताएं (Assumptions)—केन्ज़ के रोज़गार निर्धारण सम्बन्धी मॉडल की मान्यताएं निम्न प्रकार हैं :—

(i) यह कल्पना की है कि अर्थव्यवस्था में हमेशा AD की कमी पाई जाती है, जिसके कारण अनैच्छिक बेरोज़गारी (Involuntary unemployment) विद्यमान रहती है अर्थात् प्रचलित मज़दूरी दर पर श्रमिक कार्य करने को तैयार हैं परन्तु उनको कार्य नहीं मिलता।

(ii) वस्तु और साधन बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, अर्थात् वस्तुओं और साध्नों की सेवाओं की कीमतें माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं।

(iii) आर्थिक विश्लेषण में अल्पकालीन समयावधि की कल्पना की गई है जिसमें उत्पादन की तकनीक तथा जनसंख्या आदि में परिवर्तन नहीं होता।

(iv) NNP और GNP को समान बनाए रखने के लिए घिससई-पिटाई पर व्यय और अप्रत्यक्ष करों की अवहेलना की गई है।

(v) सभी चरो के मौद्रिक माप की अपेक्षा वास्तविक माप लिये गये हैं।

2. **कुल माँग के तत्त्व** (Components of Aggregate Demand)

केन्ज़ के अनुसार, कुल माँग में परिवर्तन करके ही कुल उत्पादन और रोज़गार को परिवर्तित किया जा सकता। कुल माँग कुल व्यय पर निर्भर करती है जिसमें उपभोग व्यय, घरेलू निजी व्यावसायिक निवेश खर्च और वस्तु तथा सेवाओं पर किया गया सरकारी व्यय सम्मिलित होते हैं। एक खुली अर्थव्यवस्था में आयात-निर्यात पर शुद्ध खर्च (X-M) को भी कुल माँग में शामिल किया जाता है। ये विभिन्न खर्च ही कुल माँग (AD) के तत्त्व (Components) कहे जाते हैं। इन तत्वों का अध्ययन कुल माँग में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए अनिवार्य है।

(i) **उपभोग व्यय** (Consumption Expenditure)—प्रत्येक अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का लगभग 65% भाग उपभोग पर खर्च किया जाता है। केन्ज़ के अनुसार, उपभोग पदार्थों की माँग मुख्यतः वर्तमान आय (Current Income) और उपभोग प्रव त्ति पर निर्भर करती है। आय और उपभोग व्यय के मध्य सम्बन्ध को उपभोग फलन (Consumption Function) के नाम से जाना जाता है।

उपभोग (Consumption Function)—उपभोग फलन को केन्ज़ के आर्थिक सिद्धान्त की सबसे महत्त्वपूर्ण देन समझा जाता है। इस फलन के अनुसार उपभोग पदार्थों की माँग निरपेक्ष प्रयोज्य आय (Current Disposable Income) पर निर्भर करती है। इसमें परिवर्तन आने से उपभोग व्यय प्रत्यक्ष रूप से बदलता है। इन दोनों के मध्य यह प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही उपभोग फलन कहलाता है। प्रयोज्य आय में परिवर्तन से उपभोग व्यय कितना बदलता है इस प्रश्न का उत्तर केन्ज़ ने अपने उपभोग सम्बन्धी मनोवैानिक नियम (Psychological Law of Consumption) के आधार पर दिया है। The law states that "The psychology of the community is such that whenever aggregate income rises consumption also increases but less than the rise in income." अर्थात् समुदाय की मनौवैज्ञानिक स्थिति इस प्रकार की है कि जब कभी कुल आय बढ़ती है तो उपभोग भी बढ़ता है परन्तु इतना नहीं जितना आय बढ़ती है। बढ़ी हुई आय दो भागों में विभक्त होती है—उपभोग व्यय और बचत। इस प्रकार जब आय बढ़ती है तो उपभोग व्यय और बचत दोनों बढ़ते हैं अर्थात् $(Y = C + S)$। केन्ज़ के अनुसार, उपभोग स्वायत्त आय (Disposable income) का स्थाई और बढ़ता फलन है।

$$c = f(Yd);\ Yd = \text{disposable Income}$$

or
$$c = f(Y - T);\ = \text{Net Taxes} \qquad \text{..... (i)}$$

केन्ज़ मॉडल में उपरोक्त उपभोग फलन की आकृति एक सरल रेखा $(c = a_0 + bY_d)$ वाली होती

$$c = a_0 + bY_d;\ a > 0,\ 0 < b < 1 \qquad \text{..... (ii)}$$

समीकरण (ii) के अनुसार उपभोग फलन को चित्र 2 में दर्शाया गया है। शीर्ष-अक्ष दर्शाता है कि जब आय का स्तर शून्य होता है तबअ भी a_0 के समान धनामक व्यय किया जाता है जो आय में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता। समीकरण (ii) में b उपभोग

फलन के ढाल अर्थात् सीमांत उपभोग प्रव त्ति (MPC) को दर्शाता है। यह व्यक्त करता है कि स्वायत्त आय में प्रति इकाई परिवर्तन से उपभोग व्यय कितना बदलता है। आय-उपभोग के इस सम्बन्ध को चित्र 2 में दर्शाया गया है।

केन्ज़ का विश्वास था कि प्रत्येक स्वायत्त आय (Y_d) में व द्धि से उपभोग व्यय बढ़ता है परन्तु यह व द्धि स्वायत्त आय में हुई व द्धि से कम होती है अर्थात् b इकाई से कम और शून्य से अधि ाक होती है $(0 < b < 1)$ अल्पकाल में MPC (b) स्थिर रहती है। चित्र 2 में दर्शाए गए उपभोग फलन पर किसी भी आय स्तर पर उपभोग व्यय कितना होगा ज्ञात किया जा सकता है। उपभोग फलन के आधार पर उपभोग व्यय का दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : (1) स्वतन्त्र उपभोग (autonomous consumption) जो आय में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता जैसा कि a_0। (2) प्रेरित उपभोग (Induced Consumption) जो आय में परिवर्तन के साथ बदलता है जिसको उपभोग फलन के ढाल (b) $= \frac{\Delta C}{\Delta Y}$ द्वारा दर्शाया गया है।

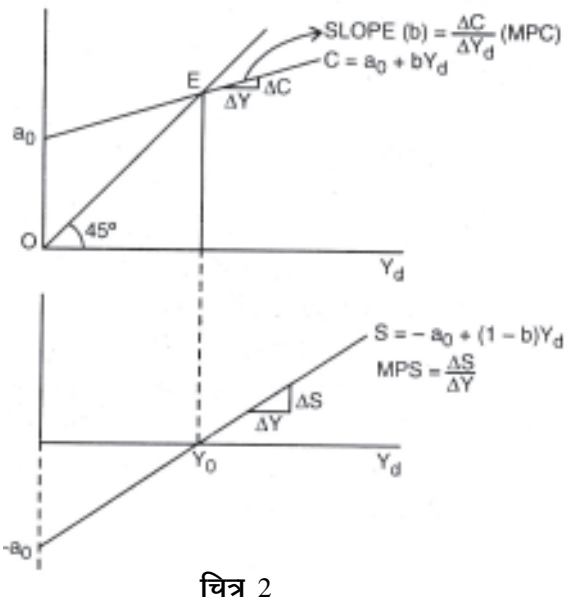

चित्र 2

सीमान्त और औसत उपभोग प्रव त्ति का सम्बन्ध (Relation between MPC and APC)

किसी अर्थव्यवस्था में आय का औसतन कितना भाग उपभोग पर व्यय किया जाता है, औसत उपभोग प्रव त्ति (APC) कहलाती है। APC X कुल उपभोग व्यय को कुल Y_d से भाग देने पर प्राप्त की जा सकती है।

$$APC = $$

एक सरल रेखीय उपभोग फलन (linear consumption function), जैसा चित्र 2 में दर्शाया गया है, के अनुसार Y_d व द्धि के साथ APC गिरती जाती है और आय में प्रत्येक कमी के साथ बढ़ती जाती है। जब कभी Y_d शून्य होती है तो APC अनन्त होती है इसकी व्याख्या निम्न ढंग से की गई है।

आय (Y_d) में परिवर्तन से उपभोग में कितना परिवर्तन आता है, इसके अनुपात को सीमानत उपभोग प्रव त्ति (MPC) कहते हैं जो वास्तव में एक उपभोग फलन के ढाल (b) द्वारा प्रकट होती है।

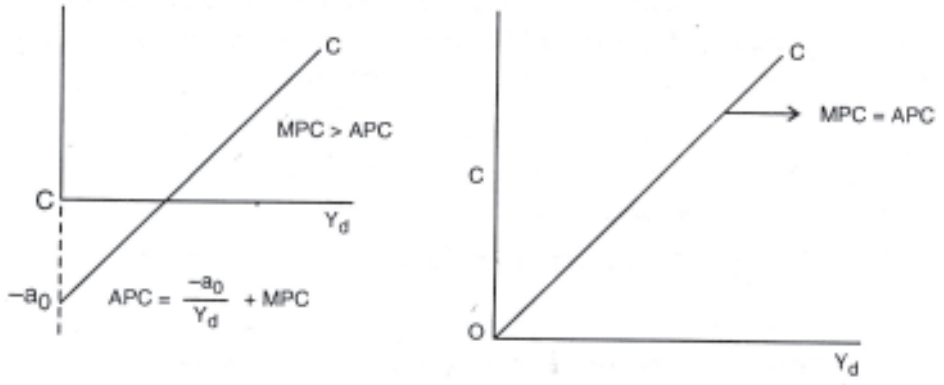

चित्र 3

चित्र

MPC और APC का सम्बन्ध निम्न प्रकार से देखा जा सकता है–

$$C = a_0 + by_d$$

$$APC = \frac{c}{Y_d} = \frac{a_0}{Y_d} + \frac{bY_d}{Y_d}$$

$$APC = \frac{a_0}{Y_d} + b \text{ (MPC)}$$

Yd के ऊँचे स्तरों पर $\frac{a_0}{Y_d}$ घटता जाएगा क्योंकि a_0 स्थिर रहता है। इतना ही नहीं b भी स्थिर रहता है। इस कारण Y_d के ऊँचे स्तरों $APC\left(\frac{a_0}{Y_d} + b\right)$ गिरती जाती है और Y_d के कम स्तरों पर APC बढ़ती जाती है।

दूसरा सम्बन्ध यह देखा जा सकता है कि उपरोक्त सरल रेखीय उपभोग फलन पर जहाँ a_0 घनात्मक है APC हमेशा MPC से अधिक होगी ($\because$ APC = + MPC जब तक उपभोग फलन शीर्ष-अक्ष से शुरू होता है या a_0 धनात्मक है।)

तीसरा सम्बन्ध स्पष्ट है कि यदि उपभोग फलन शून्य से शुरू होता है (a_0 = zero), तब APC = MPC। यदि उपभोग फलन नकारात्मक शीर्ष-अक्ष से शुरू होता है। ($-a_0$), तब MPC > APC जैसा कि निम्न उपभोग फलनों से स्वतः स्पष्ट है।

$\frac{a_0}{Y_L}$

सीमान्त बचत प्रव त्ति
(Marginal Propensity to Save)

आय में परिवर्तन होने पर बचत में होने वाले परिवर्तन का अनुपात सीमान्त बचत प्रव त्ति (MPS) कहलाता है $\frac{\Delta S}{\Delta Y}$। केन्ज़ के अनुसार, बचत भी आय पर निर्भर करती है तथा आय का फलन है। आय के कम स्तरों पर उपभोग आय से अधिक होने के कारण बचत नकारात्मक होती है और शून्य आय पर बचत $-a_0$ होती है जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। आय बढ़ने पर बचत भी बढ़ती है जैसा कि चित्र 4 में, Break even point Y_0 पर बचत शून्य होती है और उसके बाद यह धनात्मक बन जाती है। चित्र में APS और MPS का सम्बन्ध इसी प्रकार देखा जा सकता है जैसे MPC और APC के मध्य सम्बन्ध जाँचा गया।

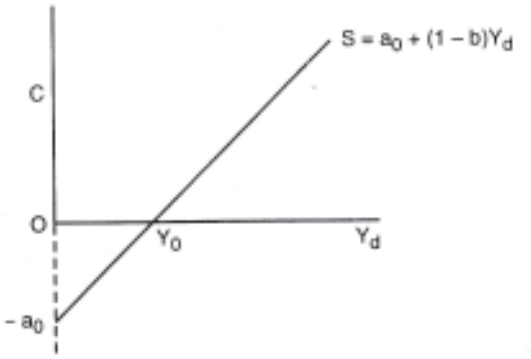

चित्र 4

$$Y = C + S + T$$

$$Y - T = C + S \text{ Or } Y_d = C + S$$

$$\Delta Y_d = \Delta C = \Delta S$$

Or $$\Delta S = \Delta Y_d - \Delta C$$

Divididing both sides by ΔY_d or dY_d

$$= \frac{\Delta Y_d}{\Delta Y_d} - \frac{\Delta C}{\Delta_d}$$

$$\frac{\Delta S}{\Delta Y_d} = \frac{\Delta C}{\Delta Y_d}$$

or $\quad MPS = 1 - MPC \text{ or } MPS = 1 - b$

(ii) **निवेश व्यय** (Investment Expenditure)—केन्ज़ के अनुसार निवेश व्यय कुल माँग का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंश है। निवेश की महत्ता इस बात से उत्पन्न होती है कि उपभोग व्यय आय का स्थाई फलन है। इसलिए आय में परिवर्तन हुए बिना सामान्य परिस्थितियों में उपभोग व्यय को नहीं बढ़ाया जा सकता है। इसलिए निवेश व्यय में परिवर्तन करके ही कुल माँग को बढ़ाया जा सकता है। केन्ज़ ने मत प्रकट किया कि निवेश खर्च आय में परिवर्तन के प्रति स्वतन्त्र है (Investment is autonomous)। आय और रोज़गार में परिवर्तन और आर्थिक क्रियाओं में अस्थिरता का निवेश में उतार-चढ़ाव एक प्रमुख कारण पाया गया। 1930 की विश्व-व्यापी मन्दी निवेश में गिरावट के कारण उत्पन्न हुई। उदाहरणतः 1929 में अमेरिका में निवेश GNP का लगभग 16 प्रतिशत था जो 1933 में गिरकर 2 प्रतिशत ही रह गया। (निवेश का निर्धारण कैसे होता है ?)

आय और कुल माँग में परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। निवेश से तात्पर्य यहाँ व्यावसायिक निवेश (Business investment) से है। केन्ज़ के अनुसार, व्यावसायिक आशाएं (Business Expectations), जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) का निर्धारण करती हैं और ब्याज की दर निवेश के मुख्य निर्धारण तत्त्व हैं। MEC के स्थिर रहने पर निवेश ब्याज की दर (r) से विपरीत सम्बन्ध रखता है। MEC के स्थिर रहने पर r निवेश का निर्धारक तत्त्व है।

$$I = f(r)$$

कुल माँग सरकार की नीति और उपभोक्ताओं की रुचि सम्बन्धी ज्ञान की कमी होने पर भी निवेशकर्त्ता नए प्लांट या प्रोजैक्ट से भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभ से सम्बन्धित आशाएं या व्यावसायिक आशाओं (Business expectations) का निर्माण करते हैं। केन्ज़ के अनुसार, निवेशक दो तथ्यों के आधार पर भविष्य से सम्बन्धित आशाओं का निर्माण करते हैं :

(i) निवेशक विश्वास करते हैं कि नज़दीकी भूतकाल में जो घटित हुआ है वह नज़दीकी भविष्य में भी घटित होगा

(ii) निवेशकताओं के समूहों द्वारा किए गए निवेश सम्बन्धी निर्णयों के आधार पर भी व्यावसायिक आशाओं का निर्माण किया जाता है।

व्यावसायिक आशाएं नई घटनाओं और सूचनाओं में परिवर्तन के कारण बदलती रहती हैं। इसलिए ये बहुत अस्थिर होती हैं। उनमें परिवर्तन निवेश में तुरंत बहुत अधिक परिवर्तन लाता है। इसलिए निवेश में परिवर्तन कुल माँग में परिवर्तन और परिणामस्वरूप आय स्तर में परिवर्तन की प्रमुख कारण है।

(iii) सरकारी व्यय (Government Expenditure)—वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर किया गया सरकारी खर्च कुल माँग (AD) का तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व (Component) है। निवेश खर्च की तरह यह भी आय से स्वतन्त्र माना गया है। सरकार द्वारा इस प्रकार का किया गया खर्च भी स्वतन्त्र व्यय (autonomous expenditure) है क्योंकि यह मुख्यतः नीति निर्धारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है न कि आय द्वारा। यद्यपि आय में परिवर्तन से दी हुई कर दरों पर कर संग्रह में परिवर्तन होता है जो सरकारी व्यय का स्रोत है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सरकारी व्यय, आय द्वारा निर्धारित आन्तरिक तत्त्व है। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि कर दरों का निर्धारण सरकार द्वारा ही किया जाता है न कि आय द्वारा। इस कारण सरकारी व्यय आय और माँग निर्धारण का बाह्य चर (Exogenous variable) है क्योंकि यह आय में परिवर्तन के प्रति स्वतन्त्र है।

3. सन्तुलित आय स्तर का निर्धारण (Determination of Equilibrium level of Income)

केन्ज़ीयन मॉडल में सन्तुलित उत्पादन और आय का निर्धारण वहाँ होता है जहाँ होता है जहाँ कुल माँग कुल उत्पादन (GNP) के बराबर होता है :

$$Y = AD \qquad \text{..... (i)}$$

AD के उपरोक्त तत्त्वों (Components) के आधार पर सन्तुलित आय के समीकरण (i) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता

है :—

$$Y = AD = C + I + G \quad \text{..... (ii)}$$

अर्थात् कुल उत्पादन (Y) कुल माँग (AD) जिसमें उपभोग व्यय (C), निवेश व्यय (I) और सरकारी व्यय (G) सम्मिलित होते हैं, के समान होने पर आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित होता है। कुल उत्पादन (y) का विभाजन वस्तुओं के आधार पर जैसे कि उपभोग पदार्थ (C), सरकार द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तु तथा सेवाएं (G) और निवेशकत्ताओं द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुएं जिसको वास्तविक निवेश (I_r) कहा जाता है, किया जाता है अर्थात्

$$Y = C + I_r + G \quad \text{..... (iii)}$$

इसलिए समीकरण (i) और (iii) के आधार पर

$$C + I_r + G = C + I + G$$

or $$C + Ir + G = C + I + G$$

or $$Ir = I$$

..... (iv)

I_r = Real Investment, I = intended investment, I_r उत्पादन और पूर्ति का हिस्सा है, जबकि I कुल माँग (AD) का हिस्सा है।

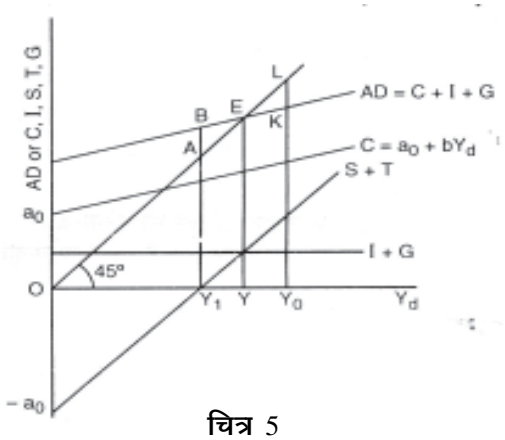

चित्र 5

अर्थात् सन्तुलित उत्पादन का स्तर केवल वहाँ निर्धारित होता है जहाँ ऐच्छिक निवेश (I) वास्तविक निवेश (I_r) के समान होता है। यदि $I > I_r$ तब AD > AS होगी।

माँग की अधिकता को व्यापारी लोग अपने स्टॉक (inventory) में कमी करके सन्तुष्ट करेंगे। व्यावसायिक परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिए व्यापारी स्टॉक की एक आदर्श मात्रा रखते हैं। उपरोक्त परिस्थिति में स्टॉक में अनैच्छिक गिरावट (involuntary decumulation of inventories) आएगी जिसको पूरी करने के लिए वस्तुओं की अतिरिक्त खरीद की जायेगी जो उद्यमियों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा देगी ताकि स्टॉक में आई अनैच्छिक गिरावट को पूरा किया जा सके। इस कारण से उत्पादन व रोज़गार में व द्धि होगी। इसके विपरीत यदि $I < I_r$ तब स्टॉक का आकार अनैच्छिक रूप से बढ़ जायेगा क्योंकि उत्पादित हुई सारी वस्तुएं न बिकने के कारण स्टॉक में व द्धि होगी जो न चाहते हुए भी होती है। अपने स्टॉक को ऐच्छिक स्तर पर कायम रखने के लिए अब उद्यमी कम उत्पादन का निर्देश देंगे। परिणामस्वरूप उत्पादन और रोज़गार का स्तर गिरेगा। इसलिए सन्तुलित उत्पादन का स्तर केवल वही हो सकता है जहाँ आयोजिक निवेश (I) वास्तविक निवेश (I_r) के बराबर हो ($I = I_r$)

समीकरण (i) तथा (ii) के साथ ही सन्तुलित उत्पादन के निर्धारण की तीसरी शर्त आय के चक्रीय प्रवाह में स्राव (S + T) और इन्जैक्शन्ज (I + g) के बराबर होने की है अर्थात्

$$S + T = I + g$$

यदि समीकरण (v) के दोनों पहलु समान नहीं हैं तो उत्पादन में परिवर्तन अनिवार्य रूप से होगा। इस प्रकार सन्तुलित आय के निर्धारण की निम्न तीन शर्तें प्राप्त होती हैं—

(1) Y= AD = $c + i + g$

(2) $I + I_r$

(3) $S + T = I + g$

सन्तुलित आय स्तर पर उपरोक्त तीनों शर्तें पूरी होती है जैसा कि चित्र 6.5 में दर्शाया गया है। चित्र 6.5 दर्शाता है कि I + G पर आय परिवर्तन का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए I + G रेखा X-अक्ष के प्रति समानान्तर है। C + I + G वक्र उपभोग फलन से समान दूरी पर है यह भी वही बात दर्शाती है। परन्तु बचत + कर (S + T) आय का बढ़ता फलन है। चित्र में सन्तुलित आय Y पर स्थापित होती है जहाँ कुल माँग C + I + G रेखा 45° की रेखा जो दोनों अक्षों से बराबर दूरी पर स्थित

है, को वहां काटता है जहाँ कुल माँग (AD) कुल पूर्ति (Y) के बराबर होती है। यहाँ $S + T = I + G$ हे। यदि वास्तविक उत्पादन का स्तर चित्र में Y से कम है तो $AD\,(C + I + G) > Y\,(C + I_r + g)$ होगी और यह अधिकता Y_1 आय पर AB के बराबर होगी अर्थात् यहाँ ऐच्छिक निवेश (I) वास्तविक निवेश (I_r) से अधिक होगा ($I > I_r$) जो स्टॉक (inventory) को अनैच्छिक रूप से गिरा देगा। इसको अपने आदर्श स्तर पर कायम रखने के लिए व्यावसायिक लोग नई खरीद के निर्देश जारी करेंगे जो उत्पादन तथा रोज़गार को बढ़ाएगा। इसके विपरीत प्रतिक्रिया उस समय होगी जब आय का स्तर Y_2 है जिस पर $I < I_r$ या $AD\,(C + I + G) < Y\,(C + I_r + g)$ जिस पर स्टॉक बढ़ेंगे। अनैच्छिक स्टॉक बढ़ने के कारण उत्पादन गिरेगा। अन्नतः सन्तुलित आय का उत्पादन वहाँ होगा जहाँ $I = I_r$ है, $S + T$ भी Y पर $I + G$ के बराबर है।

4. सन्तुलित आय में परिवर्तन (Change in the Equilibrium level of Income)—सन्तुलित आय में परिवर्तन या तो गुणक के मूल्य में परिवर्तन के कारण या कुल खर्च में परिवर्तन के कारण हो सकता है—क्योंकि सन्तुलित आय का निर्धारण किसी समय में इन तत्त्वों पर ही निर्भर करता है। हम जानते हैं कि—

$$c = a_0 + bY_d + = a_0 + b\,(Y - T) = a_0 + bY - bT$$
$$= a_0 + bY - bT$$

सन्तुलित आय के समीकरण, $Y = C + I + G$, में C के मूल्य को C के स्थान पर रखने पर

$$Y = a_0 + bY - bT + I + G$$
$$Y - bY = a_0 - bT + I + G$$
$$Y\,(1 - b) = a_0 - bT + I + G$$

$$Y = \left(\frac{1}{1-b}\right)(a_0 - bT + I + G)$$

$$Y = \text{Autonomous Multiplier (Autonomous Expenditure)}$$

समीकरण (v) में $\left(\frac{1}{1-b}\right)$ एक स्वतन्त्र व्यय (K) है। इस पर Y में परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह MPC (b) के मूल्य पर निर्भर करता है। b का कोई भी मूल्य ज्ञात या मान कर, गुणक का मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु अल्पकाल में उपभोग फलन स्थिर रहने के कारण उपभोग फलन का ढाल (b) स्थिर रहता है।

इसी प्रकार स्वतन्त्र $(a_0 + bT + I + G)$ के सभी तत्त्व (Components) भी Y से स्वतन्त्र हैं। आय (Y) में परिवर्तन करने के लिए या तो गुणक के मूल्य को परिवर्तित किया जाए या स्वतन्त्र व्यय या दोनों को। परन्तु अल्पकाल में MPC (b) स्थिर रहने के कारण गुणक का मूल्य स्थिर रहता है। इसलिए सन्तुलित आय में परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र व्यय में ही परिवर्तन करना होगा जैसे कि समीकरण (v) में G, या G या T। आय में परिवर्तन के लिए या तो ये सभी तत्त्व बदलें या कोई एक तत्त्व बदले।

Two Sector Model

निवेश में परिवर्तन के कारण सन्तुलित आय में परिवर्तन या सरकार रहित अर्थव्यवस्था में केन्ज़ीयन मॉडल

(Keynesian Model without Government or change in income due to change in investment)

एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें केवल निजी व्यावसायिक निवेश परिवर्तित और सरकार व्यय (G) तथा कर (T) स्थिर रहे तब सन्तुलित आय के स्तर में कितना परिवर्तन होगा ?

यह एक बहुत ही साधारण मॉडल है जिसमें यह कल्पना की गई है कि या तो सरकार है नहीं या सरकार पूर्णतः निष्क्रिय है।

यह भी कल्पना की गई है कि यह एक बन्द अर्थव्यवस्था है (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता)। सरलता के लिए GNP, NNP व Y_d को समान माना गया है। ऐसी अवस्था में आय को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$Y = C + I$$

उपरोक्त समीकरण में उपभोग फलन का C के स्थान पर समावेश करते हुए

$$Y = a_0 + bY + I$$

$$Y - bY = a_0 +$$

$$Y(1 - b) = a_0 + I$$

$$Y = \frac{1}{1-b}(a_0 + i) \qquad .....(vi)$$

समीकरण (*vi*) व्यक्त करता है कि निवेश (I) की किसी मात्रा पर आय का स्तर क्या होगा ? अल्पकाल में MPC (*b*) स्थिर रहने पर गुणांक $\frac{1}{1-b}$ का मूल्य स्थिर रहता है। इसी प्रकार a_0 भी स्थिर व्यय है। Y का क्या मूल्य होगा यह निश्चित रूप से निवेश (I) पर कुल निवेश व्यय $= I + \Delta I$ होगा जो नई सन्तुलित आय $= Y + \Delta y$ उत्पन्न करेगा। अर्थात् :

$$=$$

या
$$Y + DY = \frac{ao + I}{1-b} + \frac{\Delta I}{1-b} \qquad ..... (vii)$$

हमें ज्ञात है कि $Y =$ और $\Delta Y = \frac{\Delta I}{1-b}$

$(a_0 + I + \Delta I)$

$$Y =$$

$$\therefore \qquad = \frac{1}{1-b} = K(\text{Multiplier})$$

अब दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं :

(1) आय में परिवर्तन निवेश में परिवर्तन से अधिक क्यों होता है ?

(2) आय में परिवर्तन बिल्कुल के समान ही क्यों होता है—न कम और न ज्यादा ?

मान लीजिए निवेश में 100 रू. की व द्धि की गई है जो वस्तुएं और साधन खरीदने पर व्यय कर दी जाती हैं। इसलिए वस्तुओं और साधनों के विक्रेताओं की आय 100 रू. से तुरन्त बढ़ जाती है। निवेश का आय और माँग पर यह प्रत्यक्ष प्रभाव है। आय में हुई 100 रू. की व द्धि आगे उपभोग पदार्थों की माँग को बढ़ाने की प्रेरणा देती है। इस कारण से बढ़ी हुई माँग को आय प्रेरित माँग (income induce demand) कहा जाता है। लोग अपनी 100 रू. से बढ़ी आय का एक भाग अपनी MPC के अनुसार व्यय करेंगे। यदि MPC = .8 है तो 80 रू. उपभोग पदार्थों पर खर्च करेंगे और 20 रू. बचत करेंगे। इससे स्पष्ट है कि उपभोग पदार्थों के विक्रेताओं की आय 80 रू. से बढ़गी जो वे आगे अपनी MPC = .8) के अनुसार खर्च करेंगे। इस प्रकार यह आय प्रजनन की प्रक्रिया (Process of Income Propagation) चलती रहती है। अतः आय में व द्धि निवेश में हुई व द्धि से अधिक होगी—इसका कारण यह प्रेरित उपभोग खर्च है।

अब दूसरा प्रश्न है कि आय में व द्धि $\frac{1}{1-b}\Delta I$ के समान ही क्यों होती है इसकी जाँच की जा सकती है। इसका कारण यह है कि जब तक कुल माँग पूर्ति से अधिक होती है आय बढ़ना जारी रखती है और जब ये दोनों समान हो जाते हैं तो आय

बढ़ने की प्रेरणा समाप्त हो जाती है तथा आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित हो जाता है। यहाँ आय के सन्तुलन होने की शर्त सन्तुष्ट हो जाती है–

$$S + T = I + G$$

इस मॉडल में कल्पना की गई है कि सरकार विद्यमान नहीं है या निष्क्रिय है इसलिए T और G शून्य होंगे, अर्थात् $S = I$

आय के स्तर को सन्तुलन में रखा जा सकता है। जब निवेश में व द्धि आय को इतना बढ़ा दे ताकि बचत में व द्धि निवेश में हुई व द्धि के समान हो सके $(\Delta I = \Delta S)$। इस तथ्य को निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है।

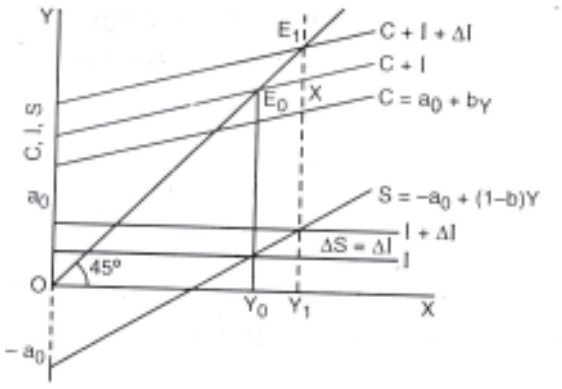

चित्र 6

चित्र 6 में दर्शाया गया है कि अर्थव्यवस्था में प्रारम्भिक सन्तुलन E_0 पर स्थापित होता है और Y_0 आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित होता हैं अब निवेश में व द्धि (ΔI) करने से कुल माँग वक्र $C + I = \Delta I$ के अनुसार गुणक की सहायता से आय बढ़ाती है और E_1 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करती है जिससे Y_1 आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित होता है। निवेश में की गई व द्धि आय को उस समय तक बढ़ाती रहती है जब तक बचत बढ़कर दोबारा निवेश के समान नहीं हो जाती या बचत में व द्धि के समान नही हो जाती। यह आय में कितनी व द्धि होगी ? जो आय बढ़ी हुई बचत को बढ़े हुए निवेश के समान कर सके। यह निश्चित रूप से $\frac{1}{1-b}\Delta I$ के समान होगी।

Three Sector Model

सरकारी व्यय में परिवर्तन के कारण सन्तुलित आय में परिवर्तन या सरकार सहित केन्ज़ीयन मॉडल

(Keynesian Model with government Or change income due to change in government expenditure)

सरकार जब युद्ध आदि पर व्यय तथा हस्तान्तरित व्यय करती है तो भी अर्थव्यवस्था में वस्तु और सेवाओं की माँग और आय बढ़ती है। यह माँग तथा आय कितनी बढ़ती है यह सरकारी गुणक (Government Multiplier) के मूल्य पर और सरकार द्वारा की गई व्यय में व द्धि पर निर्भर करता है। सरकारी गुणक का मूल्य साधारण निवेश गुणक जिसमें सरकार विद्यमान नहीं होती या निष्क्रिय होती है से कम होता है। इसका कारण इस मॉडल में आय प्रेरित (Income induced demand) माँग में व द्धि अपेक्षाकृत कम होती है। यद्यपि माँग और आय में प्रारम्भिक व द्धि दोनों अवस्थाओं, चाहे वह सरकारी व्यय में व द्धि हो या निवेश में व द्धि, में समान होती है–अर्थात् प्रारम्भ में जितना व्यय बढ़ता है उतनी ही माँग और आय दोनों अवस्थाओं में बढ़ती है। परन्तु सरकारी व्यय में की गई व द्धि आय प्रेरित माँग को इसलिए कम बढ़ा पाती है क्योंकि आय प्रजनन प्रक्रिया में केवल बचत ही स्राव नहीं होता बल्कि कर (Tax) भी स्राव बन जाते हैं। ये स्राव समान रूप से माँग कम कर देते हैं जबकि निवेश गुणक की अवस्था में केवल बचत ही स्राव होता है (सरकार निष्क्रिय होने से कर नहीं लगते) इसलिए सरकार गुणक का मूल्य निवेश गुणक के मूल्य से कम होगा।

इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है :

मान लीजिए MPC $(b) = .6$ और सीमान्त कर प्रव त्ति (MPT) $= .2$ है जिसको निम्न समीकरण में t द्वारा व्यक्त किया गया है। साधारण निवेश गुणक (K) $\frac{1}{1-b} = \frac{1}{1-.6} = 2.5$ होगा जबकि सरकारी गुणक (K_g) का मूल्य $= \frac{1}{1-b(1-t)} = \frac{1}{1-.6(1-.2)}$

$= \frac{1}{1-.6(.8)} = \frac{1}{\frac{13}{2.5}} = \frac{12}{13} = 1.9$ होगा जो साधारण गुणक मूल्य से कम है।

सरकारी गुणक का सूत्र निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है :—

हम जानते हैं कि

$$Y = a_0 + b[Y - t(Y)] + I + G$$

सरकारी व्यय में व द्धि से आय में व द्धि (Derivative) :

$$\Delta Y =$$

$$=$$

$$= \Delta G$$

$$= \Delta G$$

$$=$$

Or $$\Delta Y =$$

$$K_g =$$

$\frac{\Delta Y}{\Delta G} = \frac{1}{1-b(1-t)} \Rightarrow$ Government Multiplier

सरकारी व्यय में व द्धि से आय कितनी बढ़ती है को निम्न चित्र की सहायता से जाँचा जा सकता है।

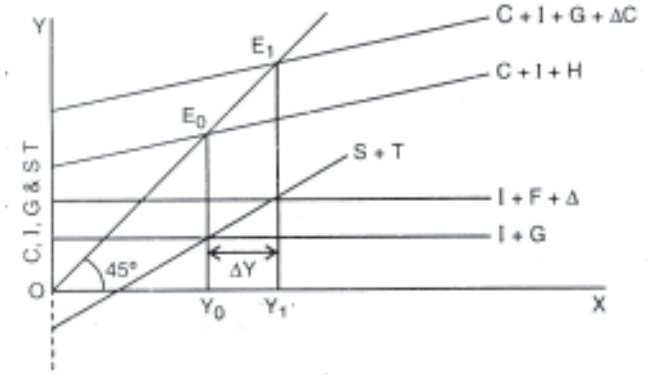

चित्र 7

चित्र 7 से स्पष्ट है कि जब सरकारी व्यय में व द्धि (ΔG) की जाती है तो कुल माँग वक्र ऊपर सरक कर $C + I + G + \Delta G$ बन जाता है जो 45^o की रेखा को E_1 बिन्दु पर काट कर Y_1 सन्तुलित आय निर्धारित करता हैं। सन्तुलित आय में Y_0 से Y_1 व द्धि (ΔY) सरकारी गुणक $K_g \Delta G$ अर्थात् $\frac{1}{1-b(1-t)} \Delta G$ के समान होती है जो सरकारी व्यय से कई गुना अधिक है। Y_1 पर सन्तुलन की शर्त $S + T = I + G$ आदि सभी सन्तुष्ट हो रही है।

कुल कर संग्रह में परिवर्तन के कारण सन्तुलित आय में परिवर्तन
(Change in Equilibrium income due to change in tax collection)

सरकार अपने कुल कर संग्रह (T) में परिवर्तन करके भी माँग और आय को प्रभावित कर सकती है। इस प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए यह कल्पना की गई है कि कुल कर संग्रह में से हस्तान्तरित व्यय (पेंशन आदि) घटा दिया जाता है अर्थात् T से अभिप्राय शुद्ध कर की मात्रा से है। शुद्ध करों की मात्रा (T) में परिवर्तन माँग और आय पर विपरीत प्रभाव छोड़ती है। T के बढ़ने पर लोगों की प्रयोज्य आय (Disposable income) कम हो जाती है और वे उपभोग पदार्थों की माँग कम कर देते हैं

जिससे आय भी कम हो जाती है। इसके विपरीत करों की मात्रा (T) कम करने पर लोगों की आय बढ़ती है, वे उपभोग पदार्थों की माँग बढ़ा देते हैं और इस प्रकार माँग और आय दोनों बढ़ते हैं। (ध्यान देने की बात है कि T में व द्धि G और I में व द्धि की अपेक्षा आय व माँग विपरीत प्रभाव छोड़ती हैं)। Y में परिवर्तन का माँग और आय पर कितना प्रभाव पड़ता है यह कर गुणक पर और T की मात्रा के किये गए परिवर्तन पर निर्भर करता है। समीकरण (v) का ध्यान करते हुए आय में परिवर्तन (ΔY) जो T में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है :

$$\Delta Y = \frac{1}{1-b} - b\Delta T$$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta T} =$$

अर्थात् T में व द्धि करने से आय में गिरावट के समान होगी क्योंकि T में व द्धि (ΔY) लोगों की उतनी ही आय कम कर देगा और कुल खर्च में गिरावट उनकी सीमान्त उपभोग प्रव त्ति (b) के अनुसार होगी जो $-b\Delta Y$ के समान गिरावट से गुणक की विपरीत प्रक्रिया (Reverse action or Backward action of multiplier) लागू होगी।

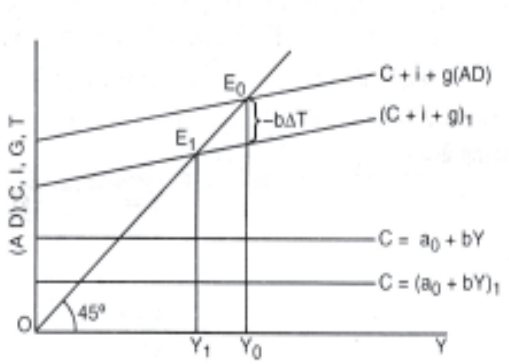

चित्र 8

इसके विपरीत यदि कर संग्रह में कमी की गई है ($-\Delta Y$) तो यह आय तथा माँग को बढ़ाने वाला होगा। परन्तु कितना यह व द्धि $\frac{-b}{1-b}(-b\Delta T)$ के समान अर्थात् $\frac{-b}{1-b}(-\Delta T)$ या $\frac{b\Delta Y}{1-b}$ के समान होगी।

निम्न चित्र में T में की गई व द्धि का माँग तथा आय पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है।

T में व द्धि के कारण उपभोग फलन $a_0 + bY$ से नीचे सरक कर $(a_0 + bY)$, बन जाता है—क्योंकि लोगों की आय कम होने के कारण उपभोग पर अब प्रत्येक आय के स्तर पर कम खर्च किया जाता है। यह $-b\Delta Y$ के अनुसार नीचे को सरक जाएगा। इसके बराबर ही कुल माँग रेखा नीचे सरक कर $(C + I + G)$ बन जाती है जो 45^o की रेखा E_1 बिन्दु को काटकर Y_1 सन्तुलित आय स्थापित करती है। चित्र 6.8 में आय में गिरावट Y_0 से Y_1 होती है।

Four Sector Model

5. एक खुली अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण (Determination of Income in an open economy)–जब एक अर्थव्यवस्था बाह्य देशों के साथ आयात (M) और निर्यात (X) करती है तो खुली (Open) अर्थव्यवस्था कहलाती है। शुद्ध निर्यात $(X - M)$ घरेलू देश की कुल माँग में व द्धि करते हैं। निर्यातों की माँग घरेलू माँग को बढ़ाती है। परन्तु आयातों के लिए हमारी माँग हमारी कुल माँग को कम करती है—क्योंकि यह वह खर्च है जो घरेलू वस्तुओं की खरीद पर व्यय नहीं किया जाता बल्कि विदेशी वस्तुओं की खरीद पर व्यय कर दिया जाता है। इसलिए आयात घरेलू वस्तुओं की माँग में छिद्र या उनको घटाने वाला हुआ। स्पष्ट है आयात (M) और निर्यात (X) का माँग पर शुद्ध प्रभाव दोनों का अन्तर $(X - M)$ होगा। इस प्रकार एक खुली अर्थव्यवस्था में सन्तुलित आय के समीकरण को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$Y = C + I + G + X - M$$

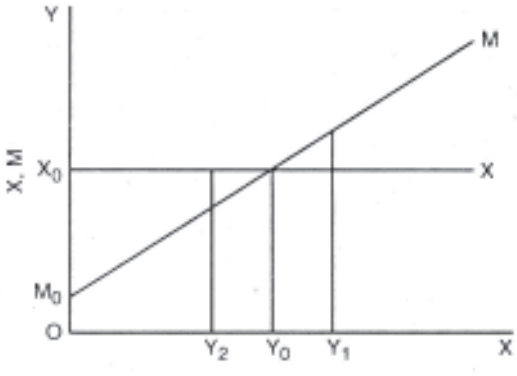

चित्र 9

खुली अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि निर्यात वस्तुओं की माँग घरेलू देश की आय से स्वतन्त्र है। घरेलू निर्यात वस्तुओं (X) की माँग विदेशियों की आय पर निर्भर करती है। इसलिए यह बाह्य तत्त्व है। जबकि घरेलू आयातों (M) के लिए माँग हमारे देश की आय का बढ़ता फलन है, इसलिए यह आन्तरिक चर है। इस तथ्य को निम्न चित्र से स्पष्ट किया गया है।

चित्र 9 में आय के विभिन्न स्तरों पर निर्यात X_0 पर स्थिर हैं अर्थात् हमारे निर्यात हमारी आय में परितर्वन से प्रभावित नहीं होती जबकि आयात हमारी आय का बढ़ता फलन है जैसा M_0M रेखा से स्पष्ट होता है। आयात फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :—

$M = M_0 + mY$; $M_0 > 0$, $1 > m > 0$

m = Marginal propensity to import; $\frac{\Delta M}{\Delta Y}$

M_0 = Minimum imports even at zero level income.

Y_2 आय स्तर पर चित्र में निर्यात आयात से अधिक होने के कारण माँग में शुद्ध व द्धि (Net addition) को दर्शाता है (X – M)। Y_0 आय स्तर पर X = M है, इसलिए कुल माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता। इतना ही नहीं यहाँ भुगतान सन्तुलन (Balance of Payments) भी सन्तुलन में है जबकि Y_2 पर यह धनात्मक था। आय के Y_1 स्तर पर आयात (M) हमारे निर्यातों (X) से अधिक है (M > X) जो कुल घरेलू माँग को गिरा देगा। यहाँ भुगतान सन्तुलन (BOP) भी घाटे में होगा।

आयात और निर्यातों में अन्तर होने के कारण एक देश की कुल आय और माँग पर जो प्रभाव पड़ता है वह इस अन्तर की मात्रा तथा विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multiplier) पर निर्भर करता है। विदेशी व्यापार गुणक निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है—

$$Y = C + I + G + X - M$$
$$Y = a_0 + b\,(Y - T) + I + G + X - (M_0 + mY)$$
$$Y = a_0 + bY - bt(Y) + I + G + X - (M_0 - mY)$$
$$Y = a_0 + bY - btY + I + G + X + M_0 - mY$$
$$Y - bY + btY - btY + my = a_0 + I + G + X - M_0$$
$$Y\,(1 - b\,(1 - t) + m) = a_0 + I + G + X - M_0$$

$$Y = \left\{\frac{1}{1-b(1-t)+m}\right\}.[a_0 + I + G + X - M_0]$$

Foreign Tade multiplier | Autonomous Expenditure

एक बन्द अर्थव्यवस्था में गुणक का मूल्य $\left(\frac{1}{1-b(1-t)}\right)$ एक खुली अर्थव्यवस्था के गुणक के मूल्य $\left(\frac{1}{1-b(1-t)+m}\right)$ से अधिक होगा :

$$\left(\frac{1}{1-b(1-t)}\right) > \left(\frac{1}{1-b(1-t)+m}\right)$$

इसका कारण खुली अर्थव्यवस्था के गुणक में सीमान्त उपभोग प्रव त्ति (m) का हर में जमा होना है जो गुणक के मूल्य को कम कर डालता है। आयात माँग में एक स्राव है अर्थात् आय बढ़ने से इसका कुछ भाग विदेशी वस्तुएं खरीदने पर खर्च कर दिया जाता है जिससे विदेशियों की आय बढ़ती है न कि घरेलू आय।

एक खुली अर्थव्यवस्था में सन्तुलित आय का निर्धारण निम्न चित्र की सहायता से किया जा सकता है। C + I + G बन्द अर्थव्यवस्था की कुल

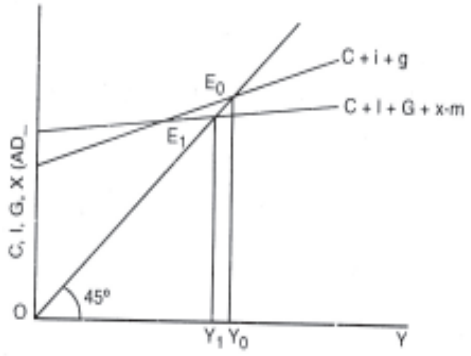

चित्र 10

माँग रेखा है जो 45^{o} की रेखा को E_0 बिन्दु पर काटकर Y_0 आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित करती है। परन्तु जब आयात निर्यात शुरू होते हैं तो कुल माँग वक्र $C+I+G+X-M$ की रेखा का रूप धारण कर लेती है। आय के प्रारम्भिक स्तरों पर $X>M$ होने के कारण कुल माँग बढ़ती है। परन्तु जब $M>X$, होता है तो कुल माँग घट कर नीचे आ जाती है। $C+I+G+X-M$ कुल माँग रेखा 45^{o} की रेखा को E_1 पर काटती है जो घरेलू देश में सन्तुलित आय के स्तर को Y_0 से घटा कर Y_1 कर देती है। भुगतान सन्तुलन के घाटे को अलग से वहन करना पड़ता है। अल्पविकसित देशों की परिस्थिति आम-तौर पर ऐसी ही है।

REVIEW QUESTIONS

1. Explain the various components of Aggregate Demand. What is the role of Aggregate Demand in simple Keynesian Model.
2. Interprest each of the three ways of writing the condition for equilibrium income in the simple keynesian model. Explain why the three ways of writing the equilibrium condition are equivalent.
3. Carefully explain the difference between realized and desired investment. In which component of investment does the discrepancy between the two totals occur?
4. In the simple Keynesian model, an increase of one rupee in autonomous expenditure will cause equilibrium income to increase by a multiple of this one rupee increase. Explain the process by which the happens.
5. How output is determined? Show the change in income or output due to change in government expenditure, change in investment and change in tax.
6. Explain carefully why the tax multiplier $\left(\frac{\Delta Y}{\Delta T}-\frac{-b}{1-b}\right)$ is negative and why it is smaller in absolute value than the government expenditure multiplier $\left(\frac{\Delta Y}{\Delta G}=\frac{1}{1-b}\right)$.
7. Suppose that for a particular economy investment was equal to 100, government expenditure was equal to 75, net taxes were fixed at 100, and consumption (C) was given by the consumption function :

   $$C = 25 + .08\ Y_d$$

   Where Y_d is disposable income and Y is GNP.

   (a) What is the level of equilibrium income (Y)?

   (b) What is the value of government expenditure multiplier $\left(\frac{\Delta Y}{\Delta G}\right)$? and the tax multiplier $\left(\frac{\Delta Y}{\Delta T}\right)$?

   (c) Suppose that investment declined by 40 units to a level of 60. What will be the new level of equilibrium income.
8. Explain the determination of income in an open economy under simple keynesian model. =

SELECTED READINGS

Ackley, Gardner, Macroeconomics : Theory and Policy. New York :
Macmillan, 1978, Chap. 6 and 7
Richard T. Froyen, Macroeconomics : Theories and Policies.

New York : Macmikllan, 1990, Chap. 5
Branson, William, Macroeconomics : Theory and Policy, 3rd edi.
New York : Harper and Row, 1989, Chap. 3.
Keynes, John M., "The General Theory of Employment," Quarterly Journal of Economics (February 1937) pp. 209-23.

अध्याय-3

विस्त त मॉडल : स्थिर कीमत-स्तर

(The Extended Model : Fixed Price-Level)

अध्याय 6 में ब्याज की दर तथा मौद्रिक नीति का निवेश तथा कुल माँग के अन्य तत्त्वों पर पड़ने वाले प्रभाव को नहीं माना गया था। परन्तु वस्तुतः ब्याज की दर तथा मौद्रिक नीति इन तत्त्वों को प्रभावित करती है तथा सन्तुलित आय या उत्पादन को भी प्रभावित करती है। इसलिए अध्याय 6 के आय या सिद्धान्त को ब्याज दर तथा मुद्रा सिद्धान्त से जोड़ कर इस अध्याय में दो-बाज़ार मॉडल (two-market model) का निर्माण किया गया है। यह दो-बाज़ार मॉडल दर्शाता है कि वस्तु तथा मुद्रा बाज़ार (goods and money markets) कैसे पारस्परिक प्रक्रिया द्वारा उत्पादन तथा ब्याज की दर का सन्तुलित स्तर निर्धारित करते हैं।

इस अध्याय तथा अध्याय 8 व 9 में कीमत स्तर को पिछले अध्याय (6) की तरह स्थिर माना गया है क्योंकि यह मान्यता कायम रखी गई है कि उत्पादन के पूर्ण रोज़गार स्तर (Full employment level of output) पर कुल पूर्ति वक्र (The Aggregate Supply Curve) पूर्णतः लोचशील है तथा इसमें विवर्तन (Shift) भी नहीं होता है। इसलिए कुल व्यय या माँग में परिवर्तन केवल उत्पादन स्तर को ही प्रभावित करता है न कि कीमत स्तर को, अर्थात् कीमत स्तर स्थिर रहता है। इस अध्याय में प्रथम यह दर्शाया गया है कि परम्परावादी तथा केन्ज़ के मॉडलों में आय कैसे अनिर्धारणीय है या वस्तु तथा मुद्रा बाज़ारों में साथ-साथ सन्तुलन क्यों स्थापित किया जाता है ? इसके बाद IS तथा LM फलनों को ज्ञात करने की व्याख्या की गई है। हिक्स-हेनसन द्वारा प्रतिपादित ये फलन समष्टि अर्थशास्त्र के विश्लेषण में अति आधारभूत उपकरणों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। इसके बाद वस्तु बाज़ार तथा मुद्रा बाज़ारों में साथ-साथ सन्तुलन दर्शाया गया है तथा कुल माँग फलन (Aggregate Demand Function) या वक्र भी निकाला गया है।

वस्तु बाज़ार व मुद्रा बाज़ारों में साथ-साथ सन्तुलन क्यों ?
(Simultaneous Equilibrium in the Product and Money Markets ?)

अगर राष्ट्रीय आय का चक्रीय प्रवाह यथावत् चलता रहे तो राष्ट्रीय आय में कोई परिवर्तन नहीं आता और यह सन्तुलित आय कहलाती है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों को केन्द्र बिन्दु आय का वास्तविक चक्रीय प्रवाह रहा है। उनका विश्वास था कि बचत और निवेश दोनों ब्याज की दर पर निर्भर करते हैं तथा ब्याज दर (r) में उतार-चढ़ाव से दोनों में समानता बनी रहती है। इसलिए कुल माँग ($C + I$) और कुल पूर्ति (Y) हमेशा बराबर बने रहते हैं। ($C + I$) कुल व्यय अर्थात् कुल माँग को दर्शाता है और ($C + S$ कुल पूर्ति या वास्तविक आय (Y) को दर्शाता है। इसलिए सन्तुलन की अवस्था में कुल माँग ($C + I$) व कुल पूर्ति ($C + S$) परस्पर बराबर होते हैं, $(C + I) = (C + S)$। C दोनों और दर्ज होने या सामान्य होने के कारण C एक दूसरे को समाप्त करने पर $I = S$ होगा।

परन्तु केन्ज़ के अनुसार बचत (S) मुख्यतः आय पर निर्भर करती है और निवेश अन्य बातें समान रहने पर मुख्यतः ब्याज दर (r) पर निर्भर करता है। इस परिवर्तन के समावेश से परम्परावादियों द्वारा सन्तुलित आय का निर्धारण अनिर्धारणीय बन जाता है। क्योंकि जब कभी बचत और निवेश असमान होते हैं जो ब्याज की दर क्यों बदलेगी, क्योंकि केन्ज़ के अनुसार यह मद्रा की माँग व पूर्ति से निर्धारित होता है। यदि r बदल भी जाए तो इसके कारण बचत में परिवर्तन क्यों होगा, क्योंकि बचत आय पर निर्भर, $S(Y)$ करती है। यदि मान भी लिया जाए कि बचत और निवेश दोनों ब्याज लोचशील हैं। (जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है) तो भी आय में परिवर्तन के कारण, जैसे कि आय Y_0 से गिरकर Y_1 हो जाती है, बचत वक्र $S(Y_0)$ से सरक कर $S(Y)$ बन जाएगा। क्योंकि अब पहले वाले ब्याज दरों पर कम बचत हो पाएगी। जैसा कि r_0 पर बचत गिरकर r_1 रह जाती

है। इस परिस्थिति में r_0 पर S और I के मध्य सन्तुलन नहीं रह सकता। S (Y_1) और I के मध्य सन्तुलन के लिए r को बढ़ा कर r_1 प्राप्त करना होगा; परन्तु r क्यों बढ़ेगा क्योंकि यह तो मुद्रा की माँग व पूर्ति पर निर्भर करता है।

किसी बचत वक्र की सहायता से r निर्धारण करने का तात्पर्य यह होगा कि हमने पहले कोई आय स्तर मान लिया है जिस पर बचत वक्र टिका हुआ है। जैसे चित्र 1 में आय का स्तर Y_0 मान लेने पर $S(Y_0)$ फलन प्राप्त हो सका और r_0 का निर्धारण हो सका। परन्तु वास्तविक आय स्तर का ज्ञान हुए बिना बचत वक्र का सही ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि यह आय स्तर पर निर्भर करता है अर्थात् बचत वक्र प्राप्त करने के लिए आय का सही-सही ज्ञान अनिवार्य है। परन्तु आय का स्तर ज्ञात नहीं हो सकता जब तक निवेश के स्तर की जानकारी नहीं है। निवेश के स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता जब तक (r) ब्याज दर ज्ञात न हो। परन्तु r ज्ञात नहीं हो सकता जब तक बचत वक्र की स्थिति मालूम न हो, क्योंकि क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार r निर्भर करता है S और I पर। परन्तु बचत वक्र प्राप्त नहीं हो सकता जब तक आय का स्तर ज्ञान न हो। आय का स्तन ज्ञात हो ही नहीं सकता जब तक I का ज्ञान न हो। इस प्रकार हम चक्रीय-तर्क में फंस जाते हैं और सन्तुलित आय का निर्धारण नहीं कर सकते।

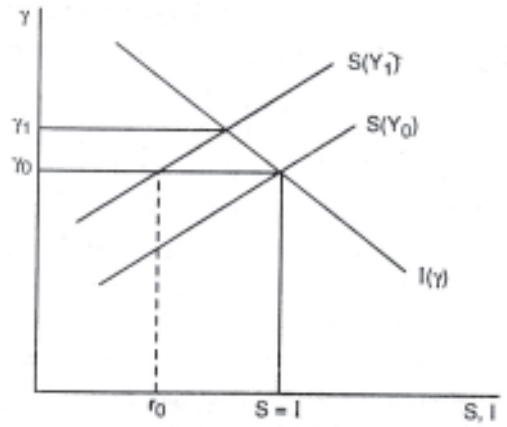

चित्र 1

केन्ज़ीयन मॉडल में भी आय का निर्धारण अनिर्धारणीय है। क्योंकि केन्ज़ के अनुसार भी सन्तुलित आय का निर्धारण वहां होता है जहाँ कुल माँग (C + I + G) कुल उत्पादन व पूर्ति (Y) के बराबर हो अर्थात् Y = C + I + G जैसा चित्र 7.2 में दर्शाया गया है।

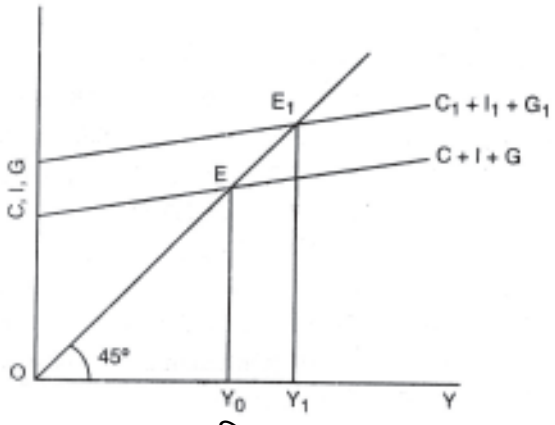

चित्र 2

रेखाचित्र 2 में कुल माँग वक्र (C + I + G) के अनुसार सन्तुलित आय स्तर का निर्धारण Y_0 पर होगा। परन्तु Y_0 पर निवेश का स्तर स्थिर माना गया है क्योंकि यह किसी बाह्य निर्धारित (Exogenously determined) ब्याज की दर (r) पर निर्भर करता है। परन्तु हम कैसे कह सकते हैं कि r स्थिर रहेगा क्योंकि r मुद्रा बाज़ार में मुद्रा की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। इन शक्तियों में परिवर्तन आने से r बदल सकता है। मान लीजिए मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है जो r को गिरा देती है। r में आई गिरावट के कारण निवेश I से बढ़ कर I_1 हो जाएगा जो चित्र में सन्तुलित आय को Y_1 पर निर्धारित करेगा। अब आय बढ़ने के कारण क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग बढ़ जाती है जो ब्याज की दर को बढ़ा सकती है। अतः आय तथा ब्याज की दर में बड़ा घनिष्ट तथा जटिल सम्बन्ध है।

इस प्रकार केन्ज़ के आय निर्धारण सम्बन्धी मॉडल में ब्याज की दर ज्ञात हुए बिना निवेश स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता और निवेश स्तर का ज्ञान हुए बिना आय के सन्तुलित स्तर को नहीं जान सकते। आय के स्तर का ज्ञान हुए बिना मुद्रा की माँग वक्र नहीं निकाल सकते (क्योंकि क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग आय पर निर्भर करती है) और मुद्रा की माँग वक्र प्राप्त किए बिना r का निर्धारण नहीं हो सकता। r के निर्धारण बिना I और Y का निर्धारण नहीं हो सकता। इस प्रकार हम चक्रीय-तर्क में फंस जाते हैं और सन्तुलित आय का सही-सही निर्धारण नहीं कर सकते अर्थात् केन्ज़ के मॉडल में भी आय का स्तर अनिर्धारणीय रहा।

इस प्रकार वस्तु बाज़ार में सन्तुलित आय का निर्धारण बयाज दर पर निर्भर करता है और मुद्रा बाज़ार में r का निर्धारण आय स्तर पर निर्भर करता है। अतः स्पष्ट है कि बिना ब्याज दर निर्धारित किये आय स्तर का निर्धारण नहीं किया जा सकता और बिना आय निर्धारण किए ब्याज दर का निर्धारण नहीं किया जा सकता। इसलिए आय स्तर और ब्याज दर का निर्धारण साथ-साथ ही हो सकता है। इसे पहले वस्तु बाज़ार सन्तुलन तथा मुद्रा बाज़ार सन्तुलन का अलग-अलग अध्ययन किया गया

है :

Equilibrium Income and the Interest Rate in the Product and Money Market

१. वस्तु बाज़ार सन्तुलन
(Equilibrium in the Product Market)

जैसा कि हम जानते हैं कि वस्तु बाज़ार में सन्तुलन तभी कहा जा सकता है जब आय का चक्रय प्रवाह जारी रहता है जो कुल उत्पादन (Y) और कुल माँग या व्यय (C + I + G) को बराबर रखता है (Y = C + I + G)। अर्थात् सन्तुलित आय के स्तर पर कुल माँग के स्राव (S + T) और इन्जैक्शन्ज़ (I + G) का एक-दूसरे के समान होना अनिवार्य है, $S + T = I + g$। परन्तु सन्तुलित आय की यह शर्त तो केन्ज़ के मॉडल में भी थी। फिर सन्तुलित आय का निर्धारण केन्ज़ीयन मॉडल से या वस्तु बाज़ार सन्तुलन (Product Market equilibrium) से किया जाए तो इन दोनों में क्या अन्तर पैदा होता है ? यह निम्न समीकरणों से स्पष्ट होता है :

$$\text{Keynesian Model}: Y = C + I + g : Y = C\,[Y - T\,(Y) + I + g$$

$$\text{Product Market Equilibrium}: Y = C + I + g : Y = C\,[Y - T\,(Y) + I\,(r) + g$$

अन्तर स्पष्ट है कि केन्ज़ ने सन्तुलित आय का निर्धारण करते समय I को स्थिर माना है। परन्तु वस्तु बाज़ार सन्तुलन में इस बात का समावेश कियाा गया कि I में परिवर्तन हो सकता है यदि r में परिवर्तन होता है तो।

वस्तु बाज़ार सन्तुलन में $(S + T) = f(Y)$ और $[I\,(r) + g]$ एक-दूसरे के बराबर होना क्यों अनिवार्य है ? यह निम्न चित्र 3 से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि ये वास्तविक तत्त्व S + I और $I + g$ एक-दूसरे के बराबर नहीं हैं तो आय (Y) सन्तुलित नहीं कही जा सकती। ऐसी परिस्थिति में आर्थिक शक्तियां स्वयं क्रियान्वित होकर आय को सन्तुलित कर देती हैं। चित्र में Y_0 आय स्तर पर $I + g$ (जो आय स्तर से प्रभावित नहीं होते अपितु एक निश्चित ब्याज की दर पर स्थिर रहते हैं) और S + T (जो आय का बढ़ता फलन है) एक-दूसरे के समान हैं। इसलिए Y_0 आय का सन्तुलित स्तर कहलाएगा।

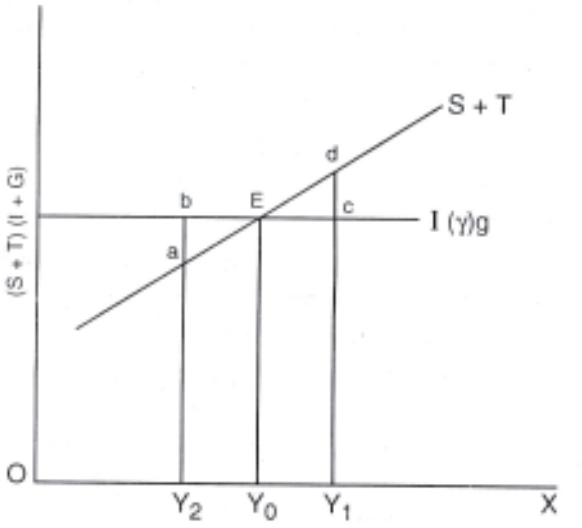

चित्र 3

परन्तु Y_1 पर S + T (स्राव) $I\,(r) + g$ (इन्जैक्शन्ज़) से अधिक है। GNP का ध्यान करते हुए $Y_1 d$ उत्पादन का वह भाग है जो उपभोक्ताओं द्वारा खरीदा नहीं गया क्योंकि उपभोक्ताओं ने तो केवल उपभोग पदार्थों (C) ही की खरीद की है। उत्पादन का जो भाग बिक नहीं सका वह है : $Y - C = S + T$, जो चित्र में $Y_1 d$ है। परन्तु बाज़ार में माँग केवल $Y_1 c\,[(r) + g]$ के समान है। इसलिए Cd उत्पादन का वह भाग है जो बिक नहीं सका बल्कि स्टॉक (inventories) को अनैच्छिक रूप से Cd के बराबर बढ़ा देगा। वास्तव में उद्यमी अपने लाभ को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं के स्टॉक का एक निश्चित ईष्टत्तम आकार ही रखना चाहते हैं जिसे ईष्टत्तम आकार (Optimum size) कहा जा सकता है। उपरोक्त परिस्थिति में स्टॉक में अनैच्छिक व द्धि के कारण Y_1 आय स्तर पर उद्यमी (Businessman) नये उत्पादन की माँग कम करेंगे ताकि स्टॉक का ऐच्छिक आकार बन सके। ऐसा करने से Y घटेगी और यह घटती रहेगी जब तक आय गिरकर Y_0 न हो जाती जहाँ $S + Y = [I\,(r_1) + g]$ है और स्टॉक का आकार भी ऐच्छिक है। इसके विपरीत स्थिति Y_0 आय स्तर पर उत्पन्न होती है। यहाँ माँग पूर्ति से ab अधिक है जो स्टॉक को कम करके पूरी की जाती है। परन्तु स्टॉक में यह गिरावट अनैच्छिक है। इसे ऐच्छिक स्तर पर लाने

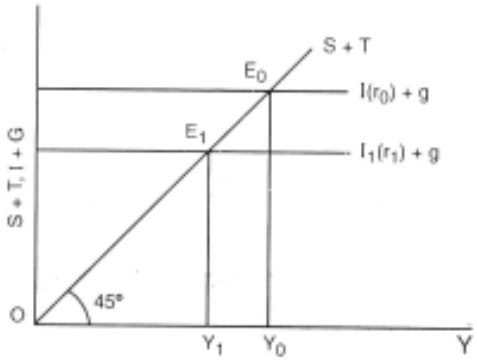

चित्र 4

के लिए उत्पादन की माँग बढ़ेगी और बढ़ती रहेगी जब तक आय बढ़ कर Y_0 स्तर को प्राप्त नहीं कर जाती।

परन्तु $I + g$ वक्र स्थिर नहीं रहता क्योंकि I ब्याज दर (r) पर निर्भर करता है, $I = f(r)$। ब्याज दर निवेशकर्त्ता के लिए लागत है चाहे निवेश उधार लेकर किया गया हो या अपने आन्तरिक फण्ड लगा कर किया गया हो।

मान लीजिए r गिर जाता है। इस प्रकार r गिरने से उत्पादकों के लाभ बढ़ते हैं और वे निवेश बढ़ा देते हैं। r बढ़ने से I गिर जाता है अर्थात् r में परिवर्तन I की मात्रा परिवर्तित होती है और I परिवर्तित होने से Y के स्तर में परिवर्तन आ जाता है। इसलिए वस्तु बाज़ार सन्तुलन में सन्तुलित आय का समीकरण निम्न प्रकार है और यह केन्ज़ के समीकरण से भिन्न है :

$$Y = C[Y - T(y)] + I(r) + g$$

r में परिवर्तन से Y कैसे परिवर्तित होती है यह चित्र 4 की सहायता से प्रकट किया जा सकता है। r_0 ब्याज दर पर $I(r_0) + g$ वक्र S + T फलन को E_0 बिन्दु पर काटता है जिससे Y_0 सन्तुलित आय का निर्धारण होता है। परन्तु r बढ़ कर r_1 होने के कारण I गिर कर $I_1(r_1) + g$ फलन की आकृति धारण करती है जो S + T फलन को E_1 बिन्दु पर काटकर Y_1 आय का स्तर निर्धारित करता है। इस प्रकार r बढ़ने से आय (Y) गिर जाती है। अतः स्पष्ट है कि वस्तु बाज़ार में प्रत्येक r पर भिन्न-भिन्न सन्तुलित आय का स्तर निर्धारित होता है, जिन पर S + T और $I + g$ एक-दूसरे के बराबर होते हैं। जैसा कि r_0 पर Y_0 आय का स्तर तथा r_1 पर Y_1 आय का स्तर निर्धारित होते हैं।

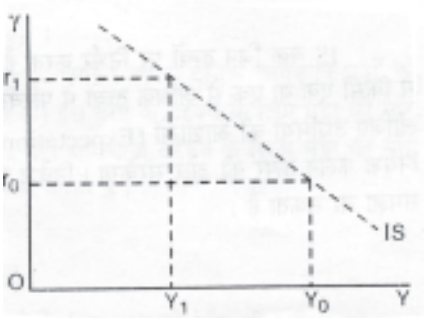

चित्र 5

r और Y के ऐसे संयोगों को जिन पर $S + T = I + g$ होता है को एक वक्र द्वारा चित्र 5 में दर्शाया जा सकता है जिसको IS वक्र कहते हैं। IS वक्र ज्ञात करने का विस्त त विश्लेषण निम्न प्रकार से है :

2. IS वक्र का निकालना
(Derivation of IS Curve)

IS वक्र r और Y के ऐसे संयोगों को प्रकट करता है जहाँ $S + T = I + g$ होते हैं। इसका अर्थ यह है कि वस्तु बाज़ार में सन्तुलन Y और r के अनेक संयोगों पर हो सकता है। ऐसा कौन-सा संयोग होगा जिस पर किसी समय अर्थव्यवस्था सन्तुलन में होगी ? इस प्रश्न का उत्तर तो LM वक्र निकालने के बाद ही दिया जा सकता है; जिसकी व्याख्या IS वक्र विश्लेषण के बाद की गई है। IS वक्र सभी तत्त्वों का ध्यान एक साथ रखते हुए निम्न चित्र 6 में चार अक्षीय रेखा चित्र द्वारा, जिसमें केवल धनात्मक माप दर्शाये गए हैं, के माध्यम से निकाला जा सकता है।

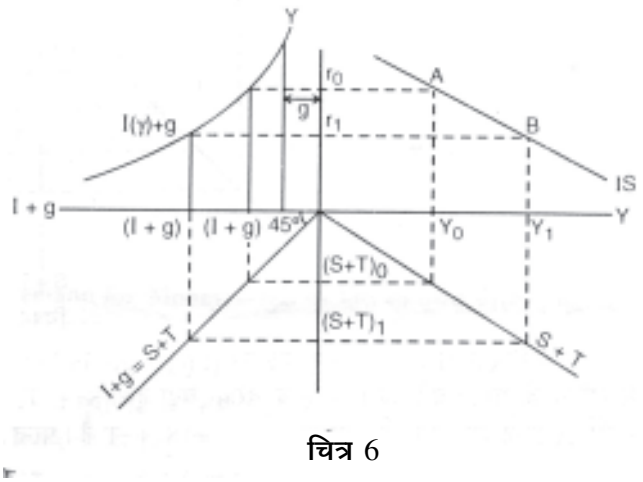

चित्र 6

रेखा चित्र में ऊपरी दायां भाग ब्याज दर (r) और आय (Y) के संयोगों को दर्शाता है। परन्तु ऊपरी बायें भाग में r और $I + g$ का फलन दर्शाया गया है जहाँ g तथा S + T के मध्य समानता दर्शाने के लिए 45^o की रेखा निकाली गई है जिस पर $I + g = S + T$ हैं। नीचले दाएँ भाग में S + T को Y का बढ़ता फलन दर्शाया गया है।

वस्तु बाज़ार में ब्याज की दर (r) बाहर से (मुद्रा बाज़ार) निर्धारित होती है। इसलिए वस्तु बाज़ार में किसी निश्चित r की कल्पना करनी होगी तथा जाँच करनी होगी कि उस r पर सन्तुलित आय का स्तर क्या है ? मान लीजिए ब्याज की यह दर r_0 है।

सरकारी व्यय (g) स्थिर है अर्थात् इस पर ब्याज दर के उतार-चढ़ाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता जैसा चित्र से स्पष्ट है। r_0 ब्याज की दर पर $(I+g)_0$ व्यय निर्धारित होता है। वह कौन-सी आय का स्तर होगा जिस पर $(I+g)=(S+T)$ होते हैं। इसका अर्थ यह है कि Y_0 सन्तुलित आय है, क्योंकि इस पर $(I+g)=(S+T)$ हैं। यह Y_0 सन्तुलित आय का स्तर r_0 बयाज दर से सम्बन्धित है। इस प्रकार r_0 तथा Y_0 का एक ऐसा संयोग है, जिसको A द्वारा प्रकट किया गया है, जिस (SD $+T)=(I+g)$ है।

अब यदि ब्याज दर गिर कर r_1 हो जाती है तो कुल व्यय बढ़ कर $(I+g)_1$ के समान होगा। अब निवेश के बढ़ने के कारण गुणक द्वारा आय बढ़ेगी और बढ़ती रहेगी जब तक $S+T$ बढ़ कर $I+g$ के समान नहीं हो जाता यह Y_1 आय का स्तर है जिस पर $(I+g)_1=(S+T)_1$ है। इसका अर्थ यह है कि Y_1 सन्तुलित आय है और इसका सम्बन्ध ब्याज की r_1 दर से है। r_1 तथा Y_1 के मिलाने से B बिन्दु का संयोग प्राप्त होता है जिस पर $(S+T)=(I+g)$ हैं A तथा B बिन्दु को मिलाने से जो रखा प्राप्त हुई उसे IS वक्र कहते हैं।

3. IS वक्र का सरकलना
(Shift in IS Curve)

IS वक्र जिन तत्त्वों पर निर्भर करता है, जैसे सरकारी व्यय (g), निवेश फलन (I) बचत प्रव त्ति (s), कर दी दर (t), यदि इनमें से किसी एक या एक से अधिक तत्त्वों में परिवर्तन कर दिया जाए तो IS वक्र का विवर्तन या यह अपना स्थान परिवर्तित कर देता है। मान लीजिए उद्यमियों की आशाओं (Expectations) में परिवर्तन के कारण अब उद्यमी पहले से अधिक लाभ की आशा करते हैं। इस कारण निवेश फलन ऊपर की ओर सरकेगा। निवेश फलन ऊपर की ओर सरकने का IS वक्र पर पड़ने वाला प्रभाव निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है :

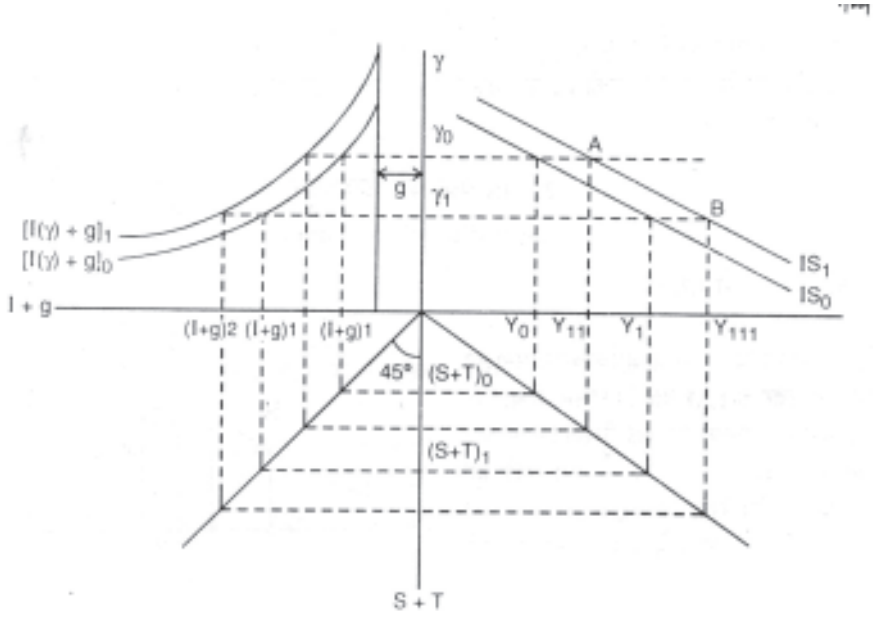

चित्र 7

व्यय फलन $[I(r)+g]$ से बढ़ कर $[I(r)+g]_1$ बन गया है। अब r_0 पर निवेश बढ़ने के कारण $I+g$ बढ़ कर $(I+g)_0$ से अधिक हो गया। बढ़े हुए $I+g$ के बराबर बढ़ा हुआ $S+T$ अधिक आय Y_{11} पर ही सम्भव है। इस प्रकार Y_{11} तथा r_0 का संयोग A बिन्दु प्राप्त होता है जिस पर $I+g=S+T$ है। परन्तु जब ब्याज दर r_1 होती है तो निवेश की मात्रा और बढ़ कर $I+g$ को और अधिक बढ़ा कर $(I+g)_2$ के बराबर कर देती है। निवेश के बढ़ने पर गुणक माध्यम से आय बढ़ती है तथा बढ़ कर Y_{111} बन जाती है। $(I+g)_{11}$ के बराबर $S+T$ बढ़ी हुई आय Y_{111} पर ही सम्भव है। इस प्रकार मिलाने से नई वक्र IS_1 प्राप्त होती है जो IS_0 से ऊपर स्थापित है। इस प्रकार निवेश फलन में व द्धि होने पर IS वक्र ऊपर की ओर सरक जाती है।

इसी प्रकार g के बढ़ने या S + T के कम होने पर IS वक्र ऊपर दाईं और सरकता है जिसका अभ्यास विद्यार्थी स्वयं कर सकते हैं। अर्थव्यवस्था में किसी समय कौन-सा आय का सन्तुलित स्तर होगा इस प्रश्न का समाधान LM वक्र के बाद ही किया जा सकता है जो मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन दर्शाता है।

4. मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन
(Equilibrium in the Money Market)

IS वक्र r और Y के अनेक ऐसे संयोग प्रकट करता है जिन पर वस्तु बाज़ार सन्तुलित हो सकता है। परन्तु वास्तव में अर्थव्यवस्था r और Y के कौन से संयोग पर सन्तुलन में होगी, को जानने के लिए मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन जो LM वक्र द्वारा दर्शाया जाता है, की जानकारी अनिवार्य है। मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ मुद्रा की माँग और पूर्ति एक दूसरे के बराबर होंगे।

मुद्रा की माँग (Demand for Money)–लोग मुद्रा की माँग क्यों करते हैं ? मुद्रा की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि केन्ज़ के अनुसार यह उनकी मुख्यतः दो तरह की माँग सन्तुष्ट करती है।

(1) लेन-देन या क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग (Transaction Demand for Money)

(2) सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग (Speculative Demand for Money)।

1. क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग (Transaction Demand for Money)—व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए बहुत-सी वस्तुओं जैसे : भोजन, कपड़ा, जूता, दवा आदि का क्रय करते हैं। इस तरह के उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग करना या मुद्रा अपने पास रखना मुद्रा की क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग कहलाती है। यहाँ सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग भी क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग में सम्मिलित है। यह मुद्रा की माँग दो बातों पर निर्भर करती है।

(A) आय का आकार (Size of Income)

(B) आय प्राप्ति के मध्य समय अन्तराल (Gap between income receipts)

आय का आकार बड़ा होने पर खर्च अधिक होता है और अधिक खर्च को पूरा करने के लिए मुद्रा की माँग भी अधिक की जाती है। आय का आकार कम होने के कारण इस उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग भी कम की जाती है। इस प्रकार क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग (M_1) आय (Y) पर निर्भर करती है :

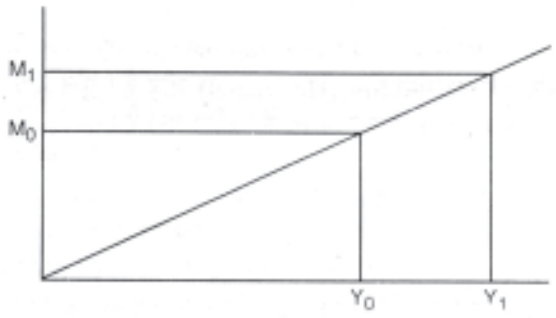

चित्र 8

$M_t = K(Y) : 1 > K' > 0$

K = Ration of income kept in cash form for transaction motive

यह तथ्य चित्र 8 द्वारा स्वतः स्पष्ट हो जाता है। मुद्रा की यह माँग आय प्राप्ति के अन्तराल पर भी निर्भर करती है। यदि यह अन्तराल अधिक है तो क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग भी अधिक की जायेगी। आय प्राप्ति का समय अन्तराल कम होने पर क्रय विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग भी कम की जायेगी।

2. सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग (Speculative Demand for Money)–मुद्रा की माँग का दूसरा कारण है मुद्रा की ब्याज कमाने की शक्ति। ऋण पत्रों (Bonds) पर ब्याज की दरों में उतार-चढ़ाव से लाभ कमाने के उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग को सट्टा-उद्देश्य के लिए माँग कही जाती है। नकद मुद्रा को अपने पास रखने से ब्याज प्राप्त नहीं होता, तो हो सकता है यदि यह मुद्रा बांड में लगा दी जाती है और ब्याज कमाती है। इसलिए वह ब्याज की राशि जो मुद्रा को नकदी में रखने से प्राप्त नहीं होती नकदी की अवसर लागत कहलाती है (opportunity cost of holding cash)। ब्याज की दर जितनी ऊंची

होगी, नकदी रखने की अवसर लागत भी उतनी ही अधिक होगी। इसलिए ऊंचे r पर कम मुद्रा पास रखी जाती है और निम्न r पर अधिक। जब r निम्नत्तम होता है तो सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी या मुद्रा की माँग असीमित या पूर्ण लोचशील हो जाती है ओर मुद्रा माँग वक्र के इस भाग को तरलता जाल (Liquidity Trap) कहा जाता है। इस प्रकार सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग ब्याज दर से विपरीत सम्बन्ध रखती है।

$M_s = L(r)$; $L' < 0$ Means negative relationship

M_s : Money Demanded for Speculative Motive

M_s और r का यह विपरीत सम्बन्ध चित्र 9 द्वारा दर्शाया गया है।

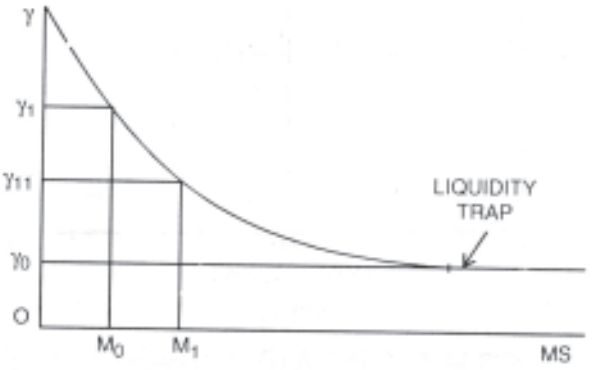

चित्र 9

r_1 पर M_s की माँग M_0 है। परन्तु जब यह गिरकर r_{11} होती है तो लोग M_s के लिए मुद्रा की माँग बढ़ा कर M_1 कर देते हैं क्योंकि बांड की कीमत और r के मध्य विपरीत सम्बन्ध होता है इसलिए r गिरने पर बांड की कीमत बढ़ जाती है तथा सट्टोरियें बांड बेचते हैं तथा अधिक नकदी अपने पास रखते हैं। r_0 पर M_s की माँग पूर्णतः लोचशील बन जाती है जिसको तरलता जाल (Liquidity Trap) कहा जाता है।

5. मुद्रा की कुल माँग (Total Demand for Money)

उपरोक्त विश्लेषण से मुद्रा की माँग के दो भाग (M_1 and M_2) बन जाते हैं। मुद्रा की माँग के दोनों भागों को जमा करके माँग निम्न प्रकार प्राप्त की जा सकती है।

$$M^d = K(Y) + L(r)$$

चित्र 10

यहाँ ध्यान रहे कि मुद्रा की माँग को इस प्रकार दो अलग-अलग भागों में बांटना बुद्धिमत्ता नहीं है क्योंकि क्रय-विक्रय सम्बन्धी माँग r से और सट्टा उद्देश्य सम्बन्धी माँग Y से भी प्रभावित होती है। उदाहरणतः यदि r बहुत ज्यादा होगा तो लोग अपनी क्रय-विक्रय सम्बन्धी माँग कम करके ब्याज कमाने के लिए कुछ नकदी बांड में लगा देंगे। इसलिए मुद्रा की माँग Y और r का फलन है।

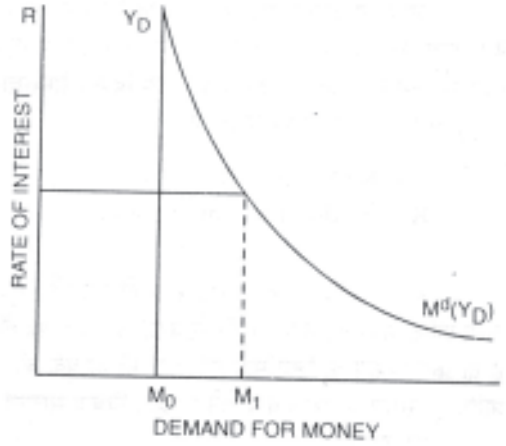

$$M^d = f(Y, r)$$

परन्तु विश्लेषण के उद्देश्य के उद्दश्य से मुद्रा की माँग उपरोक्त दो भागों में विभक्त हुई मानी गई है। दोनों तरह की मुद्रा की माँग जमा करके चित्र की सहायता से कुल मुद्रा की माँग प्राप्त की जा सकती है।

यह क्रय -विक्रय मुद्रा की माँग वक्र और सट्टा उद्देश्य के लिए की गई माँग वक्र का समस्तरीय (Horizontal) जोड़ है। कुल माँग वक्र ऊपर से नीचे झुकी हुई है जैसा चित्र 10 में दर्शाया गया है।

सामान्यतः M_t की माँग ब्याज की दर के प्रति बेलोच होती है और विभिन्न बयाज की दरों पर M_t जो चित्र में M_0 है यह आय Y_0 स्तर से सम्बन्धित है। M_0 में M_s की माँग जो r पर निर्भर करती है, $M_s = f(r)$, जमा करके मुद्रा की कुल माँग (M^d) प्राप्त की गई है। r_0 पर M क्रय विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की कुल माँग है और M_0M_1 सट्ट उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग है। इस प्रकार r_0 और Y_0 पर मुद्रा की कुल माँग M_1 हुई। इसलिए इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$M^d = K(Y) + L(r)$$

मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

मुद्रा की पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निश्चित की जाती है अर्थात् मॉडल के बाहर निर्धारित होती है (Exogenouly determined)। ब्याज व आय स्तर में परितर्वन से यह नहीं बदलती है। जैसा कि चित्र 11 में मुद्रा पूर्ति (M^s) को स्थिर दर्शाया गया है।

ब्याज की दर का निर्धारण (Determination of r)–मुद्रा की माँग व पूर्ति वक्र प्राप्त करने के पश्चात *r* का निर्धारण किया जा सकता है। *r* वहाँ निर्धारित होता है जहाँ दोनों वक्र एक-दूसरे को काट लेते हैं अर्थात् जहाँ $M^s = M^d$ or $M^s = K(Y) + L(r)$; $K > 0, L < 0$। जैसा चित्र 12 में दर्शाया गया है।

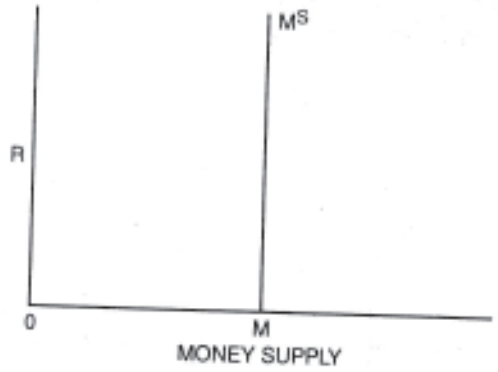

चित्र 11

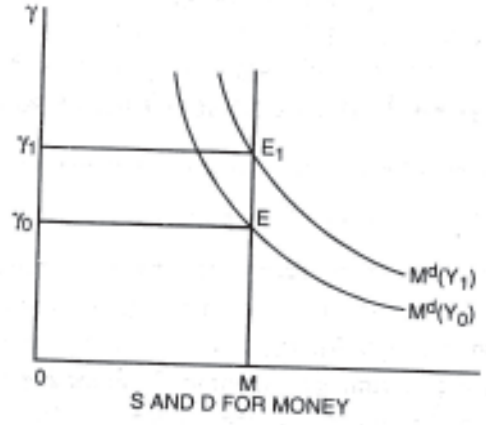

चित्र 12

माँग वक्र $M^d(Y_0)$ अर्थात् आय का स्तर Y_0 होने पर $M^d(Y_0)$ वक्र प्राप्त होता है जो पूर्ति को E पर काटकर r_0 ब्याज दर निर्धारित करता है। Y_1 आय के ऊंचे स्तर पर $M^d(Y_1)$ मुद्रा की माँ वक्र है जो पूर्ति वक्र को E_1 पर काट कर r_1 ब्याज की दर निर्धारित करता है। इसका अर्थ यह है कि मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन *r* और Y के विभिन्न संयोगों पर हो सकता है, जहाँ $M^d = M^s$ है। इन सभी संयोगों को जोड़ने से जो वक्र प्राप्त होता है वह LM वक्र कहा जाता है। LM वक्र निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है :

5. LM वक्र का निकालना (Derivation of LM Curve)–LM वक्र है जिस पर पड़ने वाले *r* ओर Y के विभिन्न संयोग मुद्रा की माँग व मुद्रा की पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करते हैं। LM वक्र को निकालने व ज्ञात करने के लिए चार अक्षीय रेखाचित्र का प्रयोग निम्न प्रकार से किया गया है। इस चित्र 13 में सभी माप धनात्मक या उद्‌गम से बढ़ते हुए हैं :

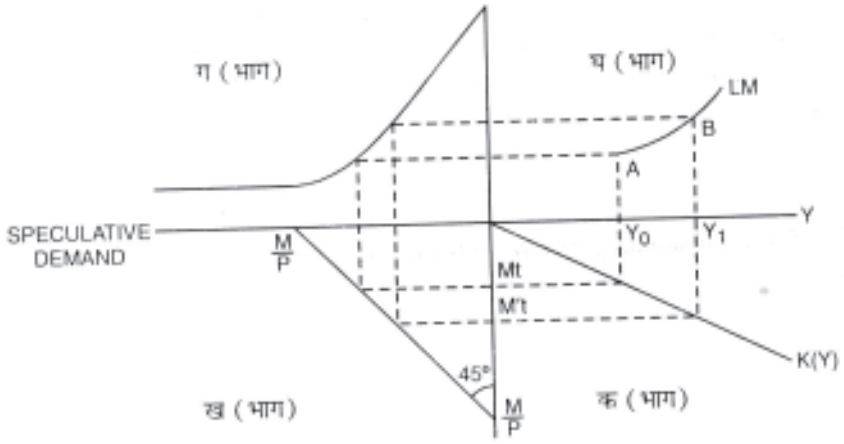

चित्र 13

भाग (क) दर्शाता है कि विभिन्न आय स्तरों पर क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग कितनी-कितनी है। यह K (Y) फलन द्वारा प्रकट किया गया है। भाग (ख) मुद्रा की कुल पूर्ति $\frac{M}{P}$ को दर्शाता है और व्यक्त करता है कि मुद्रा पूर्ति का जो भाग क्रय-विक्रय

के लिए माँग लिया जाता है उसके बाद जो भाग बचता है वह सट्टा उद्देश्य में प्रवाहित होकर तरलता अधिमान वक्र $[M_s = f(r)]$ के साथ मिल कर ब्याज की (r) का निर्धारण भाग (ग) में करता है। भाग (घ) प्रकट करता है कि Y और r के वे कौन-कौन-से संयोग हैं जिन पर मुद्रा की पूर्ति उसकी माँग के बराबर होती है और इन संयोगों को मिलाने से LM वक्र प्राप्त होता है।

मुद्रा बाज़ार में ब्याज की दर का निर्धारण होता है न कि आय स्तर का। इसलिए हम आय के स्तर (Y) की कल्पना करके उससे सम्बन्धित ब्याज दर की तलाश करते हैं। चित्र में Y_0 आय स्तर पर क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग M_t होती है तथा बाकी मुद्रा M_s सट्टा उद्देश्य में चली जाती है जो तरलता अधिमान के साथ मिलकर r_0 ब्याज की दर निर्धारित करती है। इस प्रकार Y_0 आय स्तर का r_0 ब्याज की दर से संयोग बनता है जिस पर मुद्रा की माँग मुद्रा की पूर्ति के बराबर है। इस संयोग को A द्वारा प्रकट किया गया है। अब यदि आय का स्तर बढ़ कर Y_1 होता है तो क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग बढ़ कर M'_t हो जाती है तथा सट्टा उद्देश्य के लिए इसकी पूर्ति कम हो कर M'_s हो जाती है। इस कारण ब्याज दर बढ़ कर r_1 हो जाती है। अब r_1 और Y_1 का दूसरा संयोग B द्वारा दर्शाया गया है जिस पर मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में है। इस प्रकार A और B द्वारा दर्शाया गया है जिस पर मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में है। इस प्रकार A और B को मिलाने से जो वक्र प्राप्त होता है वह LM वक्र कहा जाता है। r और Y के अनेक ऐसे संयोगों को प्रकट करता है जहाँ $M^d = M^s$ या मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में होता है। यह नीचे से ऊपर और बायें से दायें सामान्य परिस्थितियों में उठता हुआ होता है।

6. L.M. वक्र का ढाल
(Slope of LM Curve)

सामान्यतः LM वक्र का ढाल नीचे से ऊपर और बायें से दायें उठता हुआ होता है। ढाल का अधिक होना या कम होना इस बात पर निर्भर करता है कि सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग $[M_s = f(r)]$ ब्याज की दर के प्रति कितनी लोचशील है और K का मूल्य कम है या अधिक है। सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग r के प्रति जितनी अधिक लोचशील होगी LM वक्र भी उतना ही लोचशील होगा। K जितना अधिक होगा उतना ही LM वक्र भी लोचशील होगा। इस सामान्य स्थिति को छोड़ कर LM वक्र कुछ विशेष आकृतियों वाला भी हो सकता है जैसे कि निम्न चित्रों की सहायता से दर्शाया गया है :

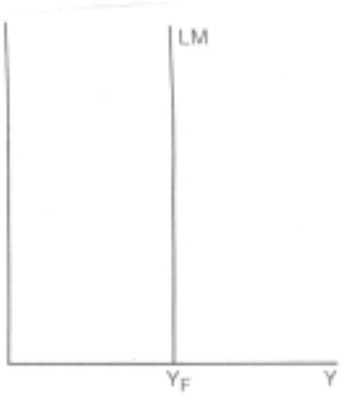

चित्र 14

1. पूर्णतः बेलोच LM वक्र (Perfectly Inelastic LM Curve)–LM वक्र r के प्रति पूर्णतः बेलोच (Perfectly inelastic) हो सकता है। जब r की दर बहुत ऊँची हो और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार प्राप्त कर चुकी हो तब इस परिस्थिति में बहुत ऊंची r पर सट्टा उद्देश्य की माँग भी शून्य होती है। जैसा चित्र 14 में स्पष्ट है कि सारी मुद्रा क्रय-विक्रय के लिए ही प्रयोग होती है।

2. पूर्णतः लोचशील LM वक्र (Perfectly Elastic LM Curve)–निम्नतम r पर सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग असीमित होती है। इस r पर जितनी मटा लोगों ने सट्टा उद्देश्य के लिए रखी है वे सारी मुद्रा को नकदी में रखेंगे क्योंकि r निम्नतम होने के कारण बांड की कीमत अधिकतम होगी और वे अपने सभी बांडों को बेच कर नकदी में रखना चाहेंगे ओर इन्तज़ार करेंगे कि कब भविष्य में बांड की कीमत गिरे और वे खरीदें। इस परिस्थिति में LM वक्र की आकृति क्षितिज के समानान्तर (Horizontal होगी, अर्थात् पूर्ण लोचशील होगी जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है

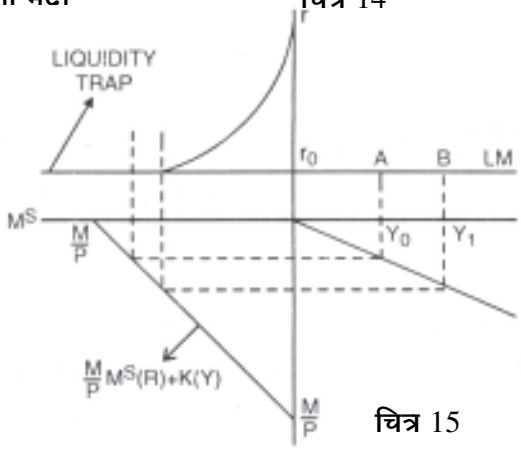

चित्र 15

LM वक्र के ढाल को LM equation, $\frac{M}{P} = L(r) + K(Y)$ का Differentiation करने के बाद प्राप्त किया जा सकता है :

$$\frac{M}{P} = (r) + K\,(Y)$$

$$O = l\,dr + k\,dy$$

$$dr =$$

$$\frac{dr}{dy} = -\frac{k}{l} : k > 0 \text{ and } l < 0$$

$$\therefore \quad = -\frac{k > 0}{l < 0}:$$

Hence the slop is positive

इस प्रकार सामान्य स्थिति में LM वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है। परन्तु तरलता जाल की स्थिति में LM वक्र पूर्णतः लोचशील होगा जैसा चित्र 15 द्वारा स्पष्ट किया गया है। आय के Y_0 से आय Y_1 तक बढ़ने पर भी r_0 स्थिर रहता है। इसलिए LM वक्र पूर्णतः लोचशील है।

●●●

$$\frac{dr}{dy}\frac{k}{l}\,dy$$

अध्याय-4

हिक्स हैन्सन एकीकरण

(Hicks–Hansen Synthesis) Equilibrium income and the Interest Rate in the Goods Market and Money Market

IS वक्र और Y के ऐसे संयोग प्रकट करता है जिन पर वस्तुओं की कुल माँग व पूर्ति बराबर है। इसलिए IS वक्र पर पड़ने वाले *r* और Y के सभी संयोग वस्तु बाज़ार में सन्तुलन स्थापित करते हैं। परन्तु वास्तव में अर्थव्यवस्था किसी समय *r*Y के किसी एक संयोग पर ही सन्तुलन प्राप्त कर सकती है जिसकी जानकारी अकेले IS वक्र से प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि मुद्रा बाज़ार भी *r* के माध्यम से वस्तु बाज़ार व आय को प्रभावित करती है। इसलिए वस्तु बाज़ार के साथ मुद्रा बाज़ार का सनतुलित होना भी अनिवार्य है। मुद्रा बाज़ार में सनतुलन LM वक्र द्वारा, जैसे पीछे हमने देखा है, प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि LM वक्र *r* और Y के ऐसे अनेक संयोग प्रकट करता है जिन पर मुद्रा की माँग व पूर्ति सन्तुलन में होती है। वह एक संयोग कौन-सा है जिस पर वस्तु बाज़ार और मुद्रा बाज़ार दोनों में सन्तुलन में होते हैं ? वह संयोग IS और LM वक्र को इकट्ठा रखने और उनके एक-दूसरे को काटने से प्राप्त होता है! यह चित्र 1 द्वारा दर्शाया गया है।

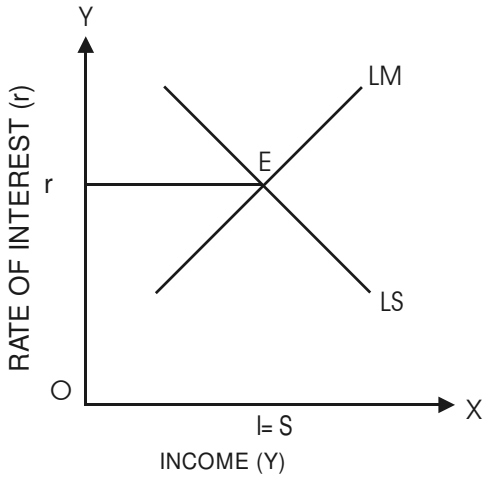

चित्र 1

ISLM वक्र एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं जिस पर वस्तु बाज़ार व मुद्रा बाज़ार दोनों सन्तुलन में हैं। *r* और Y का यह संयोग E बिन्दु द्वारा प्रकट किया गया है जिस पर सारी अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से सन्तुलन में होगी क्योंकि यहाँ वस्तु व मुद्रा बाज़ार दोनों सन्तुलन में हैं। इस अवस्था को सामान्य सन्तुलन भी कहते हैं।

असन्तुलन अवस्था से सन्तुलन की ओर प्रक्रिया
(Process of Equilibrium from a state of Disequilibrium)

अर्थव्यवस्था जब कभी दोनों बाज़ारों में से किसी एक बाज़ार में सन्तुलन में हो परन्तु दूसरे में नहीं अर्थात् अर्थव्यवस्था या तो IS वक्र पर स्थित होती है या LM वक्र पर। उस परिस्थिति में वह कौन-सी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था Y और *r* के उस संयोग को प्राप्त करती है जिस पर दोनों बाज़ार सन्तुलन में होते हैं ? दूसरा प्रश्न है कि जब कि अर्थव्यवस्था किसी भी बाज़ार में सन्तुलन में नहीं हो तो किस प्रक्रिया से सामान्य सन्तुलन बिन्दु प्राप्त करती है। जहाँ IS और LM वक्र एक-दूसरे को काटते हैं।

दोनों बाज़ारों में सामान्य सन्तुलन दोबारा प्राप्त करना इस बात पर निर्भर करेगा कि वे कितनी शीघ्रता से अपने आप को बदली हुई परिस्थितियों में ढालती है। एडवर्ड शपीरो (Edward Shapiro) के अनुसार वस्तु बाज़ार कीमत और मुद्रा बाज़ार ब्याज दर के माध्यम के साथ-साथ समन्वय करती हैं। परन्तु विलियम ब्रान्सन के अनुसार मुद्रा बाज़ार वस्तु बाज़ार की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से समन्वय करता है। इसलिए अर्थव्यवस्था में जब कभी सन्तुलन होता है तो यह LM वक्र पर ही गति करती

हुई सन्तुलन प्राप्त करती है। यदि यह कल्पना की जाये कि मुद्रा बाज़ार वस्तु बाज़ार से अधिक लोचशील है तब समन्वय की प्रक्रिया चित्र 2 से प्रकट की जा सकती है।

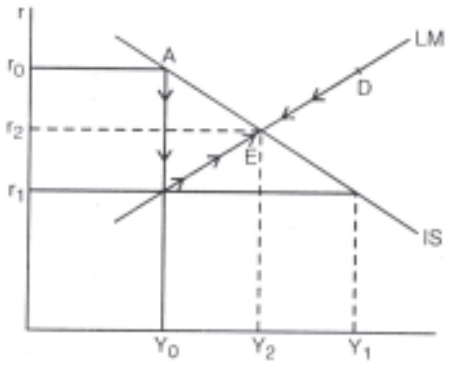

चित्र 2

पहले प्रश्न का हल पहले करते हुए मान लीजिए अर्थव्यवस्था A बिन्दु पर है जैसा कि चित्र में दर्शाया हुआ है। A बिन्दु पर केवल वस्तु बाज़ार सन्तुलन में है। LM वक्र के बाईं ओर पड़ने वाले सभी बिन्दु जिसमें A भी ऐसे हैं जहाँ मुद्रा-माँग की अपेक्षा मुद्रा की पूर्ति अधिक है। क्योंकि इन बिन्दुओं पर Y स्थिर रहते हुए ब्याज गिर कर LM को प्राप्त करना चाहेगा जहाँ मुद्रा की माँग व पूर्ति बराबर है। Y_0 स्तर पर ब्याज r_0 से गिर कर r_1 को प्राप्त होगा। r_1 से बढ़ना शुरू कर देगा जो कि निवेश को कम करे देगा। इस प्रकार LM वक्र पर गति करते हुए अर्थव्यवस्था E को प्राप्त होगी।

इसी प्रकार D और अन्य बिन्दु जो IS वक्र के दाईं ओर हैं वस्तु बाज़ार में माँग की कमी को दर्शाते हैं। जिससे पहले आय गिरेगी जो मुद्रा माँग की कमी को दर्शाते हैं। जिससे पहले आय गिरेगी जो मुद्रा माँग को घटायेगी और ब्याज दर नीचे गिरेगा। फिर LM वक्र का अनुसरण करती हुई E को प्राप्त होगी।

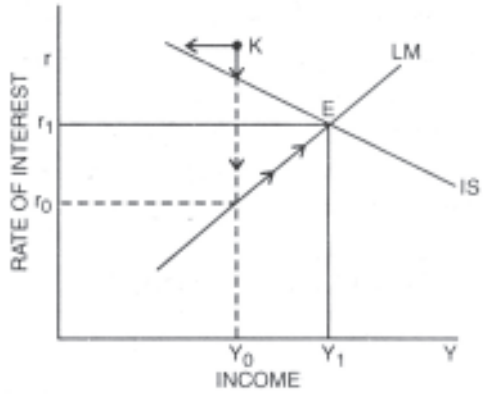

चित्र 3

दूसरे प्रश्न के अनुसार जब अर्थव्यवस्था किसी भी बाज़ार में सन्तुलित नहीं हो तब वह कैसे सन्तुलन प्राप्त करती है ? इस प्रश्न का समाधान चित्र 18 की सहायता से किया गया है।

चित्र में K बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति अधिक होने के कारण ब्याज दर गिरेगा और ब्याज में माँग की कमी होने के कारण आय गिरेगी। परन्तु मुद्रा बाज़ार में परिवर्तन शीघ्र होते हैं। इसलिए r गिर कर r_0 को प्राप्त होगा। फिर उपरोक्त प्रक्रिया अनुसार अर्थव्यवस्था LM वक्र के साथ नीचे की ओर बढ़ती हुई E बिन्दु को प्राप्त होती है।

IS-LM सन्तुलन तथा कुल माँग वक्र
(IS-LM Equilibrium and the Aggregate Demand Curve)

परम्परावादी सिद्धान्त का यह निष्कर्ष है कि पूर्ण रोज़गार उत्पादन के स्तर पर कुल पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) पूर्णतः बेलोच (Perfectly Inelastic) होता है, जबकि कुल माँग वक्र (Aggregate Demand Curve) मुद्रा की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार लोग मुद्रा को अपने पास नहीं रखते और वे अपनी सारी मुद्रा से या तो उपभोग पदार्थ खरीदते हैं या बचत के रूप में पूँजीगत पदार्थ खरीद लेते हैं। अर्थात् जितनी मुद्रा उनके पास होती है वह उनके खर्च या माँग को प्रकट करती है। अब यदि अर्थव्यवस्था मुद्रा की मात्रा बढ़ती है तो लोगों की कुल माँग उसके अनुसार बढ़ जाती है। किसी दी हुई कुल मुद्रा या व्यय की अवस्था में कीमत स्तर (P) बढ़ने पर माँग कम तथा P घटने पर माँग अधिक होगी। इसलिए कुल माँग के परम्परावादी मॉडल में P तथा कुल माँग (AD) में विपरीत सम्बन्ध होता है तथा यह बायें से दायें झुका हुआ Rectangular Hyperbola के रूप में होती है जैसा कि AD द्वारा चित्र 19 में दर्शाया गया है। मुद्रा की मात्रा बढ़ने पर कुल व्यय तथा कुल माँग वक्र बढ़ कर AD_1 हो जाता है और कीमत स्तर बढ़कर P_1 हो जाता है।

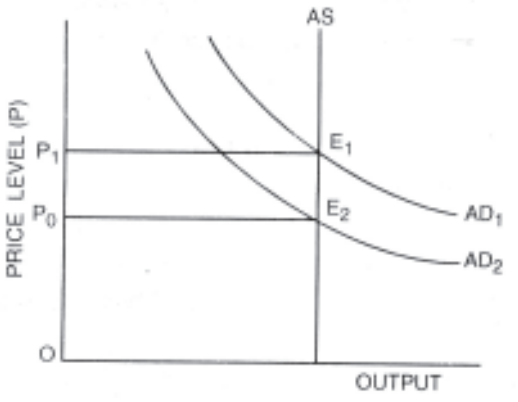

चित्र 4

इसके बिल्कुल विपरीत IS-LM मॉडल में कुल पूर्ति वक्र (AS curve) उत्पादन के पूर्ण रोज़गार स्तर तक पूर्णतः लोचशील तथा पूर्ण रोज़गार स्तर पर यह पूर्णतः बेलोच होता है जैसा कि रेखाचित्र 20 में दर्शाया गया है। IS-LM मॉडल की यह मान्यता है कि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार स्तर से पहले वाली अवस्था में या कुल पूर्ति वक्र के पूर्णतः लोचशील वाले भाग में ही उत्पादन कर रही होती है। इस मॉडल के निष्कर्ष अनुसार उत्पादन का स्तर केवल कुल माँग द्वारा निर्धारित होता है, जबकि कुल पूर्ति वक्र केवल कीमत स्तर का निर्धारण करता है जिस पर उत्पादन बिकता है।

इस मॉडल में कुल माँग वक्र का निकालना परम्परावादी मॉडल, जिसमें यह मुद्रा की मात्रा पर ही निर्भर करती है, की तुलना में अधिक जटिल है। IS-LM मॉडल में कुल माँग उन सभी तत्त्वों पर निर्भर करती है जो IS तथा LM वक्रों की स्थिति का निर्धारण करते हैं। मुद्रा की मात्रा इनमें से केवल एक तत्त्व है। अन्य तत्त्व जैसे निवेश सरकारी व्यय आदि होते हैं। जो IS तथा LM वक्रों की स्थिति को निर्धारित करते हैं। इन वक्रों की स्थिति निर्धारित होने पर जहाँ ये दोनों एक दूसरे को काटते हैं वह कुल माँग वक्रा (AD curve) का निर्धारण करता है जैसा कि चित्र 20 के भाग B में दर्शाया गया है। कुल माँग वक्र निकालने के लिए अन्तिम मान्यता यह की जाती है कि P में परिवर्तन के साथ IS तथा LM वक्रों में परिवर्तन नहीं होता है। इस आधार से अगले अध्यायों में अन्य तत्त्वों या राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों में परिवर्तन का कुल माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की जांच की गई है।

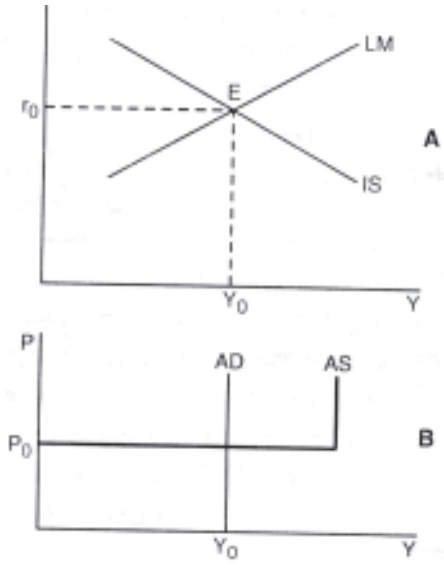

चित्र 5

REVIEW QUESTIONS

1. Explain the Keynesian theory of interest-rate determination. What are the differences between this theory and the classical theory of the interest rate?
2. What property is shared by all points along IS schedule and along the LM schedule?
3. Explain why in the IS LM model the IS curve is negatively sloped and the LM curve is positively sloped.
4. Explain the factors which determine the slope of the IS curve and LM curve.
5. Explain the factros/variables which shift the position of IS curve and LM curve.
6. Trace the derivation of IS and LM curves.

●●●

अध्याय-5

राजकोषीय नीति का कुल माँग पर प्रभाव

(Effects of Fiscal Policy on Aggregate Demand)

राजकोषीय नीति का कुल माँग पर प्रभाव
(Effects of Fiscal Policy on Aggregate Demand)

आजकल सरकारों ने उत्पादन व रोजगार बढ़ाने व कीमतों को स्थिर रखने सम्बधी जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा रखी है। मौद्रिक व राजकोषीय नीतियां प्रत्येक सरकार के पास ऐसे उपकरण हैं जिनके माध्यम से कुल माँग पर नियन्त्रण करके पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर को प्राप्त करने व बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। इन नीतियों के पीछे यह समझ कार्य कर रही होती है कि उत्पादन माँग पर निर्भर करता है। यदि ऐसा है तो जब कभी उत्पादन अपूर्ण रोज़गार वाला होता है तो क्यों नहीं कुल माँग (Aggregate Demand) को बढ़ा कर पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर प्राप्त किया जाए और जब कभी कुल माँग सक्षम उत्पादन स्तर से अधिक है, जो मुद्रा स्फीति बढ़ाने वाली है, तब कयों नहीं इसको कम किया जाये। इस प्रकार राजकोषीय व मौद्रिक नीति ऐसी नीतियां हैं जो वास्तविक उत्पादन को सक्षम उत्पादन स्तर (Potential level of output) पर बनाये रखने के लिए प्रयोग की जा सकती हैं। इस तथ्य को चित्र 1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। कल्पना की गई है कि पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर तक AS पूर्णतः लोचशील तथा पूर्ण रोज़गार पर यह पूर्ण बेलोच हो जाती है।

चित्र 1 में दर्शाया गया है कि जब कुल माँग AD है जो कुल पूर्ति AS वक्र को E_0 पर काटती है, तब सन्तुलित उत्पादन स्तर Y_0 निर्धारित होता है। परन्तु Y_0 उत्पादन स्तर पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर, Y_F से कम है। इस परिस्थिति में ऐसी मौद्रिक व राजकोषीय नीतियां अपनानी चाहिए जो AD को AD_1 तक बढ़ा सकें ताकि Y_F उत्पादन स्तर प्राप्त किया जा सके। एक अन्य अवस्था में यदि कुल माँग AD_H है, जो मुद्रा स्फीति का द्योतक है, तब इन नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि कुल माँग कम होकर AD_1 बन जाए और स्थिर कीमतों पर Y_F प्राप्त किया जा सके।

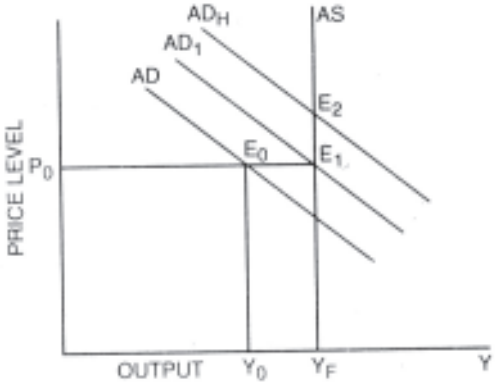

चित्र 1

यह अध्याय जांच करता है कि राजकोषीय नीति में परिवर्तन कुल माँग को कैसे परिवर्तित करता है ?

राजकोषीय नीति का कुल माँग पर प्रभाव
(Effects of Fiscal Policy on Aggregate Demand)

सरकार अपनी राजकोषीय नीति के अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर खर्च (G), हस्तान्तरित व्यय (T_r) या कर दर (t) में परिवर्तन द्वारा कुल माँग (AD) को बढ़ाती या घटाती है। इन तत्त्वों के समूह से किसी एक में परिवर्तन करने से IS वक्र दायें या बायें सरक जाता है, जो LM वक्र के साथ मिलकर कुल माँग में परिवर्तन करता हैतथा अर्थव्यवस्था में नई कुल माँग व पूर्ति को सन्तुलित करता है। राजकोषीय नीति के अन्तर्गत किसी ऐसे तत्त्व को नहीं बदला जा सकता जो LM वक्र को सरका सके। इसलिए LM वक्र स्थिर रहता है। वैसे तो अर्थव्यवस्था के निजी बचत व निवेश फलन में परिवर्तन होने से

भी IS वक्र दायें या बायें सरक सकता है। परन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध कुल माँग पर पड़ने वाले उस प्रभाव की जांच करना है जो राजकोषीय नीति के तत्त्वों जैसे कि वस्तुओं और सेवाओं की खरी पर सरकारी व्यय (G) हस्तान्तरित व्य (T_r) और कर दर (t) में परिवर्तन से उत्पन्न होता है। इस विश्लेषण में कीमतों को स्थिर माना गया है।

सरकारी व्यय का कुल माँग पर प्रभाव
(Effects of Government Expenditure on Demand)

सरकार जब वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर खर्च (G) बढ़ा देती है तब AD में व द्धि प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार से होती है। सरकार जब कभी (G) में व द्धि करती है तब G के बराबर माँग तुरंत बढ़ जाती है, जो प्रत्यक्ष माँग में व द्धि कहलाती है। इसके साथ ही सरकार ने जिन लोगों से ये अतिरिक्त वस्तुएं खरीदी हैं उनकी आय में व द्धि होती है जो अपनी MPC के अनुसार आगे उपभोग पदार्थों की माँग बढ़ा देते हैं, जिसको आय प्रेरित माँग (Income induced demand) या परोक्ष माँग कहा गया।

मन्दी की अवस्था में G के बढ़ने से कुल आय या उत्पादन (Y) में कितनी व द्धि होगी ? केन्ज़ीय मॉडल के अनुसार यह व द्धि सरकार व्यय में व द्धि (ΔG) की मात्रा के साधारण स्वायत्तता गुणक (Simple autonomous multiplier) के गुणनफल के बराबर बढ़ेगी जो चित्र 3 में Y_0 से Y_0 दर्शाई गई है। इस बढ़ी हुई आय का मौद्रिक क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव का केन्ज़ ने कोई ध यान नहीं दिया। इसलिए केन्ज़ीयन मॉडल भी आय व ब्याज दर का अनिर्धारणीय सिद्धान्त माना गया।

आय के बढ़ने पर वास्तव में क्रय-विक्र सम्बन्धी मुद्रा की माँग बढ़ेगी जो मुद्रा की कुल माँग वक्र को ऊपर सरका देगी। मुद्रा की पूर्ति स्थिर होने पर मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन के लिए r अवश्य बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग में व द्धि होने के कारण बांड की कीमत गिरेगी और ब्याज की दर (r) बढ़ेगी (बांड की कीमत और r के मध्य विपरीत सम्बन्ध ा पाया जाता है।) ब्याज की दर (r) बढ़ने से निजी निवेश घटेगा जिसको निवेश का भीड़ निकास (Crowding out of Investment) कहा गया है। यह निवेश में कटौती G में व द्धि की अपेक्षा कम होगी, इसलिए ISLM मॉडल के अनुसार आय केन्ज़ मॉडल की अपेक्षा कम अर्थात् Y_1 तक बढ़ सकेगी।

ISLM मॉडल की केन्ज़ मॉडल से भिन्नता इस बात में है कि आय निर्धारण करते समय ISLM मॉडल मुद्रा बाज़ार को सम्मिलित करता है। केन्ज़ मॉडल में केवल वस्तु बाज़ार पर ही ध्यान केन्द्रित रखा गया। इसलिए r को स्थिर माना है। दोनों के IS वक्र सम्बन्धी समीकरण निम्न प्रकार से भिन्न हैं :

$$\text{Keynes Model}: Y = C(Y - T(Y)) + I + G \quad .....(i)$$

$$\text{ISLM Model}: Y = C(Y - T(Y)) + I(r) + G \quad ..... (ii)$$

इस विवरण को निम्न चित्र 2 के A भाग में दर्शाया गया है। चित्र में G सरकार व्यय के आधार पर IS_0 वक्र प्रारम्भिक वक्र है। परन्तु जब यह G बढ़ कर G_1 हो जाता है तो $(I+G)$ फलन $(I+G)_0 = f(r)$ से बढ़कर $(I+G)_1 = f(r)$ फलन बन जाता

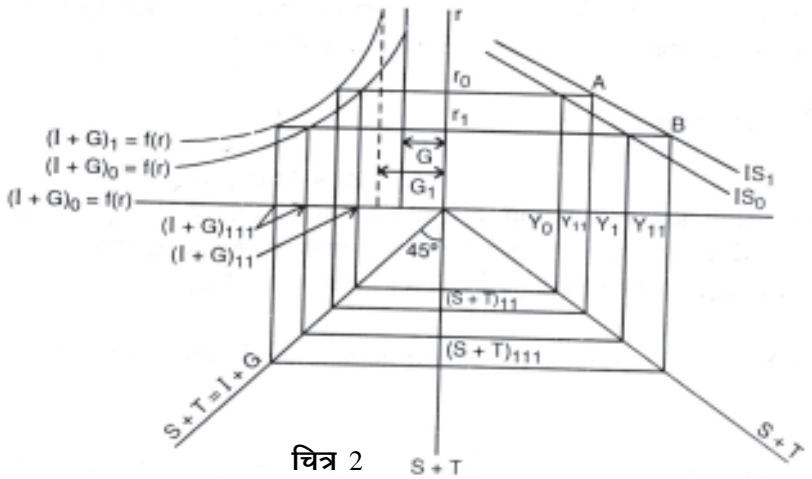

चित्र 2

है। यहाँ हम G में व द्धि करके Y में व द्धि की जांच कर रहे हैं। इसलिए किसी r की दर की कल्पना करनी होगी जैसे चित्र 2 में r_0 तथा r_1 की कल्पना की गई है।

नये फलन $(I+G)_4 = f(r)$ पर r_0 के अनुसार $I+G$ बढ़ कर $(I+G)_{11}$ हो जायेगा, जो गुणक के माध्यम से Y को Y_{11} तक बढ़ा देगा जहाँ $(I+G)_{11} = (S+T)_{11}$ होगा, इसलिए Y_{11} सन्तुलित आय होगी। यह Y_{11} आय r_0 से संयोग चित्र के ऊपरी दायें भाग में A_1 बिन्दु पर बनाती है जो नये IS वक्र का संयोग बिन्दु है। इसी प्रकार r_1 पर अब $(I+G)$ बढ़ कर $(I+G)_{111}$ हो जाएगा जो गुणक के माध्यम से आय को इस प्रकार बढ़ा कर Y_{111} करेगा ताकि $(I+G)_{111} = (S+T)_{111}$ हो और Y_{111} एक सन्तुलित आय बन सके। चित्र के ऊपरी दायें भाग में Y_{111} को r_1 से संयोग B बिन्दु पर बनता है। A और B को मिलाने से नया IS_1 वक्र प्राप्त होता है अर्थात् G में व द्धि से IS वक्र ऊपर दाईं ओर सरकता है।

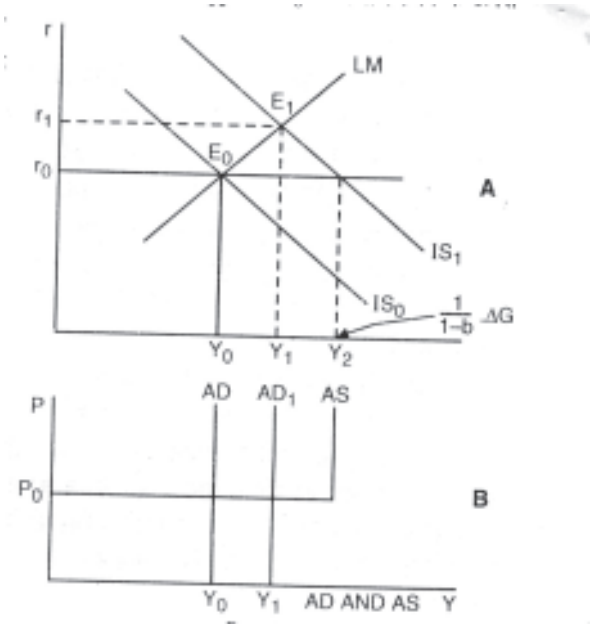

चित्र 3

परन्तु G में व द्धि से सन्तुलित आय कौन सी होगी यह निम्न चित्र 3 में LM वक्र के साथ IS वक्रों को रखते हुए दर्शाया गया है।

IS0LM वक्र एक-दूसरे को E0 पर काटते हैं इसलिए Y_0 सन्तुलित आय स्तर निर्धारित होता है। परन्तु G के बढ़ने पर नया IS वक्र बन जाता है। r_0 के स्थिर रहने पर अब वस्तु बाज़ार में आय साधारण गुणक द्वारा Y_{11} तक पहुंच सकती है। परन्तु ज्योंकि आय बढ़ना शुरू करती है r भी बढ़ने लग जाता है (क्योंकि क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग बढ़ जाती है) ताकि मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन आ सके। इससे निजी निवेश कम हो जायेगा परन्तु इतना कम नहीं होगा जितनी G में व द्धि हुई है। परिणामतः r बढ़ कर r sub 1 तथा Y बढ़ कर Y_1 बन जाती है जहाँ IS_1 वक्र LM को E_1 बिन्दु पर काटता है। अर्थात् यहाँ वस्तु बाज़ार व मुद्रा बाज़ार दोनों सन्तुलन में हैं। चित्र के B भाग में दर्शाया गया है कि G में व द्धि होने से कुल माँग वक्र AD से बढ़ कर AD_1 बन जाता है।

ISLM मॉडल में सरकारी गुणक
(Government Multiplier in the ISLM Model)

उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है कि सरकारी व्यय में व द्धि करने से ISLM मॉडल के अन्तर्गत आय कई गुना बढ़ती है, परन्तु साधारण व्यय गुणक की तुलना में कम। साधारण केन्ज़ीयन मॉडल में मुद्रा का समावेश करने से गुणक का मूल्य कम हो जाता है। साधारण केन्ज़ीयन गुणक जो IS वक्र तक ही सीमित है को निम्न समीकरण से दर्शाया जा सकता है।

$$K = \frac{1}{(1-b)(1-t)}; \qquad b = \text{MPC}$$

t = Tax rate

K = Multiplier

परन्तु G में परिवर्तन में IS वक्र ऊपर या नीचे सरकता है जो r में हुए परिवर्तन से उत्पन्न प्रभावों को साधारण गुणांक में समन्वय करने से इसका मूल्य बदल जाता है। इस समन्वय के बाद यह ISLM गुणक कहलाता है। G में परिवर्तन करने के कारण यह ISLM राजकोषीय गुणक भी कहलाता है। जो ISLM समीकरणों को differentiate करके प्राप्त किया जा सकता है।

IS वक्र जो Y और r के विभिन्न संयोगों पर वस्तु बाज़ार में सन्तुलन दर्शाता है इसको निम्न समीकरण द्वारा प्रस्तुत किया जाता है :

$$Y = C(Y - T(Y)) + I(r) + g \qquad \ldots\ldots (i)$$

इसी प्रकार LM वक्र Y और r के विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिस पर मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में होता है : LM वक्र को निम्न समीकरण से प्रस्तुत किया जा सकता है।

$$\frac{M}{P_0} = L(r) + k(y)$$

$\frac{M}{P_0}$ = वास्तविक मुद्रा की स्थिर मात्रा

$L(r)$ = सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग जो ब्याज दर से विपरीत का सम्बन्ध रखती है।

$K(y)$ = क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग

सरकारी गुणक IS-LM समीकरणों को differentiate करके निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है।

IS समीकरण $Y = C(Y - T(Y) + I(r) + G$ ..... (i)

IS समीकरण (i) का Differentiation :

$$\frac{dy}{dy} = \frac{dc}{dy}\left(\frac{dy}{dy} - \frac{dT}{dy}\left(\frac{dy}{dy}\right)\right) + \frac{dI}{dy} + \frac{dG}{dy}$$

$$\frac{dy}{dy} = b\left(\frac{dy}{dy} - t\left(\frac{dy}{dy}\right)\right) + i\left(\frac{dr}{dy}\right) + \frac{dg}{dy}$$

Denominator dy can be removed

$$dy = b\,(dy - tdy) + i\,(dr) + dG$$

$$dy = b(i - t)\,dy + idr + dG \quad .....(ii)$$

To find the value of dr we must differentiate the LM equation which is as under :

$$\frac{M}{P_0} = L(r) + K\,(y) \quad ..... (iii)$$

$$0 = \frac{dL}{dy}\cdot\frac{dr}{dy} + l\frac{dk}{dy}\cdot\frac{dy}{dy};\ \text{since}\ \frac{M}{P_0}\ \text{is constant}$$

$$0 = l\frac{dr}{dy} + k - \frac{dy}{dy}$$

Removing dy from denominator :

$$0 = 1dr + kdy$$

$$dr = -\frac{kdy}{l} \quad .....(iv)$$

dr के मूल्य का समीकरण (ii) में समावेश करते हुए

$$dy = b\,(1 - t)dy + i$$

dy को बाईं ओर निकालते हुए :

$$dy - b\,(1-t)\,\mathrm{dy} + \frac{ik}{l}dy = d\mathrm{G}$$

$$dy\,(1 - b\,(1-t) + \frac{ik}{l}) = d\mathrm{G}$$

$$dy =$$

$$\frac{dy}{d\mathrm{G}} = \qquad \ldots\ldots (v)$$

समीकरण (i) में सरकारी गुणक ISLM मॉडल के अन्तर्गत प्राप्त होता है।

साधारण सरकारी गुणक जो केवल IS समीकरण पर आधारित है :

$$\frac{dy}{d\mathrm{G}} =$$

परन्तु ISLM सरकारी गुणक साधारण गुणक में निश्चित रूप से कम होगा क्योंकि इसके इस (denominator) में धनात्मक मूल्य $\left(\frac{ik}{l}\right)$ जमा है।

$\frac{1}{1-b(1-t)+i\frac{k}{l}} \cdot d\mathrm{G}$

यदि LM वक्र का ढाल शून्य है अर्थात् $\frac{-k}{l} = \text{zero}$; तब दोनों प्रकार के गुणकों का मूल्य समान होगा। यह तब होता है जब LP curve x-axis के समानान्तर हो जाए, जो तरलता जाल (Liquidity trap) की अवस्था दर्शाता है।

निम्न चित्र इस स्थिति को स्वतः स्पष्ट करता है। अतः इस स्थिति में कुल माँग में व द्धि भी अधिक होगी।

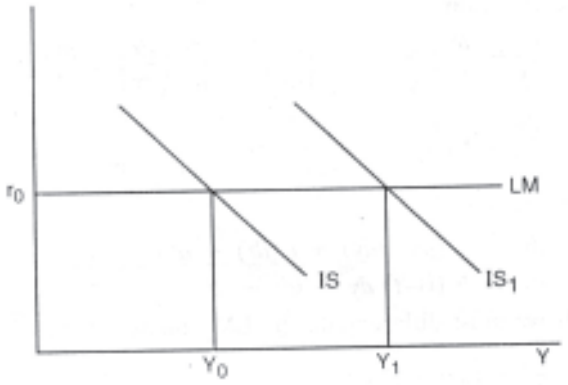

चित्र 4

हस्तान्तरित व्यय में व द्धि का कुल माँग पर प्रभाव

(Effects of Increase in Transfer Expenditure on Agg. Demand)

G की तरह हस्तान्तरित व्यय, (Transfer Expenditure (Tr)) भी स्वायत्त खर्च (Autonomous Expenditure) है, क्योंकि यह भी आय स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र है। सरकार कल्याणकारी कार्यक्रमों जैसे बेरोज़गारी भत्ता, बूढ़ों की पेंशन, गरीब बच्चों

की शिक्षा आदि को मद्दे-नज़र रखते हुए Tr के सम्बन्ध में एक बार ही निर्णय लेती है, जिसमें आय में परिवर्तन के साथ बार-बार परिवर्तन नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से व्यावहारिक और सैद्धान्तिक परेशानियां आती हैं। राजकोषीय नीति द्वारा माँग को प्रभावित करने का यक एक महत्त्पूर्ण उपकरण समझा जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि Tr में परिवर्तन करके माँग को प्ररोक्ष रूप से ही बदला जा सकता है, परन्तु कितना और कैसे ?

केन्ज़ मॉडल में कुल माँग $(C + I + G)$ का ध्यान करते हुए, G में व द्धि कुल माँग वक्र को आय के प्रत्येक स्तरों पर समान रूप से बढ़ा देती है। परन्तु Tr में व द्धि कुल माँग को ऊपर तो सरका देती है लेकिन Tr में व द्धि के बराबर नहीं बल्कि इससे कम। क्योंकि ज्यों सरकार जैसे बेरोज़गारी भत्ता, बूढ़ों को पेंशन, गरीब बच्चों की शिक्षा आदि पर Tr में व द्धि करती है तब लोगों की आय तो इस खर्च के समान बढ़ती है परन्तु वे आगे उपभोग पदार्थों पर सारी बढ़ी हुई आय नहीं बल्कि अपनी MPC के अनुसार इसका एक भाग ही खर्च करेंगे जो वस्तुओं की माँग को बढ़ाएगा। स्पष्ट है कि Tr से प्रत्यक्ष माँग न बढ़ कर परोक्ष माँग ही बढ़ पाती है। परन्तु कितनी माँग बढ़ती है यह प्रश्न अभी भी बाकी है। निम्न चित्र 5 की सहायता से इसका हलकिया गया है।

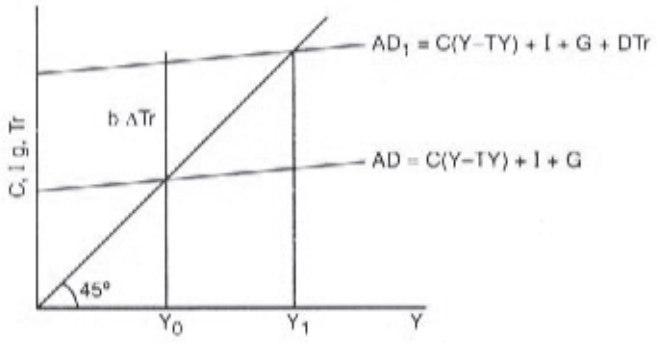

चित्र 5

चित्र में दर्शाया गया है कि Tr में व द्धि होने से सन्तुलित आय Y_0 से बढ़ कर Y_1 हो जाती है। यह आय में परिवर्तन सरल केन्ज़ीयन गुणक और ΔTr का गुणनफल है जो माँग को भी उसी अनुपात में बदल देता है; क्योंकि आय या उत्पादन = कुल माँग का होना सन्तुलित आय के लिए आवश्यक है। इस प्रकार माँग में होने वाली कुल व द्धि को निम्न समीकरण के माध्यम से दर्शाया जा सकता है :

=

Tr में व द्धि से हुई आय व माँग में व द्धि को ISLM मॉडल के माध्यम से भी दर्शाया जा सकता है जिसमें यह व द्धि आमतौर पर G की अपेक्षाकृत कम होगी। Tr में व द्धि IS वक्र को प्रत्येक r पर $\frac{1}{1-b(1-r)} \cdot b\Delta Tr$ के बराबर दाईं ओर सरका देती है। IS वक्र का ऊपर दाईं ओर सरकना साधारण गुणक $\left(\frac{1}{1-b(1-t)}\right)$ के मूल्य व Tr के बढ़ने से उपभोग खर्च में हुई व द्धि $(b\Delta Tr)$ पर निर्भर करता है। ध्यान रहे कि G में व द्धि से IS वक्र दाईं ओर अपेक्षाकृत अधिक सरकेगा, क्योंकि G सारा का सारा वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर खर्च कर दिया जाता है जबकि Tr की सारी राशि खरीद पर खर्च नहीं होती। आय में हुई व द्धि क्रय-विक्रय की माँग बढ़ा देगा जिससे मुद्रा की कुल माँग बढ़ेगी और r बढ़ना शुरू होगा जो निजी निवेश को घटा देगा (crowding out of investment) परन्तु यह कमी ΔTr से कम होगी। इसलिए अन्ततः सन्तुलित आय वहाँ निर्धाति होगी जहाँ नया IS_1 वक्र LM वक्र को E_1 पर काटता है जैसा निम्न चित्र 6 में दर्शाया गया है। चित्र IS_0 प्रारम्भिक IS वक्र है जो LM वक्र को E_0 पर काट कर r_0 व Y_0

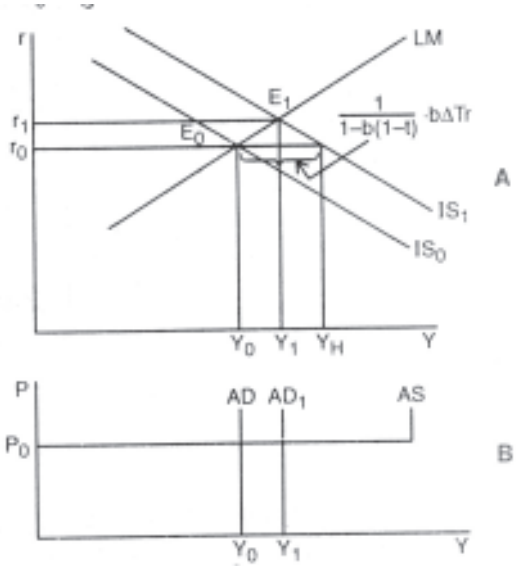

चित्र 6

सन्तुलित आय का संयोग निर्धारित करता है। परन्तु जब ΔTr के बराबर सरकारी व्यय में व द्धि होती है तो IS वक्र $\frac{1}{1-b(1-t)}$ के अनुसार दाईं ओर सरकता है जो आय को Y_{11} तक बढ़ा सकता है परन्तु आय बढ़ने से मुद्रा की माँग बढ़ती है जो r को बढ़ा देती है। इससे निजी निवेश कम होता है जो आय को इतना नहीं बढ़ने देता जितनी आय बढ़ सकती थी यदि r स्थिर रहता है। परन्तु मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन (LM वक्र) बनाने के लिए r बढ़ता है। अन्ततः सन्तुलित आय Y_1 पर निर्धारित होती है जहाँ IS_1 वक्र LM को E_1 पर काटता है। यहाँ पर वस्तु बाज़ार व मुद्रा बाज़ार दोनों सन्तुलन में है।

इस प्रकार ISLM मॉडल में सरकारी गुणक $\frac{1}{1-b(1-t)+\frac{ik}{l}}$ का मूल्य साधारण गुणक $\left(\frac{1}{1-b(1-t)}\right)$ के मूल्य से कम है। इसलिए आय एवं माँग अपेक्षाकृत ISLM मॉडल के अन्तर्गत कम बढ़ती है। चित्र के B भाग में दर्शाया गया है कि ISLM मॉडल के अनुसार कुल माँग AD से बढ़कर AD_1 हो जाती है।

कर की दर में परिवर्तन का माँग पर प्रभाव
(Effect of Tax Rate Change on Demand or Income)

हस्तान्तरित आय (transfer income) में व द्धि या कर दर में कटौती दोनों ही स्वायत्त आय (Disposable Income) को बढ़ाने वाले हैं। कर दर (tax rate), t, में कटौती करने से लोगों की स्वायत्त आय बढ़ती है क्योंकि उनको पहले की अपेक्षा कम कर देना पड़ता है। इसलिए वे कर दर में कटौती के उपरान्त उपभोग सम्बन्धी वस्तुओं की माँग अपनी MPC के अनुसार बढ़ाएंगे। इस प्रकार हस्तान्तरित आय में व द्धि की तरह ही कर दर कम करने पर उपभोग पदार्थों की माँग परोक्ष रूप से बढत्री है। t में कटौती करने से उपभोग पदार्थों (c) का GNP में हिस्सा बढ़ेगा। जैसा कि G के बढ़ने से सरकार द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं का GNP की रचना में हिस्सा बढ़ता है।

आनुपातिक कर प्रणाली की कल्पना करते हुए यदि कर दर, t में कटौती की जाये तब कर फलन (tax function), T (Y) नीचे की ओर घूम (Rotate) जाएगा। इसके बाद प्रत्येक आय के स्तर पर पहले की अपेक्षा कम कर संग्रह (tax collection) होगा अर्थात् प्रत्येक आय स्तर के लोगों को अब पहले की अपेक्षा कम कर देना पड़ेगा जिससे उनकी स्वायत्त आय (Disposable Income) बढ़ेगी और वे अपनी MPC (b) के अनुसार उपयोग पदार्थों की माँग बढ़ाएंगे। t में कटौती से माँग व आय कितनी बढ़ेगी इसका वर्णन निम्न चित्र 7 के माध्यम से किया गया है :

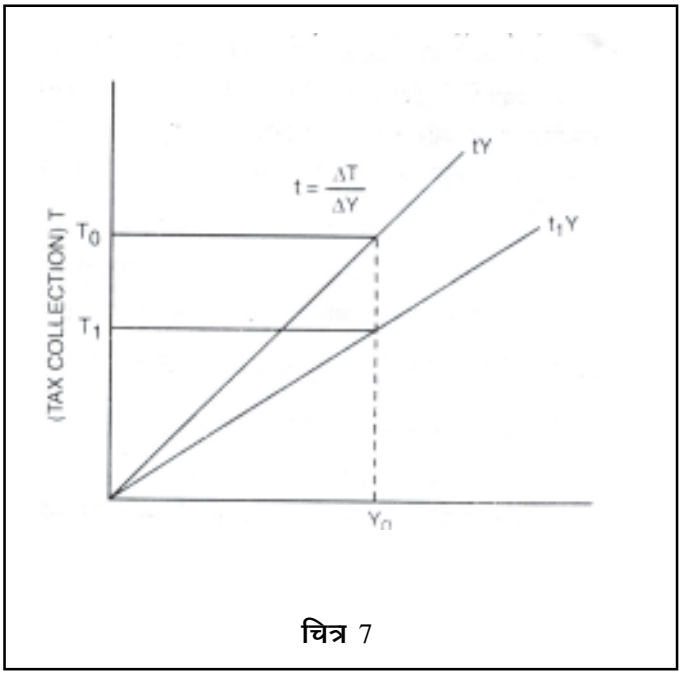

चित्र 7

आनुपातिक कर प्रणाली में कर फलन T(Y) (अर्थात् कुल कर आय पर निर्भर करता है) को tY के रूप में लिखा जा सकता है। t में कटौती अर्थात् कर दर (t) में कटौती से कर फलन कैसे नीचे की ओर tY से t_1 Y के रूप में घूमता है। इस चित्र 7 से स्पष्ट है।

Y_0 आय के स्तर पर कर दर t थी तब T_0 कुल कर संग्रह होता था। परन्तु जब t में कटौती की जाती है तो यह कर फलन t_1 Y हो जाता है और T घट कर T_0 से T_1 रह जाता है जो लोगों की स्वायत्त आय को T_0T_1 से बढ़ा देता है। इसका माँग व आय पर पड़ने वाले प्रभाव को ISLM वक्र द्वारा देखा जा सकता है।

निम्न चित्र 8 अनुसार t में कटौती करने से कर फलन $(S+T)_0$ फलन घूमकर $(S+T)_1$ बन जाता है। इस कारण IS वक्र

दाईं ओर खिसकर IS_0 बन जाएगा।

स्पष्ट है कि पहले वाले आय के स्तरों (Y_0, Y_1) पर कर दर (t) में कटौती करने के बाद $(S + T) = (I + G)$ ऊंचे स्वायत्त आय के स्तरों Y_{11} और Y_{111} पर समान होगा जो IS_0 वक्र को IS_1 तक सरका देगा। यह IS वक्र कितना सरकता है यह वस्तु बाज़ार के साधारण गुणक और कर दर में कटौती से उपभोग पदार्थों पर कितना खर्च $(b\,Ydt)$ बढ़ता है इस पर निर्भर

चित्र 8

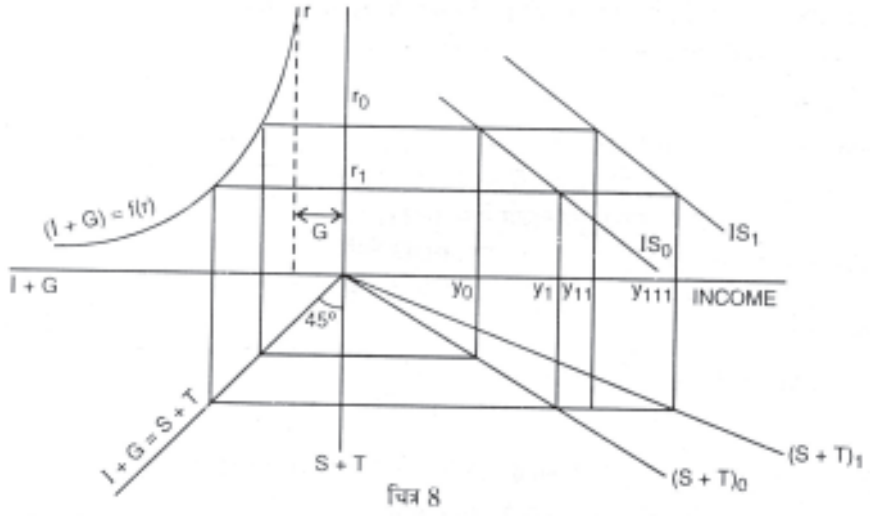

करेगा। परन्तु वास्तव में आय व माँग कितनी बढ़ती है वस्तु व मुद्रा दोनों बाज़ारों (IS-LM) पर निर्भर करेगा अर्थात् जहाँ IS_1 वक्र LM वक्र को काटता है।

परिणामस्वरूप, जैसा निम्न चित्र 9 में दर्शाया गया है Y_1Y_1 संयोग निर्धारित होगा। यह पूर्व बताई गई प्रक्रिया जिसमें r परिवर्तित है ही के अनुसार ही होगा। आय व माँग Y_0 से Y_1 कितनी है ISLM मॉडल में कर गुणक और t में कटौती पर निर्भर करता है।

चित्र 9 का B भाग दर्शा रहा है कि कर दर में कटौती में कुल माँग वक्र AD से बढ़ कर AD_1 हो जाता है।

IS समीकरण

$$Y = C(Y - tY) + I(r) + G \quad ..... (i)$$

$$dY = dc\,(dY - tdY - Ydt) + dI\,(dr)$$

$$= b(1 - t)\,dY - bYdt + i\,(dr) \quad ..... (ii)$$

LM समीकरण के Differentiation से dr का मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

$$\frac{M}{P} = L(r) + K(y) \quad ..... (iii)$$

$$O = Idr + kdY$$

$$dr = \quad ..... (iv)$$

समीकरण (i) में dr के स्थान पर $\frac{-k}{l}dY$ रखते हुए

$$dY = b\,(1 - t)\,dY - bYdt - i\left(-\frac{k}{l}\right)dy$$

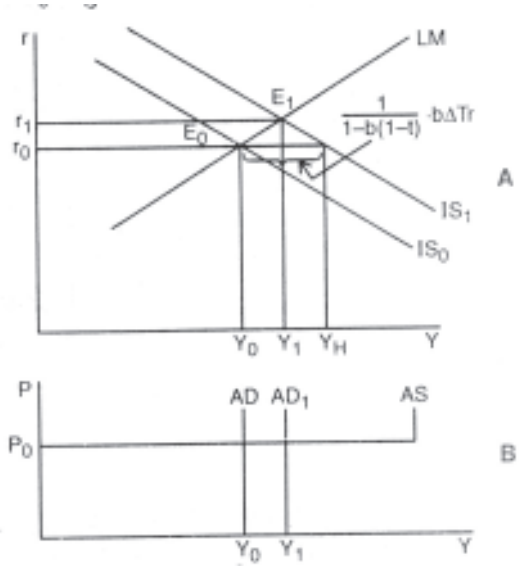

चित्र 9

dY को समीकरण के बाईं ओर लाते हुए

$$dY - b\,(1-t)\,dY + i + \frac{k}{l}\,dY = -dY\,dt$$

$$dY\,(1-b)\,(1-t) + \quad = -bY\,dt$$

$$dY =$$

Tax Multiplier समीकरण (v) में घटाव का चिन्ह इसलिए है क्योंकि या तो dt अर्थात् कर दर में कटौती या bY का घटना दोनों में से एक अवश्य नकारात्मक होगा।

राजकोषीय नीति का प्रभावीपन
(Effectiveness of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति आय व माँग बढ़ाने में कितनी प्रभावी (Effective) है इस बात पर निर्भर करता है कि ISLM मॉडल में राजकोषीय गुणक (Fiscal multiplier) का क्या मूल्य है। यह मूल्य जितना अधिक होगा उतनी ही राजकोषीय नीति प्रभावी होगी। राजकोषीय गुणक का मूल्य IS और LM वक्रों के ढाल पर निर्भर करता है। क्योंकि IS-LM समीकरणों के differentials (ढाल) के द्वारा ही गुणक का मूल्य प्राप्त किया जाता है। सरकारी व्यय में व द्धि व कमी करने से आय (Y) कितना बदलती है यह अन्ततः IS व LM वक्रों के ढाल पर निर्भर करता है।

$$\frac{\frac{ik}{l}}{1-b(1-t)+\frac{ik}{l}}\cdot\frac{1}{b}$$

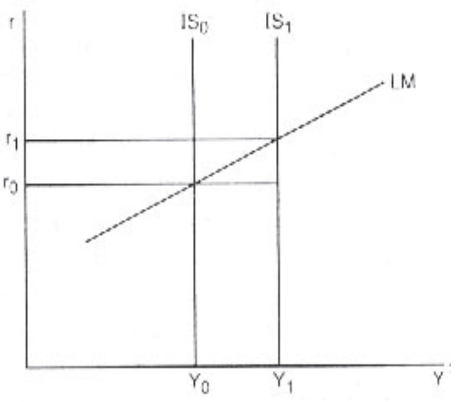

चित्र 10A (Vertical IS Curve)

राजकोषीय नीति के प्रभावी पन पर IS वक्र की ढलान का प्रभाव (Effect of the slope of IS Curve on Effectiveness of Fiscal Policy)

IS वक्र का ढाल जितना अधिक होगा, राजकोषीय नीति उतनी ही अधिक आय व ब्याज को परिवर्तित करने में प्रभावी होगी। यह तथ्य निम्न चित्र 10 के ABC भाग के माध्यम से भली-भांति समझा जा सकता है। मुद्रा की पूर्ति तथा अन्य सम्बन्धित तत्त्व स्थिर रहने पर LM वक्र व इसका ढाल स्थिर रहता है। LM वक्र स्थिर रखते हुए जब सरकारी व्यय में व द्धि की जाती है तो IS वक्र simple expenditure multiplier $\left(\frac{1}{1-b(1-t}\Delta G\right)$ के अनुसार दाईं ओर जैसा सामान्यतः होता है, सरक जाता है।

(A) **क्षितिजीय ढाल वाला** IS वक्र (IS curve with vertical slope)–चित्र A में IS_0 वक्र एक दम खड़ा है और जब G में व द्धि की जाती है तब यह सरक कर IS_1 को प्राप्त होता है। स्थिर LM वक्र के साथ सन्तुलन बिन्दु E_0 से E_1 पर सरक जाता है तथा r_1 Y_1 का संयोग अन्ततः निर्धारित होता है। IS वक्र क्षितीजीय ढाल वाला (vertical) उस समय होता है जब निवेश फलन r के प्रति अचेतन (totally Nonsensitive) होता है अर्थात् r में परिवर्तन I में काई परिवर्तन नहीं आता। यहाँ निजी निवेश का भीड़ निकास (crowding out of private investment) शून्य होता है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में राजकोषीय नीति सबसे अधि ाक प्रभावी होती है। यहा Fiscal multiplier का मूल्य अधिकतम होता है और simple expenditure multiplier के बराबर होता है। (rate of change in investment with respect to r) शून्य होता है जो $\frac{ik}{l}$ को भी शून्य बना देता है क्योंकि i शून्य है। हर केइस भाग के शून्य होने पर Fiscal और simple expenditure multiplier के मूल्य में कोई अन्तर नहीं रहता।

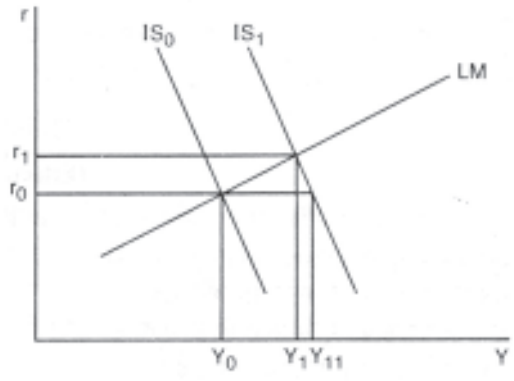

चित्र 10 B

विस्तार से विवरण करते हुए, ऐसी परिस्थिति में जब कभी G बढ़ाया जाता है तब चित्र A के अनुसार आय व माँग बढ़ती है। बढ़ी हुई आय क्रय-विक्रय में ज्यादा मुद्रा प्रयोग करवाती है और मुद्रा के माँग के बढ़ने पर r बढ़ता है। परन्तु r के बढ़ने पर, जैसा चित्र A में r_1 तक, निवेश (I) कम नहीं हो सकता, क्योंकि निवेश अनुसूचि r के प्रति अचेतन (Nonsensitive) है और इस प्रकार आय पूर्ण रूप से सरल गुणक के अनुसार बढ़ती है जो IS वक्र को vertical एवं खड़ा बनाता हुआ सरकता है अर्थात् r_0 के रहते हुए भी जब G में व द्धि होती है तो आय में व द्धि Y_1 तक होती है और जब r_0 बढ़ कर r_1 हो जाता है तब भी Y_1 ही सन्तुलित आय होती है जो IS वक्र को Vertical बना देती है।

(B) अधिक ढाल वाला IS वक्र (IS curve with a steep slope)–चित्र 10 B में IS वक्र अधिक ढाल (Steep slope) वाला दर्शाया गया है। LM वक्र का पहले वाला ढाल रखते हुए जब G में पहले जितनी व द्धि की जाती है तब आय में काफी अधिक व द्धि होती है परन्तु इतनी नहीं जितनी IS वक्र के vertical होने पर होती है, जैसा चित्र B में दर्शाया गया है। r में व द्धि r_0 से r_1 होती है, परन्तु G में व द्धि के कारण आय में व द्धि काफी अधिक होती है जो Y_0 से Y_1 है। यह उस समय होता है जब निवेश फलन r के प्रति काफी लोचहीन (insensitive) हो। क्योंकि साधारण गुणक के अनुसार आय Y_{11} तक बढ़ती है, मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन स्थापित करने के लिए r बढ़ता है परन्तु निवेश वक्र कम लोचशील होने के कारण निवेश बहुत कम गिरता है (crowding out of private investment is very small) इसलिए r में व द्धि की अपेक्षा Y बहुत कम गिरती (Y_{11} से Y_1) है। यहाँ राजकोषीय नीति काफी प्रभावी है।

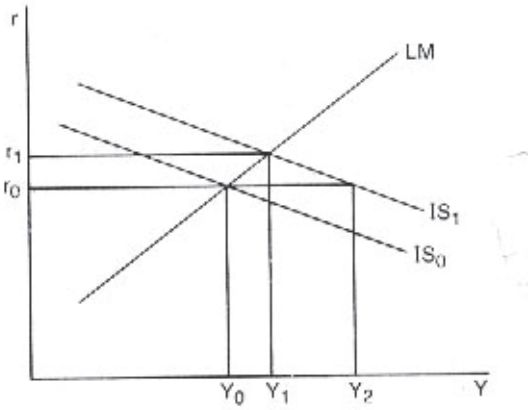

चित्र 10 C

चित्र

(C) **बहुत कम ढाल वाला** IS वक्र (IS Curve with a Flat slope)–IS वक्र का ढाल कम होना इस बात का सूचक है कि निवेश वक्र काफी लोचशील है। G में व द्धि से आय Y_1 से बढ़कर Y_2 होती है जो मुद्रा बाज़ार में असन्तुलन उत्पन्न कर देता है। जैसा कि चित्र 10C में दर्शाया गया है। दोनों बाज़ारों में सन्तुलन बनाने के लिए r बढ़ कर r_1 होता है जहाँ चित्र में IS_1 वक्र LM वक्र को काटता है। आय में गिरावट (Y_2 से Y_1), r में व द्धि (r_0 से r_1) की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। इसका कारण निवेश वक्र का r के प्रति अधिक लोचशीलता (More sensitivity of investment function) होना है जो I को काफी कम करता है। निजी निवेश (I) का भीड़ निकास (Crowding out of private investment) काफी ज्यादा है जो राजकोषीय नीति को कम प्रभावी बना देता है।

चित्र

LM वक्र का ढाल और राजकोषीय नीति का प्रभावी होना
(Slope of LM curve and Effectiveness of Fiscal Policy)

राजकोषीय गुणक का मूल्य LM वक्र के ढाल पर भी निर्भर करता है। जब LM वक्र का ढाल शून्य $\left(-\frac{k}{l} = \text{zero}\right)$ होता है तो यह चपटी (Flat) होती है तब राजकोषीय गुणक की शक्ति अधिकतम होगी और यह साधारण गुणक के बराबर होगी। LM वक्र का चपटा होना Y और r के काफी निम्न स्तरों पर होता है। काफी कम आय के स्तर पर क्रय विक्रय के लिए बहुत कम मुद्रा प्रयोग में लाई जाती है, इसलिए सट्टा उद्देश्य में मुद्रा की पूर्ति काफी अधिक बनी रहती है बांड बाज़ार की काफी माँग बढ़ने के कारण r निम्नतम सीमा (केन्ज़ अनुसार) चित्र 11 में r_0 को प्राप्त होता है जहाँ आय का स्तर Y_0 दर्शाया गया है।

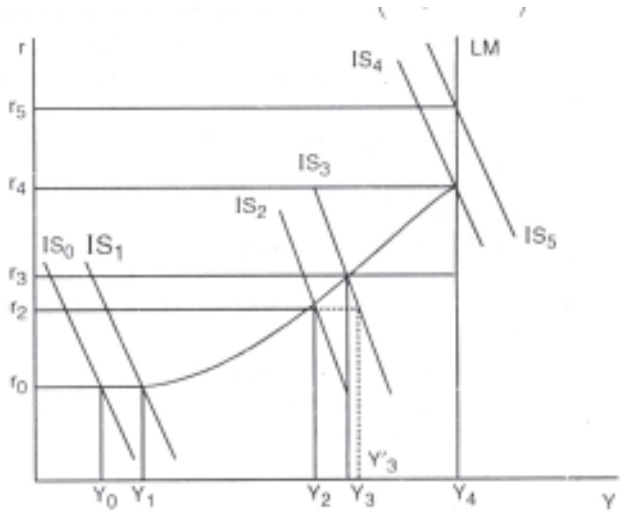

चित्र 11

इस परिस्थिति में विस्तारवादी राजकोषीय नीति अपनाते हुए जब सरकार G को बढ़ाती है जो आय अधिकतम सीमा तक बढ़कर चित्र में Y_1 हो जाती है। आय बढ़ने से r नहीं बढ़ता क्योंकि सट्टा उद्देश्य के लिए बहुतायत में पड़ी बेकार मुद्रा (r_0 निम्नतम होने के कारण लोग सट्टा उद्देश्य के लिए रखी मुद्रा की मात्रा को नकदी में रख लेते हैं जो बेकार पड़ी होती है) इसलिए निवेश पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता (No crowding out effect) क्योंकि r बढ़ता ही नहीं। LM वक्र के चपटे भाग को Keynesian Range की संज्ञा दी गई है। LM वक्र चपटे ढाल वाला होने से राजकोषीय नीति सबसे अधिक प्रभावी होती है जैसा कि यह महा-मन्दी की अवस्था में होता है।

एक दूसरी अवस्था जिसमें LM वक्र का ढाल सामान्य होता है इसमें राजकोषीय नीति काफी प्रभावी सिद्ध होती है। जैसा चित्र 11 में दर्शाया गया है। मान लीजिए आय Y_2 है और सरकार विस्तारवादी नीति के अन्तर्गत G बढ़ा देती है जिस कारण IS_2 वक्र सरक कर IS_3 बन जाता। परिणामस्वरूप आय बढ़ कर Y_3 व r बढ़कर r_2 से r_3 बन जाता है। आय सन्तुलन की अवस्था में Y'_3 तक नहीं बढ़ पाती। क्योंकि Y होने पर क्रय विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग बढ़ती है जो मुद्रा की कुल माँग को बढ़ा देती है और मुद्रा बाज़ार में असन्तुलन पैदा होने से r बढ़ता है जिस कारण निवेश (crowding out of private investment) गिरता है जो G के बढ़ने के प्रभाव को कम करता है।

आय Y'_3 से गिरकर Y_3 होती है जो काफी कम है। r बढ़ कर r_3 पर सन्तुलन प्राप्त करता है, यहाँ राजकोषीय गुणक की शक्ति साधारण गुणक से कम हो जाती है, क्योंकि हर में $\left(\frac{ik}{l}\right)$ कुछ भाग और जमा हो जाता है जो इसकी शक्ति को क्षीण करता है। फिर भी इस भाग में जिसका माध्यम भाग (Intermediate Range) कहा गया है राजकोषीय नीति काफी प्रभावी पाई जाती है।

चित्र में एक तीसरी अवस्था दर्शाई गई है जिसमें LM वक्र बिल्कुल खड़ा होता है। इस भाग को परम्परावादी अवस्था (classical range) की संज्ञा दी गई है। अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार (Y_4) प्राप्त किए होती है। G में व द्धि से केवल कीमत स्तर व मौद्रिक आय बढ़ती है।

कीमतों में हुई व द्धि के कारण क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग बढ़ती है जो r को तो बढ़ाती है परन्तु Y को नहीं, क्योंकि Y पहले ही सक्षम उत्पादन स्तर प्राप्त किए होता है r इतना अधिक बढ़ता (r_4 से r_5) है कि निवेश को काफी कम करक बढे G के प्रभाव को बिल्कुल खत्म कर देता है। इस अवस्था में निजी निवेश का भीड़ निकास पूर्ण है (Crowding out of investment is complete) और अन्ततः कुल माँग (C + I + G) पहले वाली ही रहती है, क्योंकि जिस अनुपात में G बढ़ा उसी अनुपात में I गिर गया है।

REVIEW QUESTIONS

1. In a IS-LM curve model, show how income and interest rate are affected by each of the following changes :
   (a) An increase in government spending.
   (b) An autonomous decline in investment spending.
   (c) An increase in taxes.
   (d) An increase in government spending financed by an equal increase in taxes.
   (e) An increase in transfer expenditure.
   In each of the above cases show briefly why the changes in income and the interest rate occure.
2. Within the IS-LM curve model what would be the effect of an autonomous increase in saving that was matched by a drop in consumption, that is, a fall in a in the consumption function?
   $$C = a + b (Y - T)$$
   Which curve would shift? How would income and the interest rate be affected.
3. Explain the factor which determine the effectiveness of fiscal policy in a IS-LM curve model

SELECTED READINGS

Richard T. Froyen, Macroeconomic Theories and Policies : Mac Mill an Publishing Company, New York, London

Willaim H. Branson, Macroeconomic Theory and Policy, Harper & Row Publishers, Singapore, London E. Shapiro, Macroeconomic Analysis, Galgotia Publicastion Pvt. Ltd., 1988.

अध्याय-6
मौद्रिक नीति का माँग पर प्रभाव
(Monetary Policy effects on Demand)

मौद्रिक नीति का माँग पर प्रभाव
(Monetary Policy Effect on Demand)

वस्तु व सेवाओं की खरीद पर सरकारी व्यय, हस्तान्तरित व्यय और कर दर में परितर्वन के माध्यम से राजकोषीय नीति में परिवर्तन कुल माँग को प्रभावित करता है। इसी प्रकार मौद्रिक नीति में परिवर्तन के द्वारा भी माँग को प्रभावित किया जा सकता है। मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा की पूर्ति परिवर्तित की जा सकती है जो LM वक्र को विस्थापित कर देती है। नया LM वक्र IS वक्र के साथ मिलकर ब्याज की दर (r) में उतार-चढ़ाव लाता है जो निवेश को बदल कर आय और माँग को प्रभावित करता है। LM वक्र कैसे निकलता है, यह पीछे मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में देखा जा सकता है।

अब प्रश्न है कि जब मौद्रिक अधिकारी देश की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुसार मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करते हैं तो LM वक्र कैसे अपना स्थान बदलता है ? मान लीजिये किसी LM वक्र के होते हुए मुद्रा की मात्रा में व द्धि की गई है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह होगा कि बढ़ी हुई मुद्रा की पूर्ति सट्टा उद्देश्य में प्रवाहित होगी, जो ब्याज दर को कम कर देगी। जिस कारण पहले वाली आय, चित्र 1 में Y_0 का कम ब्याज दर से संयोग बनेगा जहाँ मुद्रा बाज़ार सन्तुलन में होता है। यह संयोग पहले वाले LM वक्र के नीचे होगा। इसी प्रकार ऊँचे आय के स्तर (Y_1) पर भी मुद्रा की मात्रा बढ़ने से बढ़ी हुई मुद्रा की मात्रा सट्टा उद्देश्य में प्रवेश करेगी और ब्याज दर घटा देगी। इस प्रकार अधिक आय में स्तर (Y_1) पर भी अब ब्याज कम होगा और r और y का एक नया संयोग बनेगा जो मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन स्थापित करके पहले वाले LM वक्र को नीचे दायें ओर सरका देगा। जैसा चित्र 1 में दर्शाया गया है :

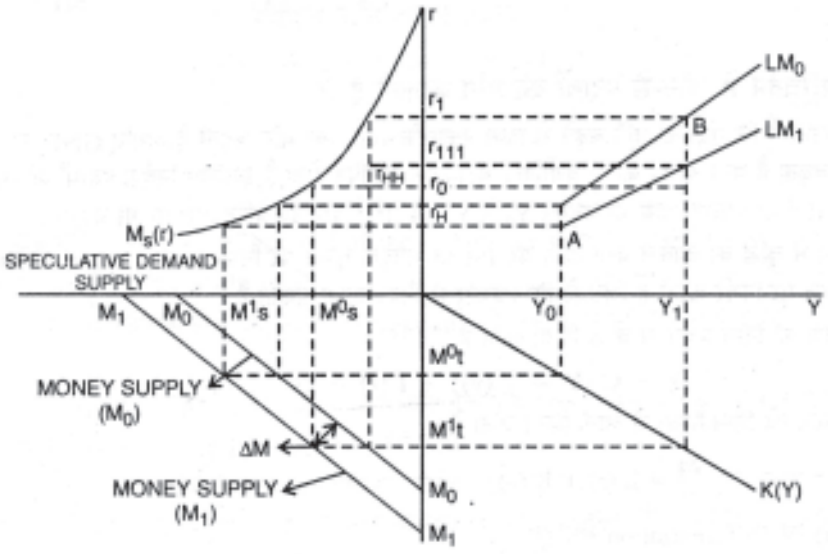

चित्र 1

मौद्रिक नीति के प्रभाव को ज्ञात करने के लिए Four quadrant Fig-1 का प्रयोग किया गया है। प्रारम्भिक अवस्था में मुद्रा बाज़ार

का सन्तुलन LM_0 द्वारा दर्शाया गया है जो Y_0r_0 तथा Y_1r_1 के संयोगों को जाड़ कर प्राप्त किया गया है। Y_0 आय स्तर पर क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग M^0t है तथा मुद्रा की पूर्ति M_0 शेष मुद्रा की पूर्ति M^0M_t सट्टा उद्देश्य में चली जाती है। जो M^0s के समान होती है तथा r_0 ब्याज की दर का निर्धारण करती है व r_0y_0 का संयोग निर्धारित होता है जिस पर मुद्रा की माँग व पूर्ति बराबर हैं। इसके बाद जब मुद्रा की पूर्ति बढ़ कर M_1 हो जाती है तो Y_0 आय के स्तर पर मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन r_{11} ब्याज की दर पर होता है। $r_{11}y_0$ का यह संयोग A बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार मुद्रा पूर्ति में व द्धि (Δm) होने से Y_1 आय के स्तर पर r_{111} ब्याज की दर निर्धारित होती है। जिस पर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति एक-दूसरे के बराबर हैं अर्थात $r_{111}y_1$ का संयोग मुद्रा बाज़ार में सन्तुलन दर्शाता है जिसको B बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। A तथा B बिन्दुओं को मिलाने से LM_1 वक्र प्राप्त होता है। इस व्याख्या से सिद्ध होता है कि मुद्रा पूर्ति में व द्धि करने पर LM वक्र दाईं व नीचे की ओर निर्धारित होता है।

IS वक्र के स्थिर हुए ज्यों मुद्रा पूर्ति में व द्धि की जाती है तो LM वक्र दाईं ओर सरकता है। जब नया LM वक्र IS वक्र के साथ मिलकर सामान्य सन्तुलन स्थापित करता है तो मुद्रा पूर्ति में व द्धि का कुल माँग पर पड़ने वाला प्रभाव स्वतः प्रकट हो जाता है, जैसा निम्न चित्र 2 में दर्शाया गया है।

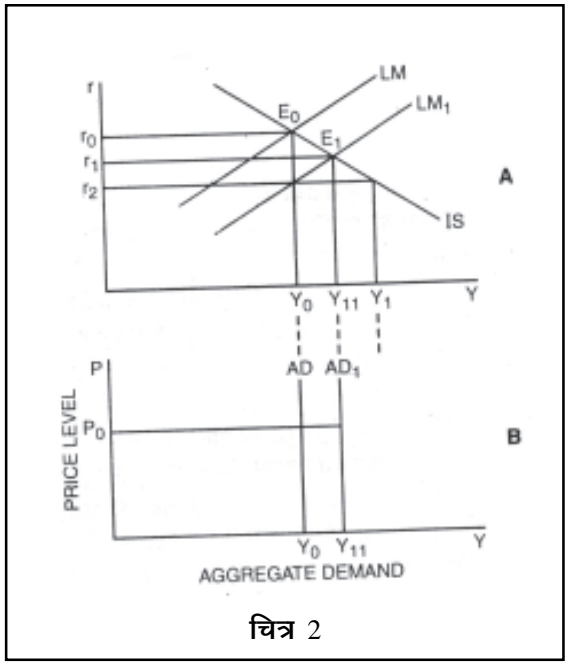

चित्र 2

y_0 पर y_0 के संयोग से अर्थव्यवस्था E_0 बिन्दु पर सन्तुलन में होती है जहाँ IS वक्र LM चक्र को काटता है, जैसा Part-A में दर्शाया गया है। मुद्रा पूर्ति में व द्धि होने से LM वक्र दाईं ओर सरक कर LM1 बन जाता है तथा मुद्रा बाज़ार में असन्तुलन आ जाता है जिसको पुनः स्थापित करने के लिए ब्याज की दर (r) गिरकर r_2 बन जाती है। r_2 पर निवेश बढत्रेगा जो आय को Y_1 तक पहुँचा सकता है। परन्तु ज्यों आय बढ़ने लगती है क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग बढ़ती है, जो मुद्रा की कुल माँग को बढ़ा देती है। परिणामस्वरूप r बढ़ने लगता है। अन्ततः r बढ़कर r_1 पर स्थापित होता है जहाँ मुद्रा बाज़ार और वस्तु बाज़ार दोनों E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में होते हैं। अर्थव्यवस्था में नई सन्तुलित आय व माँग Y_{11} पर निर्धारित होती है। माँग को Part-B में दर्शाया गया है।

मौद्रिक नीति में परितर्वन से कौन-से पदार्थों की माँग बदलती है ?

अब प्रश्न उठता है कि मुद्रा की पूर्ति बढ़ने से किस प्रकार के पदार्थोंकी माँग बढ़ती है अर्थात् GNP की संरचना (C + I + G) में C का भाग बढ़ता है या I या G का ? क्योंकि r घटाकर r_1 स्थापित होता है, इसलिए निवेश पदार्थों की माँग जैसे मशीनों आदि की माँग में तुरन्त व द्धि होगी। परन्तु आय भी बढ़कर Y_0 से Y_{11} हो गई है इसलिए प्रेरित उपभोग भी बढ़ेगा।

आय व माँग में व द्धि का आकार क्या होगा यह ISLM मौद्रिक गुणक पर निर्भर करेगा। ISLM मौद्रिक गुणक की शक्ति IS और LM वक्र के ढाल पर निर्भर करती है जिसको निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है।

IS समीकरण को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$Y = C(Y - T(y)) + I(r) + G \quad \ldots\ldots (i)$$

LM समीकरण को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$\frac{M}{P} = L(r) + K(y)$$

समीकरण (i) का Differentiation लेते हुए :

$$dy = b(1 - t)\,dy + i\,dr \text{ (G is constant)} \quad \ldots\ldots (iii)$$

समीकरण (ii) का Differentiation के बाद जहाँ M परिवर्तन है :

$$dm = idr + kdy$$

$$dr = \qquad \text{..... (iv)}$$

समीकरण (iii) में dr का मूल्य $\left(\frac{dm}{l} - \frac{kdy}{l}\right)$ प्रतिस्थापित करते हुए

$$dy = b\,(1-t)\,dy + \frac{idm}{l} - \frac{ikdy}{l}$$

$$dy - b\,(1-t)\,dy + \frac{ikdy}{l} =$$

$$= \frac{idm}{l}$$

$$dy =$$

$$\frac{dy}{dm} = \qquad \text{..... (v)}$$

$\frac{idm}{l} \quad \frac{kdm}{l}$

$dy\left[(1-b)(l-t) + \frac{ik}{l}\right]$

$\frac{\;}{1-b(1-t) \pm \frac{ik}{l}}$

इस प्रकार IS-LM मौद्रिक गुणक सीमान्त निवेश प्रव त्ति (*i*), सट्टा उद्देश्य के लिए सीमान्त प्रव त्ति (*l*), MPC (*b*), Marginal Propensity to tax (*t*) and Marginal Propensity of demand for money for transaction purpose (*k*) पर निर्भर करता है।

समीकरण (v) का अंश ISLM राजकोषीय गुणक के भिन्न है। परन्तु हर दोनों का समान है। मौद्रिक गुणक में अंश इस बात का संकेत करता है कि मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन सट्टा उद्देश्य शेष में परिवर्तन करके ब्याज की दर के माध्यम से निवेश में परिवर्तन लाता है अर्थात् मुद्रा पूर्ति में व द्धि ब्याज में परिवर्तन के द्वारा निवेश को परिवर्तित करती है। ब्याज दर और निवेश कितने बदलते हैं यह ISLM वक्रों के ढाल पर निर्भर करता है।

मौद्रिक नीति का प्रभावीपन
(Effectiveness of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति का प्रभावशाली होना ISLM मौद्रिक गुणक की शक्ति पर निर्भर करता है। इस गुणक की किश्त IS-LM वक्रों के ढाल पर निर्भर करती है, जो किसी समय एक अर्थव्यवस्था में विद्यामान होते हैं। मौद्रिक नीति में परिवर्तन आय व माँग को कितना बदलता है ?

LM वक्र की ढाल और माँग पर प्रभाव (Slope of LM curve and the Effect on Demand)

किसी समय अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति से गुजर रही हो सकती है जहाँ LM वक्र का ढाल शून्य है। यह स्थिति उस समय प्राप्त होती है जब *r* और *y* का स्तर निम्नतम हो। यह मन्दी (Depression) की अवस्था में घटित होती है, इसको Keynesian Range से भी जाना जाता है।

दूसरी स्थिति ऐसी हो सकती है जिसमें LM वक्र का ढाल धनात्मक पाया जाता है। *r* और *y* के स्तर सामान्य होते हैं जिनमें परिवर्तन आते रहते हैं। इसको Intermediate Range से भी जाना जाता है।

तीसरी अवस्था ऐसी हो सकती है जिसमें LM वक्र क्षैतिजीय खड़ा (Vertical) होता है और अत्यधिक ढाल वाला होता है। यह स्थिति उस समय घटित होती है जब अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार उत्पादन हो रहा है। वास्तव में अर्थव्यवस्था व्यापार चक्रों का सामना करती हुई उपरोक्त तीनों ही अवस्थाओं से गुजर सकती है।

तीन अवस्थाओं के अन्तर्गत मौद्रिक नीति में परिवर्तन का माँग व आय पर क्या प्रभाव पड़ता है यह निम्न चित्रों की सहायता से देखा जा सकता है। निम्न चित्र 3 के Part-A में LM वक्र का ढाल शून्य है। Part-B में यह धनात्मक और Part-C में पूर्ण रूप से खड़ा (Vertical) है। तीनों परिस्थितियों में मुद्रा पूर्ति के बराबर की व द्धि की गई है। मुद्रा पूर्ति में व द्धि तुरंत बाज़ार में असन्तुलन उत्पन्न करेगी। दिये हुए समान ढाल वाले IS के साथ मुद्रा पूर्ति में व द्धि अपने लिए स्वयं माँग उत्पन्न करेगी या तो सट्टा उद्देश्य शेष में व द्धि करके या क्रय विक्रय व्यय में व द्धि करके या दोनों में व द्धि इस प्रकार करके ताकि मौद्रिक बाज़ार दोबारा से सन्तुलन प्राप्त कर सके।

चित्र के Part-A में मुदा पूर्ति में की गई व द्धि LM वक्र को विवर्तित (Shift) नहीं कर सकती क्योंकि यह सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग पूर्णतः लोचशील है जो निम्नतम r को बदलने की अनुमति नहीं देती। मुद्रा पूर्ति में की गई सारी व द्धि सट्टा शेष के रूप में संग्रह की जाती है ताकि भविष्य में r बढ़ने पर इसका प्रयोग किया जा सके या बांड की कीमत भविष्य में गिरने पर बांड खरीदे जा सकें। इस अवस्था में r कम से कम होता है और मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन से अप्रभावित रहता है। इस कारण निवेश नहीं बदल सकता और न ही आय व माँग। यहाँ LM वक्र का ढाल शून्य $\left(\frac{dr}{dy}=\frac{k}{l}=0\right)$ है। l is the partial derivative of M with respect to r. L shows the slope of liquidity preference curve. जबकि समीकरण (v) के अंश में i बताता है

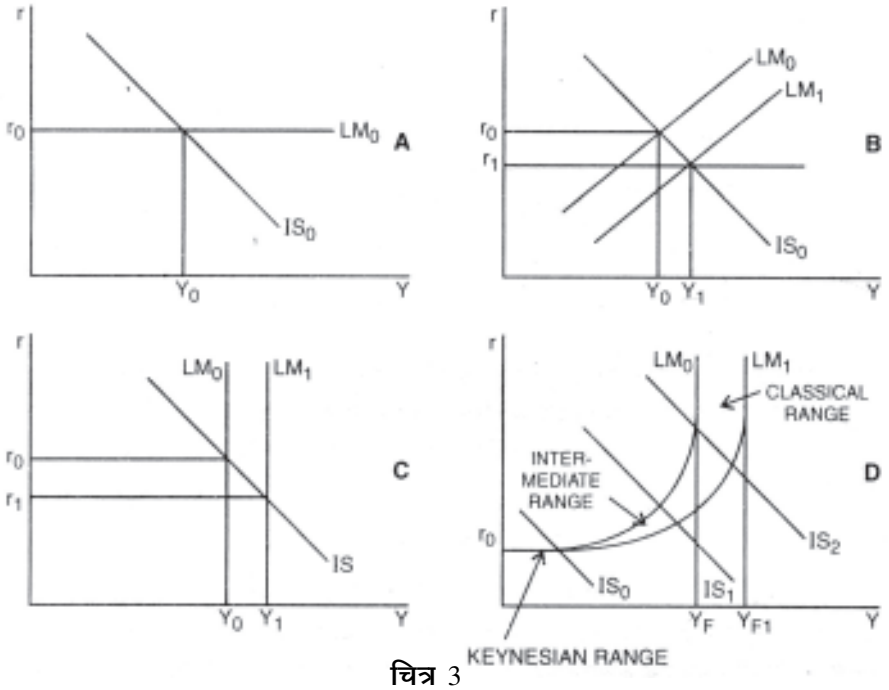

चित्र 3

कि r में परिवर्तन से निवेश में कितना परिवर्तन आता है। l शून्य होने के कारण r नहीं बदलता इसलिए निवेश नहीं बदलता ($i=0$) है। मौद्रिक गुणक की शक्ति शून्य रह जाती है जो आय व माँग बढ़ाने में सक्षम नहीं है, जैसा चित्र 3 के भाग–A में दर्शाया गया है। आय यथावत Y_0 पर ही बना रहती है बेशक मुद्रा में व द्धि की गई है। इस अवस्था में बढ़ी हुई सट्टा उद्देश्य के लिए वर्तमान में बेकार पड़ी रहती है। इस अवस्था को Keynesian Range भी कहा गया है जो Part-D में भी दर्शाई गई है। मौद्रिक नीति यहाँ पूर्ण रूप से अप्रभावी है।

दूसरी अवस्था चित्र के Part-B में दर्शाया गई है जहाँ मुद्रा पूर्ति में व द्धि LM से LM_1 तक सरका देता है। LM_1, IS_0 वक्र को r_1 और y_1 के संयोग पर काटता है, जो मुद्रा और वस्तु बाज़ार में पुनः सन्तुलन स्थापित करता है। यहाँ मुद्रा पूर्ति में व द्धि सट्टा उद्देश्य में प्रवाहित होने पर r को कम कर देती है, क्योंकि तरलता अधिमान वक्र (Liequidity Preference curve) ब्याज

की दर के प्रति लोचशील (Interest elastic) है। ब्याज की दर में कमी होने पर निवेश और आय बढ़ते हैं। आय बढ़ने पर क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार की बढ़ी हुई मुद्रा की पूर्ति का कुछ भाग सट्टा उद्देश्य से निकल कर क्रय-विक्रय के लिए प्रयोग होने लगता है जो r को कुछ बढत्र कर अन्ततः r_1 और y_1 के मध्य सन्तुलन स्थापित करती है। बढ़ी हुई मुद्रा आंशिक रूप से सट्टा उद्देश्य और आंशिक रूप से क्रय विक्रय के लिए इस प्रकार माँग ली जाती है कि मुद्रा बाज़ार में मुद्रा की पूर्ति व माँग की पूर्ति व माँग फिर से समान बन सकें। इसको Intermediate Range भी कहा जाता है जो Part-D में भी दर्शाई गई है।

तीसरी अवस्था उस समय उत्पन्न होती है जब LM वक्र पूर्णतः बेलोच हो जैसा Part-C में दर्शाया गया है। यहाँ ब्याज की दर व आय का स्तर दोनों ही ऊँचे स्तर वाले होते हैं। सामान्यतः यह स्थिति मुद्रा स्फीति के अन्तर्गत प्राप्त होती है। यहाँ ब्याज की दर इतनी ऊंची होती है अर्थात् बांड की कीमतें इतनी कम होती हैं कि सट्टा शेष (speculative balance) में बढ़ी हुई मुद्रा की पूर्ति बिल्कुल संग्रहित नहीं की जाती बल्कि बांड की कीमतें कम होने के कारण बांड के क्रय करने में खर्च कर दी जाती है। बांड की माँग मुद्रा पूर्ति में व द्धि के अनुपात में बढ़ने से बांड की कीमतें उसी अनुपात से बढ़ती हैं अर्थात् ब्याज की दर में कमी आ जाती है जो निवेश को बढ़ा देती है। आय में व द्धि LM वक्र के LM_0 से LM_1 तक सरकने के अनुपात से बढ़ती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ISLM मौद्रिक गुणक की शक्ति यहाँ अधिकतम होगी। क्योंकि समीकरण (v) के अंश में l शूनय होगा ओर i धनात्मक होगा।

तीसरी अवस्था में यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण-रोजगार स्तर पर उत्पादन कर रही हो, जिसकी संभावना यहाँ बहुत अधिक है तब कीमत स्तर उसी अनुपात में बढ़ सकता है जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है। Part-C में y_0 से y_1के वल मौद्रिक रूप से बढ़ी है यह अवस्था परम्परवादी अर्थशास्त्रियों के विचारनुसार है। इसलिए इसे Classical Range कहा जाता है।

मौद्रिक परिवर्तन के अधीन माँग पर IS वक्र की ढाल का प्रभाव (Effect of the slope of IS curve on Demand under monetary change)

IS वक्र की ढाल भी ISLM मौद्रिक गुणक की शक्ति को प्रभावित करता है, क्योंकि गुणक का हर $\dfrac{\dfrac{i}{l}}{1-b(1-t)+\dfrac{ik}{l}}$ वास्तविक

क्षेत्र (Product sector) से सम्बन्धित है जिसका प्रतिनिधित्व IS वक्र करता है। इसलिए IS वक्र का ढाल मौद्रिक गुणक के मूल्य निर्धारा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है जिसको निम्न चित्र 4 द्वारा दर्शाया गया है। चित्र 4 के तीनों भागों A, B और C में दर्शाया गया है कि LM वक्र का ढाल सभी के बराबर है और तीनों अवस्थाओं में मुद्रा की मात्रा में समान व द्धि की गई है। जिस कारण LM वक्र का नीचे दाईं ओर सरकना भी बराबर है। परन्तु IS वक्र का ढाल तीनों के अलग-अलग दर्शाया गया है जिसका प्रभाव r और y तथा माँग पर देखा जा सकता है।

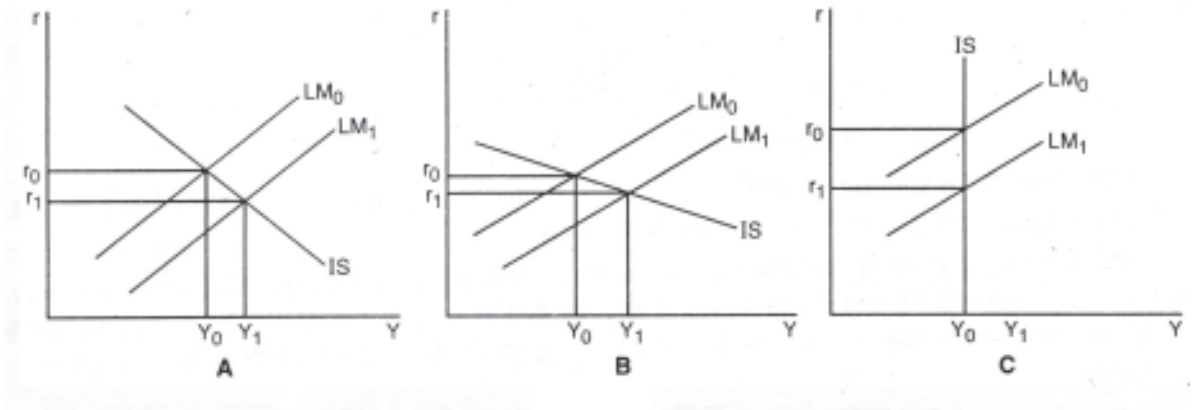

चित्र 4

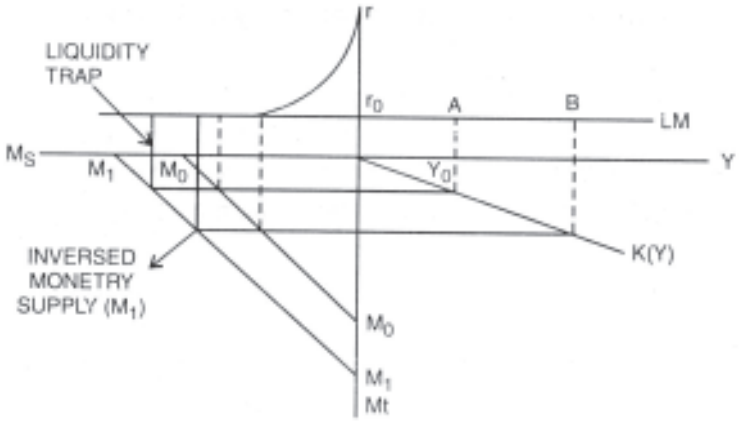

चित्र 5

मुद्रा की मात्रा में व द्धि करने से LM वक्र तीनों भागों Part-A, B और C के बराबर नीचे दाईं ओर सरकता है क्योंकि सभी में मुद्रा की मात्रा में समान व द्धि की गई है। इतना ही नहीं, सभी में LM वक्र की ढाल व लोचशीलता भी समान है। परन्तु Part-A में मुद्रा की मात्रा में व द्धि आय को कम मात्रा से बढ़ाती है अर्थात् Y_0 से Y_1 तक।

क्योंकि IS वक्र यहाँ कम लोचशील है। Part-B में आय अधिक मात्रा में बढ़ती है अर्थात् Y_0 से Y_1 तक और r में गिरावट बहुत कम अर्थात् r_0 और r_1 तक क्योंकि IS वक्र अधिक लोचशील है। Part-C में आय यथावत् रहती है। ऐसा इस कारण से है क्योंकि Part-A में IS वक्र का ढाल अधिक है अर्थात् निवेश फलन कम लोचशील (Less sensitive to the changes in interest rate) है। इसलिए ब्याज की दर काफी गिरने पर भी निवेश कम बढ़ता है। इसलिए आय (Y) कम बढ़ पाती है।

परन्तु Part-B में निवेश फलन अधिक लोचशील है। इसलिए IS वक्र का ढाल कम है। मुद्रा की पूर्ति में व द्धि होने से r थोड़ी गिरने पर भी निवेश बहुत अधिक बढ़ता है। इसलिए आय अधिक मात्रा में बढ़ती है अर्थात् y_0 से Y_1 तक।

Part-C दर्शाता है कि मुद्रा की व द्धि से आय में कोई परिवर्तन नहीं आता, केवल r बढ़ता है क्योंकि यहाँ IS वक्र पूर्णतः खड़े ढाल (vertical slope) वाला है जिसका कारण है कि ब्याज की दर में परिवर्तन के प्रति निवेश पूर्णतः उदासीन (Investment is insensitive to the changes in interest rate) है।

इसलिए मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन Y पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तरलता जाल
(Liquidity Trap)

जब से केन्ज़ ने तरलता जाल का प्रतिपादन किया तभी से यह अर्थशास्त्रियों के ध्यान को आकृष्ट करता रहा है। मौद्रिक नीति का विश्लेषण जाल की अवहेलना नहीं की जा सकती। यह एक विषयम स्थिति है जिसमें निम्नतम ब्याज दर (r) पर अपनी सट्टा उद्देश्य के लिए रखी हुई सारी मुद्रा की नकदी में रखना चाहती है। r के निम्नतम होने पर बांड की कीमतें अधिकतम होती हैं क्योंकि दोनों के मध्य विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। इसलिए जनता अपने बांडों को बेच डालती है और अधिकाधिक नकदी की माँग करती है अर्थात् नकदी की माँग पूर्णतः लोचशील होती है। सट्टेबाज बांडों की कीमतें गिरने की इन्तजार करते रहते हैं और जब कभी ये कीमतें गिरती हैं अर्थात् r बढ़ जाता है तब नकदी से बांड खरीदे जाते हैं।

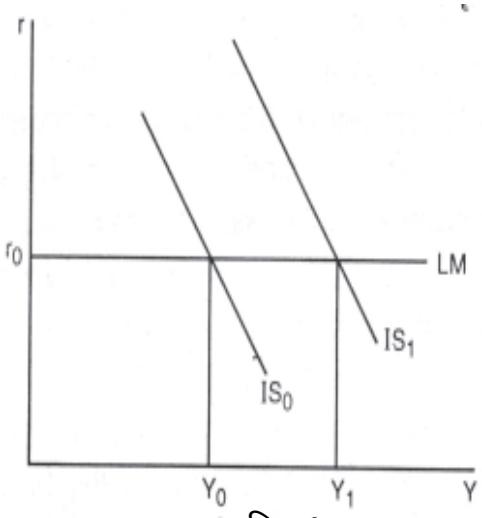

चित्र 6

चित्र

तरलता जाल की अवस्था में जहाँ तरलता अधिमान वक्र (Liquidity Preference curve) पूर्णतः लोचशील होता है वहाँ LM वक्र क्षैतिजीय (Horizontal) हो जाता है। जो चित्र 5 द्वारा दर्शाया गया है।

मुद्रा की पूर्ति M_0 से बढ़ कर M_1 होने पर भी LM वक्र OX-अक्ष के समानान्तर (Horizontal) बना रहता है। (Four quadrant चित्र 5 में हम Y_0 से शुरू करते हैं तथा देखते हैं कि Y_0 आय के साथ किस ब्याज दर (r) पर मुद्रा बाज़ार सन्तुलन प्राप्त करता है। तरलता जाल होने पर r अपने निम्नतम बिन्दु r_0 पर बना रहता है। जब मुद्रा पूर्ति बढ़ कर M_1 होती है तो इसका ब्याज की दर r_0 पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

जब अर्थव्यवस्था तरलता जाल में फंसी हो उस परिस्थिति में मुद्रा की पूर्ति में व द्धि LM वक्र को दाईं और नीचे सरका सकती। क्योंकि ब्याज की दर r_0 निम्नतम बनी रहती है तथा इससे नीचे नहीं आती है। बढ़ी हुई सारी मुद्रा सट्टा उद्देश्य में बेकार पड़ी रहती है। जैसे चित्र में मुद्रा पूर्ति M^{s1} से M^{s1} पर भी ब्याज की दर r_0 ही बनी रहती है। r_0 शून्य के नजदीक होने के कारण लोग मुद्रा को बांड में लगाने की बजाय नकदी में रखना पसन्द करते हैं।

LM वक्र के क्षैतिजीय होने पर मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन r को परिवर्तित कर सकता। इसलिए निवेश भी परिवर्तित नहीं होता है अर्थात् आय भी परिवर्तित नहीं हो सकती। यहाँ यह मौद्रिक नीति पूर्णतः अप्रभावी है। इसलिए अर्थव्यवस्था तरलता जाल में फंसी कहलाती है।

इस अवस्था में केवल राजकोषीय नीति ही प्रभावशाली होती है। विस्तारवादी राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी व्यय में व द्धि करके आय को साधारण गुणक (Simple Keynesian Multiplier) द्वारा बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि r के न बढ़ पाने से निवेश पर निकास प्रभाव (crowding out Effect of private investment) शून्य होता है और आय पूर्ण गुणक (full multiplier) से बढ़ती है जैसा निम्न चित्र 6 में दर्शाया गया है।

सार्वजनिक व्यय (G) में व द्धि करके IS वक्र को IS_0 से IS_1 तक चित्र में सरकाया गया है, जिस कारण सन्तुलित आय Y_0 से बढ़ कर Y_1 हो जाती है। यह आय में व द्धि साधारण केन्ज़ीयन गुणक (Simple Keynesian multiplier) द्वारा होती है। (Crowding out of private investment is nil here the to sticky of r to r_0) आय बढ़ने से क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग बढ़ती है जिसका सट्टा उद्देश्य में पड़ी बेकार नकदी (Idle balances in speculative motive) से सन्तुष्ट किया जाता है। इसलिए आय में व द्धि :

$$\Delta y = \frac{l}{1-b(1-t)+\frac{ik}{l}} \cdot \Delta G \quad i = \text{Zero}$$

सीमाएं (Limitations)

व्यवहार में कभी तरलता अधिमान किसी अर्थव्यवस्था में विद्यमान रहा हो ऐसा देखने में नहीं आया। केन्ज़ भी ऐसी अवस्था से अनभिज्ञ था। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि r शून्य तक गिर सकता है।

पारेषण प्रक्रिया और निवेशों के समुच्चय में असन्तुलन (Transmission Mechanism and Portfolio Disequilibrium)

पारेषण या संचरण प्रक्रिया एक ऐसा यन्त्र है जिसके द्वारा मौद्रिक नीति कुल माँग व आय में परिवर्तन लाती है। मौद्रिक नीति में परिवर्तन करने से पारेषण प्रक्रिया शुरू हो जाती ही जो अन्ततः कुल माँग को प्रभावित करती है। कैसे ? कुल माँग तभी परिवर्तित हो सकती है जब व्यय करने वाली इकाइयों (उपभोक्ता, निवेशकर्त्ता और सरकार) की क्रय शक्ति मौद्रिक नीति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप बदल जाती है। मौद्रिक नीति मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन करके कैसे व्यंग्यशील इकाइयों की क्रय शक्ति में परिवर्तन करती है और कैसे माँग में परिवर्तन होता है।

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन से लोगों के निवेश सम्बन्धी समुच्चय में असन्तुलन घटित होता है। लोगों ने अपने धन को विभिन्न साधनों में इस प्रकार निवेश (Portfolio) वितरीत किया होता है ताकि उनको अधिकतम लाभ व सन्तुष्टि प्राप्त हो। इसका कुछ

भाग नकदी रूप में भी रखा होता है। जब कभी मुद्रा पूर्ति में व द्धि की जाती है तो लोगों की नकदी दूसरे साधनों की अपेक्षा बढ़ जाती है। इसी को निवेश सम्बन्धी में असन्तुलन कहा जाता है। यह निवेश समुच्चय स्वयं सन्तुलन की ओर अग्रसित होता है ताकि अधिकतम लाभ व सन्तुष्टि प्राप्त की जा सके।

मुद्रा पूर्ति बढ़ने से लोगों के पास अतिरिक्त व्यय या क्रय शक्ति बढ़ गई। नकदी का अनुपात अन्य साधनों जैसे बांड, शेयर आदि से बढ़ जाती है। नकदी तथा बांडों की आदर्श स्थिति प्राप्त करने के लिए बढ़ी हुई नकदी बांड आदि के क्रय करने पर व्यय कर दी जायेगी। व्यय विभिन्न साधनों पर इस प्रकार से किया जाएगा ताकि आदर्श स्थिति प्राप्त की जा सके। इस प्रक्रिया से बांड आदि की कीमत बढ़ेगी अर्थात् ब्याज दर गिर जायेगी। मुद्रा पूति में व द्धि से r गिरने को पारेषण प्रक्रिया अवस्था माना है।

पारेषण प्रक्रिया का दूसरा चरण उस समय शुरू होगा जब ब्याज दर गिरने पर लोग अधिक उधार की माँग करते हैं जो उनकी क्रय शक्ति को बढ़ा देता है। ब्याज दर गिरने पर निवेश बढ़ता है जो गुणक के द्वारा अर्थव्यवस्था में कुल आय व माँग को बढ़ा देता है। पारेषण प्रक्रिया के अन्तर्गत उपरोक्त दोनों अवस्थाओं का घटित होना अनिवार्य है। यह प्रक्रिया मुद्रा पूर्ति में परिवर्तनों के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों सम्बन्धी विश्लेषणों का हिस्सा है। ये विभिन्न विश्लेषण उपरोक्त दोनो चरणों को अलग-अलग व्यक्त करते हैं। कुछ विश्लेषणों में ब्याज दर एक न रख कर कई दरें रखी जाती है क्योंकि ये बांडों की परिपक्वता समय (Maturity period) पर निर्भर करता है। जिन पर मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन का प्रभाव उनकी माँग के अनुसार अलग-अलग पड़ता है। फिर भी दोनों अवस्थाओं को सभी विश्लेषणों में विद्यमान पाया जाता है। मुद्रा पूर्ति परिवर्तन का माँग पर कितना प्रभाव पड़ता है। पारेषण प्रक्रिया का गहराई से अध्ययन करने से इस बात का भी ज्ञान हो जाता है कि हर अवस्था में मुद्रा परिवर्तन का कितना प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतः यदि मुद्रा के लिए माँग वक्र अधिक ब्याज लोचशील है तो मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन ब्याज दर का बहुत कम बदलेगा। परिणामस्वरूप, निवेश, आय व माँग में परिवर्तन भी अपेक्षाकृत कम होगा। ऐसी परिस्थिति में मौद्रिक नीति कम सफल सिद्ध होगी। इसी प्रकार यदि निवेश वक्र कम ब्याज-लोचशील है तो ब्याज दर में परिवर्तन निवेश में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन लायेगा जो आय व माँग को भी कम परिवर्तित करेगा अर्थात् मौद्रिक नीति कम प्रभावी सिद्ध होगी। परन्तु इसके विपरीत यदि मुद्रा का माँग वक्र कम लोचशील है और निवेश वक्र अधिक लोचशील है तो मौद्रिक नीति बहुत अधिक सफल सिद्ध होगी।

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन का वास्तविक शेष प्रभाव (Real Balance Effect) भी कुल माँग को प्रभावित कर सकता है। विस्तारवादी नीति के अन्तर्गत जब सरकार खुले बाज़ार में प्रतिभूतियाँ क्रय करती है तो लोगों और बैंकों में नकद कोष बढ़ जाते हैं। कीमतों के स्थिर रहते हुए लोगों के धन का वास्तविक शेष में व द्धि हो जाती है जिस कारण उनकी उपभोग सम्बन्धी माँग प्रत्यक्ष रूप से बढ़ती है। इसे ही वास्तविक शेष प्रभाव (Real Balance effect) कहा गया है। इस प्रकार पारेषण प्रक्रिया के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की आय व माँग में व द्धि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से होती है। परन्तु ऐसा देखने में आया है कि वास्तविक शेष प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वास्तव में वास्तविक शेषों में परिवर्तन लोगों के धन को देखते हुए काफी कम मात्रा में होते हैं।

REVIEW QUESTIONS

1. Show the effects of change in monetary policy on aggregate demand. Explain the demand for what kinds of goods changes as a result of change in monetary policy.
2. Explain the factors which determine the slope of the LM curve.
3. Explain the factors which shift the LM curve.
4. Explain the effectiveness of monetary policy in determing the income and interest rate in any economy.
5. Explain the role of monetary policy changed in case of liquidity trap.
6. Explain the Transmission Mechanism and Portfolio Disequilibrium.

SELECTED READINGS

Richard T. Froyen Macroeconomics–Theories and Policies, McMillan Publishing Company, New York, London.

William H. Branson Macroeconomic Theory and Policy, Harper & Row Publishers, Singapore, London.

अध्याय-7
विस्त त मॉडल : परिवर्तनशील कीमत स्तर
(The Extended Model : Variable Price Level)

(Derivation of Aggregate Demand curve and Determination of Equilibrium price and output Level

इससे पूर्व तीन अध्यायों में कीमत तथा मज़दरी-स्तर को स्थिर मानते हुए आय निर्धारण का अध्ययन किया गया है। इन तीनों अध्यायों में कुल पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) को पूर्ण रोज़गार स्तर तक पूर्णतः लोचशील माना गया है अर्थात् स्थिर कीमत स्तर पर उत्पादन में किसी हद तक व द्धि की जा सकती है। इन अध्यायों में पूर्णतः लोचशील पूर्ति वक्र तथा स्थिर कीमत स्तर की मान्यताएं इसलिए नहीं की गईं कि वे सही हैं, बल्कि इसलिए की गई हैं ताकि केन्ज़ीयन व्यवस्था में आय निर्धारण के लिए कुल माँग के महत्त्व को दर्शाया जा सके। यदि इन मान्यताओं का त्याग कर दिया जाये तो आय-निर्धारण का विश्लेषण एक ऐसे मॉडल के अन्तर्गत किया जा सकता है जिसमें कीमत-स्तर परिवर्तनशील होगा। इन पिछले अध्यायों में कुल माँग वक्र को पूर्णतः कीमत बेलोच माना गया है, अर्थात् विभिन्न कीमत स्तरों पर कुल माँग स्थिर रहती है। यदि इन मान्यता का त्याग कर दिया जाये तो हम एक ऐसे कुल माँग वक्र को प्राप्त करते हैं जो कीमत स्तर से विपरीत सम्बन्ध रखता है या जो ऊपर से नीचे दाईं ओर झुका हुआ होता है या मूल्य सापेक्ष होता है। इसका अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में निम्न प्रकार से किया गया है।

इस अध्याय के प्रथम भाग में नीचे झुकता हुआ कुल माँग वक्र या कीमत लोच माँग वक्र निकालने का प्रयास किया गया है। हम जानते हैं कि नीचे झुकता हुआ कुल माँग वक्र ऊपर उठते हुए कुल पूर्ति वक्र को काट कर सन्तुलित उत्पादन तथा सन्तुलित कीमत स्तर का निर्धारण करता है। केन्ज़ की मान्यता थी कि नकद मज़दूरी दर नीचे की ओर लचीली नहीं होती है। परन्तु फिर भी केन्ज़ के निष्कर्ष के अनुसार यदि नकद मज़दूरी दर नीचे की ओर लचीली होती है तो भी अपूर्ण-रोज़गार स्तर पर सन्तुलन हो सकता है। इस अध्याय के अन्तिम भाग में दर्शाया गया है कि केन्ज़ीयन तर्क में परम्परावादी मॉडल के विचारों का समावेश करके अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार स्तर प्राप्त किया जा सकता है। इसके बाद यह जाँच की गई है कि कैसे विस्तारवादी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ अपना कर उत्पादन के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

कुल पूर्ति वक्र
(Aggregate Supply Curve)

इससे पूर्व स्थिर कीमत मॉडलों में यह माना गया था कि आय के पूर्ण रोज़गार स्तर तक कुल पूर्ति वक्र पूर्णतः लोचशील होता है। मौद्रिक या राजकोषीय नीति में परिवर्तन करके IS तथा LM वक्रों के माध्यम से कुल माँग वक्र को दाईं ओर सरकाया जाता है जो पूर्ण लोचशील पूर्ति वक्र के साथ मिल कर आय के सन्तुलित स्तर को स्थिर कीमत स्तर रखते हुए पूर्ण रोज़गार तक बढ़ा देता है। यद्यपि केन्ज़ीयन अर्थशास्त्र में इस प्रकार के पूर्ति वक्र को सत्य माना गया है, परन्तु वस्तुतः यह विश्लेषण को सुगम बनाने के लिए ही अपनाया गया है। व्यवहार में अर्थशास्त्रियों ने देखा कि बेरोज़गारी रहते हुए जब कभी माँग में व द्धि के कारण कुल पूर्ति बढ़ती है तो घटते सीमानत प्रतिफल के लागू होने के कारणा कीमत स्तर भी अवश्य बढ़ता है। इसलिए कुल पूर्ति वक्र (As curve) मन्दी के उत्पादन स्तर तथा पूर्ण रोज़गार वाले बेलोच उत्पादन स्तर के बीच ऊपर दाईं ओर उठता हुआ होता है। स्थिर मज़दूरी दर (Fixed Wage Rate) तथा श्रम के घटते सीमान्त प्रतिफल की मान्यताओं के आधार पर कुल पूर्ति वक्र ऊर उठता हुआ हो सकता है।

ऊपर उठता पूर्ति वक्र (Upward Sloping Supply Curve)

ऊपर उठते पूर्ति वक्र को निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है : चित्र 1 में कुल उत्पादन फलन भाग A द्वारा दर्शाया गया है। अर्थव्यवस्था का यह कुल उत्पादन फलन समान प्रतिफल की अवस्था के बाद घटते प्रतिफल (Diminishing Returns) की अवस्था को दर्शाता है। जब कोई एक फर्म या उद्योग उत्पादन को अधिक करता जाता है तो इनको अल्पकालीन रुकावटों या प्रतिबन्ध जेसे स्थिर प्लाण्ट तथा साज सज्जा आदि का सामना करना पड़ता है। ऐसी ही स्थिति का सारी अर्थव्यवस्था भी सामना करती है, जो घटते प्रतिफल को जन्म देती है। भाग–B में श्रम की कुल माँग दर्शाया गया है। यहाँ श्रमिकों की माँग उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादन के समान होती है जो घटती जाती है यह माँग वास्तविक मज़दूरी $\frac{W}{P}$ से विपरीत सम्बन्ध रखती है, क्योंकि उत्पादक अधिकतम लाभ कमाने के लिए को श्रमिक के सीमानत भौतिक उत्पादन (MPP) के बराबर करते हैं :

$$= MPP \text{ or } W = P \times MPP \text{ or } P = \qquad MC = P$$

यहाँ MC सीमांत लागत के समान है। यह उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई की मज़दूरी लागत है।

$$\text{or} \qquad MC = \qquad \text{..... (1)}$$

समीकरण (1) से स्पष्ट है कि नकद मज़दूरी (W) स्थिर रहते हुए ज्यों MPP घटते सीमान्त प्रतिफल के कारण गिरती जाती है तो उत्पादन बढ़ाने पर सीमान्त लागत (MC) बढ़ती जायेगी। चाहे कुछ भी हो इस अवस्था में घटता सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र (MPP curve) ही श्रमिकों का माँग वक्र होगा। इसके विपरीत श्रमिकों का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता हुआ होता है क्योंकि अधिक वास्तविक मज़दूरी दर पर अधिक श्रमिक कार्य पर आते हैं।

भाग (C) में स्थिर नकद मज़दूरी दर W द्वारा दर्शाई गई है। इसके X-अक्ष पर तथा Y-अक्ष पर कीमत स्तर (P) मापा गया है। चित्र के भाग (D) में कुल पूर्ति वक्र (AS) की आकृति की रचना की गई है।

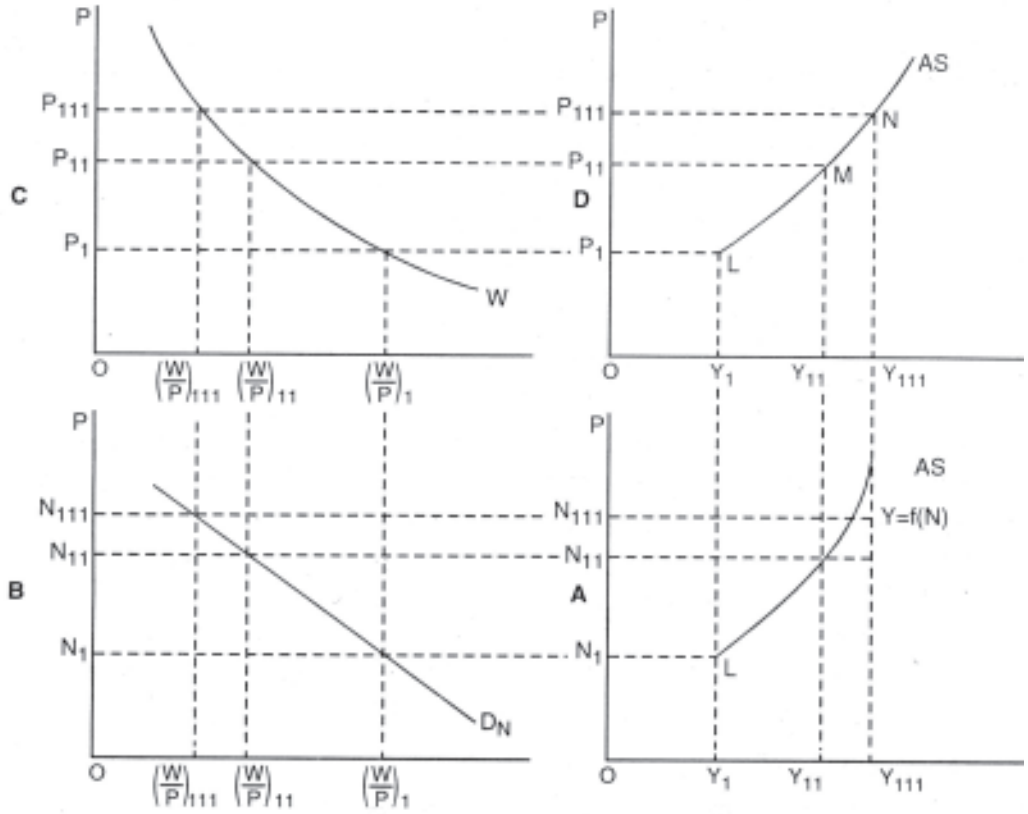

चित्र 1

भाग A में Y_1 उत्पादन का स्तर उत्पादित करने के लिए N_1 श्रमिकों की मात्रा रोज़गार पर लगानी होती है जो वास्तविक मज़दूरी दर पर सम्भव है। $\left(\frac{W}{P}\right)_1$ वास्तविक मज़दूरी दर दी हुई नकद मज़दूरी (W) पर केवल P_1कीमत स्तर पर सम्भव है। अतः P_1कीमत स्तर पर ही Y_1 उत्पादन का स्तर उत्पादित किया जा सकता है। इसी प्रकार Y_{11} उत्पादन का स्तर N_{11} रोज़गार, $\left(\frac{W}{P}\right)_{11}$ वास्तविक मज़दूरी तथा P_{11} कीमत स्तर पर सम्भव है। यदि Y_{111} उत्पादन चक्र स्तर उत्पादित करना है। तो इन्हीं कारणों से P_{111}कीमत स्तर पर सम्भव है। चित्र 1 के भाग (D) में L, M तथा N बिन्दुओं को मिलाने से AS पूर्ति वक्र प्रापत होता है जो ऊपर की ओर उठता हुआ है। यदि Y_{111} पूर्ण-रोज़गार उत्पादन स्तर है तो AS वक्र पूर्णतः बेलोच (Vertical) होगा।

मज़दूरी स्थिरता के स्रोत : केन्ज़ीयन मज़दूरी-सिद्धान्त
(Sources of Wage Rigidity : Keyensian Theory of Wages)

केन्ज़ का मज़दूरी सिद्धात व्यक्त करता है कि श्रम बाज़ार में सन्तुलन स्थापित करने के लिए मज़दूरी दर नीचे की ओर लचीली नहीं होती है। परन्तु परम्परावादी सिद्धान्त के अनुसार श्रम की माँग व पूर्ति दोनों वास्तविक मज़दूरी दर के फलन हैं या इस पर निर्भर करते हैं तथा श्रम का माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र जहाँ एक दूसरे को काट लेते हैं वहीं पर सन्तुलित वास्तविक मज़दूरी दर तथा रोज़गार का स्तर निर्धारित होता है, अर्थात् वास्तविक मज़दूरी दर लोचशील होती है। परन्तु केन्ज़ के मतानुसार मज़दूरी का लेन-देन (Bargains) नकद मज़दूरी के रूप में निर्धारित होता है न कि वास्तविक मज़दूरी के रूप में। इस सम्बन्ध में परम्परावादी मॉडल की अति-महत्वपूर्ण धारणा यह थी कि नकद मज़दूरी पूर्णतः लोचशील होती है तथा इसमें उतार-चढ़ाव के द्वारा वास्तविक मज़दूरी में परिवर्तन होता जो श्रम की माँग व पूर्ति को बराबर कर देता है। परन्तु केन्ज़ के अनुसार नकद मज़दूरी में व द्धि तो की जा सकती है परन्तु इसमें कटौती करना सम्भव नहीं है। इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं :

$\left(\frac{W}{P}\right)_1$

1. केन्ज़ ने तर्क दिया है कि श्रमिक अपनी श्रमिक अपनी निरपेक्ष मज़दूरी (Absolute wage) तथा सापेक्ष मज़दूरी (Relative wage) दोनों के प्रति सचेत रहते हैं तथा इनमें किसी भी कटौती का विरोध करते हैं। किसी भी श्रम बाज़ार में विभिन्न कुशलता व प्रशिक्षण वाले श्रमिकों के बीच या फर्मों तथा उद्योगों के बीच मज़दूरी विभेद (Wage Differential) की एक संरचना या एक समूह (Set) होता है। श्रमिक इस मज़दूरी संरचना (wage structure) को बनाये रखना चाहते हैं। श्रमिकों तथा प्रबन्ध के बीच अधिकतर सौदा-बाजों (Bargain) इसी मज़दूरी संरचना को प्राप्त करने का होता है मज़दूरी संरचना में जो मज़दूरी विभेद होता है उसको केवल सापेक्ष नकद मज़दूरी के द्वारा ही मापा जा सकता है क्योंकि कीमत स्तर में परिवर्तन तो सभी की मज़दूरी को समान रूप से परिवर्तित करता है।

केन्ज़ का विश्वास था कि नकद मज़दूरी में कटौती का विरोध करने का एक कारण तो यह है कि श्रमिक इसको सापेक्ष मज़दूरी की संरचना में अन्यायपूर्ण परिवर्तन मानते हैं। इस कारण श्रमिकों की माँग में गिरावट के अन्तर्गत भी वे नकद मज़दूरी कटौती का विरोध करते हैं। जब किसी एक फर्म या उद्योग में नकद मज़दूरी कटौती की जाती है तो वे इसको अपनी सापेक्ष मज़दूरी में कमी या प्रतिकूल परिवर्तन मानते हैं। क्योंकि उनको यह विश्वास नहीं होता है कि अन्य फर्मों व उद्योगों में भी नकद मज़दूरी में कटौती की जायेगी और उनके श्रमिक इसको स्वीकार कर लेंगे। परन्तु कीमत-स्तर में व द्धि के उपरान्त उनकी वास्तविक मज़दूरी में होने वाली कमी को वे मज़दूरी संरचना में परिवर्तन नहीं समझते हैं। इस कारण केन्ज़ का विश्वास था कि कीमत स्तर में व द्धि के

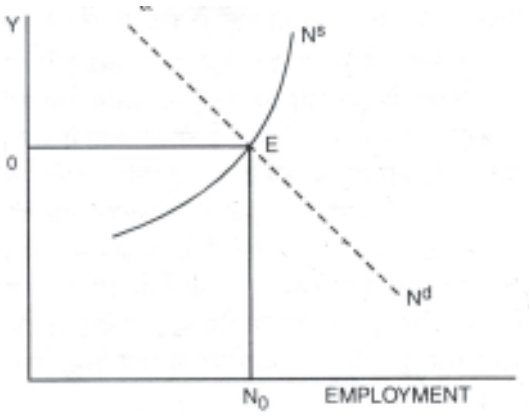

चित्र 2

कारण जो वास्तविक मज़दूरी में गिरावट आती है वे इसका विरोध नहीं कटौती के कारण होती है तो वे इसका डट कर विरोध ा करते हैं तथा इसको सहन नहीं करते हैं।

2. स्थिर नकद मज़दूरी (fixed money wage)स्तर को निर्धारित करने वाला दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व मज़दूरी सम्बन्धी ठेका (Labour contract) है जो प्रायः दो या तीन वर्षों के लिए किया जाता है। मज़दूरी ठेके के समय के दौरान नकद मज़दूरी पर अन्य तत्त्वों जैसे श्रमिकों की माँग में कमी होना आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। नकद मज़दूरी में कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन के अनुसार परिवर्तन का प्रावधान रखा जाता है। अन्यथा नकद मज़दूरी ठेके के अनुसार स्थिर ही रहती है।

जब एक बार मज़दूरी ठेका स्वीकार हो जाता है तो यह निर्णय कि कितने श्रमिकों को रोज़गार पर लगाया जायेगा पूर्णरूप से फैक्टरी मालिकों पर निर्भर करता है। ऐसी परिस्थिति में परम्परावादी श्रम पूर्ति वक्र रोज़गार स्तर के निर्धारण में कोई महत्त्व नहीं रखता है। क्योंकि फर्में स्थिर मज़दूरी दर पर केवल इतने श्रमिकों को रोज़गार पर लगायेंगी जिनसे उनको अधिकत्तम लाभ प्राप्त होता है जैसा कि चित्र 11.2 में दर्शाया गया है।

चित्र 2 में $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ स्थिर मज़दूरी दर पर श्रम बाज़ार में E बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित होता है तथा श्रमिकों की N_0 मात्रा रोज़गार पर लगाई जायेगी। N^d तथा N^s श्रमिकों का क्रमशः माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र है।

3. स्थिर नकद मज़दूरी का तीसरा कारण यह है कि जिन श्रम बाज़ारों में मज़दूरी ठेके (Labour contracts) स्पष्ट रूप से नहीं किये जाते वहाँ भी आन्तरिक या निहित समझ यही होती है कि नकद मज़दूरी स्थिर रहेगी। फर्में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए श्रमिकों की माँग में कमी होने के दौरान भी नकद मज़दूरी में कटौती नहीं करती हैं। वे श्रमिकों में अपने प्रति सद्भावना बनाये रखने के लिए भी ऐसा करती हैं जिससे उनको भविष्य में अधिक लाभ हो सकता है। श्रमिकों की माँग में कमी की अवस्था में फर्में नकद मज़दूरी में कमी करने की अपेक्षा सप्ताह में कार्य के दिनों को कम कर सकती हैं।

केन्ज़ के समर्थकों (Keynesians) का विश्वास है कि नकद मज़दूरी सम्बन्धी समझौते (Contractual Arrangement) आधुनिक श्रम बाज़ारों की कार्य प्रणाली को समझने के लिए आधारभूत है। श्रम बाज़ारों का ठेका समझौता मत (Contractual view) परम्परावादियों के मज़दूरी फण्ड मत (Auction market view) से बिल्कुल विपरीत है। जैसा कि पीगु के अनुसार नकद मज़दूरी, मज़दूरी फण्ड (Wage Fund) पर निर्भर करती है $\left(W = \frac{F}{N}\right)$।

Arthur Okun expressed :

"In the Keynesian view wages are not set to clear markets in the short run, but rather are strongly conditioned by longer term consideration involving..... employer worker relation. These factors insulate wages ..... to a significant degree from the impact of shifts in demand so that the adjustment must be made in employment and output.

कुल माँग वक्र का निकालना तथा सन्तुलित कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण
(Derivation of the Aggregate Demand Curve and Determination of the Equilibrium Price and Output)

कुल माँग वक्र दो प्रकार की आकृति वाला हो सकता है : पूर्णतः कीमत बेलोच (Perfectly Price Inelastic) या कुछ कीमत लोचशील (Less than Perfectly Price Inelastic)। पूर्णतः कीमत बेलोच माँग वक्र की कल्पना की है। परन्तु पूर्णतः बेलोच माँग वक्र तभी प्राप्त हो सकता है जब कीमत स्तर में परिवर्तन के साथ IS तथा LM वक्रों में कोई परिवर्तन न होता हो। इसकी जाँच निम्न प्रकार की जा सकती है :

वास्तव में पूर्णतः लोचशील पूर्ति वक्र की तरह पूर्णतः बेलोच माँग वक्र का केन्ज़ मॉडल में मानना एक सरलीकरण (simplification) ही है। व्यवहार में कुल माँग वक्र का पूर्णतः बेलोच होना कठिन है। यदि कीमत स्तर में कोई व द्धि या कमी होने के कारण कुल व्यय में उसी अनुपात से व द्धि या कमी होती है तो कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी अवस्था में वस्तुओं की समान मात्रा माँगी जाती है चाहे कीमत स्तर बढ़े या कम हो। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब कीमत स्तर

में परिवर्तन के साथ समाज की कुल आय भी समान रूप से उसी दिशा में परिवर्तित होती है। उदाहरणतः यदि कीमत स्तर दोगुणा हो जाता है तो वस्तुएं दोगुणा महंगी हो जायेगी, परन्तु यदि समाज की आय भी दोगुणा हो जाती है तो उसकी कुल माँग पहले जितनी या समान बनी रहेगी। यह व्याख्या अपने आप में सेही है, परन्तु इसमें कुछ ऐसी बातों को छोड़ दियाा गया है जो कीमत स्तर में परिवर्तन होने से कुल व्यय को प्रभावित करती है। हम देखेंगे कि कुछ बातें ऐसी हैं जो कीमत स्तर में परिवर्तन होने पर IS तथा LM दोनों वक्रों को सरका देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में IS तथा LM वक्रों के द्वारा निकाला गया कुल माँग वक्र दर्शायेगा कि कम कीमत स्तर पर अधिक वस्तुओं की माँग की जाती है। अर्थात् कुल माँग वक्र कीमत लोचशील होगा।

केन्ज़ मॉडल में कुल माँग (AD) वक्र की कीमत बेलोच होने की धारणा इसको सरल बनाने की प्रक्रिया है। जैसे परम्परावादी मॉडल में कुल माँग वक्र का नीचे झुकना Rectangular hyperbola के रूप में माना गया है, जिस पर माँग की कीमत लोच इकाई के समान (Unitary elastic) होती है, यह भी इस मॉडल को सरल बनाने के लिए किया गया है। इसमें AD वक्र सरल मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of mioney) जिसको $PY = MV$ समीकरण द्वारा प्रकट किया जाता है, पर आसध ाारित है। इसमें कुल व्यय मुद्रा की चलन गति (Velocity of inculation) स्थिर रहते हुए मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करता है। जब तक मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन नहीं होता तब तक कुल व्यय अपरिवर्तित रहता है। जैसे; यदि $M = 500$ रू. तथा $V = 4$ है तथा स्थिर रहता है तो किसी समय कुल मुद्रा व्यय 2000 रू. होगा जो $PY = 2000$ के समान होगा। माँग की लोचशीलता इकाई के समान दर्शाने के लिए कुछ माँग के बिन्दु दर्शाये जा सकते हैं। उदाहरणतः यदि $Y = 100$ तथा $P = 20$ है तो कुल व्यय या कुल माँग 2000 रू. होगी, परन्तु यदि कीमत गिर कर 10रू. हो जाती है तो भी व्यय 2000 रू. के समान होगा तथ कुल वस्तुएं की माँग (Y) 200 के बराबर होगी। अर्थात् कीमत गिर कर आधी होने पर वस्तुओं की कुल माँग बढ़ कर दोगुणी हो गई है, यद्यपि कुल व्यय 2000 रू. ही बना रहा है। अब यदि कीमत और गिर कर 5 रू. रह जाती है तो वस्तुओं की माँग उसी अनुपात से बढ़ कर 400 हो जाती है। अर्थात् परम्परावादी माँग की लोचशीलता इकाई के समान (Unitary elastic) होती है।

अब हम जांच करेंगे कि नीचे दाईं ओर गिरते (झुके) हुए AD curve को IS तथा LM वक्रों की सहायता से कैसे निकाला जा सकता है। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के आधार पर खींचा गया LM वक्र तथा इस वक्र की सहायता से निकाला गया AD वक्र उत्पादन की एक निश्चित सीमा में ही इकाई के समान लोचशील होता है। परन्त मुद्रा की माँग के केन्ज़ीयन सिद्धान्त के आधार पर LM वक्र तथा IS वक्र की सहायता से प्राप्त नीचे गिरते हुए AD वक्र पर माँग की लोचशीलता अलग-अलग कीमत स्तर पर भिन्न या अलग-अलग होगी।

IS-LM प्रणाली में LM वक्र Y तथा r के विभिन्न ऐसे संयोग प्रकट करता है जिन पर मुद्रा की वास्तविक माँग M'_d तथा मुद्रा की वास्तविक पूर्ति M'_s समान होते हैं। क्योंकि $M'_s = \frac{M_s}{P}$ होता है (यहाँ M_s = मुद्रा की कुल मात्रा तथा P = कीमत स्तर हैं)। इसलिए M_s में व द्धि होने तथा P के स्थिर रहने पर M'_s उसी अनुपात से बढ़ता है। इसलिए P के स्थिर रहते हुए M_s में व द्धि होने से LM वक्र दाईं ओर इसी प्रकार सरकता है जैसा हम पीछे अध्याय 6 में देख चुके हैं। परन्तु अन्तर केवल इतना है कि यहाँ P को परिवर्तनशील माना गया है। इसलिए अब M'_s में परिवर्तन M_s या P में परिवर्तन या दोनों में परिवर्तन के कारण हो सकता है। यदि M_s में व द्धि हो जाये या P गिर जाये दोनों अवस्थाओं में LM वक्र दाईं ओर सरक जायेगा क्योंकि दोनों में अवस्थाओं में वास्तविक मुद्रापूर्ति (M'_s) में व द्धि होती है। चित्र ३ के A भाग में दर्शाया गया है कि P के निरंतर कम होते रहने से LM वक्र दाईं ओर सरकता जाता है। इसमें मुद्रा की कुल मात्रा (M_s) स्थिर रहती है। प्रारम्भिक कीमत स्तर P_5 के आधार पर LM_5 की रचना हुई है तथा P_4 के आधार पर LM_4, P_3 से LM_3, P_2 से LM_2 तथा P_1से LM_1 की रचना की गई है। इसके साथ कल्पना की गई है कि कीमत में परिवर्तन का IS वक्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मान लीजिए प्रारम्भ में कीमत स्तर P_5 तथा LM_5 तथा IS_1 वक्र दिये हुए हैं तथा P_4 के आधार पर LM_4, P_3 से LM_3, P_2 से LM_3 तथा P_1 से LM_1 की रचना की गई है। इसके साथ कल्पना की गई है कि कीमत में परिवर्तन का IS वक्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मान लीजिए प्रारम्भ में कीमत स्तर P_5 तथा LM_5 तथा IS_1 वक्र दिये हुए हैं तथा Y_0 सन्तुलित आय तथा r_5 सन्तुलित ब्याज दर का निर्धारण होता है। अतः P_5 कीमत स्तर मान कर LM_5 तथा IS वक्र खींचे गये हैं और इस प्रकार Y_1 उत्पादन की मात्रा की माँग की गई है जिसको भाग B में दर्शाया गया है। भाग B में कुल माँग वक्र (AD curve) निकाला गया है। जब कीमत

स्तर गिर कर P4 होता है तो LM वक्र दाईं ओर सरक कर LM_4 बन जाता है जो Y_2 सन्तुलित आय का निर्धारण करते हैं। इसके आगे ज्यों कीमत स्तर गिर कर P_3, P_2, P_1 होता है तो LM वक्र आगे सरक कर LM_3, LM_2, LM_1 बन कर Y_3, Y_4, Y_5 सन्तुलित उत्पादन का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार P_3, P_2, P_1 तथा Y_3, Y_4, Y_5 क्रमशः मिलकर AD curve के तीन अन्य बिन्दुओं का निर्धारण करते हैं। इन सभी बिन्दुओं को मिलाने से नीचे दाईं ओर झुकता हुआ माँग वक्र प्राप्त होता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रक्रिया के माध्यम से P में कमी से माँगी गई वस्तुओं की मात्रा बढ़ती है ? मान लीजिये भाग A में P में कमी के कारण LM_5 दाईं ओर सरक कर LM_4 हो जाता है। LM_5 तथा IS_1 मिलकर r_5 तथा Y_1 का निर्धारण करते हैं। आय का स्तर Y_1 रहते हुए जब कीमत P_5 से गिर कर P_4 बन जाती है तो वास्तविक मुद्रा शेष में वृद्धि होती है जो बांड खरीदने पर खर्च कर दी जाती है। इससे बांडों की कीमत बढ़ जाती है तथा ब्याज दर r_5 से कम हो कर r_4 पर स्थापित हो जाता है। इस कारण निवेश बढ़ता है तथा वस्तुओं की माँग में वृद्धि Y_1 से Y_2 हो जाती है। इससे क्रय-विक्रय की मुद्रा की माँग भी बढ़ जाती है क्योंकि यह आय के स्तर पर निर्भर करती है। केन्ज़ मॉडल में ब्याज दर के r_5 से r_4 पर गिरने से तथा आय के Y_1 स्तर से Y_2 स्तर पर बढ़ने से मुद्रा की क्रय विक्रय की मांग Y_5 सन्तुलित उत्पादन का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार P_3, P_2, P_1 तथा Y_3, Y_4, Y_5 क्रमशः मिलकर AD curve के तीन अन्य बिन्दुओं का निर्धारण करते हैं। इन सभी बिन्दुओं को मिलाने से नीचे दाईं ओर झुकता हुआ माँग वक्र प्राप्त होता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रक्रिया के माध्यम से P में कमी से माँगी गई वस्तुओं की मात्रा बढ़ती है ? मान लीजिये भाग A में P में कमी के कारण LM_5 दाईं ओर सरक कर LM_4 हो जाता है। LM_5 तथा IS_1 मिलकर r_5 तथा Y_1 का निर्धारण करते हैं। आय का स्तर Y_1 रहते हुए जब कीमत P_5 से गिर कर P_4 बन जाती है तो वास्तविक मुद्रा शेष में वृद्धि होती है जो बांड खरीदने पर खर्च कर दी जाती है। इससे बांडों की कीमत बढ़ जाती है तथा ब्याज दर r_5 से कम हो कर r_4 पर स्थापित हो जाता है। इस कारण निवेश बढ़ता है तथा वस्तुओं की माँग में वृद्धि Y_1 से Y_2 हो जाती है। इससे क्रय-विक्रय की मुद्रा की माँग भी बढ़ जाती है क्योंकि यह आय के स्तर पर निर्भर करती है। केन्ज़ मॉडल में ब्याज दर के r_5 से r_4 पर गिरने से तथा आय के Y_1 स्तर से Y_2 स्तर पर बढ़ने से मुद्रा की क्रय विक्रय की मांग

K(Y) इस अनुपात में बढ़ती है कि यह P के गिरने से वास्तविक मुद्रा पूर्ति में हुई वृद्धि के समान हो जाती है। इससे मुद्रा बाज़ार दोबारा सन्तुलन में हो जाता है। वस्तु बाज़ार तथा मुद्रा बाज़ार दोनों वहाँ सन्तुलन में होंगे जहाँ LM_4 तथा IS_1 एक दूसरे को काटते हैं जहाँ r_4 व Y_2 का निर्धारण होता है।

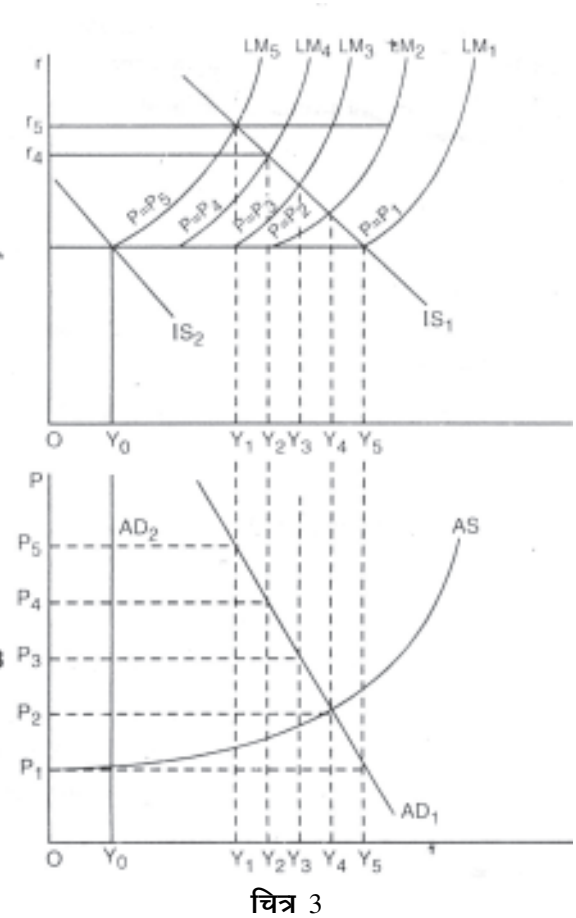

चित्र 3

अगला प्रश्न उत्पन्न होता है कि P में गिरावट के कारण LM वक्र दाइ ओर सरकने से वस्तुओं की माँगी गई मात्रा में कितनी वृद्धि होगी ? IS वक्र जितना कम लोचशील होगा उतनी ही कीमत गिरने के कारण माँग कम वृद्धि होगी। यदि IS वक्र पूर्णतः बेलोच है तो AD curve भी पूर्णतः बेलोच होना। इसका कारण यह है कि LM वक्र के दाइ ओर सरकने से जो ब्याज की दर में कमी होती है उससे निवेश बिल्कुल नहीं बढ़ पाता है तथा इस कारण माँगी गई मात्रा बिल्कुल नहीं बढ़ पाती है।

एक विशेष अवस्था में यदि IS वक्र LM वक्र की केन्ज़ीयन अवस्था (Keynesian range) जहाँ LM वक्र पूर्णतः लोचशील होता है, मे काटता है। (जैसे भाग A में IS_2) तो P के गिरने से तरलता जाल के कारण ब्याज दर में कोई गिरावट नहीं आती है इसलिए AD में कोई वृद्धि नहीं होती क्योंकि निवेश नहीं बढ़ सकता है। इसलिए इस विशेष अवस्था में AD वक्र पूर्णतः बेलोच होगा, IS वक्र की लोचशीलता कितनी ही क्यों न हो।

एक बार जब AD वक्र चित्र के भाग B के अनुसार खींच लिया जाता है तो यह कुल पूर्ति वक्र (AS curve) को काट कर सन्तुलित उत्पाद तथा सन्तुलित कीमत का निर्धारण करता है। AD_2 वक्र P_1 सन्तुलित कीमत स्तर Y_0 सन्तुलित आय स्तर का निर्धारण करते हैं। तथा AD_1 वक्र P_2 सन्तुलित कीमत स्तर तथा Y_4 सन्तुलित आय स्तर का निर्धारण करते हैं।

कीमत तथा उत्पादन की उपरोक्त दोनों सन्तुलित अवस्थाएं अपूर्ण रोज़गार सन्तुलन को व्यक्त करते हैं। (जैसा कि के केन्ज़ मॉडल में दर्शाया गया था।) क्योंकि यहाँ AS वक्र पूर्णतः बेलोच नहीं है, अर्थात रोज़गार बढ़ा कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। वैसे केन्ज़ ने पूर्ण रोज़गार की अवस्था में सन्तुलन को कभी नहीं नकारा है। इसको एक सम्भावना कहा है जो उस समय प्राप्त की जा सकती है कि जब IS वक्र LM वक्र को इसके परम्परावादी (Classical Range) में काटता है। अर्थात् IS वक्र को उफपर की ओर सरका कर पूर्ण रोज़गार सन्तुलन की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। परम्परावादी मॉडल में यदि मज़दूरी दर को नीचे की ओर बेलोच मान लिया जाये तो वहाँ भी अपूर्णे रोज़गार सन्तुलन हो सकता है, परन्तु यदि मज़दूरी दर नीचे की ओर लोचशील है तो पूर्ण रोज़गार सन्तुलन अवश्य प्राप्त होगा। यद्यपि केन्ज़ नीचे की ओर बेलोच मज़दूरी दर की कल्पना करता है फिर भी वह इस बात को ज़ोर देकर कहता है कि यदि नीचे की ओर मज़दूरी दर को पूर्ण लोचशील मान भी लिया जाये तो भी स्वतः पूर्ण रोज़गार सन्तुलन समभव नहीं है। यदि कीमतें तथा मज़दूरी दर नीचे की ओर लोचशील हों तो क्या उत्पादन के पूर्ण रोज़गार स्तर को स्वतः प्राप्त किया जा सकता है ? ●●●

अध्याय-8

मज़दूरी-कीमत लोचशीलता था पूर्ण रोज़गार सन्तुलन

(Wage-Price Flexibility and Full Employment Equilibrium)

परम्परावादी मॉडल में हम इस बात की विस्त त जांच कर चुके हैं कि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार सन्तुलित उत्पादन का स्तर केवल पूर्ण रोज़गार स्तर पर ही सम्भव है। इस मॉडल में कुल मांग वक्र हमेशा इकाई के समान लोचशील माना गया है जैसा कि निम्न चित्र १ में दर्शाया गया है। इसका कारण परम्परावादियों द्वारा मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को स्वीकार करना है। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में मुद्रा को केवल विनिमय का माध्यम माना गया है। इसलिए मुद्रा को खर्च करके वस्तु व सेवाओं को खरीदते रहना होता है। इतना ही नहीं इस सिद्धान्त में मुद्रा की चलन गति (Velocity of ciurculation or V) को स्थिर माना गया है। किसी दी हुई 'V' के आधार पर मुद्रा की मात्रा (M) से कुल व्यय (MV) का ज्ञान हो जाता है ज्यों हमें M की मात्रा की जानकारी हो जाती है। इसलिए AD = MV होता है। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त अनुसार MV = PY इसलिए AD = PY है। AD या MV की किसी भी मात्रा से P के विभिन्न स्तरों पर Y की विभिनन मात्रा खरीदी जा सकती है। इस प्रकार P और Y के विभिन्न सम्भावित संयोग AD curve द्वारा निम्न चित्र में दर्शाये गये हैं जिसको परम्परावादी मॉडल में इकाई लोचशील माँग वक्र (Rectangular Hyperbola) के नाम से जाना जाता है।

परम्परावादी सिद्धान्त मज़दूरी दर को लोचशील मानता है जबकि केन्ज़ मॉडल मज़दूरी दर को नीचे की ओर लोचहीन मानता है विचाराधीन विश्लेषण की शुरूआत के लिए अब हम एक ऐसे निष्कर्ष की ओर ध्यान देते हैं जो परम्परावादी मॉडल के कुल माँग वक्र (AD curve) को केनज़ के नीचे की ओर मज़दूरी दर के बेलोच होने की कल्पना के साथ जोड़ने के उपरान्त प्राप्त होता है।

चित्र १ में AS वक्र Y_F आय स्तर पर लम्बवत् खड़ा है जो इस बात का प्रमाण है कि Y_F पूर्ण रोज़गार उत्पादन का स्तर है। मान लीजिए श्रम बाज़ार में स्थिर मज़दूरी दर W_0 है, जो P_0 कीमत स्तर के साथ मिल कर वास्तविक मज़दूरी दर को उस स्तर पर स्थापित करती है जहाँ $D_N = S_N$ है। अर्थात् यहाँ पूर्ण रोज़गार सन्तुलन है। इसलिए P_0 या इससे ऊपर वाले कीमत स्तरों पर AS curve पूर्णतः बेलोच है तथा पूर्ण रोज़गार स्तर को व्यक्त करता है। परन्तु P_0 से निम्न कीमत स्तरों पर नकद मज़दूरी (W_0) स्थिर रहते हुए वास्तविक मज़दूरी $\left(\frac{W}{P}\right)$ बढ़त्ती जायेगी। इसलिए P_0 से निम्न कीमत स्तरों पर मज़दूरी महंगी होने के कारण उत्पादक कम श्रमिकों को रोज़गार दे सकेंगे तथा कुल पूर्ति वक्र (AS curve) बाईं ओर ढाल वाली होती जायेगी जिसको चित्र १ में टूटी रेखा द्वारा दर्शाया गया है। यह टूटी AS वक्र बेरोज़गारी को व्यक्त कर रही है। दी हुई मुद्रा पूर्ति के आधार पर चित्र में AD वक्र निकाला गया है जो टूटी हुई पूर्ति वक्र को ऐसे स्थान पर काटता है जो सन्तुलित उत्पादन का ऐसा स्तर Y_1 निर्धारित करता है जिस पर बेरोज़गारी पाई जाती है, क्योंकि $Y_1 < Y_F$ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि परम्परावादी मॉडल में स्थिर मज़दूरी की अवस्था में अपूर्ण रोज़गार उत्पादन का सन्तुलित स्तर सम्भव है।

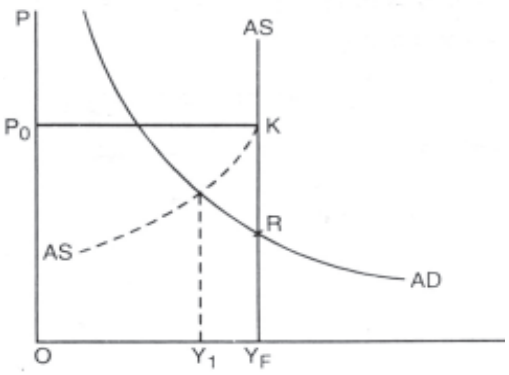

चित्र 1

परन्तु परम्परावादियों की यह कल्पना है कि बेरोज़गारी की स्थिति में नकद मज़दूरी दर गिरेगी इसको स्वीकार करने से पूर्ण रोज़गार उत्पादन का स्तर (Y_F) अवश्य प्राप्त किया जा सकता है तथा हम चित्र में लम्बवत् पूर्ति वक्र (As curve) को प्राप्त

कर सकते हैं। यह लम्बवत् पूर्ति वक्र, जो पूर्णतः बेलोच है, कुल माँग (AD), जो मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के आधार से खींचा गया है, को अवश्य ही पूर्ण रोज़गार उत्पादन के सन्तुलित स्तर पर ही कहीं काटेगा। निश्चित रूप से यह कम नकद मज़दूरी (W) तथा कम कीमत स्तर (P) पर ही सम्भव है। दी हुई मुद्रा की मात्रा से बढ़ा हुआ उत्पादन तभी खरीदा जा सकता है जब कीमत स्तर नीचे को गिरे ताकि $AD = AS$ ही सके। ध्यान देने की बात है कि यदि कीमत स्तर P_0 से नीचे नहीं गिरता है तो Y_1 उत्पादन का स्तर नहीं बेचा जा सकेगा, जिससे अर्थव्यवस्था में बेराज़गार उत्पादन का स्तर ही उत्पादित किया सकेगा। परन्तु प्रतियोगी श्रम बाज़ार तथा वस्तु बाज़ारों में मज़दूरी दर तथा कीमत स्तर अवश्य नीचे इस प्रकार से गिरेंगे ताकि पूर्ण रोज़गार उत्पादन का सन्तुलित स्तर उत्पारित किया जा सके। कीमत स्तर भी अवश्य गिरेगा क्योंकि जब माँग पूर्ति से कम रह जाती है तो P अवश्य गिरेगी ताकि उत्पादक अपने लाभ के उद्देश्य को पूरा कर सकें।

परम्परावादी मॉडल में नीचे की ओर स्थिर मज़दूरी सम्बन्धी केन्ज़ की धारणा का समावेश किया जाये तो क्या अपूर्ण रोज़गार उत्पादन सन्तुलन सम्भव है ? केन्ज़ द्वारा प्रस्तुत वास्तविक मुद्रा की माँग $\left(\frac{M_d}{P}\right)$ आय के स्तर (Y) तथा ब्याज की दर (r) दोनों पर निर्भर करती है। अर्थात् $\frac{M^d}{P} = K(Y) + L(r)$ होती है। इसके आधार पर निकाला गया LM वक्र पीछे अध्याय में देखा जा सकता है। यदि मुद्रा की माँग ब्याज लोचशील (interest elastic) है, जैसा कि केन्ज़ द्वारा प्रस्तंत मुद्रा के माँग फलन में है, तो LM वक्र ऊपर उठते हुए ब्याज की दर के प्रति लोचशील होगा। इसके विपरीत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर आधारित परम्परावादियों द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की वास्तविक माँग $\left(\frac{M^d}{P}\right)$ केवल आय के स्तर पर ही निर्भर करती है न कि ब्याज की दर पर निर्भर करती है। इसमें मुद्रा की सट्टा उद्देश्य के लिए माँग को स्वीकार नहीं किया गया है। इसलिए परम्परावादियों के अनुसार मुद्रा की माँग: $\frac{M^d}{P} = f(Y)$ है। केवल आय पर आधारित मुद्रा की माँग के द्वारा जो LM वक्र निकाला जायेगा वह लम्बवत खड़ा होगा, अर्थात् r के प्रति बेलोच होगा। जैसा कि चित्र २ के भाग D में दर्शाया गया है। चित्र ११.५ के भाग A में सट्टा उद्देश्य की मुद्रा माँग (M_s) सभी ब्याज दरों पर शून्य दर्शाई गई है। किसी दिये हुए कीमत स्तर (P) पर LM वक्र जो $M_d = f(Y)$ पर आधारित है लम्बवत खड़ा होगा तथा ब्याज के प्रति पूर्णतः बेलोच होगा। भाग A में सट्टा उद्देश्य की माँग शूनय होने के कारण इसका वक्र नहीं है। भाग B में दर्शाया गया है कि जो कुछ मुद्रा की पूर्ति (M_s) है वह केवल क्रय विक्रय उद्देश्य (Transaction Purposes) के लिए ही माँग की जाती है। इसका अर्थ है कि $M_t = M_s$ है। M_t से क्षैतिजीय रेखा द्वारा भाग C में खींचते हुए, $M_t = K(Y)$ के आधार पर आय के स्तर को ज्ञात किया जा सकता है। M_t ब्याज की दर के प्रति बेलोच है। इस आधार पर भाग D में LM वक्र LM_1 के रूप में खींचा

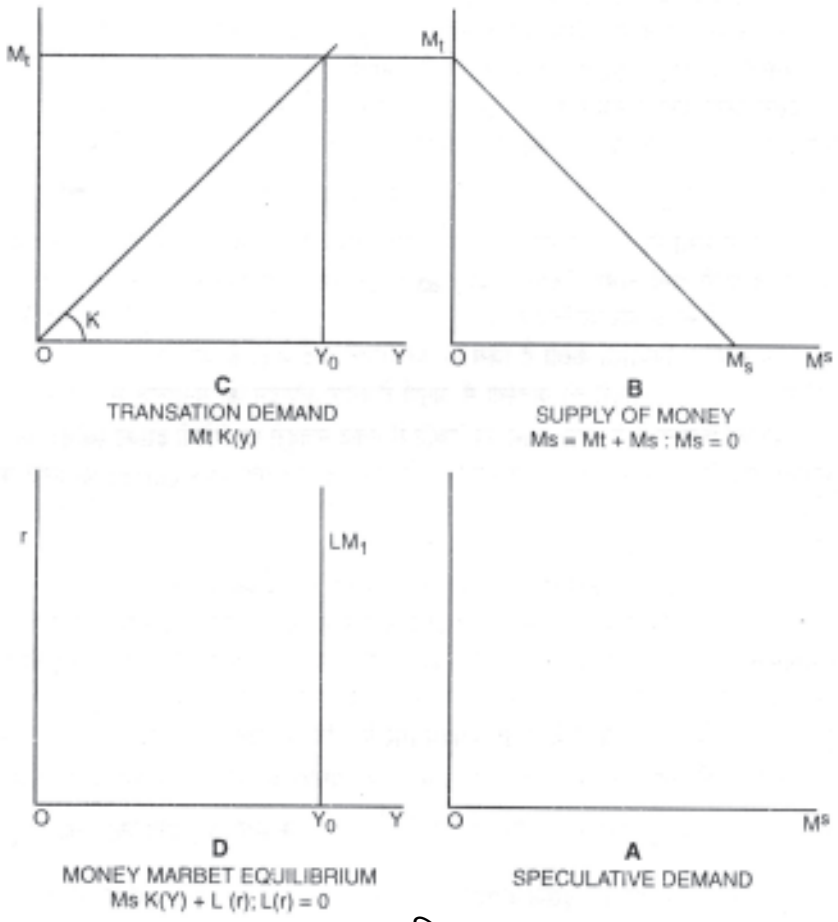

चित्र 2

गया है। LM की स्थिति मुद्रा पूर्ति (M_s) या K में परिवर्तन के द्वारा ही परिवर्तित हो सकती है।

अब कल्पना कीजिये कि वास्तविक मुद्रा पूर्ति $\frac{M_d}{P}$, तथा K इस प्रकार के हैं कि वे चित्र ६ के भाग A में LM वक्र को LM_1 पर स्थापित करते हैं।

सट्टा माँग के शूनय होने पर मुद्रा बाज़ार सन्तुलन (Money Market Equilibrium with Speculative Demand Equal to Zero.) मुद्रा पूर्ति M_s में परिवर्तन या K में परिवर्तन किये बिना यदि स्तर (P) में परिवर्तन कर दिया जाता है तो यह LM वक्र की स्थिति बदल सकती है। यदि कीमत स्तर गिर जाता है तो इससे वास्तविक मुद्रा पूर्ति $\left(\frac{Ms}{P}\right)$ में व द्धि होगी जिससे LM वक्र बाईं ओर सरकेगा। P में परिवर्तन का LM पर प्रभाव नकद मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन का LM पर प्रभाव जैसा ही होता है, क्योंकि दोनों अवस्थाओं में परिवर्तन वास्तविक मुद्रा पूर्ति $\left(\frac{Ms}{P}\right)$ में परिवर्तन के माध्यम से LM पर प्रभाव छोड़ता है। चित्र ३ का भाग A पाँच कीमत स्तरों से सम्बन्धित पाँच LM वक्रों को दर्शाता है।

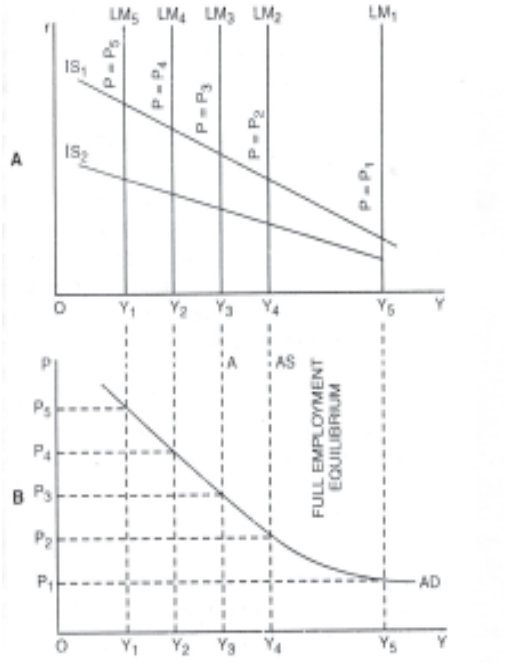

चित्र 3

पहले की तरह IS वक्र जहाँ LM वक्रों को काटते हैं उनके आधार पर भाग B में कुल माँग वक्र (AD curve) निकाला गया है। भाग A में दो IS वक्र, IS_1 तथा IS_2, निकाले गये हैं परन्तु दोनों एक ही कुल माँग वक्र (AD) का निर्माण करते हैं। जब कीमत स्तर P_5 होता है तो कुल माँग Y_1, तथा ज्यों कीमत स्तर गिर कर P_4, P_3, P_2, P_1 होता है तो कुल माँग Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 होती है। P तथा उनसे सम्बन्धित कुल माँग को मिलाने से AD curve भाग B में प्राप्त होता है जो इकाई के समान लोचशील होता है।

मान लो हम अपूर्ण रोज़गार स्तर Y_3, जो P_3 से सम्बन्धित है, पर हैं तथा Y_4 पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर है। इस अवस्था में केन्ज़ के अपूर्ण रोज़गार सतर पर सन्तुलन में होंगे। पूर्ण रोज़गार की स्थिति, जैसा कि परम्परावादी मानते हैं, की प्राप्त करने के लिए कीमत स्तर को यदि कम करके P_2 कर दिया जाता है तो इससे $\frac{M_s}{P}$ बढ़ेगी तथा LM वक्र दाईं ओर सरक कर LM_2 बन जायेगा जो IS वक्र के साथ मिल कर Y_4 आय के सन्तुलित स्तर की स्थापना करता है जो आय का पूर्ण रोज़गार स्तर है,

मज़दूरी-कीमत लोचशीलता तथा ब्याज दर प्रभाव
(Wage-Price Flexibility and The Interest Rate Effect)

मुद्रा के सरल परिमाण सिद्धान्त में कीमत स्तर में कमी होने के कारण जो वास्तविक मुद्रा की मात्रा में व द्धि होती है उससे वस्तुओं की माँगी गई मात्रा में प्रत्यक्ष व द्धि (Direct increase) होती है जैसा कि चित्र ११.४ द्वारा दर्शाया गया है। इस चित्र में ऐसा बार-बार करके देखा गया है। जबकि मुद्रा की मात्रा के माध्यम से कीमत-स्तर तथा माँगी गई मात्रा में यह सम्बन्ध चित्र ११.६ में प्रत्यक्ष नहीं बल्कि अप्रत्यक्ष है। चित्र ११.६ में यह सम्बन्ध ब्याज की दर में परिवर्तन के माध्यम से प्रकट होता है। इस चित्र के भाग B में कीमत स्तर के P_3 से P_2 कम होने के कारण माँगी मात्रा में व द्धि भाग A में LM वक्र LM_3 से LM_2 तक

स्थानानतरण होने के माध्यम से सम्भव हो सकी है। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का यह परिणाम ब्याज की दर में कमी करके, जिससे पूँजीगत पदार्थों की माँग बढ़ती है, प्राप्त किया गया है। यहाँ पूंजीगत पदार्थों की माँग में हुई व द्धि कुल माँग के Y_3 से Y_4 तक बढ़ने का स्रोत है।

चित्र ११.४ में माँग वक्र मुद्रा के सरल परिमाण सिद्धान्त पर आधारित है परन्तु कीमत स्तर में कमी के माध्यम से मुद्रा की मात्रा में हुई व द्धि से जो माँग में व द्धि होती है वह ब्याज की दर में परिवर्तन के बिना ही होती है। जब कि केन्ज़ीयन सिद्धान्त में ऐसा ब्याज की दर में कमी के माध्यम से ही होता है। इस प्रकार परम्पराकारी तथा केन्ज़ विश्लेषणों में यह अन्तर देखा जा सकता है। ध्यान देने की बात यह है कि यही अन्तर केन्ज़ के इस महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष का आधार है कि मज़दूरी तथा कीमत स्तर नीचे की ओर पूर्ण लोचशील होने पर भी पूर्ण रोज़गार स्तर सम्भव नहीं है। इस तथ्य का अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है।

बचत तथा निवेश में असंगति के कारण बेरोज़गारी
(Unemployment Due to Inconsistency Between Saving and nvestment)

हम जानते हैं कि IS वक्र की स्थिति बचत वक्र निवेश वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है। इस विश्लेषण के लिए चित्र ११.६ में दर्शाये गये IS-LM वक्रो को चित्र ११.७ के भाग A में दर्शाये गये हैं। पिछले अध्यायों में स्पष्ट किया गया है कि बचत वक्र तथा निवेश वक्र में कमी (Decrease) IS वक्र में कमी या इसको बाईं ओर सरका देती है। यदि बचल तथा निवेश वक्रों की स्थितियां इस प्रकार की है कि वे IS वक्र को निम्न स्तर पर स्थापित करती हैं, जैसा कि चित्र ११.४ के A भाग में दर्शाया गया है, तो उस अवस्था में पूर्ण रोज़गार सन्तुलन कीमत स्तर में कमी करके प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकता है। मान लीजिए चित्र ११.४ के A भाग के अनुसार दिये हुए 'K' तथा मुद्रा की मात्रा के आधार पर अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर P_5 है तथा इसके अनुसार LM वक्र LM_5 के रूप में स्थित है। इस परिस्थिति में माँगी गई मात्रा इस चित्र के B भाग में Y_1 द्वारा दर्शाई गई है जो पूर्ण रोज़गार उत्पादन के स्तर Y_4 से काफी कम है। लोचशील मज़दूरी तथा कीमत स्तर के कारण मज़दूरी दर गिरती है तथा इसके अनुसार कीमत स्तर भी गिरता है। ज्यों कीमत स्तर P_5 से P_3 गिर जाता है, तो माँगी गई मात्रा AD वक्र, जो भाग B में दर्शाया गया है, के एक भाग के अनुसार बढ़ जाती है। माँग वक्र के इस भाग पर माँग की लोचशीलता इकाई के समान है। परन्तु ज्यों कीमत स्तर P_3 से भी कम हो जाता है तो AD वक्र पूर्णतः बेलोच कीमत स्तर P_3 से आगे गिरने पर माँग बिल्कुल नहीं बढ़ पाती है। इस प्रकार माँग अधिक से अधिक Y_3 तक बढ़ सकती है जो पूर्ण रोज़गार उत्पादन Y_4 से कम है। अतः गिरते हुए कीमत स्तर के माध्यम से पूर्ण रोज़गार उत्पादन का स्तर नहीं किया जा सकता है।

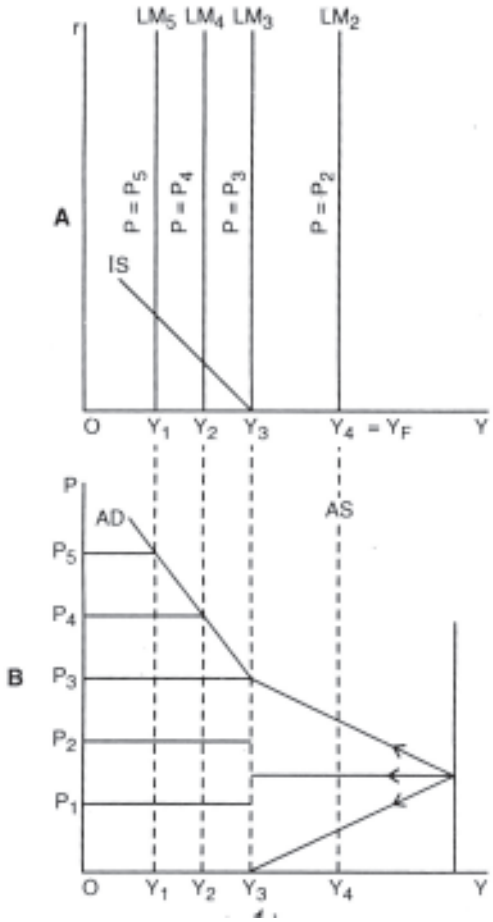

चित्र 4

इससे यह सिद्ध होता है कि कीमत स्तर में गिरावट के कारण वास्तविक मुद्रा में व द्धि हमेशा वस्तुओं की माँग में उसी अनुपात से व द्धि नहीं कर सकती है। चित्र ४ का भाग A दर्शाता है कि कीमत स्तर में कमी करने से वास्तविक माँग में व द्धि ब्याज दर में गिरावट के माध्यम से निवेश में व द्धि के द्वारा होती है। भाग B में इस प्रकार ब्याज की दर कम करके शून्य तक भी ले जाया जाये तो निवेश बढ़कर अधिक से अधिक आय को Y_3 तक बढ़ा सकता है। आय का Y_4 पूर्ण रोज़गार स्तर प्राप्त करने के लिए ज़रूरी है कि कम से कम शून्य ब्याज की दर पर IS वक्र LM_2

वक्र को काटे। परन्तु, दिये गये बचत व निवेश वक्रों के आधार पर से IS वक्र प्राप्त होता है वह अधिक से अधिक AD को Y_3 तक ही बढ़ा सकता है। Y_4 पर जो बचत होती है वह उस निवेश की मात्रा से अधिक है जो Y_4 आय के स्तर को कायम रखने के लिए ज़रूरी है बेशक चाहे r गिर कर शून्य क्यों नहीं हो जाए। अतः Y_4 पर सन्तुलन नहीं हो सकता।

तरलता जाल
(Liquidity Trap)

तरलता जाल एक अन्य स्थिति है जिसके अन्तर्गत नीचे की ओर लोचशील मज़दूरल तथा कीमतें बेरोज़गारी को दूर करने में असफल सिद्ध होता हैं। तरलता जाल की स्थिति में ब्याज की दर (r) निम्नतम स्तर पर पहुँची होती है तथा LM वक्र काफी देर तक पूर्णतः लोचशील बनी रहती है। कीमत स्तर में कमी करके वास्तविक मुद्रा $\left(\frac{M}{P}\right)$ को बढ़ा कुर कुल माँगी गई मात्रा को एक सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है जो पूर्ण रोज़गार स्तर से कम रह सकती है। निम्न चित्र ११.८ में ऐसी स्थिति की व्याख्या की गई है। केन्ज़ के मुद्रा सिद्धानत के अनुसार वास्तविक मुद्रा की माँ $\left(\frac{M^d}{P}\right)$ आय तथा ब्याज दर दोनों पर निर्भर करती है अथ $\frac{M^d}{P} = K(Y) + L(r)$ होती है। निम्नतम ब्याज की दर पर मुद्रा की माँग पूर्णतः लोचशील हो जाती है।

मान लीजिए प्रारम्भ में कीमत स्तर P_5 है जिसके आधार पर चित्र ५ के A भाग में LM_5 तथा माँगी गई मात्रा Y_1 का निर्धारण होता है। भाग B में Y_1 पूर्ण रोज़गार उत्पादन की माँगी गई मात्रा Y_F से काफी कम है। पूर्ण रोज़गार स्तर पर माँगी गई Y_F प्राप्त करने के लिए कीमत स्तर गिराकर P_4, P_3, P_2 तथा P_1 एक के बाद एक कर दिया जाता है जो LM वक्र को मुद्रा की वास्तविक मात्रा बढ़ा कर क्रमश LM_4, LM_3, LM_2 तथा LM_1 कर देता है। IS वक्र LM_4, LM_3, LM_2 तथा LM_1 के साथ मिल कर सन्तुलन में माँगी गई मात्रा को बढ़ा कर क्रमशः Y_2, Y_3, Y_4 तथा Y_5 तक बढ़ा देता है। सन्तुलन की अवस्था में उपरोक्त कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित माँगी गई मात्राओं के आधार पर भाग B में AD वक्र निकाला गया है जो कीमत स्तर P_1 तथा Y_5 के बीच में पूर्णतः बेलोच हो जाता है तथा माँगी गई मात्रा Y_5 पूर्ण रोज़गार स्तर पर माँगी गई मात्रा Y_F से कम है स्पष्ट है कि Y_F प्राप्त करने के लिए कीमत स्तर और कम होना चाहिए। परन्तु कीमतों में गिरावट के कारण हुई वास्तविक मुद्रा में हुई व द्धि पहले ही ब्याज दर को कम से कम स्तर r_0 पर पहुँचा चुकी है। Y_5 से अधिक माँगी गई मात्रा तभी सम्भव है जब निवेश में व द्धि हो जाये जिसके लिए ब्याज दर में कमी होनी चाहिए। परन्तु P_1 से कम कीमत स्तर होने से $\frac{M}{P}$ में हुई व द्धि LM वक्र को दायें सरका कर ब्याज दर को तरलता जाल के कारण r_0 से कम नहीं कर सकत है। इसलिए माँगी गई मात्रा Y_5 से नहीं बढ़ सकती तथा P_1 से नीचे कीमतों पर AD वक्र पूर्णतः बेलोच बन जाता है। इसलिए पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर Y_F प्राप्त नहीं किया जा सकता है तथा नीचे की ओर गिरते कीमत तथा मज़दूरी स्तर से पूर्ण रोज़गार प्रति नहीं किया जा सकता।

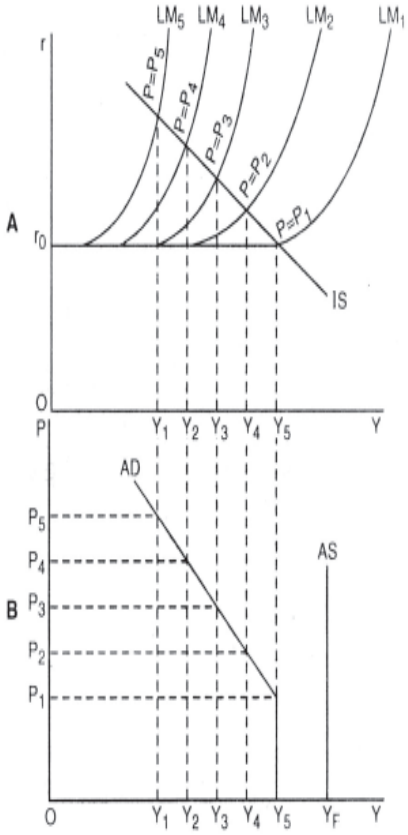

चित्र 5

केन्ज़ प्रभाव
(Keynes Effect)

केन्ज़ के अनुसार गिरते हुए मज़दूरी तथा कीमत स्तर के द्वारा पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर जिसको परम्परावादी अर्थशास्त्री अपने आप प्राप्त हुआ मानते थे, को प्राप्त नहीं किया जा सकता। केन्ज़ का यह मत एक ऐसी प्रणाली पर आधारित है जिसके माध्यम से कीमत स्तर में गिरावट ब्याज दर में कमी करके वस्तुओं की माँगी गई मात्रा में व द्धि करता है। जैसा हमने देखा है कि कीमत स्तर में गिरावट के कारण वास्तविक मुद्रा में व द्धि होती है तो LM वक्र को दाईं ओर सरका कर ब्याज दर को नीचे गिरा देती हैं, जिससे निवेश में व द्धि होती है तथा गुणक द्वारा आय तथा मांगी गई मात्रा में व द्धि करता है।

यद्यपि भारत में कमी से माँगी गई मात्रा में व द्धि की व्याख्या करने के लिए अन्य प्रणालियां भी हो सकती हैं, जैसे कीमत स्तर का माँग से प्रत्यक्ष सम्बन्ध आदि, परन्तु ब्याज दर में गिरावट के माध्यम से माँगी गई मात्रा में व द्धि केन्ज़ के नाम के साथ जुड़ी हुई है, इसलिए इसको 'केन्ज़ प्रभाव' (Keynes Effect) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

मज़दूरी-कीमत लोचशीलता तथा पीगू प्रभाव
(Wage-Price Flexibility and the Pigou Effect)

कीमत स्तर में गिरावट से जो ब्याज दर में गिरावट आती है यदि वह तरलता जाल (Liquidity trap) तक पहुँच चुका है परन्तु फिर भी माँगी गई मात्रा को पूर्ण रोज़गार स्तर तक नहीं पहुँचा सकता है तो मज़दूरी-कीमत लोचशीलता के माध यम से स्वतः पूर्ण रोज़गार की धारणा केन्ज़ प्रभाव के माध्यम से खण्डित हो जाती है। केन्ज़ के इस तर्क को रद्द करने तथा पूर्ण रोज़गार के परम्परावादी स्वतः सिद्धान्त की पुनः स्थापना करने का प्रयास १९४० में ऐ. सी. पीगू द्वारा प्रभाव के माध्यम से तथा बाद में अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया। पीगू प्रभाव (Pigou Effect) कैसे क्रिया करता है?

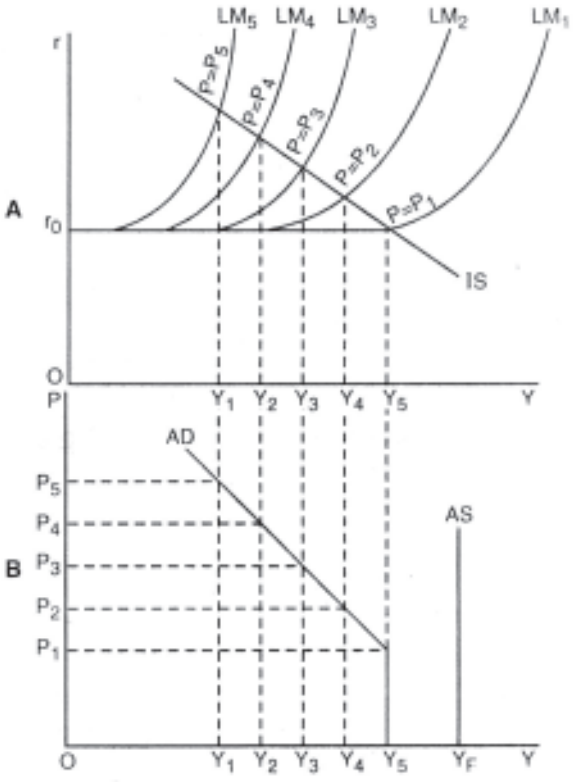

चित्र 6

मान लीजिये निवेश में कमी कर दी गई है। इससे केन्ज़ के अनुसार कुल माँग तथा उत्पादन में गिरावट आयेगी तथा बेरोज़गारी उत्पन्न होगी। बेरोज़गारी होने से पीगू तर्क देते हैं कि मज़दूरी दर कम हो जायेगी तथा इसके उपरान्त कीमत स्तर भी कम हो जायेगा। इसके साथ ही वस्तुओं, इमारत, भूमि, शेयर (Shares) आदि की भी कीमतें, कीमत स्तर में गिरावट के अनुसार, गिर जायेंगी , क्योंकि क्रय शक्ति में कमी (मज़दूरी कम होने से) हो गई है। परन्तु उन साधनों का मूल्य जिनकी कीमत मुद्रा में अंकित है बढ़ जायेगा। जैसे कि कीमत स्तर में कमी होने से करेनसी नोट, बैंक जमा, बांड आदि का मूल्य बढ़ जाया हैं रूपयों के रूप में सम्पत्ति के संग्रह का वास्तविक मूल्य बढ जाने के कारण इस प्रकार की सम्पत्ति के संग्रह का वास्तविक मूल्य बढ़ जाने के कारण इस प्रकार की सम्पत्ति रखने वाले लोग इसकी मात्रा बढ़ाने में अब पहले जितना रुचि नहीं रखते। इसलिए वे वर्तमान आय का अधिक भाग उपभोग पर खर्च करते हैं तथा कम भाग बचाते हैं। इससे बचत फलन नीचे की ओर तथा उपभोग फलन ऊपर की ओर सरक जाते हैं। इस कारण IS वक्र दाईं ओर सरक जायेगा जैसा कि चित्र ६.० में दर्शाया गया है। P_5 से कीमत स्तर में गिरावट हो कर P_4, P_3, P_2 तथा P_1 होने से IS वक्र IS_5 से दाई ओर सरक कर क्रमशः IS_4, IS_3, IS_2 तथा IS_1 बन जाता है। चित्र के

A भाग में LM_5 तथा IS_5 कीमत स्तर P_5 के आधार पर खींचे गये हैं जो Y_1 क्रम माँग का स्तर निर्धारण करते हैं इतना ही नहीं भाग B में AD_1 वक्र चित्र ११.८ के आधार पर खींचा गया है जिसमें कीमत में गिरावट का प्रभाव केवल LM पर ही पड़ता है तथा IS वक्र अप्रभावित रहता है। इस आधार पर तरलता जाल के कारण अधिक माँग Y_5 तक ही बढ़ाई जा सकी थी। परन्तु अब पीगू प्रभाव के कारण कीमत स्तर गिरने के उपरान्त LM तथा IS दोनों वक्रों को ही दाईं ओर सरकाया गया है। इस आधार से नया माँग वक्र AD_2 का निर्धारण हुआ है जो भाग B में दर्शाया गया है। पीगू प्रभाव के कारण AD वक्र AD_1 से सरक कर AD_2 बन गया है। AD_2 वक्र AS वक्र जो पूर्ण रोज़गार को दर्शाता है, को E बिन्दु पर काट रहा है तथा इसलिए पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर का निर्धारण करता है। इस तर्क के आधार पर कीमत स्तर में गिरावट से नकद कोष के मूल्य में हुई वृद्धि बचल फलन को इस प्रकार नीचे सरका सकती है जो IS वक्र को दाईं ओर इतना सरका देती है ताकि AD वक्र पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Y_F) से संगत हो सके।

इस प्रकार केन्ज़ के सिद्धान्त में 'पीगू प्रभाव' को सम्मिलित करने से पूर्ण रोज़गार उत्पादन का स्तर स्वतः प्राप्त किया जा सकता है।

●●●

अध्याय-9

मौद्रिक-रोजकोषीय नीतियां तथा पूर्ण रोज़गार सन्तुलन

(Monetary-Fiscal Policies and the Full Employment Equilibrium)

मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों में परिवर्तन कैसे LM तथा IS वक्रों को सरका कर एक स्थिर कीमत स्तर मॉडल में कुल माँग या सन्तुलित उत्पादन को प्रभावित करता है यह हम पिछले अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं। स्थिर कीमत मॉडल में हमारी कल्पना थी कि कुल पूर्ति वक्र पूर्ण रोज़गार स्तर तक पूर्णतः लोचशील होता है तथा अर्थव्यवस्था अपूर्ण रोज़गार स्तर पर उत्पादन कर रही होती है। ऐसी दी हुई परिस्थिति में कुल माँग में व द्धि करने उत्पादन में व द्धि करती है तथा कीमत स्तर को स्थिर रखती है। परन्तु इस अध्याय में ऊपर की ओर उठता हुआ कुल पूर्ति वक्र माना गया है, अर्थात् कुल माँग के बढ़ने पर उत्पादन तथा कीमतें दोनों बढ़ते हैं। इस कारण LM तथा IS वक्रों में परिवर्तन केवल उत्पादन को ही नहीं बल्कि कीमत स्तर को भी परिवर्तित कर डालता है। क्योंकि कीमत स्तर में परिवर्तन IS तथा LM वक्रों को सरका देता है, जैसा पिछले भाग में हमने अध्ययन किया है, इसलिए इन नीतियों में परिवर्तन के माध्यम से उत्पादन में परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

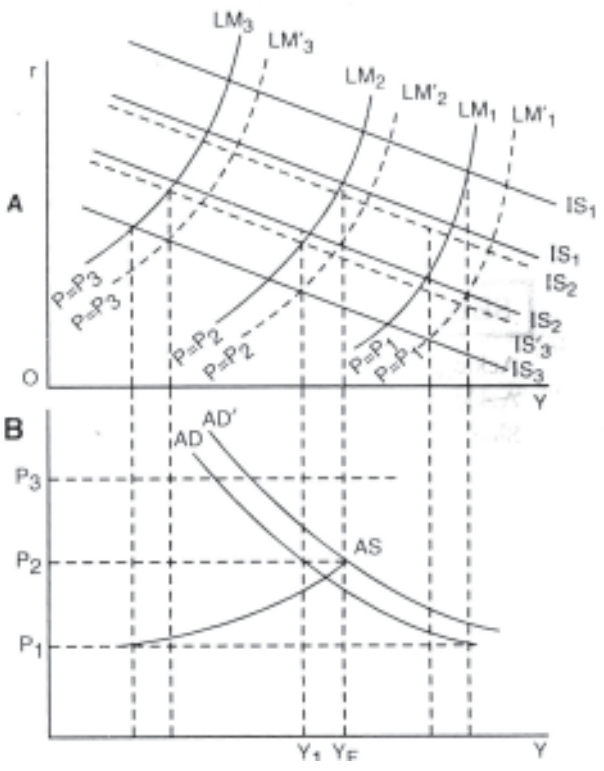

चित्र 1

इसका विश्लेषण रेखा चित्र की सहायता से किया गया है। सरलता के लिए चित्र में LM वक्रों के Keynesian तथा Classical ranges को नहीं दर्शाया गया है। भाग A में एक निश्चित नकद मुद्रा पूर्ति M_s तथा तीन विभिन्न कीमत स्तरों, P_3, P_2, P_2 के आधार पर गहरी रेखा वाले तीन LM वक्र खीचे गये हैं। कीमत स्तर के P_3 से P_2 की गिरावट P_2 से P_1 तक की गिरावट से ज्यादा है। हम जानते हैं कि P में गिरावट से वास्तविक मुद्रा पूर्ति में व द्धि होती है। अन्य बातें समान रहने पर वास्तविक मुद्रा पूर्ति में व द्धि LM वक्र को दाईं ओर सरका देती है। इसी प्रकार P के स्थिर रहते हुए नकद मुद्रा पूर्ति (M_s) में व द्धि भी LM वक्र को दाईं ओर सरका देती है। चित्र के भाग A के अनुसार यदि P का स्तर P_3 है तथा M_s की पूर्ति कुछ बढ़ा दी जाती है तो इस कारण LM_3 वक्र सरक कर टूटी रेखा वाला LM'_3 बन जाता है। इसी प्रकार P का P_3 से नीचे गिरने से मुद्रा की मात्रा (M_s) में उतनी ही व द्धि हो सकती है जो LM_3 वक्र को LM'_3 पर सरका देती है। P का P_2 से नीचे होने पर LM_2 वक्र LM'_2 तथा P का P_1 से नीचे होने पर LM_1 वक्र LM'_1 बन जाता है।

चित्र ११.१० का भाग A में LM वक्रों की तरह IS वक्रों का भी एक समूह दर्शाया गया है। गहरी रेखाओं वाले तीन IS वक्र, IS_3, IS_2 तथा IS_1 वक्र, इनसे सम्बन्धित तीन कीमत स्तरों P_3, P_2, P_1 के आधार से खींचे गये प्रारम्भिक वक्र हैं। P में गिरावट

IS वक्र का 'पीगू प्रभाव' के कारण दाईं ओर सरका देती है। हम जानते हैं कि P स्थिर रहते हुए निवेश फलन में व द्धि या बचत फलन में कमी भी IS वक्र को दाईं ओर सरका देती है। इतना ही नहीं विस्तारवादी राजकोषीय क्रियाएं भी IS वक्र को दाईं ओर सरका देती हैं, जैसे कि कर प्राप्ति (Tax Receipts) कम करने या सरकारी व्यय में व द्धि करना। ऐसे कुछ विशेष विस्तारवादी क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप मान लीजिए चित्र में IS_3 वक्र दाईं ओर सरक कर टूटी वाले वक्र IS'_3 और इसी प्रकार से IS_2 को IS'_2 वक्र तथा IS_1 को IS'_1 वक्र तक सरका देता है।

मान लीजिए किसी निश्चित मुद्रा की मात्रा (M_s) तीन कीमत स्तरों P_3, P_2, P_1 के आधार पर गहरी रेखा वाले तीन IS वक्रों LM_3, LM_2 तथा LM_1 वक्रों को जन्म देती है। LM वक्रों के इस समूह को गहरी रेखा वाले तीन IS वक्रों के साथ मिलाने से तीन सन्तुलन बिन्दु A, B तथा C स्थापित होते हैं जैसा कि चित्र के भाग A में दर्शाया गया है। इन तीनों सन्तुलन आय या माँग के आधार पर भाग B में कुल माँग वक्र AD निकाला गया है। सन्तुलित उत्पादन का स्तर Y_1 निर्धारित होता है जहाँ AS वक्र AD वक्र को काटता है। Y_1 उत्पादन का स्तर पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर Y_F से कम है जैसा केन्ज़ीयन विश्लेषण में देखा गया है। यदि नकद मज़दूरी दर नीचे की ओर लोचशील है तो बेरोज़गारी होने के कारण Y_1 सन्तुलित उत्पादन स्तर नहीं हो सकता है। नकद मज़दूरी गिरेगी तथा पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर (Y_F) पर सन्तुलन स्थापित हो सकेगा जहाँ AS वक्र पूर्णतः बेलोच है। परम्परावादी सिद्धान्त में स्वतः समन्वय की व्यवसथा होने के कारण कीमत स्तर गिरेगा तथा पूर्ण रोज़गार स्तर (Y_F) स्वतः ही प्राप्त होगा। वस्तुतः यह परम्परावादी सिद्धान्त की समन्वय की व्यवस्था केन्ज़ तथा अन्य अर्थशास्त्रियों के लिए स्थिर नकद मज़दूरी की स्थिति में प्रश्न चिन्ह बना रहा। यहाँ इसकी व्याख्या की गई है।

चित्र के भाग B में दी गई AS वक्र के अनुसार Y_1 उत्पादन का स्तर पूर्ण रोज़गार उत्पादन के स्तर Y_F से कम है। केन्ज़ीयन सिद्धान्त में इस प्रकार की बेरोज़गारी का समाधान AD को ठीक इस प्रकार से दाईं ओर सरकाना है ताकि यह AS वक्र को ठीक Y_F पर काट सके। परन्तु केन्ज़ीयन सिद्धान्त में ऐसा स्वतः कुछ नहीं होता जो निवेश फलन को दाईं ओर, उपभोग फलन को ऊपर की ओर या इन दोनों का संयोग AD को आवश्यकता अनुसार दाईं ओर सरका सके। AD को दाईं ओर आवश्यकता अनुसार सरकारे के लिए सरकार की विस्तारवादी नीति की आवश्यकता है। यदि तरलता जाल नहीं है तो यह कार्य विस्तारवादी मौद्रिक नीति अपना कर किया जा सकता है। नकद मुद्रा पूर्ति (M's) में व द्धि करके LM वक्रों के समूह को दाईं ओर सरकाया जा सकता है जिनको टूटी रेखाओं 'LM'3, LM'2 तथा LM'1 द्वारा दर्शाया गया है। राजकोषीय नीति में परिवर्तन न करते हुए IS वक्र का समूह तथा LM' वक्रों का समूह एक दूसरे को D, E तथा F बिन्दुओं पर काटता है तथा भाग B में नये माँग वक्र AD' का निर्माण करता है। नकद मुद्रा पूर्ति (Ms) में व द्धि AD को इतना बढ़ा देती है जो AS वक्र को YF पर काटती है। अब अर्थव्यवस्था में सन्तुलन पूर्ण रोजगार सन्तुलन है तथा कीमत स्तर पहले सन्तुलन से ऊँचा है। स्पष्ट है कि पूर्ण रोज़गार की स्थिति प्राप्त करने के लिए कीमत स्तर को अवश्य बढ़ना पड़ेगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उत्पादन का स्तर Y1 से YF तक बढ़ाने के लिए वास्तविक मज़दूरी दर को अवश्य कम होना पड़ेगा। क्योंकि केन्ज़ के अनुसार नकद मज़दूरी नीचे की ओर स्थिर (Fixed money wage downward) है, वास्तविक मज़दूरी में ऐसी कमी कवल कीमत स्तर में व द्धि करके ही सम्भव है।

पूर्ण रोज़गार सम्बन्धी ऐसा ही निष्कर्ष उस समय प्राप्त हो सकता है जब सरकार विस्तारवादी राजकोषीय क्रियाओं, जैसे करों में कमी या सरकारी व्यय में व द्धि या दोनों प्रकार की क्रियाओं द्वारा IS वक्रों के समूह को दाईं ओर सरका (IS'_3, IS'_2, IS'_1) देती है। मुद्रा की मात्रा (M_s) स्थिर रहते हुए गहरी रेखा वाले LM वक्रों के समूह टूटी रेखा वाले IS'_3, IS'_2 तथा IS'_1 को G, H तथा J बिन्दुओं पर काटती है। इन बिन्दुओं के आधार पर नया AD वक्र AD′ प्राप्त किया जा सकता है। यह AD′ पूर्ति वक्र AS को पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर पर काटता है जैसा पहले देखा गया है।

अब यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि AD वक्र में व द्धि करके AD′ को अकेले मुद्रा विस्तार या अकेले राजकोषीय विस्तार द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तथा पूर्ण रोज़गार उत्पादन का स्तर प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ ही यदि कुछ मौद्रिक विस्तार तथा कुछ राजकोषीय विस्तार करके भी AD′ वक्र को प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु कौन सी नीति का कम तथा अधिक प्रयोग करना है यह अर्थव्यवस्था के आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो इस बात का निर्धारण करते हैं कि

कौन सी नीति कितनी प्रभावी (Effectiveness of Monetary or Fiscal Policy) **है।**

REVIEW QUESTIONS

1. Derive Aggregate supply and Demand curves in the Keynesian model with variale price level.
2. Is full employment equilibrium possible when wage rate and price level are flexible.
3. Explain the wage price flexibility and the Interest Rate Effect on full employment equilibrium.
4. Explain the effect of monetary fiscal policy effect on full employment under Keynesian model with variable price level.

SELECTED READINGS

Ackely, Gardner, Macroeconomics–Theory and Policy, New York, Macmillan, 1978

Ackley, Gardner (1978), Macroeconomics–Theory and Policy, Chapter

Shapiro, Edward, Macroeconomic Analysis : Galgotia Publication, Pvt. Limited, New Delhi.

Shapiro, Edward Macroeconomic Analysis : Galgotia Publication, Pvt. Limited New Delhi.

Richard T. Froyen, Macroeconomics : Theory and Policies, Chapter-8.

●●●

Unit-1I

अध्याय-10
उपभोग के सिद्धांत
(Theories of Consumption) या
आय तथा उपभोग के मध्य सम्बन्ध
(Income-Consumption Relationship)

उपभोग व्यय कुल मांग का सबसे बड़ा भाग है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में 65 प्रतिशत से अधिक माँग उपभोग व्यय से जनित होती है। सभी अर्थशास्त्री इस बात पर एक मत है कि उपभोग व्यय आय के स्तर पर निर्भर करता है। परन्तु आय तथा उपभोग के मध्य संबंध के प्रति उनमें निम्न तथ्यों के आधार पर बड़ा मतभेद रहा है :

(1) आय और उपभोग के मध्य संबंध अनुपातिक है या गैर-अनुपातिक ? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में लम्बे समय से मतभेद रहा है। इस मतभेद को उपभोग पहेली (Consumption Puzzle) के नाम से जाना जाता है।

(2) उपभोग कौन सी आय का फलन है ? क्या यह वर्तमान आय, सापेक्षिक आय, स्थाई आय या जीवन चक्र आय पर निर्भर करता है। इस प्रश्न ने आय तथा उपभोग सम्बन्धी विभिन्न सिद्धांतों को जन्म दिया, जिनका अध्ययन बारी-बारी से इस आध्याय में किया गया है।

उपभोग फलन पहेली
(Consumption Function Puzzle)

जिस उपभोग फलन की चर्चा केन्ज ने की है उसकी आकृति सरल रेखीय (Linear) है। यह सरली रेखीय उपयोग फलन केन्ज द्वारा प्रस्तुत किया गया था जो शीर्ष- अक्ष के धनात्मक भाग से शुरु होता है। अर्थात् इस उपभोग फलन पर शून्य आय पर भी धनात्मक उपभोग (a_0) जैसा निम्न चित्र द्वारा दर्शाया गया है बना रहता है।

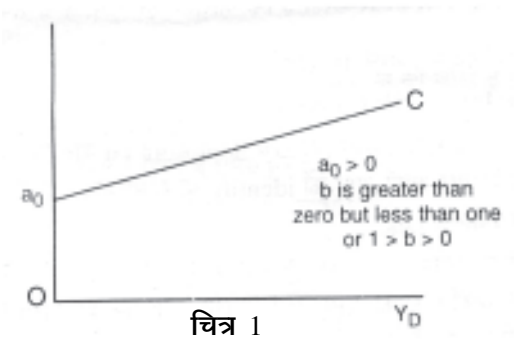

चित्र 1

$C = a_0 + bY_d; a_0 > 0, 1 > 0$ .... (1)

चित्र 1 द्वारा दर्शाये गये उपभोग फलन ($C = a_0 + bY_d$) पर a_0 धनात्मक उपभोग (शून्य आय पर) होने के कारण औसत उपभोग प्रवति (APC) हमेशा सीमान्त उपभोग प्रवति (MPC) से अधिक रहेगी। MPC (b) स्थिर है अर्थात् उपभोग फलन का ढाल $\left(\frac{\Delta C}{\Delta Y}\right)$ स्थिर है। यह एक सरल रेखा (Linear) द्वारा दर्शाया गया है। हम जानते है कि :

अध्याय. 11

स्थाई आय परिकल्पना

(Permanent Income Hypothesis)

उपभोग संबंधी स्थाई आय परिकल्पना मिल्टन फ्राईडमैन ने 1957 में अपनी पुस्तक 'A Theory of the Consumption Function' में प्रतिपादित की। इस परिकल्पना के अनुसार लोगों का उपभोग व्यय उनकी लम्बे समय की उपभोग संबंधी योजना के अन्तर्गत किया जाता है। वास्तव में किसी समय उपभोग खर्च उसी समय की निरपेक्ष आय (current of measured income) पर निर्भर नहीं करता। जैसे यदि किसी व्यक्ति को मासिक आय पहली तिथि को प्राप्त होती है तो यह आशा नहीं की जाती कि वह अपनी सारी आय पहली तिथि को ही उपभोग पर खर्च कर डालेगा और बाकी दिनों उसका उपभोग शून्य रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने उपभोग को निरन्तर (Smooth) बनाये रखना चाहता है, न कि एक दिन बहुत अधिक उपभोग और बाकी दिनों भूखा रहे। इसका अर्थ यह हुआ कि महीने के किसी एक दिन का उपभोग उसकी उस दिन की आय से नहीं बल्कि प्रतिदिन औसत आय (Average Daily Income) से संबंधित है। यदि आय प्राप्ति की समय अवधि 6 महीने, एक वर्ष या एक सप्ताह हो तब भी यही तथ्य लागू होता है। फ्राईडमैन के अनुसार उनका उपभोग लम्बी समय अवधि के अन्तर्गत उनको प्राप्त होने वाली आय के आधार पर आयोजित किया जाता है। अर्थात् उनका उपभोग खर्च दीर्घकाल तक स्थाई आय (Permanent Income) पर निर्भर करता है। यह तथ्य वास्तविकता के अधिक नज़दीक मालूम पड़ता है। यहां दो प्रश्न उत्पन्न होते है : (1) वर्तमान उपभोग (Current Consumption) और स्थाई आय (Permanent Income) के मध्य सही संबंध क्या है ? (2) स्थाई आय कैसे मापी जाती है।

उपभोग और स्थाई आय के मध्य संबंध जानने से पहले स्थाई आय का अर्थ जानना जरुरी है। फ्राईडमैन के अनुसार स्थाई आय किसी उपभोक्ता इकाई की औसत (Mean) आय है जो उसकी दूरदर्शिता और समय क्षितिज (time horizon) पर निर्भर करती है।[1] फ्राईडमैन स्थाई आय को एक परिवार के कुल धन, जिसमें उसका मानवीय श्रम और भौतिक धन सम्मिलित होता है, पर प्राप्ति की दर (Rate of return on wealth) मानता है। धन पर यह प्राप्ति की दर निम्न समीकरण द्वारा प्राप्त की जा सकती है।[2] इस समीकरण में W एक परिवार का कुल वास्तविक धन है जो स्थाई बना रहता है। धन से भविश्य में प्राप्त होने वाली आशंसित आय, Y^e_1 (एक वर्ष बाद आशंसित आय है), दूसरे वर्ष के बाद प्राप्त होने वाली आशंसित आय, $Y^e_{1.2}$ तथा अंतिम वर्ष के आद प्राप्त होने वाली आशंसित आय $Y^e_{1.n}$ को दर्शाता है। r कटौती की वह वार्षिक दर है जो भविष्य में प्राप्त होने वाली आय को वर्तमान धन W, के बराबर करता है।

$$W = \frac{Y^e_1}{1+r} + \frac{Y^e_{1.2}}{(1+r)^2} + \ldots + \frac{Y^e_{1.n}}{(1+r)^n} \qquad \ldots\ldots (1)$$

अब एक परिवार की स्थाई आय (Permanent Income, Y_p) निम्न प्रकार से प्राप्त की जा सकती है।

$$Y_p = rW \qquad \ldots\ldots(2)$$

स्थाई आय धन से प्राप्त होने वाली भविष्य की आशंसित आय का भारयुक्त/ औसत (weighted average) होती है।[3]

एक परिवार की वर्तमान आय (measured income, Y) उसकी स्थाई आय से कम या अधिक या समान हो सकती है। दोनों के मध्य यह अंतर अस्थाई आय (Transitory income, Y_t) के कारण उत्पन्न होता है। वर्तमान आय की स्थाई आय पर अधिकता धनात्मक अस्थाई आय कहलाती है और वर्तमान आय जितनी स्थाई आय से कम है नकारात्मक अस्थाई आय कहलाएगी। जब वर्तमान आय स्थाई आय के समान है तो अस्थाई आय शून्य होगी। इनके संबंध को निम्न समीकरण द्वारा प्रकट किया जा सकता है :

$$Y = Y_p + Y_t \text{ or } Y_t = Y - Y_p$$

अस्थाई आय (Y_t) सकारात्मक, नकारात्मक व शून्य हो सकती है। जब यह शून्य होती है तो $Y = Y_p$ होगी। परन्तु यदि Y_t लाटरी आदि से आय के कारण सकारात्मक है तो $Y = Y_p$ और यदि व्यवसाय में अचानक हानि के कारण Y_t नकारात्मक है तो $Y < Y_p$ होगी।

Ando-Modigliani की तरह फ्राईडमैन का विश्वास था कि उपभोक्ता अपने उपभोग खर्च को निरन्तर एक जैसा (Smooth) बनाये रखना चाहता है। इसलिए लोगों का एक स्थाई उपभोग खर्च (C_p) होता है जो Y_p से आनुपातिक संबंध रखता है।

$$C_p = hY_p$$

एक व्यक्ति के स्थाई उपभोग (C_p) का स्थाई आय से अनुपात (h) कई बातों पर निर्भर करता है, जैसे ब्याज दर, व्यक्तिगत रुचि, व्यक्तिगत आशंसित आय मे परिवर्तन आदि। यदि ब्याज दर ऊँची रहती है तो h का मूल्य कम होगा, क्योंकि लोग बचत बढ़ा देंगें। 17 वर्शों के आँकड़ों के आधार पर फ्राईडमैन ने h के मूल्य को .88 पाया। फ्राईडमैन के अनुसार सभी

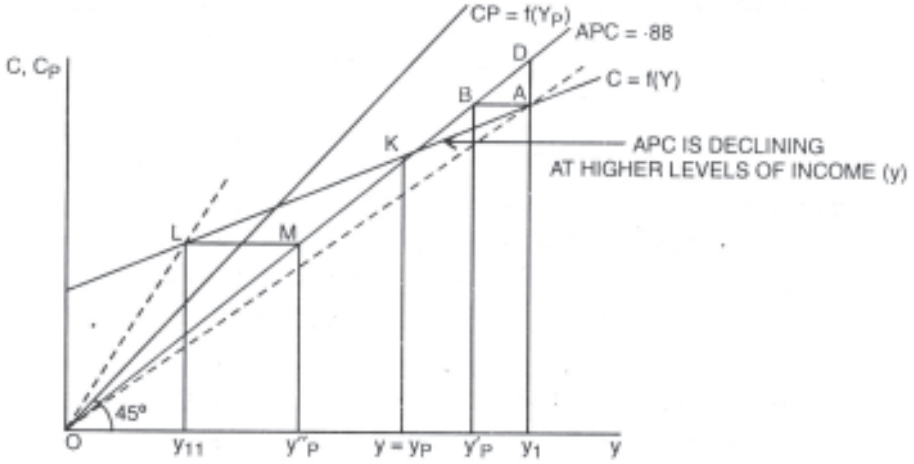

चित्र 6

आय श्रेणी के लोगों का औसत स्थाई उपभोग (C_y) स्थाई आय से समान अनुपात बनाये रखता है। इसलिए प्रत्येक आय श्रेणी के लोगों का स्थाई उपभोग (C) उनकी औसत स्थाई आय (Y_p) और h का गुणनफल होता है।

फ्राईडमैन के अनुसार स्थाई उपभोग के अतिरिक्त वर्तमान उपभोग (Measured Consumption), C और अस्थाई उपभोग (C_t)

भी होता है। वर्तमान उपभोग स्थाई उपभोग (C_p) और अस्थाई उपभोग (C_t) योग होता है।

$$C = C_p + C_t$$

परन्तु इस सिद्धांत की मान्यता अनुसार अस्थाई उपभोग (C_t) शून्य होता है इसलिए वर्तमान उपभोग (C) स्थाई उपभोग (C_p) के समान होता है, $C = C_p$.

उपरोक्त व्यक्त की गई तीन प्रकार की आय व तीन प्रकार के उपभोग के मध्य संबंध निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है। फ्राईडमैन के अनुसार आय श्रेणी के लोगों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। मध्यम आय श्रेणी के व्यक्ति, मध्यम से अधिक अर्थात् उच्च श्रेणी के व्यक्ति व मध्यम के कम व निम्न आय श्रेणी के व्यक्ति। मध्यम आय श्रेणी में वे लोग आते है जिनकी अस्थाई आय (Y_t) शून्य होने के कारण $Y = Y_t$ द्वारा दर्शाया गया है। उच्च आय श्रेणी के व्यक्तियों की वर्तमान व स्थाई आय मध्यम आय वाले व्यक्तियों की आय से अधिक होती है। उनकी सकारात्मक अस्थाई आय (Y_t) नकारात्मक अस्थाई आय ($-Y_t$) जो अचानक किसी हानि के कारण उत्पन्न हो सकती है से अधिक होती है। इस श्रेणी के अधिकतर लोगों की अस्थाई आय धनात्मक व कुछ की नकारात्मक अस्थाई आय होती है। इसलिए उच्च आय श्रेणी वाले लोगों की वर्तमान आय (Y) स्थाई आय (Y_p) से अधिक होती है। ($Y > Y_P$) $Y = Y_p - Y_t$ चित्र 6 में उच्च श्रेणी के लोगों की वर्तमान आय को Y_1 द्वारा दर्शाया गया है। निम्न आय वर्ग में वे लोग सम्मिलित है जिनकी नकारात्मक अस्थाई आय सकारात्मक अस्थाई आय से अधिक है। अधिकतर लोग नकारात्मक अस्थाई आय व कम लोग नकारात्मक अस्थाई आय वाले होते है।

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्तियों का स्थाई उपभोग उनकी स्थाई आय पर निर्भर करता है, जैसा कि चित्र में स्थाई उपभोग फलन, $C_p = f(Y_p)$ द्वारा दर्शाया गया है। इस फलन पर सभी आय वर्ग के लोगों की औसत उपभोग प्रव ति APC स्थिर रही है जिसका मूल्य फ्राईडमैन के अनुसार .88 है अर्थात् $h\,(APC) = .88$

परन्तु वर्तमान उपभोग फलन (measured consumption funtion), $C = f(Y)$ पर APC Y के बढ़ने अर्थात् उच्च आय श्रेणी के लोगों की APC आय के बढ़ने के साथ गिरती जाती है औ Y के कम होने अर्थात् औसत के कम आय श्रेणी के लोगों की APC आय के गिरने के साथ बढ़ती जाती है। ऐसे उपभोग फलन पर जो ृशीर्ष अक्ष के किसी धनात्मक मूल्य से ृगुरु होता है (Consumption function with a positive intercept) Y के बढ़ने पर APC को गिराता है।

चित्र अनुसार जब मध्यम आय श्रेणी के लोगों की $Y = Y_p$ है तो उनका वर्तमान उपभोग (C) उनके स्थाई उपभोग (C_p) के समान होगा, जिसको K द्वारा प्रकट किया गया है। परन्तु जब वर्तमान आय (Measured Income) बढ़कर Y_1 होती है तो उपभोग खर्च Y_1D न होकर Y_1A निर्धारित होगा क्योंकि वर्तमान उपभोग फलन (Measured Consumption function) $C = f(Y)$ है न कि $C_p = f(Yp)$ । Y_1 आय श्रेणी वाले लोगों की अस्थाई आय, (Y_t) धनात्मक है, परन्तु अस्थाई आय इस सिद्धांत के अनुसार उपभाग को प्रभावित नहीं करती। इसलिए उनका वर्तमान उपभोग, Y_1A स्थाई उपभोग (C_p), Y'_pB के समान होगा। Y'_pB स्थाई उपभोग Y'_p स्थाई आय पर ही सम्भव है। इसलिए यहाँ अस्थाई आय Y'_p और Y_1 के अंतर के समान धनात्मक, ($Y_t = Y - Y_p$) है।

इसी प्रकार जब औसत आय श्रेणी से कम आय वाले लोगों की वर्तमान आय (Y) अस्थाई आय के नकारात्मक होने के कारण Y_{11} हो तब उनका वर्तमान उपभोग वर्तमान उपभोग फलन के अनुसार $Y_{11}L$ होगा, क्योंकि अस्थाई आय उपभोग को प्रभावित नहीं करती। इसलिए $C = C_p$ होगा अर्थात् स्थाई उपभोग Y''_pM होगा जो Y''_p स्थाई आय पर ही सम्भव है जैसा कि स्थाई उपभोग फलन $C_p = f(Y_p)$ बताता है।

इस प्रकार स्थाई आय परिकल्पना के अनुसार लोगों का स्थाई उपभोग उनकी स्थाई आय पर निर्भर करता है और इनके मध्य सम्बन्ध (APC = .88 आनुपातिक है। परन्तु उनका वर्तमान उपभोग (Measured consumption) वर्तमान आय पर निर्भर करता है जैसे कि वर्तमान उपभोग फलन द्वारा दर्शाया गया है। वर्तमान आय व वर्तमान उपभोग के मध्य संबंध गैर-आनुपातिक है। क्योंकि L बिन्दु पर APC A बिन्दु की APC की अपेक्षा अधिक है। टूटी रेखाओं का ढाल भी बता रहा है कि L बिन्दु पर APC अधिक है और A बिन्दु पर कम।

आलोचना

इस सिद्धांत की निम्न त्रुटियां व्यक्त की जाती है :

(1) 1970 के आस-पास किये गये उपभोग संबंधी अध्ययनों से सिद्ध होता है कि लोगों का उपभोग वर्तमान आय पर ही निर्भर करता है न कि उनकी स्थाई आय पर। परन्तु देखा जाये तो फ्राईडमैन इस सत्य को नहीं ठुकराता बल्कि इसका समावेश अपने वर्तमान उपभोग फलन के माध्यम से अपनी परिकल्पना में कर लेता है।[1] R.C. Bird ने अपने लेख, A Further test of the Strict Permanent income Hypothesis'[2] में सिद्ध किया कि उपभोग वर्तमान आय पर ही निर्भर करता है।

(2) स्थाई आय को धन पर औसत प्राप्त आय की दर पर निर्भर होता माना है जिसको निकालना कठिन कार्य है।

(3) स्वभाव से व्यक्ति इतना विवेकशील और दूरदर्शी नहीं है जितनी इस सिद्धांत से आशा की गई है।

(4) यह सापेक्ष आय सिद्धांत की अवहेलना करता है।

अध्याय 12

जीवन चक्र परिकल्पना

(The Life Cycle Hypothesis)

केन्ज़ द्वारा प्रतिपादित सरल उपभोग फलन, जिसको Standard Consumption Function भी कहा जाता है, व्यक्त करता है कि एक दिए हुए समय मे व्यक्ति का उपभोग उसकी उस समय की आय पर निर्भर करता है। परन्तु जीवन चक्र परिकल्पना, जिसका प्रतिपादन Franco Modigiliani[1] ने किया, के अनुसार व्यक्ति उपभोग संबंधी दीर्घकालीन योजना इस प्रकार बनाते है ताकि वे अपने उपभोग खर्च को बाकि बचे जीवनकाल पर समान रुप से वितरित कर सकें और अपने उपभोग व्यय जो बढ़ता हुआ भी हो सकता है को कायम रख सके। ऐसा करने से व्यक्ति अपने कुल उपभोग खर्च से अधिकतम सन्तष्टि प्राप्त कर सकेगें। क्योंकि सेवाकाल मे प्राप्त आय को सेवाकाल के दौरान ही उपभोग खर्च करना और बाद में भूखे रहना सम-सीमांत तुष्टिगुण के नियम के अनुसार अधिकतम सन्तुष्टि देने वाला नहीं हो सकता। व्यक्ति अपनी सारी वर्तमान आय को उपभोग पर खर्च नहीं करते बल्कि उसका कुछ भाग मुख्यतः इसलिए बचाते है ताकि यह उनकी सेवा निव ति के बाद बुढापे (old age) में उपभोग का साधन बन सके। यह सिद्धांत एक अर्थव्यवस्था पर बचत संबंधी टिप्पणी देने में भी सक्षम है। अर्थात् इस सिद्धांत के अनुसार एक देश में बचत कितनी है यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस अर्थव्यवस्था में किस आयु वर्ग के लोग अधिकतर है। यदि सेवानिव त व्यक्ति अधिक है तो अर्थव्यवस्था का बचत स्तर भी कम होगा। ज्यों ही एक परिवार का आय स्तर बदलता है तो उसके उपभोग खर्च पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है ?

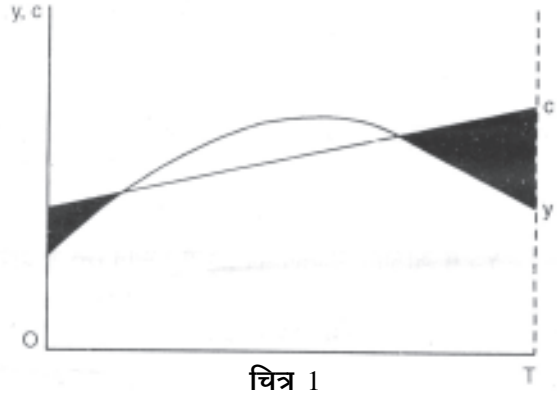

चित्र 1

जीवन-चक्र परिकल्पना भी स्थाई परिकल्पना की तरह व्यक्त करता है कि उपभोग खर्च वर्तमान आय पर निर्भर नही करता बल्कि दीर्घकाल या जीवन-पर्यन्त आशंसित आय के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति के जीवन-चक्र पर द ष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति के किसी एक वर्ष के उपभोग का उस वर्ष की आय से बहुत कम संबंध है। Ando Modigliani के अनुसार एक व्यक्ति की आय धारा (Y) इस प्रकार की होता है कि कार्यकाल के प्रारम्भ और अन्त में यह कम परन्तु मध्य में अधिक होती है। परन्तु उसका उपभोग स्तर (C) जीवन-पर्यन्त स्थाई या बहुत धीरे बढ़ रहा होता है जैसा कि चित्र 4 में दर्शाया गया है। इसलिए कार्यकाल के प्रारम्भिक और अन्तिम वर्षो में उसका उपभोग आय से अधिक होता है जिसको निम्न चित्र में छायादित किया गया है। परन्तु मध्यम वर्षो में आय का स्तर उपभोग से अधिक होता है जो बचत को उत्पन्न करता है। बचत द्वारा एक तो वह कार्यकाल के प्रारम्भिक वर्षो में उपभोग के लिए ली गई उधार को चुकाता है, दूसरे वह इसी समय की बचत से जीवन के अन्तिम वर्षो के दौरान किये गये उपभोग खर्च को पूरा करता है।

जीवन के अन्तिम वर्षो में उपभोग व्यय आय से अधिक होता है जिसको वह उधार लेकर पूरा नहीं करता बल्कि अपनी भूतकाल की बचत को उपभोग पर खर्च करता है। इस सिद्धांत के अनुसार जो व्यक्ति अपने कार्यकाल के प्रारम्भिक वर्षो में है उनका उपभोग आय अनुपात $\left(\frac{C}{Y}\right)$ या औसत उपभोग प्रव ति APC अधिक होगी। इसी प्रकार जीवन के अन्तिम वर्षो

अध्याय 13

निवेश का वर्तमान मूल्य सिद्धांत

(Present value crierisis for Investment)

निवेश का वर्तमान मूल्य कटौती सिद्धांत

(Present Discounted value (PDV) of Investment Theory)

विभिन्न आय के निर्धारण संबंधी सिद्धांतों से ज्ञात होता है कि निवेश (i) आय ;ल्द्ध निर्धारण का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। आर्थिक क्रियाओं में उतार-चढ़ाव के लिए निवेश व्यय में परिवर्तन को ही जिम्मेवार पाया गया। विश्वव्यापी मन्दी के दौरान निवेश स्तर गिर कर लगभग 3 प्रतिशत रह गया था। मुद्रा स्फीति में गिरावट की दर 20 प्रतिशत तक पाई जाती है। उपभोग व्यय आमतौर पर स्थिर रहता है इसलिए मांग में परिवर्तन के लिए निवेश का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है कि निवेश किस तत्त्व पर निर्भर करता है ?

निवेश स्तर का निर्धारण करते समय एक फर्म अन्य बातों के अतिरिक्त बाजार में प्रचलित ब्याज की दर (r) को ध्यान में रखती है, क्योंकि r निवेश किये जाने वाले फण्ड (Fund) की लागत है। यह लागत स्पष्ट (Explicit cost) होती है यदि निवेश किया गया फण्ड उधार लिया गया हो। यदि निवेशित फण्ड स्वयं की बचत से प्राप्त है तो यह लागत निहित लागत (Implicit cost) कहलाती है।

निवेशक को यह जाँच करनी पड़ती है कि किसी प्लांट पर निवेश करने के बाद भविष्य के व र्गों में जो इस प्लांट के कार्यकाल में आय प्राप्ति के आशा (R) है उसको ब्याज की दर (r) पर कटौती करने के बाद निवेश लाभकारी है या नहीं। कटौती करने के बाद जो शुद्ध आय प्राप्त होती है उसमें प्लांट की लागत (C) को घटाने के बाद जो मूल्य प्राप्त होता है वह वर्तमान कटौती मूल्य (Discounted Value) कहलाता है।

Present Discounted Value (PDV) = D*r* - C

D*r* = Discounted returns at *r*.

PDV को प्राप्त करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$PDV_t = \frac{R_{t+1}}{1+r} + \frac{R_{t+2}}{(1+r)^2} + \ldots + \frac{R_{t+n}}{(1+r)^n} - C$$

एक प्लांट 5, 8, 15 या ज्यादा वर्गों तक कार्य करके शुद्ध आय देता है। PDV प्राप्त करने के लिए विभिन्न वर्षों की शुद्ध आय को r से कटौती करनी होगी। उदाहरणतः यदि कोई व्यक्ति किसी प्लांट में 100 रु० निवेश करता है और एक वर्ष बाद 110 रु० की शुद्ध आय प्राप्त करने की आशा करता है तो उसे यह निर्णय करना पड़ेगा कि एक वर्ग बाद प्राप्त होने वाले 110 रु० की आज वर्तमान में क्या मूल्य है। मान लीजिए ब्याज की दर (r) 10 प्रतिशत है। उसे ज्ञाज है कि 100 रु० ब्याज पर देने के बाद उसे एक वर्ष बाद ब्याज सहित 110 रु० प्राप्त हो सकेगें। वह व्यक्ति एक दम से निष्कर्ष निकालेगा कि एक वर्ष बाद प्राप्त होने वाले 110 रु० की वर्तमान कीमत 100 रु० या कटौती मूल्य शून्य है। इसलिए वह निवेश कर भी सकता

अध्याय 14

निवेश मॉग

(INVESTMENT DEMAND)

पुंजी की सीमान्त उत्पादकता तथा निवेश

(MARGINAL ELLIUINCU OF CAPITAL AND INVESTMENT)

निवेश कुल माँग का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपकरण है। अल्पकाल के दौरान अपभोग व्यय आमतौर पर स्थिर रहना है। इसलिए निवेश व्यय में परिवर्तन के द्वारा ही कुल माँग में परिवर्तन किया जा सकता है। विभिन्न व्यापार चक्रों के पीछे निवेश स्तर में हुए परिवर्तन ही जिम्मेदार पाये गये है। जैसे विश्वव्यापी मन्दी के अन्तर्गत विकसित देशों का निवेश व्यय गिरकर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 3 प्रतिशत रह गया था। मन्दी की अवस्था से छुटकारा पाने के लिए निवेश में व द्धि जरूरी थी। परन्तु निजी निवेश मन्दी की अवस्था मे लाभ की दर कम होने के कारण नहीं बढ़ पर रहा था। इस अवस्था में केन्ज के सुझाव अनुसार सरकारी व्यय को बढ़ाना अति आवश्यक समझा गया क्योकि यह निजी निवेश के लिए उद्दीपन (Pump priming) का कार्य करेगा अर्थात् सरकारी व्यय में व द्धि से वस्तुओं की माँग बढ़ेगी जो कीमतों को बढ़ायेगी जिस कारण लाभ बढ़ेगें जो निजी निवेश को बढ़ाने के लिए अनिवार्य है।

निवेश का महत्त्व एक और तथ्य से भी ज्ञात होता हैः

ज्यों ज्यों आय का स्तर बढता है त्यों त्यों उपभोग इतना नहीं बढ़ता है जितनी आय बढ़ती है। इसलिए बचत बढ़ती चली जाती है। बढ़ती बचत को यदि बढ़ते निवेश का का रूप नहीं दिया गया तो कुल माँग में कमी होना आवश्यंभावी है। इसलिए कुल माँग को कुल पूर्ति के बराबर बनाये रखने के लिए निवेश को बचत के अनुसार बढाना अति आवश्यक है।

1 निवेश के प्रकार (Kinds of Investment)

निवेश व्यय के प्रकारो को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) **वास्तविक व वित्तीय निवेश** (Real and Financial Investment)

जब किसी नई कम्पनी की स्थापना पर व्यय केया जाता है। जिससे उत्पादन रोजंगार में व द्धि होती है तो उसे वास्तविक निवेश कहा जायेगा। जैसे कोई व्यक्ति किसी नई कम्पनी के हिस्से खरीदता है तो यह वास्तविक निवेश कहलायेगा। क्योकि इससे देश के उत्पादन व रोजगार में वुद्धि होती है।

इसके विपरीत वित्तीय निवेश वह होता है तिससे केवल स्वामित्व बदलता है जैसे किसी पुरानी चली आ रही कम्पनी के हिस्से कोई निवेशकत्त खरीदता है तो देश के उत्पादन व आय में कोई परिवर्तन नहीं होता है क्योकि वह कम्पनी तो पहले से ही उत्पादन करती आ रही है।

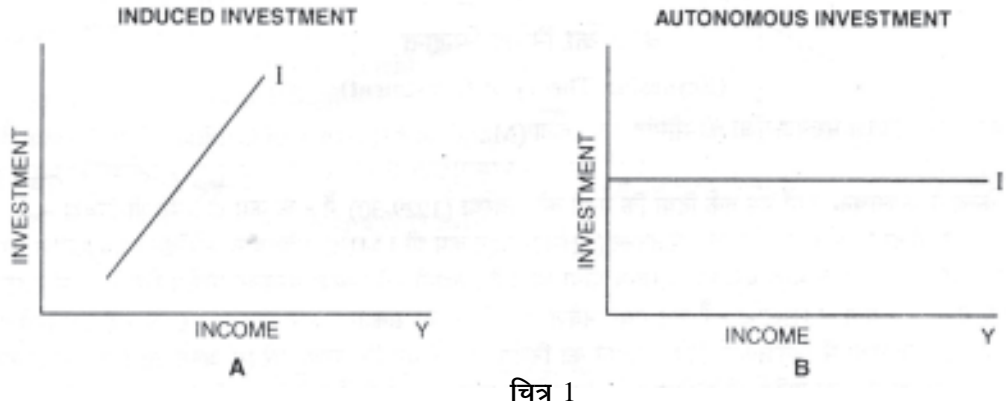

चित्र 1

(2) **प्रेरित निवेश और स्वायत निवेश** (Induced Investment and Autonomous Investment)

प्रेरित निवेश आय लोचशील (Income elestic) होता है क्योंकि ऊँची आय स्तर पर वस्तुओं की माँग अधिक होती है जिससे कीमतें बढती है तथा लाभ की दर भी बढ जाती है। एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अधिकतर निवेश लाभ की पेरणा से ही किया जाता है। इसलिए प्रेरित निवेश अधिकतर निजी निवेश (Private Investment) के रूप में ही होता है, जिसका उद्देश्य लाभ कमाना ही होता है। आजकल की मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में कुछ सरकारी उद्यम भी व्यवसायिक स्वरूप वाले होते हैं और लाभ की दर बढ़ने पर निवेश बढ़ा देते है। इसलिए ऐसे सरकारी निवेश (Public Investment) भी प्रेरित निवेश का रूप धारण कर लेते है और आय का स्त्रोत बनते हैं।

स्वायत निवेश (Autonomous intestment) आय या उत्पादन के स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र रहता है। स्वायत निवेश मुख्यतः सरकार द्वारा किया जाता है। इसका उदेश्य आथिक, सामाजिक कल्याण को बढाना होता है न कि लाभ को बढ़ाना (Prof. Hansen) के अनुसार 'स्वायत निवेश अधिकतर जनसंख्या के बढने, नये क्षेत्रों का विकास करने व नये अविष्कार को कार्यान्वित करने के के लिए किया जाता है। ''निम्न चित्र 1 के भाग 'क' में प्रेरित निवेश और भाग 'ख' में स्वायत निवेश दर्शाये गयें है जो स्वतः स्पष्ट है।

(3) **कुल निवेश व शुद्व निवेश** (Gross Investment and Net Invesyment)

अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को कायम रखने और उसे बढाने के लिए किसी निश्चित समय अवधि के अन्तर्गत जो खर्च किया जाता है। उसे निवेश कहते है। इसका सम्बन्ध समय इकाई के साथ होने के कारण यह प्रवाह चर कहा जाता है। उत्पादन क्षमता के द ष्टिकोण से निवेश को दो भागों, जैसे कुल निवेश (Gross Investment) और शुद्व निवेश (Net Investment) में विभक्त किया जाता है। एक अर्थव्यवस्था के पूँजीगत पदार्थो जैसे मशीन, औजार, प्लांट अदि कर उतपरदल प्रकिया में पहले से अधिक प्रयोग करना पुँजीगत पदार्थे के स्टॉक (Investories) में वुद्वि करना और विद्यमान पुंजीगत पदार्थो को कायम (Maintenance) रखने पर खर्च खर्च करना कुल निवेश (Gross Investment) कहलाता है। मशीनों की घिसाई पिटाई व टूट-फूट (Depreciation) को दूर करने के लिए किया गया खर्च तथा पुरानी मशीनो (obsolete) मशीनों के स्थान पर नई मशीनो को लगाने आदि पर जो खर्च होता है (Replacement Investment) उसको कुल निवेश से धटाने पर जो निवेश प्राप्त होता है वह शुद्व निवेश (Net Investment) कहलाता है। उत्पादन क्षमता में व द्वि के लिए शुद्व निवेश का धपात्वक होना अत्यावश्यक है।

$$In = Ig - Ir$$

अर्थात कुल निवेश (Ig) में से विस्थापित निवेश (Repllacement Investment) ,Ir को धाटाने पर शु, निवेश(In) प्राप्त होता है। देश के उत्पादन, आय व रोजगार बढाने के लिए (Ig > Ir) का होना अनिवार्य हैं In के धनात्मक होने पर न केवल पूंजीगत पदार्थे का (Durable Consumer goods)स्टॉक भी बढता है।

(4) **व्यावसायिक, आवासीय और स्टॉक निवेश (Business, Residential and Inventory Investment)**

कुल निवेश को वयावसायिक निवेश, आवासीय निवेश और स्टॉक निवेश के रूप में भी विभजित किया जा सकता हैं विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में व्यावसायिक निवेश सबसे अधिक और कम उतार चढाव वाला पाया गया है। इडवर्ड स्पीरो के अनुसार स्टॉक निवेश (Inventory incestment) सबसे अस्थिर होता है। मन्दी की अवस्था में यह नकारात्मक भी हो सकता है। क्योकि उद्यमी ऐसे समय में स्टॉक बढाने की बजाय धटना पसन्द करते है। भवनो के निर्माण आदि पर किया गया व्यय आवासीय निवेश कहलाता है जो समान्यतः स्थिर रहता है। यह तीनों प्रकार का निवेश अलग अलग कारको पर निर्भर करता है इसलिए कोई सामान्य सिद्वान्त नहीं है जो सभी पर लागू हो सके।

व्यवसायिक निवेश (Business Investment) एक अर्थवयवस्था में प्लॉट, मशीनों और औजारों में वुद्वि करता हैं । यह कुल निवेश का लगभग दो तिहाई होता है। इस अध्याय में व्यावसायिक निवेश का ही अध्ययन किया गया है।

(5) निवेश और पूंजी (Invesyment and Capital)

निवेश को प्रतिवर्ष दर के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसलिए यह प्रवह चर है जबकि निवेश से उत्पन्न होने पूँजी स्टॉक कहलाती है क्योकि यह किसी समय बिन्दु पर मापी जाती है। पूँजी शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं परन्तु समष्टिगत अर्थशास्त्र में निवेश और पूंजी के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पूंजी से अभिप्राय प्लॉट, मशीनो, औजारों, आदि के भण्डार में व द्वि करने से है। यदि एक अर्थव्यवस्था में कुल निवेश उत्पादन प्रकिया में लगें पुंजीगत पदार्थो की टूट फूट के बराबर है तो पूंजी सटॉक में कोई वुद्वि नहीं होगी क्योकि शुद्व निवेश शुन्य निवेश का तात्पर्य है पूंजी स्टॉक में वुद्वि होना। पूँजी स्टॉक में व द्वि उत्पादन क्षमता को बढाती है।

केन्ज़ का निवेश सिद्वान्त

(Keynesian Thoeory of Investment)

केन्ज़ के अनुसार निवेश मुख्यतः पूंजी की सीमांत उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) पर निर्भर करता है। ब्याज की दर (r) निवेश को प्रभावित करने वाल दूसरा महत्वपूर्ण मत्व है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार r निवेश का प्रमुख निर्धारक तत्व है। परन्तु केन्ज ने अलोचना करते हुए कर्म दिया कि मन्दी की अवस्था (1929-30) में के कम होने पर भी कनवेश नहीं बढ सका क्योकि अपेक्षित लाभ कही दर या पूंजी की सीमांत उत्पादकता (MEC) बहुत कम थी। (MEC) भविष्य में अपेक्षित व्यावसायिक आयांसाओं पर निर्भर करती है और इन दोनों के मध्य धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। उद्यमी नये निवेश सम्बन्धी निर्णय लेने से पहले MEC और के मघ्य तुलना करते है। यदि MEC है तब नया निवेश नहीं किया जा सकता। और यदि MEC > r है तब नया निवेश नही किया जा सकता और यदि MEC > r है तब निवेश बढाना लाभकारी होता है। इस अबस्था में निवेशकर्ता निवेश बढाने का निर्णय लेंते है क्सरेकि उनका उदेश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। मन्दी की अवस्था में लाभ प्रावति की दर सम्बन्धी आशा या MEC कम होती है इसी कारण निवेश कम कर दिया जाता है या नहीं बढता है।

पूँजी की सीमांत उत्पादकता

(Marginal Efficiency of Capital) (MEC)

MEC सामान्यतः वह अपेक्षित लाभ की दर (Expected Rate of Profitability) है जो किसी नये पूँजीगत पदार्थ (मशीन आदि) को लगााने के उपरान्त प्राप्त होती है। केन्ज़ के शब्दों में, " It is that rate of discount of the prospective yield from a new capital asset during its life time that makes it equal to the supply price." ! किसी नये पूँजीगत की खरीद से उत्पन्न होने वाली MEC का निर्धारण दो बातों पर निर्भर करता है : (1) नया पूँजीगत पदार्थ अपने कार्यकाल में किसी प्रत्यासित आय (Prospective yield) प्रदान करता है। (2) इस नये पूँजीगत पदार्थ की खरीद कीमत (Purchase price) जिसको केन्ज़ ने पूर्ति कीमत (supply price) की संज्ञा दी है वह कितनी है।

निवेशक निवेश करने से पहले इन दोनों के मध्य तुलना करते रहते हैं और यदि पूर्ति कीमत प्रत्याशित आय से कम है तो निवेश किया जा सकता है। क्योंकि MEC यहाँ धनात्मक है। MEC का धनात्मक होना निवेश में व द्वि की अनिवार्य शर्त है परन्तु पर्याप्त नहीं। क्योंकि निवेशक ब्याज दर (r) की तुलना MEC से करने के बाद ही निवेश सम्बन्धी निर्णय लेते हैं।

अनेक्षित आय (Prospective Yield)

किसी नये पूँजीगत पदार्थ के कार्यकाल में प्रतिवर्ष जो शुद्ध आय प्राप्त होने की आशा होती है इसके योग को उस पूँजीगत पदार्थ या मशीन की अपेक्षित आय (PY) कहलाती है। यह शुद्ध आय कुल आय में से सभी लागतें जैसे कि श्रम लागत, परिवहन लागत, कच्चे माल की लागत आदि (ब्याज की दर छोड़ कर) को घटाने के बाद प्राप्त होती है। अपेक्षित आय को सही-सही मापना कठिन है, इसका केवल आशाओं के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है। एक वर्ष की अपेक्षित शुद्ध आय अन्य वर्षो की अपेक्षित आय से भिन्न हो सकती है। अतः इसको निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है :

$$PY = R_1 + R_2 + R_3 + ... + R_n$$

or $PY =$

पूर्ति कीमत (Supply Price)

पूर्ति कीमत (C) किसी पुरानी मशीन के स्थान पर वैसी ही नई मशीन की खरीद कीमत क्या है वह मशीन की पूर्ति कीमत कहलाती है। अर्थात् किसी पुरानी मशीन की पूर्ति कीमत वह कीमत नहीं हे जिस पर यह मशीन खरीदी गई थी, बल्कि वह कीमत है जिस पर वैसी ही नई मशीन वर्तमान में खरीदी जा सकती है।

अपेक्षित आय और पूर्ति कीमत की जानकारी के आद हम निम्न सूत्र द्वारा MEC का माप कर सकते हैं। जैसा हम जानते हैं कि MEC वह दर है जिस पर यदि PY (Prispective Yield) की कटौती की जाये तो उसे यह नई मशीन की पूर्ति कीमत (C) के बराबर बना देता है :

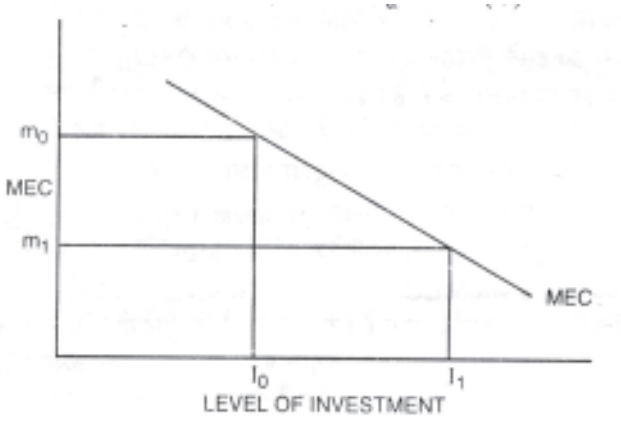

चित्र 2

$$C = \frac{R_1}{1+m} + \frac{R_2}{(1+m)^2} + \frac{R_n}{(1+m)^N}$$

M=MEC ; C= Supply Price;

R= Prospective Yield

MEC निवेश में व द्धि के साथ गिरती जाती है और इस प्रव ति को निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया गया है।

चित्र 2 से स्पष्ट है कि जब निवेश का स्तर I_0 है तो MEC m_0 दर से प्राप्त होती है और जब यह बढ़ कर I_1 होता है तो MEC गिर कर m1 हो जाती है। ऐसा क्यों होता है?

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के गिरने के कारण
(Causes for the Declinging MEC)

केन्ज़ के अनुसार MEC के गिरने के निम्न कारण हैं :

1. लागतों में व द्धि (Increase in Costs)

ज्यों-ज्यों निवेश का स्तर बढ़ता जाता है उत्पादन के साधनों जैसे श्रम, भुमि, पूँजी, आदि की माँग बढ़ती रहती हैजो इन उपादानों की कीमतों को बढ़ा देती है। इस कारण उत्पादन लागत में व द्धि होते रहने से लाभ की आशाएं कम होती जाती हैं। अर्थात् ज्यों-ज्यों निवेश का स्तर बढ़ता है त्यों-त्यों MEC गिरती रहती है।

2. वस्तुओं की कीमतों में गिरावट (Fall in Prices of Goods)

अधिक निवेश होने से उत्पादन अधिक होगा। इस कारण ब़ाजार में वस्तुओं की कुल पूर्ति बढ़ जाती है। इसलिए कस्तुओं की कीमतें गिरने की सम्भावना बनी हिती है। क्योंकि व्यक्तियों की सीमांत उपभोग प्रव त्ति (MPC) इकाई से कम होती है, इसलिए उपभोग पदार्थो की माँग इतनी नहीं बढ़ परती जितनी उनकी आय में व द्धि होती ह। अतः मँाग में कमी होने की सम्भावना बनी रहती है।

3. स्थानीय सेवाओं की कीमतों में व द्धि (Increase in the Prices of Local Services)

निवेश के बढ़ते रहने से नई-नई उत्पादन इकाइयां स्थतित

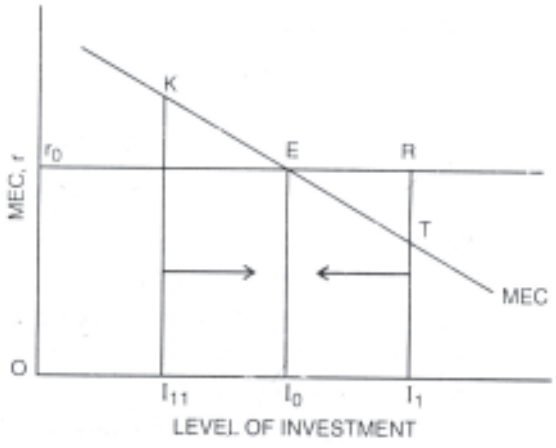

चित्र 3

होती रहती हैं जो परिवहन, पानी व चालक शक्ति की माँग को बढ़ाती रहती हैं। इस कारण उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

इस प्रकार जब निवेश बढ़ाया जाता है तो उत्पादन लागत बढ़ती जाती है। परन्तु वस्तु की कीमत कम होती जाती है क्योंकि माँग इतनी नहीं बढ़ पाती। ऐसी परिस्थिति में निवेश के बढ़ने पर MEC कम होगी और निवेश कम होने से यह अधिक होगी।

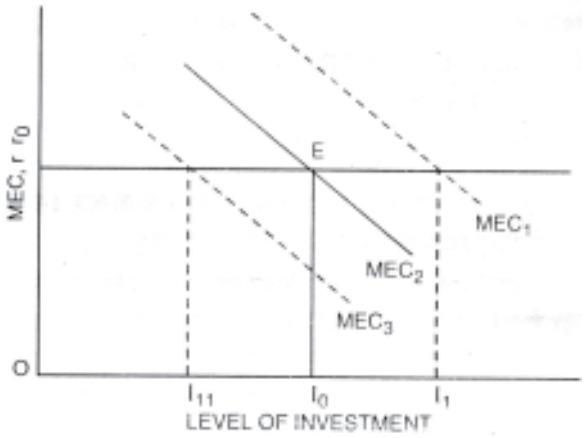

चित्र 4

निवेश करने का निर्णय (Decision to Invest)

निवेश करने का निर्णय अकेले MEC के आधार पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि उद्यमियों को निवेश की जाने वाली राशि पर व्याज भी वहन करना पड़ता है। यदि MEC > r है तब निवेश बढ़ा दिया जाता है और यदि MEC < *r* है तब निवेश नहीं बढ़ाया जा सकता बल्कि कम कर दिया जाता है। निवेश का सन्तुलित स्तर वहाँ स्थापित होता है जहाँ MEC = *r* होता है जैसा निम्न चित्र द्वारा दर्शाया गया है।

उपरोक्त चित्र 3 दर्शाता है कि I_0 निवेश का सन्तुलित स्तर I_0 स्थापित होता जहाँ MEC = *r* है। पब निवेश का स्तर बढ़ कर I_1 होता है तो MEC = I_1T होती है परन्तु चित्र में है, इस लिए निवेश कम करने का निर्णय किया जाता है क्योंकि यहाँ हानि हो रही है। इसके विपरीत जब निवेश का स्तर मक होकर I_{11} होता है तो इस पर MEC > *r* है। इससे उद्यमियों को लाभ होता है तथा वे निवेश बढ़ाने का निर्णय लेने है। अतः I_0 निवेश का स्तर ही सन्तुलित स्तर है क्योकिं यहां बिन्दु पर MEC = *r* है।

व्यावसायिक आशंसाओं (Business Expectation) में व द्धि होने से स्थिर r_0 पर निवेश स्तर MEC के बढ़ने पर बढ़ जाता है और MEC के गिरने पर निवेश कम हो जायेगा जैसा कि चित्र 4 मकं दर्शाया गया है। यह सम्भव है कि विदेशी माँग में व द्धि होने व लोगों की उपभोग प्रव त्ति बढ़ने देता है जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

परन्तु सदि MEC वक्र स्थिर रहे और *r* में व द्धि हो तो निवेश स्तर गिर जायेगा यदि *r* कम होता है तो I बढ़ जायेगा।

MEC को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors affecting MEC)

MEC को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को अल्पकालीन व दीर्घकालीन तत्त्वों के रुप में निम्न प्रकार से विभक्त किया जा सकता है :

अल्पकालीन तत्त्व

(1) उपभोग प्रव त्ति में परिवर्तन। इसके बढने से MEC बढती है।

(2) आय में परिवर्तन। आय के बढने से भी MEC बढती है।

(3) विदेशी माँग में परिवर्तन। इसके बढ़ने से MEC बढती है।

(4) आशावादी व निराशावादी वातावरण। यदि उद्यमी भविष्य के प्रति आशावादी हैं। तो MEC बढेगी।

(5) लागतों, वस्तुओं की कीमतों व माँग में परिवर्तन। लागतों के बढने का MEC पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

दीर्घकालीन तत्त्व

(1) जनसंख्या में परिवर्तन

(2) उत्पादन तकनीक में परिवर्तन

(3) पूँजी स्टॉक में परिवर्तन

(4) नई भू-भाग को विकसित करना।

पूँजी का स्टॉक और निवेश दर

(Stock of Capital and Rate of Investment)

निवेशक अपने लाभ को अधिनियम करने के लिए पूँजी स्टॉक में समन्वय (Adjustment) करते रहते हैं। यह सम्भव है कि किसी समय बिन्दु पर वर्तमान पूँजी स्टॉक (Existing capital stock) वांछित पूँजी स्टॉक (Desired capital stock) से कम या ज्यादा हो। वांछित पूँजी स्टॉक वह पूँजी का संग्रह है जिसको फर्मे दीर्घकाल में अपने पास रखना चाहती हैं ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। वांछित पूँजी स्टॉक वर्तमान पूँजी स्टॉक से अधिक होने पर कम्पनियां मशीनों, औजारों, फैक्टरी, बिल्डिंग आदि के निर्माण के लिए नये निर्देश पेश करती हैं। इस प्रकार वे वांछित पूँजी स्टॉक प्राप्त होगा यह निवेश अर और वांछित तथा वर्तमान पूँजी स्टॉक के मध्य अन्तर पर निर्भर करता है।

अतिरिक्त पूँजी प्राप्त व उसका प्रयोग करने के लिए फर्म को निवेश बढ़ाना पड़ता है। अतिरिक्त पूँजी के प्रयोग की लागत को पूँजी की प्रयाग लागत (Rental cost of captial or user cost of capital) के नाम से जाना जाता है। व्याज दर को पूँजी की प्रयोग लागत कहा जाता है। परन्तु आगे चलकर इस प्रयोग लागत में घिसाई-पिटाई (Depreciation charges) को भी शामिल किया जाता है।

प्रयोग लागत की कुछ धारणाएं

पूँजी की प्रयाग लागत (user cost) को लगान लागत (Rental cost) भी कहा जाता है। एक निवेशक जब पूँजी का प्रयाग करता है तो उसे व्याज लागत (i_c) ही जहीं बल्कि पूँजीगत साधनों जैसे मशीन आदि पर टूट-फूट (Depreciation charage) भी सहन करने पड़ने हैं। इसलिए :

$R_c = i + d$; i = interest cost

d = depreciation cost ; R_c = Rental Cost

वास्तविक ब्याज की दर (Real Rate of Interest)

जब एक व्यक्ति या संस्था मुद्रा उधार देती है तो उसे वर्षिक व्याज दर प्राप्त होती है परन्तु साथ ही कीमतें बढ़ने पर उधार दी गई राशि का वास्तविक मुल्य गिर जाता है। इसलिए व्याज के रुप में प्राप्त वास्तविक आय कम हो जाती है। उदाहरणतः यदि व्याज दर 20 प्रतिशत है और मुद्रा स्फीति दर भी 20 प्रतिशत है तो वास्तविक व्याज दर शुन्य होगी, क्योंकि एक वर्ष के लिए उधार दिये गये 100 रु॰ प्राप्त होगा। परन्तु 20 प्रतिशत ही मुद्रास्फीति होने के कारण 120 रु॰ की क्रय शक्ति घटकर 100 रु॰ के बराबर होगी। इसलिए वास्तविक व्याज दर (Ir) प्राप्त करने के लिए मौद्रिक व्याज दर (i) में से मुद्रा स्फीति दर घटानी होगी :

I_r= i -; = Rate of inflation

इस प्रकार अब हम पूँजी की लगान लागत (Rental cost) या प्रयोग लागत को अच्छे ढंग से व्यक्त कर सकते हैं

$R_c = I_r + d = i + D$

वांछित पूँजी संग्रह और निवेश दर का सम्बन्ध

(Relationship between Desired Capital Stock and Rate of Investment)

यदि व्याज दर और MEC एक दूसरे के बराबर हों तो वांछित और वर्तमान पूँजी स्टॉक समान होंगे। परन्तु यदि व्याज दर कम हो जाए सा MEC वक्र ऊपर की सरक जाए तो दोनों अवस्थाओं में वांछित पूँजी का स्टॉक वर्तमान पूँजी स्टॉक से अधिक होगा। मान लीजिए MEC वक्र स्थिर रहता है परन्तु व्याज दर गिर जाती है - परिणामतः वांछित या ईष्टतम (optimum) पूँजी स्टॉक वर्तमान पूँजी स्टॉक से अधिक होगा। और यदि व्याज की दर बढ़ जाती है तो इसके विपरीत होगा जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है। यदि व्याज दर r_0 से गिरकर r_1 हो जाता है तो वांछित पूँजी संग्रह (K^*) K_0^* से बढ़कर K_1^* हो जाता हो जाता है। अब फर्म के सामने प्रश्न है कि वर्तमान पूँजी स्टॉक (K) को वांछित पूँजी स्टॉक (K_1^*) तक कैसे पहुँचाया जाए ? फर्म इस अन्तराल को जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहेगी। फर्म इस अन्तराल को एक ही समय में पुरा क्यों नहीं कर लेती ? यदि नहीं तो कितना समय लगेगा ?

इस अन्तराल को पूरा करने में समय लगता है क्योंकि इसके लिए निवेश का आयोजन करना पड़ता है। मशीनों व भवनों के लिए नये निर्देश पेश किए जाते हैं। नई मशीनों का उत्पादन होता है और तब कभी वास्तविक स्टॉक में व द्धि हो पाती है। इस अवस्था को निवेश पिछलगा (Investment Lag) भी कहा जा सकता है। दूसरा प्रश्न : वांछित पूँजी स्टॉक और वर्तमान पूँजी स्टॉक के अन्तराल को पूरा करने के लिए कितना समय लगेगा यह दो बातों पर निर्भर करता है :

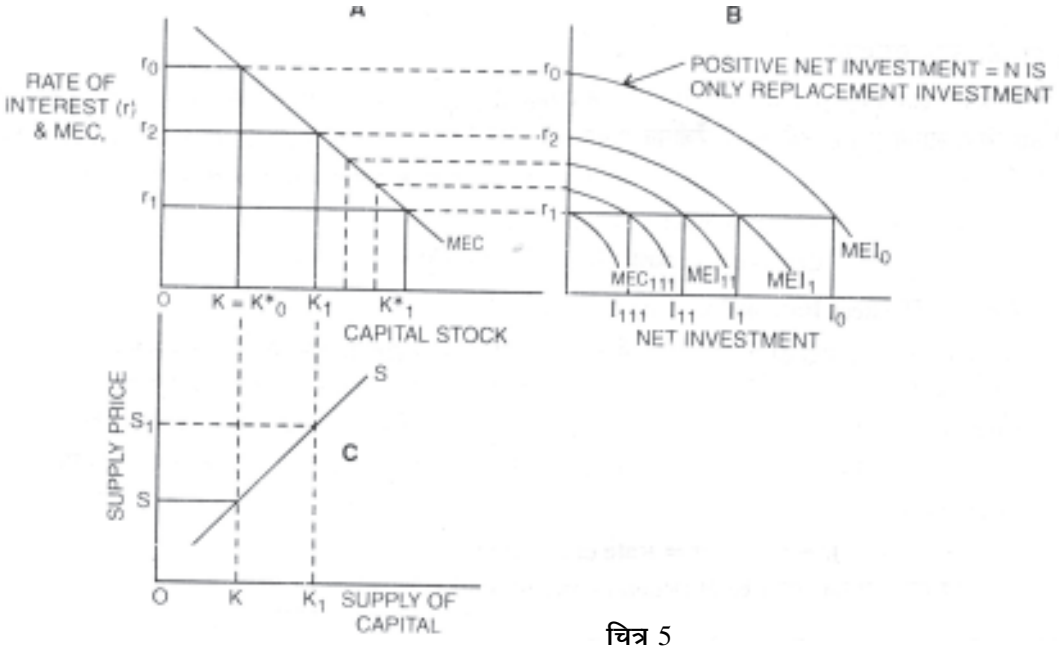

चित्र 5

(1) यह अन्तराल कितना बड़ा है ?

(2) एक समय अवधि में इस अन्तराल का कितना बड़ा भाग पूरा किया जा सकता है ?

इन प्रश्नों का हल चित्र 5 से प्राप्त किया जा सकता है। निम्न चित्र के बायें भाग में दर्शाया गया है कि दिए हुए MEC वक्र पर जब ब्याज दर r_0 होती है तो वांछित और वर्तमान पुँजी टॉक एक दूसरे के बराबर ($K= K_2^*$) हैं, क्योंकि यहाँ MEC = r है। MEC और ब्याज दर समान होने के करण यहाँ (Net Investment) शून्य है। अब यदि ब्याज दर गिरकर r_1 हो जाए तो MEC ब्याज दर से बधिक होगी। (MEC > r) । इसलिए वांछित पूँजी स्टॉक K_1^* होगा। r_1 ब्याज की दर पर शुद्ध निवेश I_0 है जिसको दाई ओर के चित्र मे निवेश की सीमान्त एत्पादकता (EMI) वक्र द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसलिए वर्तमान पूँजी स्टॉक बढ़ेगा जो बढ़ कर नीचले भाग में K_1 स्तर प्ररप्त करता है। स्पष्ट है कि जब दोनों पूँजी स्टॉकों के मध्य अन्तर और वर्तमान पूँजी स्टॉकों के मध्य अन्तर कम रहने के कारण MEI वक्र नीचे की ओर सरक कर MEI_0 से MEI_1 वक्र बन जाता है। K_1 वर्तमान पूँजी स्टॉक पर शुद्ध निवेश शून्य हो सकता है यदि ब्याज दर r_2 क्योंकि तब $K = K^*$ होगा। इस प्रकार r_1 पर दाई ओर के चित्र में शुद्ध शून्य है।

परन्तु वास्तव में ब्याज गिरकर r_1 हो चुका है जिस पर शुद्ध निवेश I_1 होगा जैसा कि चित्र का भागा B दर्शा रहा है। I_1 निवेश वर्तमान पूँजी स्टॉक में व द्धि करेगा परन्तु I_1 से कम। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक $K^* = K$ नहीं हो जाता।

चित्र का भाग C दर्शा रहा है कि पूँजी की पूर्ति पूँजी लागत का बढ़ता फलन है। इसका मुख्य कारण MEI अर्थात् निवेश का कम उत्पादक होने जाना है- इसका कारण उपादानों (जैसे भुमि, श्रम, कच्चा माल आदि) की कीमतें बढ़ना व उत्पादन की कीमतें अनेक्षाकृत कम बढ़ना है।

REVIEW QUESTIONS

1. What is investment ? Explain the various kinds of investment.
2. Explain Keynesian Theory of Investment determination.
3. Show the relationship between stock of capital and rate of investment.

SELECTED READINGS

Edward shapiro, Macroeconomic Analysis, Ch.9 & 13

G. Ackley, Macroeconomic Theory & Policy, Ch. 17

Dornbusch & Fischer, Macroeconomic, Ch. 6

अध्याय-15

निवेश के त्वरक का सिद्धान्त

(Investment Theory of Accelerator)

निवेश माँग और उत्पादन में व द्धि (Investment Demand and Output Growth)

केन्ज़ीयन क्रान्ति के बाद (Post Keynesian era) **उत्पादन में परिवर्तन को ब्याज दर की अपेक्षा निवेश का मुख्य निर्धारक तत्व माना गया। उत्पादन में व द्धि का निवेश पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रमुख हैं :** (1) **साध ाारण त्वरक** (Naive Accelerator theory) **और** (2) **लचकीला त्वरक सिद्धान्त** (Flexible Accelerator Theory) :

साधारण त्वरक

(The Naive Accelerator)

वास्तव में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन केन्ज़ से पहले किया गया। साधारण त्वरक के अनुसार आर्दश पूँजी स्टॉक हमेशा उत्पादन से एक स्थिर आनुपातिक (V) **सम्बन्ध रखता है इस सिद्धान्त में कल्पना की गई है कि वांछित पूँजी स्टॉक में व द्धि तुरन्त की जा सकती है। इसको निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।**

$$K^*=VY_t \qquad \text{.....(i)}$$

V = **पूंजी-उत्पादन अनुपात** (Capital-output Ratio)

समीकरण (1) **में** K^* **पूंजी का आर्दश स्टॉक प्रकट करता है। जिसका सम्बन्ध वर्तमान समय** (*t*) **से है।** Y_t **वर्तमान उत्पादन को दर्शाता है। कल्पना की गई है कि** V **स्थिर रहता है। समीकरण** (1) **व्यक्त करता है कि ज्यों उत्पादन बढ़ता है पंजी स्टॉक** V **गुणा से बढ़ता है उत्पादन** (Y) **में परिवर्तन के कारण आर्दश पूंजी स्टॉक में परिवर्तन होता है जिसको उत्पादन में परिवर्तन** (Y) **के रूप में प्रकट किया जा सकता है। अर्थात भूतकाल और वर्तमान आय के मध्य अन्तराल के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।**

$$K_t^* - K_{t-1}^* = VY_t - VY_{t-1} \qquad \text{.....(ii)}$$

$$= V\left(Y_t - VY_{t-1}\right)$$

or $$K_t^* - K_{t-1}^* = V\Delta Y_t$$

यह कल्पना करने पर कि आर्दश पूंजी स्टॉक (K^*) **के समान होता है तो** K^* **के स्थान पर समीकरण मे** K **रखा जा सकता है। शुद्ध निवेश** (N) **में परिवर्तन के कारण ही पूँजी स्टॉक में परिवर्तन आता है। इसलिए समीकरण** (2) **के माध्यम से शुद्ध निवेश निर्धारित किया जा सकता है :**

$$I_n = K_t - K_{t-1} = V\Delta Y_t \qquad \text{.....(iii)}$$

हम जानते हैं कि

क्योंकि हमेशा $K^* = K$ होता है इसलिए नियोजित निवेश (I_t^*) के बराबर होगा। समीकरण (3) दर्शा रहा है कि शुद्ध निवेश में व द्धि के लिए उत्पादन का बढ़ना अनिवार्य है। क्योंकि यदि Y= शून्य है तब शुद्ध निवेश भी शून्य होगा (In = zero.) किसी समय जब कोई अर्थव्यवस्था अपने उत्पादन फलन के अधिकतम सम्भव बिन्दु पर होती है अर्थात उत्पादन का सीमान्त उत्पादन भी शून्य होता है तो वहाँ शुद्ध निवेश भी शून्य होगा। ध्यान रहे कुल निवेश यहाँ भी ध्नात्मक होगा क्योंकि घिसाई-पिटाई का खर्च (Replacement investment) तो करना ही पड़ता है ताकि पूँजी स्टॉक का वर्तमान आकार में कायम रखा जा सके। यह खर्च पूँजी स्टॉक का विशेष अनुपात होता है।

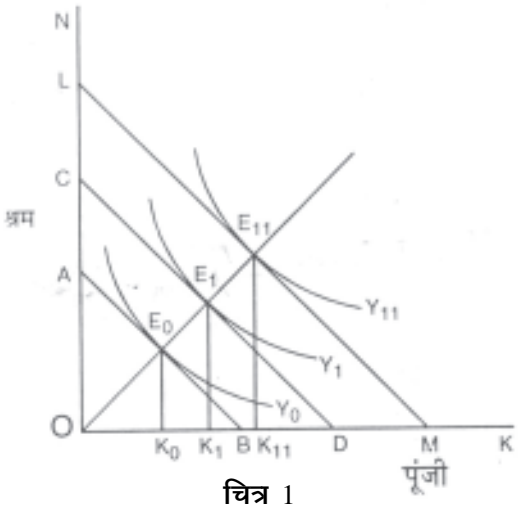

चित्र 1

समान प्रतिफल के अन्र्तगत जब उत्पादन बढ़ता है तो पूँजी स्टॉक कैसे बढ़ता है ? इसको समोत्पादन रेखाओं (Isoquants) की सहायता से साधन कीमतों को स्थिर मानते हुए निम्न चित्र में दर्शाया गया है। चित्र 1 में शीर्ष-अक्ष (N) मापा गया है और क्षितिज अक्ष पर पूँजी (K) मापी गई है। AB, CD और LM सम-लागत (iso-cost lines) रेखाएं हैं तथा Y_0, Y_1, Y_{11} समोत्पान वक्र हैं।

अर्थव्यवस्था में सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ AB सम लागत रेखा उच्चतम सम्भव सम-उत्पादक वक्र Y_0 से बढ़ कर Y_1 होती है। तो सन्तुलन प्राप्त करने के लिए पूँजी स्टॉक को K_1 किया जायेगा। निम्नतम उत्पादन लागत के सूत्र को लागू करते हुए सन्तुलन E_1 पर स्थापित होगा जहाँ CD समलागत रेखा Y_1 सम-उत्पादन रेखा को स्पर्श करती है। इसी प्रकार जब उत्पादन बढ़कर Y_2 होता है तो अर्थव्यवस्था K_{11} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करती है। स्पष्ट है कि उत्पादन समान प्रतिफल की दर से बढ़ रहा है जैसा कि सम-उत्पादक वक्रों की दूरी समान है। इसलिए शुद्ध निवेश और पूँजी स्टॉक भी समान दर से बढ़ रहे हैं। यह मान्यता की गई है कि प्रत्येक समय अवधि में पूँजी स्टॉक का श्रेष्ठतम प्रयोग किया जाता है यह एक तुलनात्मक स्थैलिक विश्लेषण है। परन्तु निवेश एक गत्यात्मक (Dynamic Phenomenon) है।

इस प्रकार साधारण त्वरक कल्पना करता है कि फर्में हमेशा सन्तुलन में होती हैं, पूँजीगत पदार्थों की पूर्ति पूर्णतः लोचशील होती है और यह भी कल्पना की गई है कि विनेश का पिछड़ना (Investment lag) नहीं पाया जाता। पूर्ण उत्पादन क्षमता के प्रयोग की कल्पना भी की गई है। पूँजी स्टॉक को तुरन्त बढ़ाया जा सकता है इसका अर्थ है कि यह निवेश का स्थैतिक या तुल्नात्मक स्थैतिक अध्ययन है। परन्तु वास्तव में निवेश एक गयात्मक प्रक्रिया है। साधनों की सीमितता के कारण वांछित पूँजी स्टॉक का केवल एक भाग ही पूरा किया जा सकता है।

लचीला त्वरक सिद्धान्त

(Flexible Accelerator Hypothesis)

जिस ढंग से एक फर्म अपने वांछित और वर्तमान पूँजी स्टॉक के मध्य अन्तराल को पूरा करता है इससे सम्बन्धित बहुत से सिद्धान्त है। उन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लचीला त्वरक का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार वांछित और वर्तमान पूँजी फर्म की निवेश दर भी उतनी ही बड़ी होगी। साधनों की सीमितता के कारण सम्भवतः एक फर्म इस अन्तराल को एक वर्ष में पूरा नहीं कर समती। इसलिए किसी एक समय में वह अन्तराल के एक भाग (Y) को पूरा करने की योजना बनाती है। पिछले वर्ष के अन्त में जो पूँजी स्टॉक था को Kt-1 और वांछित पूँजी स्टॉक को K^* द्वारा प्रकट किया जाए तो फर्म इस प्रकार से योजना बनाती है कि वर्तमान समय के अन्त में जो पूँजी स्टॉक में व द्धि होगी को निम्न समीकरण (1) द्वारा दर्शाया जा सकता है :

$$K_t - K_{t-1} = \lambda\left(K^* - K_{t-1}\right) \quad \text{..... (i)}$$

प्रत्येक समय में फर्म इस प्रकार से निवेश करने की योजना बनाती है ताकि उस समय के पूँजी अन्तराल (K*1-K1-1) के एक भाग (y) को पूरा किया जा सके। समीकरण (1) को निम्न प्रकार से भी लिखा जा सकता है :

$$K_t = K_{t-1} = \lambda\left(K^* - K_{t-1}\right) \quad \text{..... (ii)}$$

स्पष्ट है कि पूँजी स्टॉक में अन्तराल (K*-Kt-1) को पूरा करने के लिए फर्म को जो शुद्ध धनात्मक निवेश (Net positive investment) करना होगा वह इस अन्तराल (Gap) के बराबर होगा।

$$I_n = K^* - K_{t-1} \quad \text{..... (iii)}$$

परन्तु साधनों की सीमितता के कारण जितना कुल शुद्ध धनात्मक निवेश चाहिए सारा पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए एक समय अवधि में जो शुद्ध धनात्मक निवेश किया जा सकता है इसको समीकरण (i) का ध्यान करते हुए निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है ।

$$I_n = \lambda\left(K^* - K_{t-1}\right) \quad \text{..... (iv)}$$

समीकरण (*iv*) से सपष्ट है कि वाछित पूँजी स्टॉक के मध्य अन्तर जितना ज्यादा होगा उतना ही ज्यादा शुद्ध धनात्मक निवेश होगा। प्रथम समय अवधि में यह अन्तराल ज्यादा होने के कारण शुद्ध निवेश भी अधिक होगा। हार अगली समय अवधि में यह पूँजी का अन्तराल कम-कम होता जायेगा इसलिए शुद्ध धनात्मक निवेश भी कम कम होता जायेगा। इसको एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है :

मान लीजिए $\lambda = .5, K^* = 20{,}000, K_{t-1} = 5{,}000$

$I_n = .5(20{,}000 - 5{,}000) = 7500$ होगा।

दूसरी समय अवधि में In पहले वाले शुद्ध धनात्मक निवेश (7500) से कम होगा। क्योंकि अब पिछले वर्ष के अन्त में पूँजी स्टॉक 5000 से बढ़कर 12500 (5000 + 7500) हो गया है। इसलिए पूँजी अन्तराल (K^*-K_{t-1}) 1500 से कम होकर केवल 7500 (20,000-12,500) रह गया है। इसलिए दूसरी अवधि में शुद्ध धनात्मक निवेश केवल 3750 होगा : .5 (20,000 - 12,500) ।

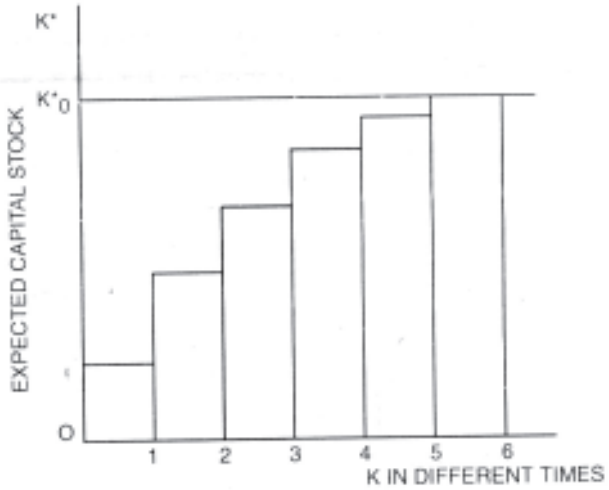

चित्र 2

इस प्रक्रिया के निरन्तर बने रहने पर अन्त में वांछित पूँजी स्टॉक वर्तमान पूँजी स्टॉक के बराबर हो जायेगा। इस लचीले व्वरक के अर्न्तगत निवेश का गत्यात्मक व्यवहार देखा जा सकता है, क्योंकि समीकरण (*iv*) में समयानुसार आर्थिक चर परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए यह निवेश सम्बन्धी विश्लेषण वर्तमान समय अवधि का ही नहीं बल्कि लम्बी समय अवधि का है। जिसमें आर्थिक चर परिवर्तित होते रहते हैं। एक समय अवधि का निवेश दूसरी समय अवधि के निवेश को प्रभावित करता है।

वांछित पूँजी स्टाक (K*) किसी समय बिन्दु पर वांछित उत्पादन पर निर्भर करता है। यदि वांछित उत्पादन ज्यादा है तो वांछित पूँजी स्टाक भी ज्यादा होगा, अन्यथा कम होगा। जैसा कि साधारण त्वरक सिद्धान्त दर्शाता है। अर्थात् वांछित पूँजी स्टाक वांछित उत्पादन और उत्पादकों की आशंसाओं पर निर्भर करता है जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) का भी निर्धारण करता है।

इस प्रकार निवेश भूतकाल के पूँजी स्टाक पर निर्भर करता है और भूतकाल का पूँजी स्टाक भूतकाल के उत्पादन पर निर्भर करता है। इसीलिए शुद्ध निवेश भी भूतकाल के उत्पादन व आय से सम्बन्धित हुआ। अतः निवेश में लचीलापन पाया जाता है।

लचीले त्वरक सिद्धान्त के अनुसार निवेश की घटती दर से व द्धि किस प्रकार वांछित और वर्तमान पूँजी स्टाक के अन्तराल को पूरा करती है निम्न चित्र की सहायता से देखा जा सकता है।

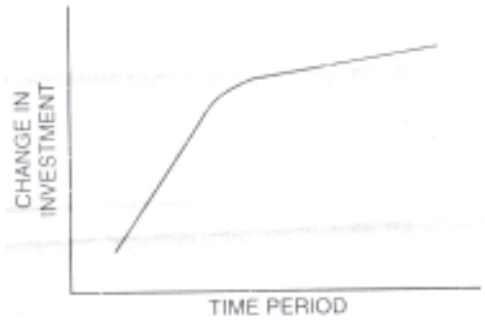

चित्र 3

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि समय 1 के अन्त में पूँजी अन्तराल (K^*-K_{t-1}) दूसरी समय अवधि के बाद इस अन्तराल का काफी बड़ा भाग पूरा कर लिया जाता है इसके उपरान्त अन्तराल का घटता भाग ही पूरा किया जाता है। समय अवधि -6 के बाद यह अन्तराल समाप्त हो जाता है।

पिछलगा निवेश (Lags in Investment)

उत्पादन में निवेश का पिछड़ना एक आम स्थिति पाई जाती है। जब वास्तविक शुद्ध निवेश कुछ कारणों के होने पर बढ़ते पूँजी स्टॉक की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने मे असफल रहता है तो वह पिछलगा निवेश (Investment Lag) कहा जाता है। उत्पादन के लिए मांग में व द्धि होने पर प्रक्रिया अधिक होती है।

1. **मशीन व प्लांट की अविभाजनशीलता**

उत्पादन की माँग में व द्धि होने पर कम्पनियों को अपना उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा प्राप्त होती है। वे अपने उत्पादन को बढ़ाते रहते हैं जब तक कि प्लांट की उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग नही हो जाता है। उसके उपरान्त भी उनकी वांछित पूँजी स्टॉक वास्तविक पूँजी स्टॉक से अधिक बना रहता है, परन्तु वे वांछित पूँजी स्टॉक प्राप्त करने के लिए निवेश नहीं बढ़ा सकते-क्योंकि मशीनों की उत्पादन क्षमता में अविभाजनशीलता पाई जाती है। बड़े आकार की मशीनों को खरीदना उनके लिए असम्भव होता है क्योंकि या तो मशीनों को खरीदने के लिए उनके पास साधन नहीं होते या वे इसे लाभकारी नहीं पाते। यह सम्भव है कि छोटे आकार की मशीनें जो इस पूँजी स्टॉक के अन्तराल को पूर्ण करने के लिए चाहिए बाजार में सम्भवतः उपलब्ध नही है। पूँजी स्टॉक में समन्वय की सारी प्रक्रिया समय लेती है। निवेश (Investment Lag) कहा जाता है।

2. **यह हो सकता है कि नये अन्वेशणों के कारण मशीनों की प्रयोग लागत** (Real interest rate + Depreciation) में काफी गिरावट आ जाये । अर्थात् श्रम की अपेक्षा काफी सस्ती हो जाती है। उत्पादन में पूँजी श्रम को विस्थापित करना आरम्भ कर देती है। परन्तु कम्पनियों के पास कई बार इतने वित्तीय साधन उपलब्ध नहीं होते की पूँजी स्टॉक मे व द्धि की आवश्यकता को सन्तुष्ट किया जा सक। इसका परिणाम भी पिछलगा निवेश होता है। पिछलगे निवेश की आयु (Longevity of Investment leg) इस बात पर निर्भर करती है कि मशीनों की प्रयोग लागत में गिरावट कितनी अधिक है और वित्तीय फण्ड कितनी मात्रा में उपल्बध है।

3. **पिछलगा निवेश उत्पादन बढ़ाने के प्रारम्भिक वर्षों में पिछलगा निवेश का आकार बड़ा होता है।** यह तथ्य लचीले त्वरक सिद्धान्त से सपष्ट होती है कि कम्पनियां इस अन्तराल को एक निश्चित भाग (d) ही पूरा करती हैं। बाद मे वर्षों में यह अन्तराल कम होता जाता है इसलिए पिछलगा निवेश भी संकुचित होता जाता है।

4. **सारे प्लांट का परिवर्तन**

कई बार मशीनों की प्रयोग लागता में काफी कमी हाने के कारण कम्पनियां सारे प्लांट को पूँ गहन बनाने को अधिक लाभकारी पाती हैं। इसके लिए काफी बड़ी मात्रा में निवेश करने की आवश्यकता होती है जो एक या दो वर्षों में निवेश तेजी से बढ़ता है और बाद क वर्षों में धीमी गति से बढ़ता है जैसा निम्न चित्र 3 द्वारा दर्शाया गया है।

●●●

अध्याय 16

निवेश का वित्तीय सिद्धान्त

(Financial Theory of Investment)

निवेश सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों में, चाहे वह निवेश का त्वरक सिद्धान्त या लाभ सिद्धान्त हो, सभी में निवेश का स्तर निवेश की सीमान्त उत्पादकता (MEI) वक्र और ब्याज की बाजार दर के द्वारा निर्धारित होता है। इन दोनों में से किसी एक में परिवर्तन होने से निवेश स्तर बदलता है। परन्तु निवेश निर्धारण का यह बहुत ही सरण विश्लेषण है तथा यह अपने आप में पूर्ण नही है। हम जानते हैं कि वास्तव में ब्याज की कोई एक दर प्रचलित नहीं होती बल्कि अनेक दरों पर उधार लिया और दिया जाता है। ये ब्याज की दरें उधार दी गई राशि की शर्तों, उधार राशि की मात्रा, समय अवधि, इस राशि का किया जाने वाला प्रयोग व उधार लेने वाले की विश्वसनीयता (Credit worthiness) आदि पर निर्भर करती हैं। इन तथ्यों के आधार पर ही ब्याज दर कम या अधिक निर्धारित की जाती हैं इसलिए बाजार में अनेक ब्याज की दरें प्रचलित होती हैं।

1. **आन्तरिक फण्डस** (Internal Funds)

इस फण्ड के अन्तर्गत कम्पनियों के अवितरित लाभ (undistributed profits) होते हैं जिनमें घिसाई-पिटाई के खर्च (Depreciation Charges) भी सम्मिलित होते हैं। व्यवहार में देखा जा सकता है कि आन्तरिक फण्ड निवेश के लिए वित्त का महत्त्वपूर्ण साधन रहा है।

2. **बाह्य फण्ड** (External Funds)

यह वह राशि है जिसको बैंकों और दूसरी वित्तीय संस्थाओं से उधार लिया जाता है। यह साधन विशेष रूप से अल्पविकसित अर्थव्यवसाओं में कम्पनियों के लिए वित्त ही महत्त्वपूर्ण स्त्रोत रहा है।

3. **शेयर फण्डस** (Equity Funds)

कम्पनियां अपनी निवेश सम्बन्धी वित्त की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए अपने हिस्से (Share) बेच देती हैं। जनात व वित्तीय संस्थाएं इन हिस्सों को खरीद लेती हैं और कम्पनी के पास फण्डस एकत्रित हो जाते हैं।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के इस सन्दर्भ में किए गये अध्ययन यह बताते हैं कि आन्तरिक फण्डस निवेश के लिए वित्त प्रदान करने वाला सबसे बड़ा स्त्रोत रहा है। 1970 में अमेरिकन अर्थव्यवस्था से लिये गये सम्बन्धित आंकड़े बताते हैं कि कुल निवेश का 61 प्रतिशत वित्त आन्तरिक स्त्रोत, 31 प्रतिशत बाह्य स्त्रोत और केवल लगभग 2 प्रतिशत हिस्सों (Equity shares) को जारी करके प्राप्त किया गया था। स्पष्ट है कि आन्तरिक स्त्रोत (Internal source) निवेश का सबसे बड़ा वित्तीय स्त्रोत है जो हमारी परम्परावादी विचारधारा (बाह्य स्त्रोत के विपरीत है।

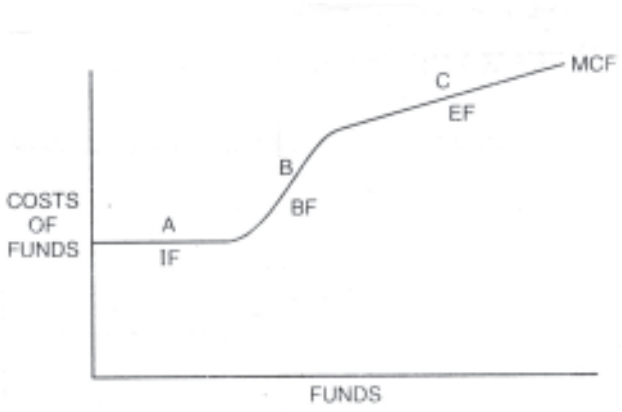

चित्र 1

इन स्त्रोतों से प्राप्त फण्डस की तुलनात्मक लागतों का अध्ययन किय जा सकता है। आन्तरिक फण्ड की

लागत अवसर लागत के रूप में जाँची जा सकती है जिसका माप इस बात से किया जा सकता है कि यदि यह फण्ड स्वयं प्रयोग न करके उधार दिया जाता तो कितनी ब्याज अर्जित किया जा सकता था। निवेश करने वाली फर्में अधिकतर गैर-वित्तीय

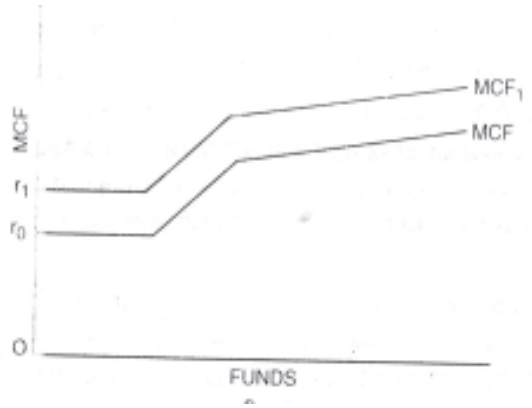

चित्र 2

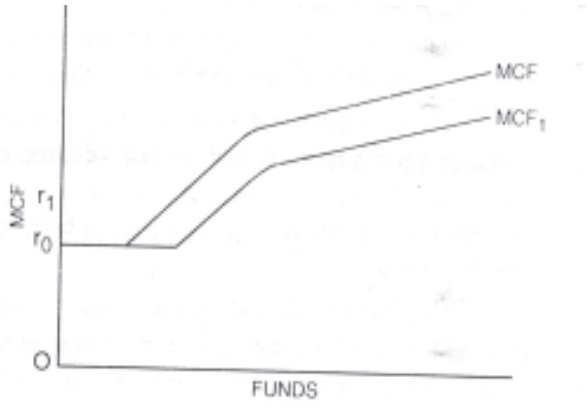

चित्र 3

संस्थायें (Non Financial Institution) होती हैं जब ये कम्पनियां उधार देती है जो इनको ब्याज की दरें प्राप्त होती हैं क्योंकि इनका विशिष्टीकरण वित्तीय व्यवसाय में नहीं होता। परन्तु जब ये कम्पनियां उधार लेती हैं तो ऊँचे ब्याज दर पर फण्डस प्राप्त होते हैं। इसलिए आन्तरिक फण्ड की निवेश में अवसर लोत कम से कम होती हैं।

आन्तरिक स्त्रोतों से फण्डस की आवश्यकता सन्तुष्ट न होने पर ये कम्पनियां बाह्य स्त्रोतों से फण्डस प्राप्त करती हैं। ज्यों-ज्यों एक फर्म ज्यादा ऋण लेती है तो बाह्य फण्ड की लागत बढ़ती जाती है। क्योंकि प्रारम्भ में एक फर्म वहाँ से उधार लेती है जहाँ से कम ब्याज की दर पर वित्त प्राप्त होता है। उसके बाद ज्यों एक कम्पनी अधिकाधिक बाह्य फण्ड उधार लेती जायेगी त्यों-त्यों इसकी लागत बढ़ती जायेगी क्योंकि ऋणदाता का जोखिम उधार की राशि के साथ बढ़ता जाता है बढ़े हुए जोखिम को पूरा करने के लिए ब्याज की दर भी बढ़ा दी जाती है।

शेयरों के माध्यम से एकत्रित किए गये फण्डस की लागत भी इनकी मात्रा के साथ बढ़ती जाती है। इतना ही नहीं, इन फण्डस की लागत बाह्य फण्डस की लागत से भी अधिक होती है। इसका कारण बाह्य फण्डस पर चुकाया गया ब्याज और हिस्सेदारों के मध्य वितरित किया गया लाभ के प्रभावों में भिन्नता होना है। जैसा कि करेदय आय (Taxable Income) निकालते समय ब्याज के रूप में चुकाई गई राशि को कुल आय में से घटा दिया जाता है, जबकि जो लाभ की राशि शेयर-होल्डरों के मध्य वितरित होती है करदेश राशि में सम्मिलित रहती है। अर्थात् लाभ की राशि पर भी फर्म को कर चुकाना पड़ता है। इसलिए निवेश के लिए बाह्य फण्डों (Borrowed Funds) के माध्यम के वित्त उपलब्ध करवाना शेयर फण्डों की अपेक्षा कम लागत वाला होता है यह स्थिति निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाती है।

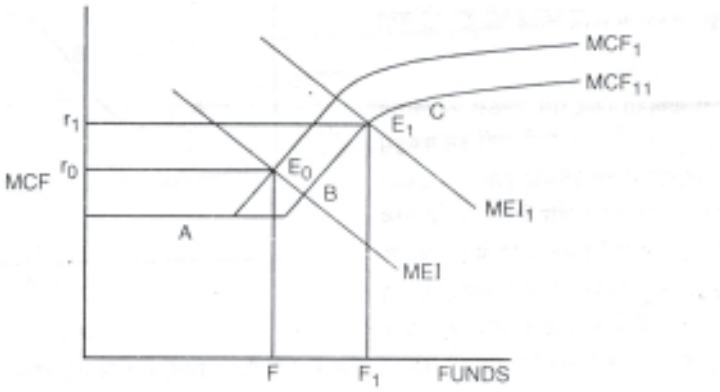

चित्र 4

चित्र 1 से स्पष्ट है कि आन्तरिक फण्डों (IF) की लागत सबसे कम और स्थिर हैं । बाह्य (BF) की लागत उससे अधिक ओर बढ़ती हुई (B) है। शेयर फण्ड (EF) की लागत सबसे अधिक भी है और बढ़ती हुई (C) भी। इनको जोड़ने पर फण्डों की सीमान्त लागत (MCF) वक्र प्राप्त होता है जो चित्र 1 में दर्शाया गया है।

Marginal Cost of Funds (MCF) वक्र ब्याज दर में परिवर्तन के साथ ऊपर या नीचे सरक सकती है यदि ब्याज दर (r)

में व द्धि होती है तो यह ऊपर की और यदि (r) में कमी होती है तो नीचे की ओर सरक जाता है जैसा कि चित्र 2 में दर्शाया गया है।

चित्र दर्शाता है कि ब्याज ज्यों r0 से r1 बढ़ जाता है तो MCF वक्र ऊपर सरक कर MCF1 बन जाता है

परन्तु MCF वक्र में यह परिवर्तन r के स्थिर रहते हुए भी हो सकता है। यह उस समय होता है जब आन्तरिक फण्ड का विस्तार संकुचन हो जाये। आन्तरिक फण्डस का विस्तार के कारण MCF वक्र नीचे की ओर सरक कर MCF1 बन जाता है जैसा चित्र 3 दर्शाया गया है।

MCF वक्र निवेश की सीमान्त उत्पादकता MEI वक्र के साथ मिलकर निवेश के स्तर का निर्धारण कर सकता है। जहाँ ये दोनों वक्र एक दूसरे को काट लेते हैं निवेश का स्तर निर्धारित हो जाती है। जैसा चित्र 4 द्वारा दर्शाया गया है।

चित्र 4 दर्शाता है कि प्रारम्भ में MEI वक्र MCF वक्र को r0 ब्याज दर या फण्डस की लागत पर काटता है। जिससे OF निवेश का स्तर निर्धारित होता है। परन्तु यदि MEI वक्र ऊपर की ओर सरक कर MEI1 बन जाये तो कम्पनियों के लाभ बढ़ेंगे जिससे उनके आन्तरिक फण्डों का विस्तार होगा। MCF1 वक्र परिणामतः सरक कर MCF11 बन जायेगा जो नये MEI, वक्र को E1 बिन्दु पर काट कर r1 ब्याज दर व OF1 निवेश के स्तर का निर्धारण करता है।

निवेश का स्तर निर्धारित किस स्तर पर होता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि MEI वक्र MCF वक्र को किस भाग में काटता है इन दोनो वक्रों का काटना अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। यदि अर्थव्यवस्था (Depression) के दौर से गुजर रही है तो ये दोनों MCF वक्र के A भाग में काटेंगे, और तेजी (Boom) की अवस्था से गुजर रही है तो ये दूसरे को भाग में काटेंगे। यदि व्यवस्था सामान्य है तो ये B भाग में काटेंगे।

इस प्रकार निवेश के वित्तीय सिद्धान्त के अनुसार निवेश का निर्धारण MCF, MEI वक्रों और अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है।

●●●

अध्याय 17

परम्परावादी मांग का सिद्धान्त - मात्रात्मक सिद्धान्त - फिशर समीकरण तथा कैमब्रैज मात्रात्मक सिद्धान्त

(Classical Approachs to Demand for Money — Quantity. Theory Approach — Fisher's Equation and Cambridge Quantity Theory)

मौद्रिक सन्तुलन (Monetary equilibrium) मुद्रा की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। इसको प्रापत करने के लिए आर्थिक शक्तियां क्रियान्वित रहती हैं। मौद्रिक सन्तुलन वहाँ स्थापित होता है जहाँ मुद्रा की मांग व मुद्रा की पूर्ति एक दूसरे के बराबर होती हैं। इस अध्याय में केवल मुद्रा के मांग पक्ष का अध्ययन किया गया है। फ्राइडमैन के अनुसार मुद्रा की माँग सम्पत्ति (Asset) की माँ के रूप में समझी जाती है जैसे जमीन, बांड, शेयर, टिकाऊ पदार्थों आदि की माँग । जिस परिसम्पति का मूल्य गिरने लगता है या गिरने की आंसशा (Expectation) होती है तो उसकी हम कम माँग करते हैं। इसी प्रकार मुद्रास्फीति के दौरान मुद्रा का मूल्य गिर रहा होता है तो मुद्रा की माँग भी गिर रही होती है क्योंकि लोग मुद्रा अपने पास नहीं रखना या कम रखना चाहेंगे और वे अन्य परिसम्पतियां (Assets) खरीदेंगे जिनका मूल्य बढ़ रहा होता है या बढ़ने की आशा होती है। मुद्रा की मांग क्यों की जाती है ? यह एक रोचक प्रश्न है, क्योंकि मुद्रा न तो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन बढ़ाता है और न ही अन्य वस्तुओं की तरह तुष्टिगुण देता है। परन्तु गहराई से जांच करने पर ज्ञात होता है कि यह उत्पादन भी बढ़ाता है तथा तुष्टिदायक भी है।

मुद्रा की मांग अर्थ है मुद्रा की वह मात्रा है जिसको लोग अपने पास नकदी में रखना (Holding of money) चाहते हैं, जिसका उद्देश्य कोई भी हो सकता है इसके रखने की समय अवधि भी कम या अधिक हो सकती है। मौद्रिक विश्लेषण सामूहिक होने के कारण मुद्रा की मांग सभी व्यक्तियों य फर्मों की मुद्रा की कुल माँग को प्रकट करती है। बैंक और सरकार के पास रखी गई मुद्रा कभी भी मुद्रा की माँ नहीं होती क्योंकि ये मुद्रा के उत्पादक हैं।

मुद्रा की माँग कैसे निर्धारित होती है ? या मुद्रा की मांग हम क्वों करते है ? मुद्रा की माँग किन-किन तथ्यों पर निर्भर करती है ? इन प्रश्नों का अध्ययन मौद्रिक अर्थशास्त्र में एक रोचक विषय रहा है। मुद्रा की माँग से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है :

1. मुद्रा की माँग का परम्परावादी सिद्धान्त (Classical Theory of Demand for Money)

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा की माँग का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं किया। फिर भी मुद्रा की मांग सम्बन्धी उनके विचार मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (फिशर समीकरण) से प्रकट होते हैं। उनके अनुसार मुद्रा की मांग केवल इसलिए की जाती है क्योंकि यह वस्तू व सेवाओं से मध्य विनिमय की प्रक्रिया को सरल बना देता है। वस्तु विनिमय प्रणाली में वस्तु व सेवाओं के मध्य परस्पर विनिमय करना कठिन होता था क्योंकि आवश्यकताओं व वस्तुओं के समन्वय व वस्तुओं के मूल्य को मापने आदि की गम्भीर समस्या बनी रहती थी। इस कारण मुद्रा का आविष्कार किया गया। इसलिए उनके अनुसार मुद्रा की माँग विनिमय के कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही की जाती है। अतः वे मुद्रा को विनिमय या सौदों (Transactions) का माध्यम

ही मानते थे

इस प्रकार मुद्रा की माँग एक देश में किये गये कुल क्रय-विक्रय सम्बन्धी सौदों (Transactions) की संख्या और औसत कीमत स्तर पर निर्भर करती है जिसको फिशर के समीकरण द्वारा निम्न प्रकार निर्धारित किया जा सकता है :

PT = MV

(M = Money supply V = Velocity of circulation, P = Price level and T = Transactions)

फिशर द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त समीकरण में PT मुद्रा की कुल माँग को दर्शाता है। अर्थात् किये जाने वाले क्रय-विक्रय सम्बन्धी कुल सौदों (Transactions) के मूल्य (PT) के बराबर की मुद्रा की माँग की जायेगी ताकि मुद्रा के माध्यम से सभी सौदे सम्पन्न हो सकें। MV मुद्रा की पूर्ति को प्रकट करता है। बाद में T के स्थान पर Y प्रयोग किया जाने लगा, क्योंकि अर्थव्यवस्था में कुल कितने सौदे होते हैं उनको गिनना कठिन होता है जबकि विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या आय (Y) का अनुमान लगाना आसान है। Y और T बराबर होते हैं क्योंकि क्रय-विक्रय (T) उन्हीं वस्तुओं का होता है जो एक वर्ष के दौरान उत्पादित की गई है। अर्थात PV = MV1

परम्परावादी अर्थशास्त्री पूर्ण रोजगार की कल्पना करते हैं तथा V और V को स्थिर मानते हैं। इसलिए मुद्रा की मांग को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

$$M^d = \frac{PY}{V}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि Y और V के स्थिर रहने पर मुद्रा की माँग (Md) कीमत स्तर (P) से आनुपातिक और धनात्मक सम्बन्ध रखती है। परम्परावादियों के अनुसार मुद्रा की माँग की लोचशीलता इकाई के समान है।

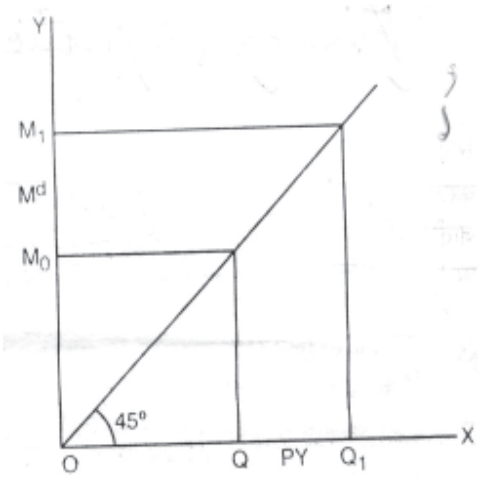

चित्र 1

इसको निम्न चित्र 1 की सहायता से दर्शाया जा सकता है।

मौद्रिक सन्तुलन की अवस्था में :

$$M^d = M^s$$

Or PY=MV

$$M = \frac{PY}{V} M^d$$

अतः परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रा की मांग (M^d)V के स्थिर रहते हुए P तथा Y से धनात्मक तथा आनुपातिक सम्बन्ध रखती है।

मुद्रा का मूल्य और कीमत स्तर

(Value of Money and Price Level)

मुद्रा के मूल्य का वस्तु व सेवाओं की कीमतों से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि ये कीमतें बढ़ जाती हैं तो मुद्रा की एक इकाई कम वस्तु व सेवाएं खरीद पाती है और यदि ये गिर जाती हैं तो मुद्रा की एक इकाई अधिक वस्तु व सेवाएं क्रय कर सकती है। यदि क वस्तु की कीमत 10 रुपये प्रति इकाई है तो एक रुपये का क वस्तु के रूप मे मूल्य 1/10 होगा, अर्थात एक रुपया क वस्तु की एक इकाई का दसवां भाग (1/10) क्रय कर सकता है। इसी प्रकार यदि ख वस्तु की कीमत 20 रुपये प्रति इकाई है तो मुद्रा की एक इकाई (रुपया) का ख वस्तु के रूप में मूल्य 1/20 होगा। मुद्रा के मूल्य को इस प्रकार

विभिन्न वस्तुओं के रूप में मापने से दो तथ्य सामने आते हैं :

पहला तथ्य तो यह है कि देश में हजारों वस्तुएं व सेवाएं होती है। सभी वस्तुओं के रूप मे उनकी कीमत अनुसार यदि मुद्रा का मूल्य निर्धारित किया जाए तो मुद्रा के मूल्य भी हजारों होंगे न कि एक। मुद्रा का एक मूल्य निर्धारित करने के लिए हम कुछ ऐसी प्रतिनिधि वस्तुओं और सेवाओं को चुनते हैं जिनको नित्य प्रतिदिन के जीवन में प्रयोग किया जाता है। फिर इनकी औसत कीमत निकाल लेते हैं जिसको सामान्य कीमत स्तर (General Price Level) कहा जाता है। इसके बाद वस्तुओं व सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर (P) अनुसार मुद्रा का एक ही मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरा तथ्य यह है कि मुद्रा के मूल्य और कीमतों व औसत कीमत स्तर (P) के मध्य विपरीत (1/P) का सम्बन्ध है। उदाहरणतः यदि औसत कीमत स्तर 5 रुपये प्रति इकाई है, अर्थात 5 रुपये का मूल्य सभी वस्तुओं व सेवाओं में औसतन एक इकाई है तो एक रुपये (मुद्रा की एक इकाई) का मूल्य वस्तु का 1/5 (1/P) होगा। अतः निष्कर्ष यह निकला कि मुद्रा का मूल्य स्तर (P) से विपरीत (inverse) या नकारात्मक सम्बन्ध रखता है।

मुद्रा का मूल्य (Value of Money) = 1/P; P = Price Level

प्रो० फिशर के अनुसार ''मुद्रा की क्रय शक्ति की कीमत स्तर से विपरीत सम्बन्ध है, अतः इसका अध्ययन कीमत स्तर के अध्ययन के समान ही होता है।'' (The Purchasing power of money is the reciprocal to the level of prices, so that the study of purchasing power of money is identical with the study of price level—Irving Fisher)

मुद्रा का मूल्य या कीमत स्तर कैसे निर्धारित होता है? इस प्रश्नों को हल करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है।

मुद्रा के मूल्य निर्धारण (Determination of the Value of Money)—

मुद्रा के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी दो सिद्धान्त हैं:

(1) मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) इस सिद्धान्त से सम्बन्धित तीन समीकरण हैं: (A) फिशर का समीकरण (Fisher's Equation) (B) नकद शेष समीकरण या कैम्ब्रिज समीकरण (Cash Balance Equation or cambridge Equation) या मुद्रा का नव परम्परावादी परिमाण (Neo-classical Quantity Theory of Money) (C) केन्ज का समीकरण (Keynes's equation)

(2) केन्ज का मुद्रा सिद्धान्त (Keynesian Theory of Money)

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का निम्न प्रकार अध्ययन किया गया है।

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त

(Quantity Theory of Money)

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त मुद्रा के मूल्य निर्धारण का सबसे प्रथम मानक (Standard) सिद्धान्त है। सोलहवीं शताब्दी से लेकर बहुत से अर्थशास्त्रियों जैसे बोदीन (Jean Bodin-1566), जॉन लॉक (John Locke - 1691), डेविड ह्यूम (David Hume - 1752) आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त पर अपने-अपने मत व्यक्त किये। उन्नीसवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त की विस्त त व्याख्या एडम स्मिथ, जे० एस० मिल०, डेविड रिकार्डो आदि ने की। बीसवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इरविंग फिशर को प्राप्त हुआ।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के अनुसार, ''अन्य बातें समान रहते हुए मुद्रा की मात्रा में व द्धि करने पर कीमत स्तर बढ़ता है और मुद्रा का मूल्य कम होता है तथा मुद्रा की मात्रा में कमी करने से कीमत स्तर कम होता है एवं मुद्रा का मूल्य बढ़ता है'' अर्थात मुद्रा की मात्रा का कीमत स्तर से धनात्मक सम्बन्ध है परन्तु मुद्रा के मूल्य से नकारात्मक या विपरीत सम्बन्ध है।

सिद्धान्त की परिभाषाएं (Definitions)

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैः-

(1) जे० एस० मिल के अनुसार, ''अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा का मूल्य उसकी मात्रा से विपरीत सम्बन्ध रखता है मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक व द्धि इसके मूल्य को उसी अनुपात से गिरा देती है और प्रत्येक कमी उसी अनुपात में बढ़ाती है।'' (The Value of money, other things being the same, varies inversely as its quantity, every increase of quantity lowers the value and every dimenution rising it in a ratio exactly equivalent—J.S. Mill)

(2) आर० एस० सेयर्स के अनुसार, ''मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने से मुद्रा में विपरीत और कीमत स्तर में प्रत्यक्ष परिवर्तन होता है।'' (The value of money changes inversely and the price level directly to the changes in the quantity of money —R.C. Sayers)

(3) ई० फिशर के अनुसार, ''मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त व्यक्त है कि अन्य बातें स्थिर रहने पर जब चलन में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है तो कीमत स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।''(The quantity Theory of states that other things remainging unchanged, as the quantity of money in circulation increases the price level increases in direct proportion and the value of money decreases and vice versa —Irving Fisher)

परिभाषाओं से निम्न आशय या अर्थ प्राप्त होते हैंः

(1) मुद्रा की मात्रा व सामान्य कीमत स्तर के मध्य सीधा अनुपातिक सम्बन्ध (Direct and Proportional Relationship between quantity of money and General Price-Level)

उपरोक्त सभी परिभाषाएं मुद्रा की मात्रा व सामान्य कीमत-स्तर के मध्य सीधा एवं अनुपातिक सम्बन्ध व्यक्त करती हैं। इन सभी के अनुसार यदि मुद्रा की मात्रा में व द्धि की जाती है तो सामान्य कीमत स्तर भी उसी अनुपात में बढ़ेगा और यदि मुद्रा की मात्रा में कमी की जाती है तो सामान्य कीमत स्तर भी उसी अनुपात में गिरेगा।

(2) मुद्रा की मात्रा और मुद्रा के मूल्य में उल्टा व अनुपातिक सम्बन्ध (Inverse and proportional relationship between quanity of money and value of Money) —

उपरोक्त सभी परिभाषाओं का आशय है कि ज्यों ही मुद्रा की मात्रा व द्धि की जाती है तो मुद्रा का मूल्य उसी अनुपात में गिरता है। (क्योंकि कीमत स्तर उसी अनुपात में बढ़ जाता है)

(Inverse and Proportional Relationship between general price level and value of money)—

उपरोक्त परिभाषाओं का यह भी आशय या अर्थ है कि सामान्य स्तर बढ़ने पर मुद्रा का मूल्य उसी अनुपात में गिर जाता है। कीमतें बढ़ने पर मुद्रा की एक इकाई कम वस्तु व सेवाएं क्रय करेगी, अर्थात मुद्रा का मूल्य गिरेगा। इसी प्रकार कीमत स्तर के गिरने पर मुद्रा का मूल्य बढ़ेगा।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Quantity Theory of Money)—

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की व्याख्या मुख्यतः दो समीकरणों द्वारा की गई है :

(1) नकद व्यवसाय या फिशर का समीकरण

(Cash Transaction Approach or Fisher's Equation)

(2) नकद शेष व्याख्या या कैम्ब्रिज समीकरण

(Cash-Balance Approach or Cambridge Equation)

इन समीकरणों के मध्यम से मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की व्याखया निम्न प्रकार बारी-बारी से की गई है :

अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो० इरविंग फिशर ने सन् 1911 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को नकद व्यवसाय समीकरण के रूप में व्यक्त किया। इस समीकरण के माध्यम से फिशर ने सिद्ध किया कि मुद्रा की चलन गति (Velocity of Circulation) और सौदों (Transactions) की कुल संख्या स्थिर रहने पर सामान्य कीमत स्तर मुद्रा की मात्रा निध ार्ारित होता है जैसे किसी भी वस्तु का मूल्य या कीमत उस वस्तु की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। फिशर ने मुद्रा का मूल्य, जो कीमत स्तर से विपरीत सम्बन्ध रखता है, मुद्रा की मांग व मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित किया। उन्होंने मुद्रा की मांग व पूर्ति के द्वारा कीमत स्तर का निर्धारण एक समीकरण के माध्यम से व्यक्त किया जो निम्न प्रकार से हैः

PT = MV + M' V'

(Demand for Money = Supply of Money)

$$P = \frac{MV + M'V'}{T}$$

$$\text{OR } \frac{1}{P} \text{ (Value of Money)} = = \frac{\frac{1}{MV + M'V'}}{T} = \frac{T}{MV + M'V'}$$

or 1/P (Value of money) =

P = Price Level (कीमत स्तर)

T = Total number of Transactions of goods and services during a year

(एक वर्ष में वस्तु व सेवाओं के कुल सौदों की संख्या)

M = Money in circulation ञ(प्रचलन में मुद्रा या करेन्सी की मात्रा)

V = Velocity of circulation of money (प्रचलन में मुद्रा की चलन गति)

M' = Total Quantity of credit money (साख मुद्रा या बैंक मुद्रा की मात्रा)

V' = Velocity of circulation of credit (साख मुद्रा की चलन गति)

1/P = Velue of money (मुद्रा की मूल्य)

मुद्रा की मांग या PT (Demand for Money)

फिशर व अन्य परम्परावादी अर्थशास्त्री मुद्रा को केवल निनिमय का माध्यम ही मानते थें। उनके अनसार व्यक्ति मुद्रा की मांग इस लिए करते हैं ताकि वे इसके बदलें वस्तुएं व सेवाएं खरीद सकें। अतः वे कितने मूल्य की वस्तएं व सेवाएं खरीदते हैं इसके बराबर ही उनकी मुद्रा की मांग होगी। क्रय की जाने वाली वस्तु व सेवाओं का मूल्य दो बातों पर निर्भर करता है। (1) किसी निश्चित समय अवधि जैस कि एक वर्ष के दौरान किये जाने वाले कुल क्रय या सौदों की संख्या (Total Number of Transactions (T)] और (2) प्रत्येक सौदे की औसत कीमत या सामान्य कीमत स्तर [General Price Level (P)] इन दोनों अर्थात् P और T को गुना करने से जो मूल्य प्राप्त होगा उसके बराबर ही मुद्रा की मां की जायेगी ताकि सभी सौदे (Total number of Transactions) सम्पन्न हो सकें।

इसलिए :

Demand for money = PT

मुद्रा की पूर्ति या MV + M'V' (Supply of Money)

फिशर ने मुद्रा को दो भागों में विभक्त कियाः पहली वह मुद्रा (M) जो चलन में है जैसे सिक्के व करेन्सी नोट और दूसरी वह मुद्रा M' जो बैंक उधार देकर उत्पन्न करते हैं। जिसको बैंक मुद्रा (Bank Money) या साख मुद्रा (Credit Money) कहा जाता है। जो मुद्रा चलन में है (M) को उसकी चलन गति [velocity of circulation (v)] से गुणा (MV) किया जाता है ताकि उसकी वास्तविक पूर्ति ज्ञात हो सके। मान लीजिए एक 100 रुपये का नोट एक वर्ष में पांच बार एक हाथ से दूसरे हाथ से गुजरता है अर्थात पांच बार सौदे करवाता है तो उसकी चलन गति या मुद्रा की चलन गति पांच होगी। इस प्रकार 100 रुपये की मुद्रा ने 500 रू० (100 x 5) की मुद्रा का कार्य किया है अर्थात् जो मुद्रा चलन में है उसकी कुल पूर्ति 500 रू० (100 x 5) होगी।

इसी प्रकार बैंक मुद्रा (M') की वास्तविक पूर्ति निकालने के लिए M' को इसकी अपनी चलन गति (V') से गुना करना

होगा। (M'V')।

इस प्रकार मुद्रा की कुल पूर्ति इन दोनों प्रकार की मुद्राओं की वास्तविक पूर्तियों को जोड़ने से प्राप्त होती है जैसे :

Money Supply + MV + M'V'

समीकरण की गणितीय व्याख्या (Mathematical interpretation of Equation)

फिशर के समीकरण की व्याख्या एक गणितीय उदाहरण द्वारा स्पष्अ की जा सकती है :

मान लीजिए M= 200 रूपये, V=10

M'=300 रूपये V=5

T = 100

$$P = \frac{MV + M'V'}{T} = \frac{200x10 + x5}{100} = \frac{2000 + 1500}{100}$$

$$P = \frac{3500}{100} = 35 \text{ रूपये प्रति वस्तु}$$

तथा मुद्रा का मूल्य $= \frac{1}{P} = \frac{1}{35}$

फिशर के समीकरण में यह कल्पना कि यदि M में परिवर्तन किया जाता है तो M' भी उसी अनुपात में व उसी दिशा में परिवर्तित होता है। अतः अब हम देखते है कि मुद्रा की मात्रा को यदि बढ़ा कर दो गुना कर दिया जाये तो कीमत स्तर (P) या मुद्रा के मूल्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा।

$$P = \frac{400x10 + 600x5}{100} = \frac{4000 + 3000}{100} = \frac{7000}{100}$$

$$P = \frac{7000}{100} = 70 \text{ रूपये प्रति वस्तु}$$

मुद्रा का मूल्य $= \frac{1}{P} = \frac{1}{70}$

Equation

इस प्रकार सिद्ध होता है कि मुद्रा की मात्रा में व द्वि दुगनी की जाती है तो कीमत स्तर बढ़ कर दुगना अर्थात 35 रुपये से बढ़कर 70 रुपये प्रति वस्तु हो जाता है और मुद्रा का मूल्य घट कर आधा, अर्थात $\frac{1}{35}$ से घट कर $\frac{1}{70}$ हो जाता है। इसलिए हम कर सकते हैं कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन करने से कीमत स्तर उसी अनुपात में और उसी दिशा में (अर्थात सकारात्मक सम्बन्ध) परिवर्तित होता है और मुद्रा का मूल्य उसके विपरीत और उसी अनुपात (Inverse and proportional relationship) में परिवर्तित होता है। मुद्रा की मात्रा को घटा कर आधा करने से क्या प्रभाव होता है इसको विद्यार्थी स्वयं हल करके देख सकते है।

रेखाचित्र द्वारा समीकरण की व्याख्या Diagrammatic Representation of the Equation

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की व्याख्या चित्र 1 द्वारा की गई है।

रेखाचित्र 1 के A भाग में OX-अक्ष पर मुद्रा की मात्रा और OY-अक्ष पर कीमत स्तर दर्शाया गया है। इसी प्रकार चित्र के B भाग में OX-अक्ष पर मुद्रा की मात्रा और OY-अक्ष पर मुद्रा का मूल्य मापा गया है। A भाग मे 45^{o} का कोण बनाती एक रेखा (R) मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर के मध्य आपसी सम्बन्ध प्रकट करती है। भाग B में VV रेखा मुद्रा की मात्रा व मुद्रा के मूल्य में विपरीत सम्बन्ध व्यक्त करती है।

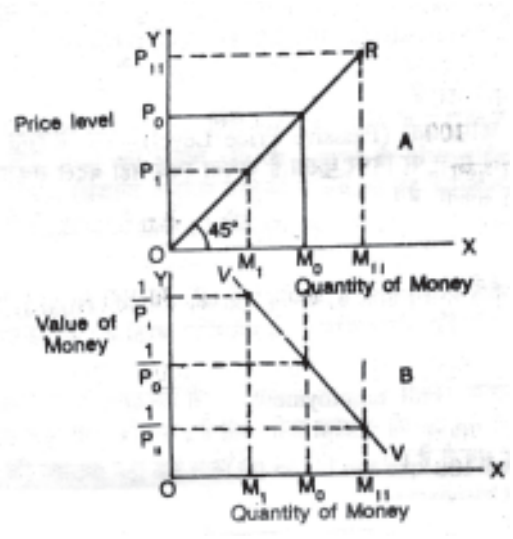

चित्र 2

प्रारम्भिक स्थिति में मुद्रा की मात्रा मान लीजिए M_0 है। भाग A में M_0 मुद्रा की मात्रा होने पर कीमत स्तर P_0 स्थापित होता है और मुद्रा का मूल्य $\frac{1}{P_0}$ जो भाग B में दर्शाया गया है। अब यदि मुद्रा की मात्रा कम होकर M_1 हो जाती है तो कीमत स्तर उसी अनुपात में गिरकर P_1 हो जाता है और इसके विपरीत मुद्रा का मूल्य बढ़कर $\frac{1}{P_1}$ हो जाता है जैसा कि भाग B में दर्शाया गया है। इसी प्रकार यदि मुद्रा की मात्रा बढ़ा कर M_{11} कर दी जाये तो कीमत स्तर बढ़कर P_{11} परन्तु मुद्रा का मूल्य घट कर $\frac{1}{P_{11}}$ हो जायेगा।

पूर्वकल्पनाएं या मान्यताएं (Assumptions) —इस सिद्धान्त की कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताएं हैं जिनको स्थिर माना जाता है :

1. मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम का कार्य करता है (Money acts only as medium of Exchange) —वस्तु बेच कर व्यक्ति जो मुद्रा प्राप्त करते हैं उसको वस्तु खरीरने में प्रयोग कर दिया जाता है। अर्थात् व्यक्ति मुद्रा के माध्यम से धन का संचय आदि नहीं करते।

2. करेन्सी व बैंक मुद्रा की चलन गति स्थिर (Constant velocity of circulation of currency and of Bank Money) —इस सिद्धान्त की यह कल्पना है कि दीर्घ काल तक करेन्सी व बैंक मुद्रा की चलन गति स्थिर बनी रहती है। मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन इनकी चलन गति को प्रभावित नहीं करता।

3. करेन्सी और बैंक मुद्रा दोनों में समान अनुपात से परिवर्तन होता है (Currency (M) and Bank Money (M') move in equal proportion) —यह भी मान्यता है कि यदि करेन्सी (M) में परिवर्तित किया जाता है तो बैंक (M') में भी उसी अनुपात से परिवर्तन होता है।

4. सौदों की स्थिर मात्रा (Constant number of Transactions) —एक निश्चित समय अवधि जैसे कि एक वर्ष के अन्तर्गत क्रय-विक्रय अर्थात् कुछ सौदों की मात्रा स्थिर रहती है। यह तभी हो सकता है जब पूर्ण रोज़गार माना गया हो। क्योंकि यदि अपूर्ण रोज़गार है तो रोज़गार के स्तर को बढ़ा कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है जो कुछ सौदों की संख्या को भी बढ़ा देगा। परन्तु कुल सौदे स्थिर माने गये हैं।

5. निष्क्रिय कीमत स्तर (Passive Price Level) —इस सिद्धान्त की यह मान्यमा है कि कीमत स्तर मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करता है अथवा स्वयं नहीं बदल सकता और न ही कोई अन्य तत्व इसको बदल सकता है।

6. दीर्घ काल (Long Run) —इस विश्लेषण में दीर्घ काल समय अवधि की मान्यता है।

7. मुद्रा की मात्रा सक्रिय है (Quantity of Money is Active) —फिशर ने माना है कि सारी मुद्रा लेने में प्रयोग होती है, अर्थात् मुद्रा को संग्रहित (Hoard) नहीं किया जाता। वैसे भी मुद्रा की मात्रा परिवर्तित होकर कीमतों को परिवर्तित करती है। कीमतें इसकी मात्रा को प्रभावित नहीं करतीं।

8. पूर्ण रोज़गार (Full employment) –इस सिद्धान्त में यह कल्पना की गई है कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार की अवस्था बनी रहती है। क्योंकि तभी कुल सौदों (Transactions) की मात्रा स्थिर रह सकती है।

आलोचना (Criticism)

कैम्ब्रिज व केन्ज आदि अर्थशास्त्रियों ने फिशर के समीकरण की बहुत आलोचना की है। मुख्य आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं।

1. अवास्तविक मान्यताएं (Unreaslistic Assumptions) – फिशर के समीकरण की ये कल्पनाएं कि कुल सौदों की मात्रा (T), मुद्रा की चलन गति (V), पूर्ण रोज़गार, मुद्रा का संग्रह नहीं होता आदि सभी अवास्तविक है। वास्तविक जगत में ये सभी परिवर्तित होते रहते हैं और इनमें परिवर्तन भी कीमतों को प्रभावित करता है न कि अकेली मुद्रा कीमतों को प्रभावित करती है जैसा फिशर मानता है।

2. समीकरण के तत्वों का माप कठिन (Difficult to measure the elements of Fisher's equation) – फिशर के समीकरण में प्रयोग किये गये तत्व जैसे कुल सौदे (Total number of Transactions) और मुद्रा की चलन गति का सही-सही माप नहीं किया जा सकता। अर्थात् इन तत्वों का माप कठिन है। इसी कारण बाद के अर्थशास्त्रियों ने T के स्थान पर Y (आय) का प्रयोग किया।

3. चर स्वतन्त्र नहीं है (Variables are not independent) – प्रो० फिशर के अनुसार M, V और T एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, अर्थात् यदि एक चर में परिवर्तन किया जाये तो अन्य चरों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु यह सत्य नहीं है। आजकल मुद्रा में परिवर्तन करके उत्पादन व सौदों की संख्या (T) को प्रभावित किया जाता है। हैसे मुद्रास्फीति की अवस्था में मुद्रा को कम करके आर्थिक क्रियाओं या सौदों (T) को कम किया जाता है। इसी प्रकार में व द्धि होने पर मुद्रा की मांग बढ़ती है। अतः यह आलोचना की जाती है कि चर स्वतन्त्र नहीं हैं।

4. एक पक्षीय सिद्धान्त (One sided Theory) – किसी भी वस्तु की कीमत या मूल्य निर्धारण के लिए मांग व पूर्ति दोनों शक्तियां ही महत्वपूर्ण हैं। परन्तु फिशर के समीकरण में मुद्रा के मांग पक्ष (PT) को निष्क्रिय माना है और पूर्ति प्रक्ष (MV) को सक्रिय तथा इस पर अधिक बल दिया है। एक प्रकार से उन्होंने पूर्ति पक्ष पर ही अपना विश्लेषण आधारित किया है।

5. कीमत स्तर निष्क्रिय नहीं है (Price Level is not Passive) – वास्तव में कीमत स्तर में परिवर्तन आर्थिक चरों को परिवर्तित करने की शक्ति रखता है। जब कीमतें बढ़ती हैं तो उत्पादकों के लाभ सम्बन्धी आशाएं बढ़ जाती हैं। और वे उत्पादन व रोज़गार बढ़ा देते हैं। कीमतों को आर्थिक क्रियाओं का सूचकांक माना जाता है। यहां तक कि कीमतों में परिवर्तन का मुद्रा की मात्रा पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि कीमतें निष्क्रिय होती हैं, गलत है।

6. कीमतों पर अन्य तत्वों का प्रभाव (Price Level is also affected by other factors) – मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त अनुसार वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें व कीमत स्तर केवल मुद्रा की मात्रा पर ही निर्भर करता है, परन्तु बहुत से अन्य तत्व जैसे सरकार की राजकोषीय नीति (Fiscal Policy), आयात-निर्यात, युद्ध, तकनीकी प्रगति व वस्तुओं की मांग व पूर्ति आदि है भी कीमतों को प्रभावित करते हैं। इसलिए भी इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है।

7. प्रक्रिया की अवहेलना (Process is ignored) – मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन कीमतों को किस प्रक्रिया के द्वारा परिवर्तित करता है? सिद्धान्त में इसका उल्लेख नहीं है। जैसे केन्ज़ ने बताया कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन से ब्याज की दर बदलती है और फिर निवेश परिवर्तित होकर उत्पादन क कीमतें बदलती हैं। इस सिद्धान्त में ऐसी प्रक्रिया की अवहेलना की गई है।

8. व्यापार चक्रों की व्याख्या नहीं कर सका (It could not explain Trade Cycle) – इस सिद्धान्त की आलोचना इस कारण भी की जाती है कि यह व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। 1923-30 की विश्वव्यापी मन्दी में मुद्रा की मात्रा बढ़ाने पर भी कीमतें नहीं बढ़ सकीं। इसलिए केन्ज़ ने मौद्रिक नीति के स्थान पर राकोषीय नीति को अनपाने की सलाह दी। अतः व्यापार चक्रों के अन्तर्गत यह सिद्धान्त लागू नहीं होता।

9. अल्पविकसित देशों में लागू नहीं (Not Applicable in under-developed) – आलोचकों के अनुसार यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता क्योंकि इन देशों में बेराज़गारी पाई जाती है। परन्तु इस सिद्धान्त की मान्यता है कि

अर्थव्यवस्थ मे पूर्ण रोज़गार पाया जाता है। केन्ज़ के अनुसार अपूर्ण रोज़गार की अवस्था में यदि मुद्रा की मात्रा में व द्धि की जाती है तो ब्याज दर कम होकर निवेश को बढ़ा देगा, जिस कारणउत्पादन व रोज़गार बढेंगे परन्तु कीमतें नहीं बढ़ेंगी। वस्तुओं की पूर्ति बढ़ने पर कीमतें नहीं बढ़तीं या बहुत कम बढ़ती है।

10. असंगत (Inconsistent) – सिद्धान्त की आलोचना की गई है कि यह असंगत है - क्योंकि मुद्रा की वास्तविक पूर्ति ज्ञात करने के लिए समीकरण में मुद्रा की मात्रा, जिसका सम्बन्ध समय बिन्दु से है, (मुद्रा स्टाक होने के कारण इसका सम्बन्ध ा समय बिन्दु से है) को चलन गति, जिसका सम्बन्ध समय अवधि (Period of time) से है, से गुना कर दिया गया है। इसलिए समीकरण में असंगति मानी जाती है।

11. चलन गति को सही-सही मापना कठिन (Difficult to measure velocity accurately) – चलन गति को वास्तव में सही-सही नहीं मापा जा सकता। मुद्रा की एक इकाई औसतन कितने हाथों से गुजरती है को कैसे सही-सही ज्ञात कर सकते हैं। इसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं। परन्तु सिद्धान्त में कल्पना है कि हम इसको ज्ञात कर सकते हैं और यह स्थिर रहती है। अतः इस आधार पर भी इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है।

!2. ब्याज की दर की अवहेलना (It ignored Rate of Interest) – मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन का प्रभाव निश्चित रूप से ब्याज की दर पर भी पड़ता है। ब्याज दर का प्रभाव निवेश, उत्पादन व कीमतों पर पड़ता है। क्योंकि केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की मात्रा में व द्धि होने से ब्याज दर गिरती है और फिर निवेश बढ़ता है। निवेश के बढ़ने पर उत्पादन, रोज़गार व कीमतें आदि परिवर्तित होती हैं। इस सिद्धान्त में ब्याज दर की अवहेलना की गई है जो महत्वपूर्ण कड़ी है।

!3. अगत्यत्मक सिद्धान्त (Static Theory) – इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन करने से कीमतें उसी समय परिवर्तित हो जाती है। परन्तु दोनों के मध्य सम्बन्ध इतना यान्त्रिक नहीं है जितना इस सिद्धान्त में माना गया है। वस्तुतः मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन के उपरान्त कीमतों में परिवर्तन कुछ समय अन्तराल के बाद ही होता है। इसलिए यह वास्तव में गत्यात्मक सिद्धान्त है न कि अगत्यात्मक। परन्तु फिशर का समीकरण इसे अगत्यात्मक सिद्धान्त मानता है।

!4. मुद्रा के संचय कार्य की अवहेलना (Iignored the store of value or wealth function of money) – इस सिद्धान्त में मुद्रा का केवल एक ही कार्य अर्थात् केवल विनिमय के माध्यम का कार्य माना गया है। परन्तू मूल्य या धन के संचय का कार्य भी मुद्रा का एक महत्वपूर्ण कार्य माना गया है। इसलिए भी इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है

नकद शेष द ष्टिकोण या कैम्ब्रिज समीकरण
(Cash Balance Approach or Cambridge Equations)

नकद शेष समीकरण या कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार भी मुद्रा का मूल्य मुद्रा की मांग व मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। फिशर द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की मांग व पूर्ति के समीकरण में मुद्रा की पूर्ति को अधिक महत्व दिया गया जबकि कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग को अधिक महत्व दिया गया है। कैम्ब्रिज समीकरण अनुसार किसी निश्चित समय बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति तो स्थिर रहती है परन्तु मुद्रा की मांग में परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए इस सिद्धान्त को मुद्रा की मांग का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

इस सिद्धान्त को कैम्ब्रिज समीकरण कहा गया है क्योंकि इसका प्रतिपादन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे कि डॉ० मार्शल (Dr. Marshall), पीगू (Pigou) राबर्टसन तथा केन्ज़ (Keynes) ने किया। इस सिद्धान्त को नकद शेष द ष्टिकोण या नकद शेष समीकरण कहा जाता है क्योंकि इस का सम्बन्ध मुद्रा की उस मात्रा से है जिसको लोग किसी समय अपने परस नकद रूप में रखना चाहते हैं।

नकद शेष द ष्टिकोण के अनुसार मुद्रा के मूल्य का निर्धारण करने के लिए मुद्रा की मांग व मुद्रा के स्वरूप को समझना होगा :

मुद्रा की मांग (Demand for Money)

नकद शेष समीकरण के अनुसार मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम (Medium of Exchange) का ही कार्य नहीं करता बल्कि मूल्य के संचय (Store of Value) का कार्य भी करता है। इसलिए व्यक्ति इन दोनों को पूरा करने के लिए मुद्रा को नकद कोषों

के रूप में रखते हैं या नकद कोषों की मांग करते हैं। नकद शेष से अभिप्राय वास्तविक राष्ट्रीय आय या उत्पादन के उस भाग से है जिसको व्यक्ति मुद्रा के रूप में रखना चाहते हैं। (Cash Balance is that proportion of the annual real income (K) which people desire to hold in the form of money) सभी व्यक्ति अपनी वास्तविक आय का जितना भाग नकद रूप मे रखना चाहते हैं उसको ही मुद्रा की मांग कहा जाता है। इस सिद्धान्त अनुसार मुद्रा में क्रय शक्ति होने के कारण नकद शेष की मांग मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के लिए की जाती है। ये उद्देश्य हैं : (1) क्रय-विक्रय उद्देश्य (Transaction Motive) तथा (2) सावधानी उद्देश्य (Precautionary Motive)

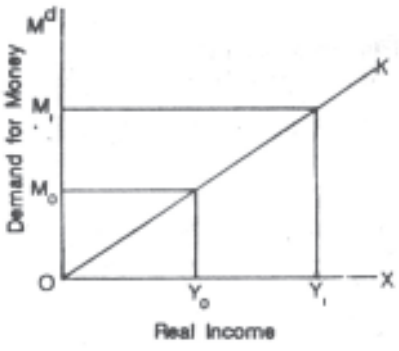

चित्र 2

व्यक्ति रोज़ाना व्यय करता है परन्तु सामान्यतः आय प्रति दिन प्राप्त नहीं होती। मान लीजिए एक व्यक्ति को मास के प्रारम्भ में आय प्राप्त होती है जो उसे सारा माह खर्च करनी है न कि पहले दोया तीन दिन में। इसलिए उसे नकद शेष (Cash Balance) अपने पास रखना पड़ता है ताकि रोज़ाना का खर्च पूरा किया जा सके। व्यक्ति आय का एक औसत भाग नकदी (K) में रखता है। वास्तविक आय का वह भाग (K)जो व्यक्ति अपने पास नकद रूप में रखना चाहते हैं स्थिर रहने पर नकद शेष की मांग उनकी वास्तविक आय (Y) के स्तर पर निर्भर करती है। जैसा चित्र से स्पष्ट है कि Y_0 आय के स्तर पर M_0 नकद शेष की मांग है। परन्तु आय Y_1 होने पर यह मांग बढ़ कर हो जाती है। यहां K स्थिर रहता है जैसा कि चित्र में स्पष्ट है।

मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

इस सिद्धान्त अनुसार मुद्रा की पूर्ति किसी निश्चित समय बिन्दु पर नोटों, सिक्कों व मांग जमाओं की वह कुल मात्रा है जो जनता के पास पाई जाती है।

(Supply of money at a particular point of time consists of all the currency notes, coins and demand deposits with the public)

Money Supply = Currency Notes + Coins + Demand Deposits

ध्यान देने की बाता यह है कि कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की पूर्ति का सम्बन्ध समय बिन्दु से है न कि समय अवधि से। जबकि फिशर के समीकरण में मुद्रा पूर्ति का सम्बन्ध समय की अवधि से होता है। इसलिए फिशर के समीकरण में मुद्रा पूर्ति का सम्बन्ध समय अवधि से होने के कारण मुद्रा की चलन गति (Velocity of circulation) मुद्रा पूर्ति को बढ़ा देती है क्योंकि मुद्रा की चलन गति किसी समय अवधि में पाई जाती है न कि समय बिन्दु पर। इस कारण कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा की चलन गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस समीकरण के अनुसार यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है और वास्तविक आय बढ़ने के कारण व्यक्ति नकद कोषों की मांग बढ़ा देते हैं तो वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें कम हो जायेगीं-क्योंकि वे खर्च कम करत हैं जिससे वस्तुओं की मांग कम हो जाती है। इसके विपरित यदि नकद शेष की मांग कम हो जाती है, अर्थात् व्यक्ति अपने पास नकदी कम रखते है, खर्च अधिक करते हैं तो इस कारण वस्तुओं की मांग व कीमतें बढ़ जायेंगी।

इस प्रकार मुद्रा की मांग या नकद शेष तथा कीमते स्तर में विपरित सम्बन्ध पाया जाता है। विभिन्न कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों के नकद शेष सिद्धान्त को अपने-अपने समीकरणों के रूप में व्यक्त किया है। इस सिद्धान्त के महत्वपूर्ण समीकरण इस प्रकार हैं :

कैम्ब्रिज समीकरण (Cambridge Equations)

कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों जैसे डॉ० मार्शल, पीगू, राबर्टसन व केन्ज के समीकरणों का अध्ययन निम्न प्रकार से कियागया है :

1. **मार्शल का समीकरण** (Marshall's Equation) — मुद्रा के मूल्य और कीमत-स्तर को निर्धारित करने के लिए

मार्शल ने निम्न समीकरण का प्रतिपादन किया :

M = Ky ; **M = Money Supply**

Ky = Demand for Money

Supply of Money = Demand for Money; **Y = Total Money Income**

(M) (KY) **K = Proportion of income kept in the form of cash balances.**

M = KPO **P = Price Level**

$$P = \frac{M}{KQ}$$ **O = Output**

इस प्रकार मार्शल के अनुसार कीमत स्तर का ज्ञात करने के लिए मुद्रा की मात्रा (M) को उत्पादन के उस हिस्से, जिसको लोग अपने पास रखना चाहते हैं, से भाग देना होता है। यह हिस्सा यदि लोगों के पास बढ़ता है तो कीमतें व कीमत स्तर गिर जाता है। अर्थात् लोगों के पास वस्तुओं की पूर्ति बढ़ने से कीमतें गिरती है। अतः कीमत स्तर तथ उत्पादन का वह हिस्सा जो लोग अपने पास शेष रखते हैं के मध्य विपरित सम्बन्ध है।

मान लीजिए : $K = \frac{1}{4'} O = 2000$ और $M=3000$ रू कीमत क्या होगी?

$$P = \frac{M}{KO} P = \frac{3000}{\frac{1}{4} x 2000} = \frac{3000}{500} = 6$$ रूपये

मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर अब यदि K का मूल्य उत्पादन (O) का स्तर परिवर्तित होता है तो कीमत स्तर (P) अवश्य बदलेगा। मान लीजिए $K = \frac{1}{2}$ हो जाता है तो P क्या होगा?

$$P = \frac{3000}{\frac{1}{2} x 2000} = \frac{3000}{1000} = 3$$ रूपये

K के बढ़कर दुगना होने पर कीमत स्तर कम होकर आधा रह गया। इसी प्रकार विद्यार्थी O में परिवर्तन करके कीमत व मुद्रा में परिवर्तन को जांच सकते हैं।

(2) **पीगू का समीकरण** **(Pigou's Equation)** - इस सिद्धान्त के समर्थन में पीगू ने अपना समीकरण प्रसतुत किया। परन्तु उसने अपने समीकरण में कीमत स्तर के स्थान पर मुद्रा के मूल्य का प्रयोग किया है:

$$P = \frac{KR}{M}$$

[P = value of Money]

M = Money Supply

K = That portion of real income which is kept in form cash balances मान लीजिए :

R = Real Income

$$K = \frac{1}{5'} R = 5000$$

M = 10,000 Rupees

$$P = \frac{\frac{1}{5} x5000}{10000} = \frac{1}{10'} P = \text{ Value of Money}$$

अर्थात् कीमत स्तर 10 **रु० है ।**

अब यदि M = 5000 **हो तो,**

$$P = \frac{\frac{1}{5} x5000}{5000} = \frac{1}{5}$$

अर्थात् R **और** K **के स्थिर रहने पर मुद्रा का मूल्य मुद्रा की मात्रा से विपरीत सम्बन्ध रखता है।**

मुद्रा की मात्रा रहने पर यदि K **या** R **में व द्धि होती है तो मुद्रा का मूल्य बढ़ेगा — क्योंकि लोगों के पास जब अधिक वास्तविक आय व वस्तुएं नकदी रूप में रखी जायेंगी तो वस्तुओ की मांग कम होगी। उनकी पूर्ति बढ़ाने के कारण कीमतें गिरेंगी और मुद्रा का मूल्य बढ़ेगा। इस प्रकार मुद्रा के मूल्य और लोगों के पास रखी गई वस्तुओं या वास्तविक कोष की मात्रा में सकारात्मक सम्बन्ध है।**

(3) राबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equation) - राबर्टसर ने अपने समीकरण में कीमत स्तर (P) **का निर्धारण निम्न प्रकार से किया :**

M = PKT

$$P = \frac{M}{KT}$$

P = **कीमत स्तर,** M = **मुद्रा की मात्रा,** T = **एक वर्ष में खरीदी गई वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा,** K = T **का वह भाग जो लोग अपने पास नकद रूप में रखना चाहते हैं। राबर्टसन का समीकरण पीगू के समीकरण से सरल समझा जाता है**

(4) **केन्ज़ का समीकरण** (Keynes's Equation) — **प्रारम्भ में केन्ज़ नकद शेष द ष्टिकोणा का समर्थक था परन्तु बाद में उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध सिद्धान्त "तरलता अधिमान सिद्धान्त"** (Liquidity Preference Theory) **प्रस्तुत किया। केन्ज़ ने नकद शेष द ष्टिकोण के समर्थन में अपना समीकरण प्रस्तुत किया जिसमें उपभोग पदार्थों को अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार लोग उपभोग वस्तुओं के लिए नकद राशि रखना चाहते हैं। इस समीकरण को वास्तविक शेष द ष्टिकोण** (Real Balance Approach) **कहा गया। जो निम्न प्रकार है :**

$$n = P(K + rK') \text{ or } P = \frac{n}{(k + rk)}$$

यहां : n = **कुल मुद्रा की पूर्ति,** P = **कीमत स्तर**

K = **उपभोग वस्तुओं का वह भाग जो लोग नकद रूप में रखना चाहते हैं।**

K' **उपभोग वस्तुओं की वह मात्रा जो लोग बैंक में नकद जमा के रूप में रखना चाहते हैं।**

r = **बैंक के नकद कोषों का कुल बैंक जमा से अनुपात**

उदाहरण :

कल्पना कीजिए कि n=500 **रूपये,** K=50, K' = 50, r = $\frac{1}{5}$

$$P = \frac{500}{50 + \frac{1}{5} x50} = \frac{500}{60} 8.3$$

P = 8.3 **रूपये**

अब यदि मुद्रा की मात्रा दुगनी कर दी जाए और K, K' **तथा** V **स्थिर रहें तो** (n = 1000)

$$P = \frac{1000}{50 + \frac{1}{5} x50} = \frac{500}{60} = 16.6 \text{ रूपये}$$

मुद्रा की मात्रा दुगनी करने से कीमत स्तर (P) **बढ़ कर दुगनी हो जाता है। अतः मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर के मध्य प्रत्यक्ष और आनुपातिक सम्बन्ध है।**

रेखाचित्र के माध्यम से कीमत स्तर या मुद्रा के मूल्य का निर्धारण (Diagrammatic Determination of Price Level) - **चित्र में नकद कोष द ष्टिकोण के अनुसार मुद्रा की मांग** (Md) **और मुद्रा की पूर्ति** (Ms) **वक्रों की सहायता से सन्तुलित मुद्रा का मूल्य या कीमत स्तर निर्धारित किया गया है।** OX **अक्ष पर मुद्रा की मांग तथा पूर्ति और** OY **अक्ष पर मुद्रा का मूल्य प्रकट किया गया है। चित्र में** Md **मुद्रा का मांग वक्र है तथा** Ms **मुद्रा का पूर्ति वक्र है। मुद्रा का मांग वक्र बाएं से दाएं व ऊपर से नीचे की और इसलिए झुका हुआ है कि मुद्रा का मूल्य कम अर्थात कीमत स्तर** (P) **बढ़ने पर लोग मुद्रा की अधिक मांग करेंगे क्योंकि** P **बढने पर क्रय-विक्रय** (Transaction) **करने के लिए अब अधिक मुद्रा की आवश्यकता पड़ेगी और** P **के कम होने पर कम मुद्रा की मांग करते हैं।** Md **वक्र नकद कोष द ष्टिकोण अनुसार एक रेकटेंगुलर हाइपरबोला** (Rectangular Hyperbola) **है क्योंकि :**

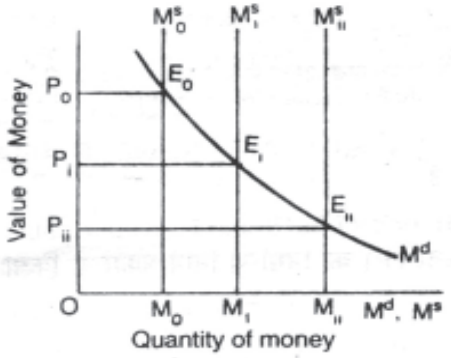

चित्र 3

किसी निश्चित समय बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति मान लीजिए M0 **है जो** Md **को** E0 **पर काटता है और मुद्रा का मूल्य** P0 **निर्धारित होता है। जब मुद्रा पूर्ति बढ़ कर** M1 **और** M11 **होती है तो मुद्रा का मूल्य गिरकर क्रमशः** P1 **और** P11 **हो जाता है अर्थात् कीमत स्तर बढ़ जाता है। मुद्रा के मूल्य में उसी अनुपात में कमी हुई है, जिस अनुपात में मुद्रा की पूर्ति में व द्धि हुई है। इसलिए** Md **वक्र एक रेक्टेंगुलर हाइपरबोला है।**

आलोचना (Crititcism)

इस सिद्धान्त को निम्न आधार पर आलोचित किया जाता है।

(1) अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित (Based on unreal Assumptions) — इस तकनीकी परिवर्तनों आदि के कारण उत्पादन का स्तर (Y) **या** T **में व द्धि होती रहती है। इसी प्रकार लोग अपनी आय का कितना भाग नकदी में रखना चाहते हैं यह उस देश में बैंकिंग प्रणाली की कुशलता, लोगों की अपनी रूचि आदि पर निर्भर करता है। इनमें परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए** K **स्थिर नहीं रहता। इसलिए यह सिद्धान्त सही नहीं है।**

(2) अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता (Not Applicable in Underdeveloped Countries) — अल्पविकसित

देशों में वास्तविक आय (Y or T) बढ़ाने के विशेष प्रयास किए जाते हैं। परन्तु सिद्धान्त में इन्के स्थिर माना गया है, अर्थात् अल्पविकसित देशों में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(3) **नकद कोष K केवल वास्तविक आय पर निर्भर नहीं** **(K not dependent on real income alone)** — नकद कोष केवल मौद्रिक आय पर निर्भर नहीं करता बल्कि अन्य तत्व जैसे मौद्रिक आदतें, आय व्यय का अन्तराल, कीमत स्तर, व्यवसायिक ढांचे आदि भी इसको प्रभावित करते हैं।

(4) **सट्टा उद्देश्य के लए मुद्रा की मांग की अवहेलना** **(Ignored the speculative motive for demand for money)** — इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मांग केवल क्रय-विक्रय और सावधानी उद्देश्य के लिए की जाती है। परन्तु बाद में केन्ज ने बताया कि सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग एक बहुत ही महत्वपूर्ण मांग है। इसकी अवहेलना करके यह सिद्धान्त आलोचना का शिकार बना है।

(5) **एक पक्षीय सिद्धान्त** **(One sided Theory)** — फिशर के समीकरण में मुद्रा के पूर्ति पक्ष को ही महत्व दिया गया था जबकि इस सिद्धान्त में मुद्रा के मांग पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसलिए एक पक्षीय सिद्धान्त की आलोचना से यह सिद्धान्त भी नहीं बच सका।

(6) **मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं** **(No Direct Relationship between Money and Price Level)** — इस सिद्धान्त में भी फिशर के समीकरण की तरह मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर (P) के मध्य प्रत्यक्ष व आनुपातिक सम्बन्ध माना है। परन्तु केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की मात्रा बदलने पर पहले ब्याज दर बदलती है और फिर निवेश में परिवर्तन होता है। उसके बाद ही उत्पादन व कीमत स्तर में परिवर्तन आता है। अतः इन दोनों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है न कि प्रत्यक्ष।

(7) **वास्तविक तत्वों के कीमत स्तर पर प्रभाव की उपेक्षा** **(Ignored the Effect of Real Factors on Price Level)** — बचत, निवेश, उत्पादकता, आयात व निर्यात आदि वास्तविक तत्व भी कीमत स्तर व मुद्रा के मूल्य को प्रभावित करते हैं। परन्तु इन तत्वों की यहां अवहेलना की गई है।

(8) **व्यापार चक्रों की व्याख्या नहीं** **(No Explanation of Trade cycle)** — यह सिद्धान्त अथव्यवस्था में मन्दी व तेजी की समस्याओं की व्याख्या करने में असमर्थ है। मन्दी **(Deflation)** और तेज़ी **(Inflation)** वस्तुओं की मांग व पूर्ति से अधिक सम्बन्ध रखती है। परन्तु इस सिद्धान्त में वस्तुओं व सेवाओं की मांग व पूर्ति को अध्ययन में सम्मिलित नही किया गया है।

(9) **अगत्यात्मक सिद्धान्त** **(Static Theory)** — इस सिद्धान्त में किसी निश्चित समय बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति व मांग को ध्यान में रख कर अध्ययन किया गया है। अतः इस सिद्धान्त में समय अवधि का अध्ययन न होने के कारण इसको अगत्यात्मक सिद्धान्त माना गया है।

(10) **मूल्य सिद्धान्त तथा मुद्रा के मध्य समन्वय करने में असमर्थ** **(Failed to integrate the theory of value with the theory of money)** — फिशर का समीकरण और कैम्ब्रिज समीकरण दोनों ही मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर के मध्य प्रत्यक्ष और आनुपातिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मुद्रा में परिवर्तन से केवल कीमत स्तर उसी अनुपात में परिवर्तित होता है और स्थापित करते हैं । मुद्रा में परिवर्तन से केवल कीमत उसी अनुपात में परिवर्तित होता है और उत्पादन प्रभावित नहीं होता। इस प्रकार अर्थव्यवस्था दो भागों में विभाजित हो जाती है जिसको परम्परावादी द्विभागी (Classical Dichotomy) कहा गया है। अर्थात् कीमत स्तर मुद्रा बाजार में निर्धारित होता है जिसको मौद्रिक क्षेत्र कहा गया और उत्पादन वास्तविक क्षेत्र में निर्धारित होता माना गया जिसको वास्तविक (Real Sector) कहा गया। डॉन पैटिनकिन (Don Patinkin) ने इसे गलत सिद्ध किया और वास्तविक नकद शेष (Real Balance) में परिवर्तन के द्वारा दोनों क्षेत्रों को समन्वयित किया।

कैम्ब्रिज व फिशर के समीकरणों की तुलना

(Comparison between Cambridge and Fisher's Equations)

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के दोनों प्रकार के समीकरणों के अध्ययन के उपरान्त ज्ञात होता है कि उनके मध्य कुछ समानताएं व असमानताएं है इनका अध्ययन निम्न प्रकार किया गया है।

समानताएं (Similarities)

(1) **मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर के मध्य प्रत्यक्ष और आनुपातिक सम्बन्ध** (Direct and Proportional Relationship between Price level and Quantity of Money) — **दोनों प्रकार के समीकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर के मध्य प्रत्यक्ष और आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। अर्थात् मुद्रा की मात्रा में व द्धि करने से कीमत स्तर उसी दिशा में और उसी अनुपात में परिवर्तित होता है।**

(2) **समीकरणों में समानता** (Similarity in Equation) — **दोनों विश्लेषण की तुलना करने से ज्ञात होता है कि फिशर** (Fisher) **के समीकरणों की** V **और राबर्टसन** (Robertson) **के समीकरण का** $\frac{1}{K}$ **समान हैं।** V **और** K **एक दूसरे के विपरीत सम्बन्ध रखते हैं।** K **वास्तविक आय का वह भाग है जो नकद रूप में रखा जाता है, जबकि** V **मुद्रा की चलन गति है। यदि** K **बढ़ता है अर्थात् यदि वास्तविक आय का अधिक भाग नकद शेष के रूप में व्यक्तियों के पास होगा (अर्थात् वे खर्च कम करेंगे) तो मुद्रा की चलन गति** (V) **कम होगी। इसके विपरीत यदि** K **कम है तो उसी कारण** V **अधिक होगा।**

इसलिए $V = \frac{1}{K}$

$$P = \frac{M}{KT}$$

$$P = \frac{MV}{T}$$

फिशर के समीकरण में V **का मूल्य** $\frac{1}{K}$ **रखते हुए :**

$P = \frac{M}{TK}$ **राबर्टसन का समीकरण भी यही है।**

असमानताएं (Dissimilarities) — **दोनों सिद्धान्तों में निम्न असमानताएं हैं:-**

(1) **मुद्रा के कार्य** (Functions of Money) — **फिशर के अनुसार मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम का कार्य करता है। परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार मुद्रा विनिमय के माध्यम के साथ-साथ मूल्य संचय का कार्य भी करता है।**

(2) **मांग तथा पूर्ति पर बल** (Emphasis on Demand and Supply) — **फिशर के समीकरण में मुद्रा के पूर्ति पक्ष को अधिक महत्व दिया गया जबकि कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है**

(3) **मुद्रा की मांग** (Demand for Money) — **फिशर के अनुसार मुद्रा की मांग लेने देने** (Transactions) **के कार्य को पूर्ण करने के लिए की जाती है परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग नकद कोष** (Cash Balance) **रखने के लिए की जाती है।**

(4) **चलन गति** (Velocity of Circulation) — **फिशर के समीकरण के चलन गति मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाता है** (MV), **जबकि कैम्ब्रिज समीकरण मे चलन गति का कोई महत्व नहीं है। इसका कारण यह है कि फिशर ने मुद्रा की पूर्ति एक समय के अन्तर्गत मानी है जिसमे चलन गति होती है और कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा पूर्ति को समय बिन्दु पर माना है जिसमे चलन गति शून्य होती है।**

(5) **कीमत स्तर** (Price Level) — **फिशर ने कीमत स्तर सामान्य रूप से सभी वस्तुओं के लिए माना है। परन्तु कैम्ब्रिज में कीमत स्तर** (P) **उन उपभोग वस्तुओं के लिए माना है बाज़ार में बिकने के लिए आती है।**

(6) **प्रवाह एवं स्टाक** (Flow and Stock) — फिशर ने अपने समीकरण में मुद्रा को एक प्रवाह के रूप में प्रयोग किया है—क्योंकि इसकी पूर्ति का सम्बन्ध समय की अवधि से किया है। परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा पूर्ति का सम्बन्ध एक समय बिन्दु से किया है जो मुद्रा पूर्ति को स्टाक के रूप में माना गया है।

(7) **प्रकृति** (Nature) — फिशर का समीकरण T और V के स्थिर रहने पर मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर के मध्य एक प्रकार से यांत्रिक सम्बन्ध स्थापित करता है। परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण में मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन किया गया है कि वह कितनी आय के भाग को नकदी रूप में रखना चाहता है।

(8) **आय का भाग जो खर्च होता है** (Part of Income Spent) — फिशर के अनुसार सारी आय को खर्च किया जाता है परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार लोग वास्तविक आय के कुछ भाग को नकद रूप में रखते हैं।

कैम्ब्रिज समीकरण की श्रेष्ठता (Superiority of Cambridge equation) — कैम्ब्रिज समीकरण फिशर समीकरण से निम्न तथ्यों के आधार पर श्रेष्ठ है :

(1) **मांग व पूर्ति दोनों को महत्व** (Importance to both demand and Supply) — कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग में या पूर्ति में परिवर्तन कीमत स्तर को परिवर्तित कर सकता है। परन्तु फिशर समीकरण में मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन ही कीमत स्तर को परिवर्तित कर सकती थी। इसलिए कैम्ब्रिज समीकरण अधिक सही और सन्तुलित है।

(2) **वास्तविकता के नज़दीक** (Closer to Reality) — फिशर के समीकरण में मुद्रा की चलन गति (V) का प्रयोग किया गया जिसके मूल्य को सही-सही प्राप्त नहीं किया जा सकता जबकि कैम्ब्रिज समीकरण में इसके स्थान K का प्रयोग किया गया है। K मूल्य को प्राप्त करना ज्यादा सरल और व्यावहरिक है V के मूल्य की अपेक्षा।

(3) **मुद्रा के कार्य** (Function of Money) — फिशर अपने समीकरण में मुद्रा के एक ही कार्य को मान्यता देता है—विनिमय के माध्यम का कार्य। परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार मुद्रा केवल विनिमय का कार्य ही नहीं करता बल्कि मूल्य के संग्रह का कार्य भी करता है। इसलिए यह श्रेष्ठ है।

(4) **तरलता अधिमान सिद्धान्त का आधार** (Basis of Liquidity Preference Theory) — कैम्ब्रिज समीकरण में सावध ाानी उद्देश्य (Precautionary Motive) के लिए मुद्रा की मांग को स्वीक ति देकर केन्ज़ के तरलता अधिमान सिद्धान्त को आध ाार प्रदान किया है। केन्ज़ ने अपने इस सिद्धान्त के लिए मुद्रा की मांग में केवल सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग को ही सम्मिलित करना पड़ा।

(5) **अल्पकाल का अध्ययन** (Study of Short Period) — कैम्ब्रिज समीकरण में आय में परिवर्तन या K में परिवर्तन मुद्रा की मांग को प्रभावित करता है। मुद्रा की मांग में परिवर्तन का कीमत स्तर पर प्रभाव तुरन्त देखा जा सकता है। परन्तु फिशर अपने विश्लेषण में दीर्घ काल की कल्पना करता है।

(6) **सार्वभौमिक** (Universal) — कैम्ब्रिज समीकरण सार्वभौमिक, अर्थात् रोज़गार की सभी परिस्थितियों में लागू होता है। क्योंकि मुद्रा की मांग आय पर निर्भर करती है। यह आय की सभी परिस्थितियों में लागू होता है क्योंकि मुद्रा की मांग आय पर निर्भर करती है। यह आय का स्तर पूर्ण रोज़गार, अपूर्ण रोज़गार किसी भी स्तर वाला हो सकता है। परन्तु फिशर अपने विश्लेषण में पूर्ण रोज़गार की स्थिति मान कर चलता है। जो इसको संकुचित बना देता है।

(7) **व्यापार चक्रों की व्याख्या** (Explanation of Trade Cycle) — व्यक्ति आय का कितना भाग नकदी में अपने पास रखना चाहते है। K कीमतों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है यदि वे अधिक मुद्रा की मात्रा अपने पास रखते हैं तो कीमतें कम हो जायेंगी और जिस कारण मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और यदि K कम है तो वस्तुओं की मांग बढ़ेगी जो कीमतों को बढ़ा कर मुद्रास्फीति उत्पन्न कर सकतह है।

(8) **व्यक्तिगत आधार** (Microfoundation) — फिशर का समीकरण समष्टिगत अर्थशास्त्र पर आधारित है — मुद्रा की कुल मांग (PT) = मुद्रा की कुल पूर्ति (MV) । परन्तु कैम्ब्रिज समीकरण में विश्लेषण व्यक्ति स्तर से प्रारम्भ होता है—जैसे एक व्यक्ति अपना आय का कितना भाग नकदी के रूप में रखता है (K), इस आधार पर सारी अर्थव्यवस्था के लिए K निकाला जाता है जो ज्यादा व्यावहारिक और वास्तविक है।

(9) **T के स्थान पर Y का प्रयोग (Y replaced T)** — फिशर का समीकरण कुल सौदों (T) जो एक निश्चित समय के दौरान किये जाते है पर आधारित है। परन्तु इनकी गिनती करना असम्भव कार्य है। जबकि कैम्ब्रिज समीकरण में इसके स्थान पर वास्तविक आय (GNP) या Y का प्रयोग किया है जिसका अनुमान लगाना बहुत सरल है।

(10) **मुद्रा की मांग का व्यापक विश्लेषण** (Border analysis demand for money)— कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग केवल विनिमय के कार्य को पूर्ण करने के लिए ही नहीं की जाती बल्कि मूल्य का संग्रह या संचय करने के लिए भी किया जाती है। जबकि फिशर का समीकरण यह मानता है कि मुद्रा की मांग केवल क्रय-विक्रय करने (Transaction Purposes) के लिए ही की जाती है। इसलिए कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा की मांग का अधिक व्यापक विश्लेषण प्रदान करता है।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कैम्ब्रिज का समीकरण ज्यादा श्रेष्ठ है।

(Qestion)

अभ्यास प्रश्न तथा संकेत

1. Critically examine Fisher's quantity Theory of Money.

फिशर के मुद्रा सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करो।

(उत्तर— मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की व्याख्या करें व फिशर के समीकरण से इसे सिद्ध करें। इस सिद्धान्त की मान्यताएं, आलोचनात्मक तथा महत्व भी दें।)

2. Discuss the Cash Balance or Cambridge Equations and show their significance in monetary theory.

Or

Critically disscuss the Cambridge Euqations of the quantity Theory of Money.

Or

Critically examine Neo-classical quantity theory of money.

मुद्रा के नवपरम्परावादी परिमाण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

(उत्तर - कैम्ब्रिज समीकरणों की व्याख्या करो तथा नकद शेष द ष्टिकोण क्या है पहले बताइए। इसके पश्चात् इस समीकरणों या द ष्टिकोण की आलोचना करें।

3. What are the salient differences between Fisher's Equation and Cambridge equaitions of Quantity Theory of Money? Which of these do you prefer and why?

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के कैम्ब्रिज और फिशर के समीकरणों में आधारभूत अन्तर कौन से हैं ? इनमें से कौन-सा समीकरण आप अच्छा समझते हैं और क्यों ?

(उत्तर - पहले फिशर और कैम्ब्रिज समीकरणों का वर्णन करें तथा उनके अन्तर बतायें। फिर बताइए कि कैम्ब्रिज समीकरण कैसे अधिक उचित है। उसकी श्रेष्ठता के कारणों की व्याख्या करें।)

अध्याय 18

केन्ज़ का मुद्रा की मांग का सिद्धान्त

(Keynes Liquidity Approach)

केन्ज़ का मुद्रा की माँग का सिद्धान्त (Demand for Money - Keynes Approach)

लोग मुद्रा की माँग क्यों करते हैं ? मुद्रा का प्रयोग वस्तु व सेवाओं की तरह प्रत्यक्ष सन्तुष्टि प्रदान नहीं करता है। यह उत्पादन का साधन भी नहीं है जो उत्पादन को बढ़ा सके। फिर भी हम मुद्रा को अपने पास रखना चाहते हैं, अर्थात् मुद्रा की माँग करते हैं। क्यों ? क्योंकि लागों में तरलता अधिमान (Liquidity Preference) या नकदी के लिए चाहना पाई जाती है। नकदी की चाहना या मुद्रा की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि यह विनिमय के माध्यम की सेवाएं प्रदान करके वस्तु विनिमय प्रणाली (Barter system) की जटिल समस्या से बचा कर सन्तुष्टि प्रदान करता है। केन्ज के द ष्टिकोण से मुद्रा के द्वारा बांड भी खदीदे जा सकते हैं जो ब्याज के रूप में आय प्रदान करते हैं और पूँजी लाभ भी दे सकते हैं। अतः केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की माँग तीन उद्देश्यों के कारण की जाती है : (1) क्रय-विक्रय सम्बन्धी उद्देश्य (2) सावधानी उद्देश्य (Precautionsry Motive) और (3) सटा उद्देश्य ी (Speculative Motive)। कैसे ?

(1) **क्रय-विक्रय सम्बन्धी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग** (Money Demanded for Transaction Motive)

मुद्रा के प्रचलन के कारण वस्तु और सेवाओं के माघ्य विनिमय प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : (1) लोग वस्तुओं व सेवाओं को विक्रय करके मुद्रा या मौद्रिक आय प्राप्त करते हैं। (2) मौद्रिक आय को खर्च करके अपनी अवश्यकता की वस्तुएं एंव सेवाएं क्रय करते हैं। इस प्रकार मुद्रा क्रय-विक्रय का माघ्यम बनता है। इस उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग ही क्रय-विक्रय के लिए मांग कहलाती है। यह मांग किस पर निर्भर करती है ?

मौद्रिक आय प्राप्ति (Income receipt) और उसके व्यय ी (Disbursement) होने के मध्य समय अन्तराल पाया जाता है। यह समय अन्तराल आय प्राप्ति के स्वरूप पर निर्भर करता है। जैसे यदि आय प्रति माह प्राप्त होती है तो यह अन्तराल एक मासिक और यदि साप्ताहिक आय प्राप्ति होती है तो यह साप्ताहिक होगा, आदि।

उपरोक्त समय अन्तराल मुद्रा की क्रय-विक्रय सम्बन्धी माँग पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। जैसे वास्तव में क्रय-विक्रय सम्वन्धी मुद्रा की माँग दो बातों पर निर्भर करती है : (1) मौद्रिक आय प्राप्ति और उसके व्यय के मध्य समय अन्तराल (जैसा ऊपर बताया गया है), (2) आय की मात्रा या स्तर। कैसे ?

मान लीजिए एक व्यक्ति 10,000 रू. मासिक आय प्राप्त है जो उसे मास के प्रारम्भ में प्राप्त हो जाती है। अब उसे पूरा महीना उसी आय में से खर्च करना है और इस प्रकार ज्यो-ज्यों महीने के गुजरते जाते हैं उस व्यक्ति के पास मुद्रा आय भी कम होती जाती है और महीने के आखरी दिन के अन्त में वह गिर कर शून्य रह जाती है। इस महीने के अन्तर्गत औसतन मुद्रा या उस व्यक्ति की मुद्रा के लिए प्रतिदिन औसत माँग क्या होगी ?. स्पष्ट है महीने के प्रारम्भिक दिनों में उसके पास अधिक मुद्रा या मुद्रा की माँग होगी परन्तु अन्तिम दिनों में यह काफी कम और अन्त में शून्य होगी। उस व्यक्ति की औसत मुद्रा की मांग (5,000 रू.) होगी या मासिक आय का अनुपात $\frac{1}{2}$ होगी। मासिक आय को स्थिर रखते हुए यदि उस व्यक्ति को 15 दिन बाद आय (5,000 रू.) प्राप्त होती है तो उसकी मुद्रा की माँग क्या होगी ? अब पहले की आय प्राप्ति और इसके खर्च का समय अन्तराल आधा रह गया है। इसलिए निम्न सूत्र के आधार पर उसकी मुद्रा की माँग 2500 रू. रह जायेगी जो 10,000 रू. मासिक आय का $\frac{1}{4}$ भाग है। मुद्रा की माँग उपरोक्त समय अन्तराल की समयावधि पर इस प्रकार निर्भर करती है कि यह समय

अन्तराल कम होने पर मुद्रा की माँग कम और अधिक होने पर मुद्रा की माँग अधिक होती है। यह तथ्य निम्न चित्र से भी स्पष्ट होता है।

1 प्रथम समय बिन्दु पर उसके पास 10,000 रू. हैं या 10,000 रू. की मांग है। पहले दिन के अन्त में (10,000) दूसरे दिन के अन्त में (5,000 रू.) होगी। तीसरे दिन के अन्त में (9,000 रू.) की मांग होगी। इस प्रकार तीसों दिन की मुद्रा की मात्रा निकाल कर सभी जमा कर दिये जाते हैं और इसमें प्रथम समय बिन्दु के 10,000 रू. जमा करके 31 (30 + प्रथम समय) से भाग दिया जाता है जिससे औसत रखी गई मुद्रा (5,000) निकलेगी।

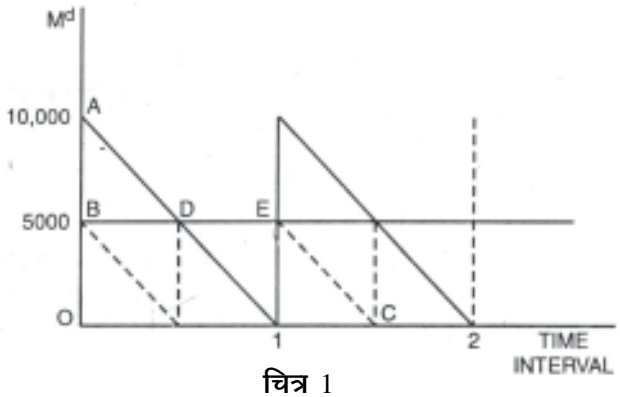

चित्र 1

चित्र 1 से स्पष्ट है कि 10,000 रू. मासिक आय प्राप्ति के उपरान्त औसत मुद्रा की माँग 5,000 रू. होगी, जैसा कि त्रिभुज ABD और DEC स्वांगसम हैं। महीने के आरम्भ में 10,000 रू. आय प्राप्त होती है जो महीने के अन्त में गिर कर शून्य हो जाती है। उसकी प्रतिदिन की औसत मांग 5,000 रू. ही है।

क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व आय का स्तर है। आय प्राप्ति और उसके खर्च का समय अन्तराल स्थिर रहते हुए यदि आय का स्तर परिवर्तित होता है तो मुद्रा की माँग भी बदल जायेगी। उपरोक्त उदाहरण में यदि मासिक आय 10,000 रू. से बढ़कर 20,000 रू. जाती है तो मुद्रा की औसत माँग भी 5,000 से बढ़ कर 10,000 रू. हो जायेगी। इस प्रकार समय अन्तराल के स्थिर रहते हुए यदि आय का स्तर बढ़ता है तो क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग बढ़ेगी और कम होने पर कम होगी। सभी व्यक्तियों की मुद्रा की माँग को जोड़ कर राष्ट्र के लिए मुद्रा की माँग ज्ञात की जा सकती है। अतः क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की मांग (M) का पालन :

किसी दिये हुए समय अन्तराल पर आय का वह भाग जो नकदी के रूप में रखा जाता है या मुद्रा की माँग की जाती है उसको K द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इस प्रकार मुद्रा की माँग $M = KPY$ होगी। K के स्थिर रहने पर यदि Y (वास्तविक उत्पादन) या कीमत स्तर (P) में व द्धि होने पर M भी बढ़ेगी। इस बात पर काफी विवाद रहा है कि M होने में व द्धि करने पर कीमत स्तर व डत्पादन कितने-कितने परिवर्तित होंगे ? जैसा कि : $PY = \frac{M}{K}$

ध्यान रहे कि यह K कैम्ब्रैज समीकरण में प्रयोग किये गये K के समान नहीं हो सकता। क्योंकि केन्ज़ के समीकरण में प्रयोग किया गया K केवल क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग से ही सम्बध रखता है। जवकि कैम्ब्रैज समीकरण वाला K मुद्रा की माँग से सम्बन्ध रखता है। जिसमें मुद्रा की मुल्य-संचय (Store of value) की माँग भी सम्मिलित होती है।

2. **सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग** (Precautionary Demand for Money)

व्यक्तियों को बहुत से ऐसे खर्च करने पड़ते हैं जिनका पूर्व अनुमान नहीं होता। जैसे दवाईयाँ, सामाजिक रीति-रिवाजों, दुर्घटनाओं, आकस्मिक लाभ के अवसर आदि। ऐसे खर्चो को पूरा करने के लिए भी लोग कुछ कुद्रा अपने पास रखते हैं या मुद्रा की माँग करते हैं। इतना ही नहीं बहुत से व्यक्ति जैसे व्यापारी वर्ग व उत्पादक वर्ग अपनी मासिक आय के वारे में निश्चित नहीं हो सकते जबकि उन्हें बहुत से खर्च निश्चित ही करने पड़ते हैं। आय की अनिश्चितता से उत्पन्न परेशानियों से बचने के लिए लोग कुछ मुद्रा अपने पास रखते हैं। इस प्रकार के उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा को ही सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग (Money demand for precautionary motive) कहा जाता है।

आय प्राप्ति और भुगतान अनियमित ही नहीं बल्कि अनिश्चित भी होने हैं। जैसे कि श्रमिक कभी बेरोजगार व कभी अधिक (over time) कार्य करते हैं। ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव व परेशानियों से बचने के लिए लोग सावघानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग करते हैं।

इस प्रकार की मुद्र की माँग के बारे में केन्ज ने अपनी पुस्तक में अलग-अलग मत व्यक्त किये हैं। एक स्थान पर केन्ज ने लिखा है कि सावघानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग ब्याज की दर (r.) पर निर्भर करती है। परन्तु दूसरे स्थान पर लिखा है कि यह आय के स्तर (Y) पर निर्भर करती है। केन्ज़ के समर्थक अर्थशास्त्रियों, जिनको केन्जीयनज (Keynesians) कहा जाता है, के अनुसार सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग आय के स्तर पर ही निर्भर करती है।

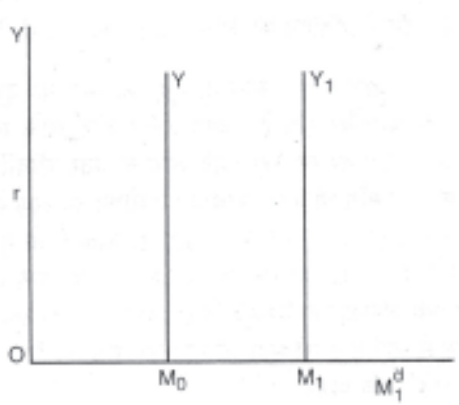

चित्र 2

केन्ज़ से बाद के अर्थशास्त्री मुद्रा की माँग को मुख्यतः दो भागों में ही विभक्त करते थे। क्रय-विक्रस सम्बन्धी मुद्रा की माँग जो आय के स्तर पर निर्भर करती है और दूसरा स्ट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग जो ब्याज की दर पर निर्भर करती है। वास्तव में साधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग भी क्रय-विक्रय (Transactions) में ही प्रयोग होती है। इसलिए क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग और सावधानी उद्देश्य के लिए की माँग एक ही प्रकार की माँग है और आय के स्तर (Y) पर निर्भर करती है। इसलिए यह दोनों प्रकार की माँग जमा कर दी जाती है जो आय के स्तर पर निर्भर करती है :

$$M_t^d = f(Y)$$

इस फलनात्मक सम्बन्ध को निम्न चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है। चित्र 2 में क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग M_t^d को ब्याज की दर (r) से स्वतन्त्र और आय के स्तर पर निर्भर होती है, दर्शाई गई है। यदि आय का स्तर Y है तो M_t^d चित्र में M_0 होगी। ब्याज की दर में उतार-चढ़ाव M_0 मुद्रा की माँग में परिवर्तन नहीं कर सकता। हाँ यदि आय बढ़ कर Y_1 होती है तो यह अवश्य बढ कऱ M_1 होगी। इस प्रकार M_t^d आय के स्तर (Y) पर निर्भर करती है। यह मुद्रा की माँग r के प्रति पुर्णतः बेलोच है।

सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग (Speculative Demand for Money)

केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की माँग इसलिए भी की जाती है ताकि बांड खरीद कर न केवल ब्याज बल्कि पूँजी लाभ (Capital Gain) भी प्राप्त किया जा सके। केन्ज़ के अनुसार इस प्रकार के धन को या तो नकद मुद्रा में रखा जा सकता है या बांडों (Bonds) के रूप में। यहाँ कभी परिपक्व न होने वाले सरकारी बांडों (Bonds with unlimited Maturity period) की कल्पना की गई है। हम जानते हैं कि बांड की कीमत और ब्याज की दर के मध्य विपरीत और आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। बांड की कीमत भविष्य में बढ़ेगी या घटेगी इस बारे में अनिश्चितता (Uncertainty) पाई जाती है।

कुछ व्यक्ति यह समझते हैं कि वे अन्य लोगों या बाजार की अपेक्षा भविष्य में बांड की कीमतों व ब्याज दर के बारे में बेहतर व अच्छी जानकरी रखते हैं, इसलिए व इनसे उतार-चढ़ाव से लाभ कमा सकते है। केन्ज़ के शब्दों मे वह व्यक्ति जो विश्वास करता है कि भविष्य में बाजार दर अधिक होगी तो वह बांड की अपेक्षा नकदी अपने पास रखेगा। (The individual who believes that cash ... rather than holding bonds, and vice cersa --Keynes, 1936)

एक व्यक्ति बाजार की अपेक्षा यह विश्वास कर सकता है कि भविष्य में बाजार की दरें बढ़ेंगी या घेटेंगी या स्थिर रहेंगी। यदि आशा करता है कि भविष्य की ब्याज दरें गिरेंगी तो वह सारी मुद्रा से बांड खरीद डालेगा क्योंकि वह ऐसा करने से केवल ऊंचा ब्याज ही नहीं कमायेगा बल्कि बांड की कीमतें भविष्य में बढ़ने के कारण पूँजी लाभ (capital gain) भी प्राप्त करेगा। और यदि वह आशा करता है कि भविष्य की ब्याज दरें (r) वर्तमान ब्याज दरों (r) की तुलना में बढ़ेंगी (भविष्य में बांडों की कीमतें गिरेंगी) तो वह बांड खरीदता है तो उसे एक तरफ पूँजी हानि (capital loss) होगी और दूसरी तरफ ब्याज से कम आय प्राप्ति होगी। यह पूँजी हानि ब्याज के रूप में कमाई गई आय से अधिक हो सकती है। उस परिस्थिति में बांड खरीदने से विशुद्ध हानि (Net loss) होगी। इसलिए वह सारी मुद्रा को नकद रूप में रखेगा क्योंकि नकदी में रखने की हानि शून्य होती है।

इसलिए सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग की और गहराई से जाँच की गई है। सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग वर्तमान ब्याज दर (r) और भविंष्य में आशंसित ब्याज दर (r) के मध्य सम्बन्ध पर निर्भर करती हैं। ज्यों एक व्यक्ति अपने धन को बांड

खरीदने में लगाता है तो वह बांड पर वर्तमान ब्याज दर (r) और पूँजी लाभ (GK) या पूँजी हानि (Capital loss, if GK < 0) प्राप्त करता है, जिसका आकार r और r पर निर्भर करता है। एक बांड पर प्राप्त होने वाला पूँजी लाभाभ (Capital gain) निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :

GK = Expected Bond Price - Current Bond Price

एक रूपया बांड में लगाने पर लाभ की दर निम्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है। हम जानते हैं कि बांड की कीमते और ब्याज दर के मध्य विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। इसलिए G_K उपरोक्त समीकरण के आधार से :

$$G_K = \frac{1}{r^e} - \frac{1}{r}$$

समीकरण के दोनो पक्षों को r से गुणा करने पर

$$rG_K = \frac{r}{r^e} - 1$$

r बांड की वर्तमान कीमत का विपरीत होने के कारण बायां पक्ष निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

$$g = \frac{G_K}{\text{CurrentBond Price}} = \frac{r}{r^e} - 1$$

पूँजी लाभ (G_K) को बांड की वर्तमान कीमत या बांड में निवेश की गई कुल राशि से भाग देने पर, जो $\frac{r}{r^e} - 1$ के बराबर है, पूजी लाभ की दर (Rate of Capital gain) जिसको g से दर्शाया गया है, 100 रू. का बांड खरीदने पर व्यक्ति निश्चितता के साथ $100(r+g)$ वर्ष के अन्त में आय प्राप्त करने की आशा करता है। जबकि 100 रू नकदी में रखने से प्राप्त आय शेन्य है। अपने लाभ को अधिकतम करने वाला व्यक्ति सट्टा उद्देश्य के लिए रखे गये अपने सारे धन या मुद्रा से बांड खरीदेगा यदि वह बांड रखने से विशुद्ध लाभ धनात्मक $(r+g) > 0$ प्राप्त करने की आशा करता है। वह सारे धन को नकदी के रूप में रखेगा यदि विशुद्ध लाभ ाभ $(r+g) < 0$ प्राप्त करने की आशा रखता है। केन्ज़ द्वारा यह कल्पना की गई है कि व्यक्ति जब एक बाराभ r निर्धारित कर लेता है तो यह स्थिराभ (fixed) रहता है (Expectations are held with certainty) इसलिए

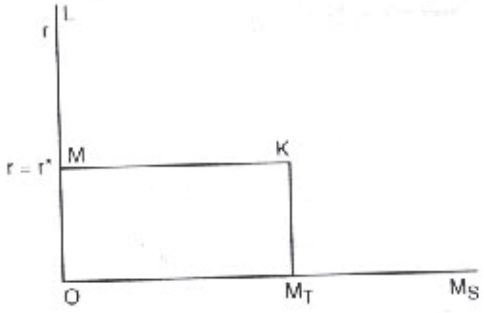

चित्र 3

r हमेशा r में परिवर्तन से स्वतन्त्र रहता है। इसलिए r का कोई निश्चित मूल्य (some critical value) है जिस पर बांड से प्राप्त होने वाला आशंसित विशुद्ध लाभ शून्य होगा $(r+g)=0$ r के ऐसे निश्चित मूल्य को r द्वारा प्रकट किया गया है। अब स्पष्ट है कि यदि $r > r^*$ है तब वह व्यक्ति बांड से पूँजी लाभ प्राप्त करने की आशा करेगा और केवल बांड ही अपने पास रखेगा न कि मुद्रा। यदि $r < r^*$ है तो वह केवल नकदी ही अपने पास रखेगा बांड बिल्कुल नहीं।

अतः एक व्यक्ति की सट्टे के लिए मुद्रा की माँग को एक पग ाभ (Step function) फलन जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है, के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। चित्र 5 में दर्शाया गया है कि जब कभी ाभ $r < r$ होगा तो निवेशक को बांड में मुद्रा लगाने से पूँजी हानि (capital loss) होगी, क्योंकि $r^* = (r+g) = 0$ होता हैं। इसलिए समीकरण $r+g=0$ में यदि r पहले से कम हो जाता है तो $r+g<0$ हो जायेगा। r के गिरने से $r+g=0$ मे r ही कम नहीं होता बल्कि g भी पहले कम हो जाती है, क्योंकि हम जानते हैं कि $g = \frac{r}{r^e} - 1$ है। r^e के स्थिर रहने पर जब r गिरता है तो $g\left(\frac{r}{r^e} - 1\right)$ भी अवश्य गिरेगा। इस कारण बांड खरीदने से हानि होती है। इसलिए जब होता है तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी सारी मुद्रा को नकदी में रखेगा परन्तु जब है तो वह अपने पास नकद मुद्रा शून्य रखेगा अर्थात् सारे धन से बांड खरीद लेगा। और जब होगा तो भी वह सारी मुद्रा

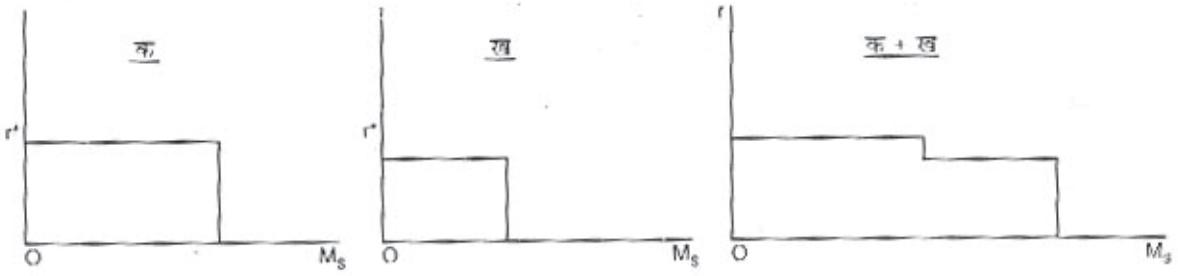

चित्र 4

को नकदी में ही रखेगा क्योंकि यहाँ बांड नकदी की तरह ही शून्य आय प्रदान करते है। मान लीजिए एक व्यक्ति निम्न चित्र अनुसार मुद्रा की मात्रा सट्टा उद्देश्य के लिए रखता है। यदिभ $r = r$ या $r < r^*$ तो वह सारी मुद्रा नकदी रूप में रखेगा जैसा चित्र में OM_TKr^* द्वारा दर्शाया गया है । $LM\,KM_T$ सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा का मांग वक्र है।

परन्तु केन्ज द्वारा प्रस्तुत सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग को ऊपर से झुकता हुआ दर्शाया जाता है न कि एक उपरोक्त पग फलन द्वारा। यदि सभी व्यक्तियों के पग फलनों को जोड़ दिया जाये तो एक निरन्तर ऊपर से नीचे की ओर झुकता हुआ फलन ही प्राप्त होता है। क्योंकि बाजार में बहुत से व्यक्ति होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति r से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न आशाएं रखता है। अर्थात् किसी का r ऊपर और किसी का नीचे होगा। r पर उनकी सट्टा उद्देश्य के लिए माँग असीमित होती है। क व्यक्ति का r* ऊंचा और ख का निम्न होने पर दोंनों का माँग वक्र निम्न चित्र - 4 के अनुसार होगा।

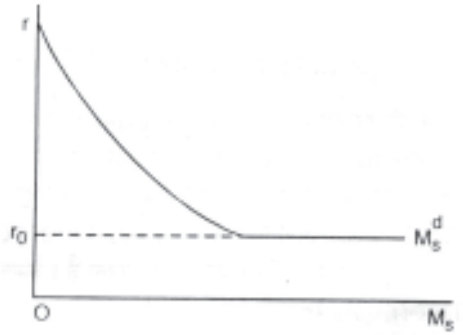

क औ ख व्यक्ति के विभिन्न पर सट्टा उद्देश्य के लिए निर्धारित माँग वक्रों को जमा करने पर सट्टा उद्देश्य के लिए माँग वक्र की आकृति दाई ओर के चित्र जैसी होगी। परन्तु यदि व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा है तो यह ऊपर से नीचे निरन्तर गिरता हुआ (Smooth and downward sloping demand curve) माँग वक्र होगा जिसको निम्न चित्र 5 द्वारा प्रकट किया गया है।

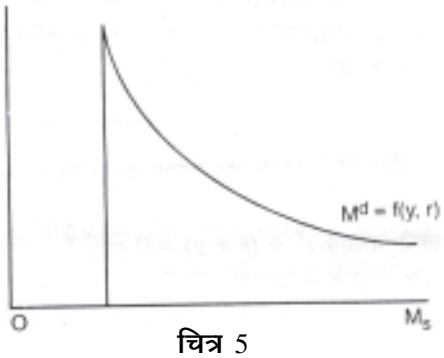

चित्र 5

इस प्रकार केन्ज़ द्वारा सट्टा उद्देश्य से सम्बन्धित मुद्रा की माँग के विश्लेषण में विभिन्न व्यक्तियों की आशंसाओं में भिन्नता विशेष महत्व रखती है। इसी के आधार पर केन्ज़ ने मुद्रा की माँग को ब्याज लोचशील ाभ (interest elastic) सिद्ध किया और अपना ब्याज का तरलता अधि ामान सिद्धान्त लाभ (Theory of Liquidity Preference) पेश किया।

मुद्रा की कुल माँग (Total Demand for Money)

इस प्रकार क्रय-विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की माँग आय पर $\left[M_t^d = f(Y)\right]$ और सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग ब्याज दर पर $M_t^d = f(r); \frac{dM}{dr} < 0$ निर्भर करती है। केन्ज द्वारा प्रस्तुत दोनों प्रकार की माँग वक्रों को जमा करने पर मुद्रा की कुल माँग वक्र निम्न चित्र द्वारा प्रकट की जा सकती है।

4. **टॉबिन का मुद्रा की माँग सम्बन्धी सिद्धान्त** (Tobin's Theory of Demand for Money)

प्रोफैसर टॉबिन ने केन्ज़ द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की सट्टा माँग का विस्तारपूर्ण और अधिक व्यवहारिक विवरण प्रस्तुत किया है। केन्ज़ के मतानुसार एक व्यक्ति भविष्य में आशंसित ब्याज दर और वर्तमान ब्याज दर के आधार पर यह निर्णय करता है कि मुद्रा को नकदी में संचय करना लाभकारी है या बांडों में निवेश करना लाभकारी है। जब यह निर्णय कर लिया जाता है तो वह व्यक्ति अपने सट्टा सम्बन्धी सारे धन को या तो नकदी में रखता है या सारे धन से बांड खरीद लेता है केन्ज कहता है कि वह नकदी और बांडों का मिला-जुला पत्राधान (Portfolio) नहीं रखता। परन्तु टॉबिन के सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार-कुशल विवेकी व्यक्ति अपने पत्राधान में नकदी और बांड दोंनों का मिश्रण रखता है।

पूर्वकलपनाएं (Assumptions)

(1) निवेशकर्त्ता के पास धन की मात्रा सीमित है जिससे वह बांड आदि खरीद कर आय प्राप्त करना चाहता है।

(2) निवेशक कम आय के स्थान पर अन्य बातें समान रहते हुए अधिक आय को स्वीकार करता है।

अध्याय 19

बॉमल का मुद्रा की माँग सम्बन्धी सिद्धान्त

(Baumol's Approach to Demand for Money)

क्रय-विक्रय मुद्रा की माँग से सम्बन्धित बॉमोल का भण्डार द ष्टिकोण

बॉमोल ने वस्तु-भण्डार नियन्त्रण (inventory control) पर आधारित केन्ज़ द्वारा प्रतिपादित मुद्रा की सौदा की माँग (Transaction Demand for Money) का विस्तार से विवरण करके अपना सिद्धान्त प्रतिपदित किया है। बॉमोल के अनुसार एक फर्म कच्चे माल की मात्रा (Inventory) का आकार इस प्रकार निर्धारित करती है कि उत्पादन में रूकावट भी न हो और कच्चा माल बेकार भी न पड़ा रहे। कच्चे माल का इस प्रकार से किया गया प्रबन्ध (inventory management) इसकी लागत को कम से कम कर देता है। कच्चे माल के भण्डार संचय पर लगाई गई पूँजी पर ब्याज तथा गोदाम आदि का किराया देना पड़ता है। इसलिए फर्मे भण्डार संचय पर लागत कम से कम करने के लिए कच्चे माल का अनुकूलतम भण्डार (inventory cost) कम से कम हो सके। बॉमोल ने क्रय-विक्रय की मुद्रा माँग को भण्डार लागत से जोड़ कर इसको पूँजी सिद्धान्त (Capital Theory) से सम्बन्धित कर दिया है।

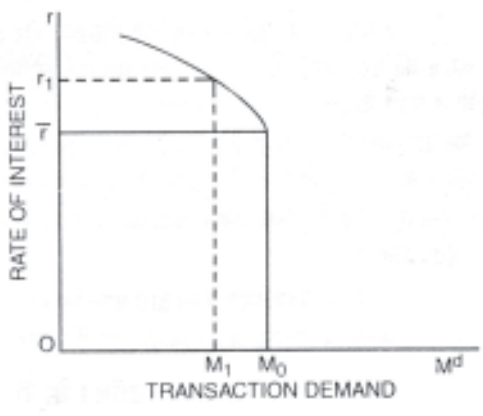

चित्र 1

बॉमोल के अनुसार मुद्रा को नकली में बेकार रखने का अर्थ है उस ब्याज की मात्रा का त्याग करना जो उस मुद्रा से बॉड खरीद कर अर्जित किया जा सकता था। इसको नकदी की अवसर लागत (Opportunity cost) कहा जाता है। केन्ज़ से असहमति प्रकट करते हुए बॉमोल ने तर्क दिया कि किसी निश्चित ब्याज दर के बाद भी यदि ब्याज दर बढ़ता है तो सौदा मुद्रा की माँग ब्याज दर के प्रति लोचशील हो जाती है, जबकि केन्ज इसको ब्याज बेलोच or (Interest ineleastic) मानता है। इस प्रकार सौदा मुद्रा की माँग को बॉमोल ने दो भोगों में विभक्त किया है : प्रथम भाग तो वह जो निश्चित बयाज दर (r) से निम्न दर में हुए परिवर्तन मुद्रा की सौदा माँग को प्रभावित नहीं, दूसरा वह भाग जिस पर ब्याज दर इस निश्चित ब्याज दर से ऊँची होने पर व्यक्ति इसके एक भाग को बांड खरीदने में लगा देता है और अपने पास नकदी की मात्रा को कम कर देता है, अर्थात् सौदा नकदी की माँग ब्याज लोचशील (interest elastic) बन जाती है। इसको निम्न चित्र की सहायता से प्रकट किया गया है : दर से नीचे ब्याज की दर में डतार-चढ़ाव मुद्रा की माँग पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ते। परन्तु जब यह बढ़ होती r1 है नकदी की माँग M1 M0 नकदी को बांड में लगा कर ब्याज आय अर्जित की जाती है।

बॉमोल इस सम्बन्ध में तर्क देता है कि सौदा मुद्रा को नकदी व बांडों के रूप में रखने से दो प्रकार की लागतें वहन करनी पड़ती हैं :

(a) **ब्याज का त्याग** (Sacrifice of interest)

(b) **बांड को नकदी में परिवर्तित करने की लागत** (conversion cost of bond into cash)

मुद्रा को नकदी के रूप में रखने से शून्य आय प्राप्त होती है और उस ब्याज-आय का त्याग करना पड़ता है जो आय उस नकदी से बांड खरीद कर अर्जित की जा सकती थी। इसलिए मुद्रा को नकदी में रखने से ब्याज लागत (Interest cost) वहन करती पड़ती है। इसके साथ ही आवश्यकता पड़ने पर बांड को नकदी में परिवर्तित करवाना पड़ता है जिस पर दलाल की फीस or (Brokerage cost) व डाक आदि के खर्चे वहन करने पड़ते हैं, जिनको गैर ब्याज लागत (Non-interest cost) कहा गया है। इसलिए व्यक्ति को सौदा-उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा के सम्बन्ध में निर्णय करना होता है कि वह इन दोनों प्रकार

लागतों के योग को कम कैसे कर सकता है? अर्थात् व्यक्ति नकदी अनुकूलतम भण्डार रख कर इसकी लागत (intventory cost) को कम से कम करना चाहता है। इस प्रश्न का हल करने से पहले निम्न पूर्व कल्पनाएं की गई है :

पूर्व कल्पनाएं (Assumptions)

(i) किसी निश्चित समय अवधि में सौदा उद्देश्य पर खर्च की जाने वाली मुद्रा की मात्रा or (M) दी हुई है।

(ii) बांड-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, अर्थात् बांड को नकदी और नकदी को बांड में परिवर्तित भी किया जा सकता है।

(iii) दी हुई समय अवधि के अन्तर्गत ब्याज दर (r) स्थिर रहती है।

(iv) दी हुई समय अवधि के अन्तर्गत गैर-ब्याज दर (b) भी स्थिर रहती है।

(v) बांड को नकदी में प्रत्येक बार परिवर्तित करने का आकार (size of each withdrawal) K द्वारा दर्शाया गया है। अर्थात् एक बार में एक निश्चित मात्रा (K) को ही बांड से नकदी में परिवर्तित किया जा सकता है।

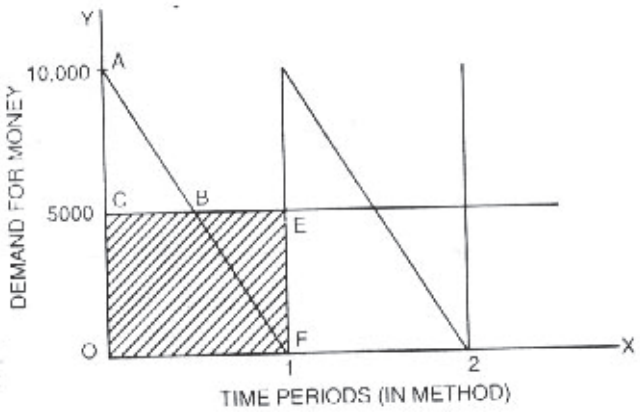

चित्र 2

व्याख्या (Explanation)

किसी दी हुई समयावधि में कितनी बार बांड को नकदी में परिवर्तित किया जाता है। यह $\frac{M}{K}$ (कल्पना है कि सारी सौदा मुद्रा (M) को यदि बांडों के खरीदने में लगाया जाता है) के बराबर निकाला जा सकता है। उदाहरणतः यदि $M = 10,000$ है और $K = 1,000$ है तो $10\left(\frac{10,000}{1,000}\right)$ बार बांडों को नकदी में परिवर्तित (convert) करवाया जा सकता है। इसलिए कुल बार नकदी बापिस लेने की दलाली लागत या गैर-ब्याज लागत $b\left(\frac{M}{K}\right)$ के बराबर होगी। दलाली फीस की दर है। इसी प्रकार ब्याज लागत (interest cost) जो मुद्रा को नकदी में रखने पर वहन पड़ती है, को निकाला जा सकता है। एक समय अवधि के अन्तर्गत उसके पास औसत मुद्रा $\frac{K}{2}$ के सामने होगी (यह हम केन्ज़ के सौदा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग का अध्ययन करते समय जाँच कर चुके हैं) फिर भी इस चित्र की सहायता से एक व्यक्ति की औसत मुद्रा की माँग स्पष्ट की जा सकती है। मान लीजिए महीने के प्रारम्भ में एक व्यक्ति को 10,000 रू. मोद्रिक आय मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है। महीने के अन्त तक मुद्रा खर्च होती होती शून्य पर पहुँच जाती है। परन्तु उसके पास औसत मुद्रा कितनी रही या मुद्रा की औसत माँग क्या है ? हम जानते हैं कि ABC त्रिभुज BEF के सर्वांगसम है। इसलिए महीने के दौरान मुद्रा की औसत माँग 5,000 रू. मुद्रा रही है। इसी प्रकार K यदि एक समय अवधि के लिए नकद मुद्रा है तो मद्रा के $\frac{K}{2}$ समान होगी। इसलिए कुल ब्याज लागत (interest cost) $r\left(\frac{K}{2}\right)$ होगी। अब समस्या इन दोंनों लागतो के योग or (C) को कम से कम करने की है :

$$\text{Minimise } C = r\left(\frac{K}{2}\right) + b\left(\frac{M}{K}\right) \quad \text{..... (i)}$$

यदि वह K का आकार बड़ा रखता है तो उसे ब्याज लागत अधिक वहन करनी होगी और गैर-ब्याज लागत कम। यदि वह K का आकार छोटा रखता है तो उसे अधिक बार बांड को नकदी में परिवर्तित करना पड़ेगा जो उसकी दलाली लागत को बढ़ा देगा। अतः उसके सामने प्रश्न है वह K का आकार क्या रखे ताकि कुल लागत (C) को कम से कम किया जा सके। यह

C को K के सन्दर्भ में पथक (Differentiate) करके और उसको शून्य के समान रखकर प्राप्त कर सकते है :

$$C = r\left(\frac{K}{2}\right) + b\left(\frac{M}{K}\right)$$

$$\frac{dC}{dK} = \frac{r}{2} - bMK^{-1-1} = 0$$

$$= \frac{r}{2} - bMK^{-2} = 0$$

$$= \frac{r}{2} - b\frac{M}{K^2} = 0$$

$$\frac{r}{2} = \frac{bM}{K^2}$$

$$rK^2 = 2bM$$

$$K = \sqrt{\frac{2bM}{r}} \qquad \text{..... (ii)}$$

समीकरण (ii) के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(1) केन्ज़ का सिद्धान्त गलत सिद्ध होता है क्योंकि यह मुद्रा की सौदा-मांग को ब्याज दर से अप्रभावित रहता मानता है, परन्तु बॉमोल ने सिद्ध किया कि सौदा उद्देश्य के लिए आदर्श मुद्रा की मात्रा (Optimum cash balance) ब्याज की दर पर निर्भर करती है। समीकरण (ii) दर्शादा है कि यदि ब्याज की दर कम होती है तो लाभ बात में रहेगा कि बांडों को नकदी में परिवर्तित करने or (K) का आकार बड़ा हो ताकि b की पहले से कम लागत वहन करनी पड़े। यदि ब्याज दर वढ़ा दी जाती है तो K का आकार छोटा रखना लाभकर होगा। इसलिए सौदा मुद्रा की माँग ब्याज की दर के प्रति विपरीत सम्बन्ध रखती है और इस प्रकार मुद्रा को सौदा माँग में अलग-अलग करना निरर्थक बन गया।

(2) यदि दलाली लागत (b) बढ़ती है तो एक व्यक्ति K का आकार बड़ा रखेगा और पहले से कम बार बांड को नकदी में परिवर्तित करेगा। यह तथ्य समीकरण (ii) से स्पष्ट होता है क्योंकि b समीकरण के अंश or (Numerator) में रखा गया है। b के कम होने पर इसके विपरीत होगा।

(3) सौदा माँग ब्याज दर से प्रभावित होने के कारण केन्ज़ के आय और सौदा मुद्रा की माँग के मध्य आनुपातिक और सरल रेखीय (Linear Relationship) सम्बन्ध को ठुकरा देती है।

बॉमोल के विश्लेषण की श्रेष्ठता (Superiority of Baumol's Analysis) क्रय

बॉमोल का सौदा मुद्रा की माँग का विश्लेषण परम्परावादियों और केन्ज़ विश्लेषण के निम्न आधार पर श्रेष्ठ माना गया है:

(i) ग हस्थी की व्यावसायिक क्षेत्र के सवामी होते हैं और व्यावसायिक क्षेत्र के स्वामी ग हस्थी भी होते हैं। इसलिए सौदा मुद्रा की माँग से भी वे लाभ डठाते हैं। इस कारण बॉमोल का विश्लेषण अधिक व्यावहारिक व श्रेष्ठ है।

(ii) बॉमोल ने सौदा मुद्रा की माँग को पूँजी सिद्धान्त के साथ जोड़ कर विश्लेषण को श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

(iii) सौदा मुद्रा की माँग पर ब्याज दर का भी प्रभाव रहने के कारण इस इकाई से कम आय लोचशील सिद्ध किया है।

(iv) बॉमोल ने सौदा मुद्रा की माँग को वास्तविक मुद्रा की माँग के रूप में अध्ययनय किया है।

अध्याय 20

फ्राईडमैन का मुद्रा की माँग का सिद्धान्त (Fridman's Approach to the Demand for Money)

मुद्रा का अधुनिक सिद्धान्त (The Modern Quantity Theory of Money)

मुद्रा का परम्परावादी परिमाण सिद्धान्त (फिशर समीकरण) 1930 तक पूर्ण रूप से स्वीकृत और ख्याति प्राप्त रहा। परन्तु 1929-30 की विश्वव्यापी मन्दी में यह सिद्धान्त असफल सिद्ध हुआ। 1930 के बाद केज़ के विचारों की स्वीक ति होने पर केन्ज़ और उसके समर्थकों द्वारा परम्परावादी सिद्धान्त की कटु आलोचना की गई। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री जैसे डी. एच. राबर्टसन और मीन्टस आदि इस सिद्धान्त का समर्थन करते रहे जो कि अपवाद ही कहे जा सकते हैं।

फ्रीडमैन ने अपने दो देखों (1956, 1959) के माध्यम से मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का अधुनिक मत (version) प्रस्तुत किया। यह आधुनिक सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त से काफी हद तक भिन्न है। यह भिन्नता इस बात से स्पष्ट होती है कि परम्परावादी परिमाण सिद्धान्त मुद्रा के पूर्ति पक्ष को महत्त्व देता है जबकि आधुनिक सिद्धान्त मुद्रा के मांग पक्ष को महत्व ही नहीं देता बल्कि इसकी व्यापक व्याख्या भी करता है। भिन्नता का दूसरा आधार यह है कि परम्परावादी परिमाण सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा निष्पक्ष or (Neutral) है जबकि फ्रीडमैन इसको आर्थिक मामलों में पक्षपातपूर्ण पाता है जो निम्न व्याख्या से भी स्पष्ट होगा :

केन्ज़ मुद्रा की मात्रा और वस्तुओं की कीमतों के मध्य अप्रत्यक्ष सम्बन्ध ब्याज दर में परिवर्तन के माध्यम से मानता था। केन्ज़ मन जो ठुकराते हुए फ्रीडमैन इसको आर्थिक मामलों मे पक्षपातपूर्ण पाता है जो निम्न व्याख्या से भी स्पष्ट होगा :

केन्ज़ मुद्रा की मात्रा और कीमतो के मध्य अप्रत्यक्ष सम्बन्ध ब्याज दर में परिवर्तन के माध्यम से मानता था। केन्ज़ के मत को ठुकराते हुए फ्रीडमैन ने व्यावहारिक आँकड़ों के आधार पर सिद्ध किया और परिमाण सिद्धान्त का समर्थन किया कि मुद्रा की मात्रा और वस्तुओं और वैकल्पिक साधनों की कीमतों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार फ्रीडमैन ने पुराने परिमाण सिद्धान्त को जीवनदान दिया है।

फ्रीडमैन ने अपने प्रसिद्ध लेख, 'The Quantity Theory of Money - A Re-statement" जो 1956 में प्रकाशित हुआ, में व्यक्त किया कि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त न तो कीमतों का सिद्धान्त है (जैसा परम्परावादी मानते थै) और न ही उत्पादन का, बल्कि यह तो मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है। मुद्रा की माँग और उसकी व्याख्या को इतना महत्त्व दिया कि यह सिद्धान्त मुद्रा की माँग का सिद्धान्त कहा जाने लगा। मुद्रा के कारण अन्य चरों जैसे कीमतों, मौद्रिक आय व उत्पादरन आदि में परिवर्तन जानने के लिए इस सिद्धान्त का सम्बन्ध मुद्रा की पूर्ति या मात्रा से जोड़ा जा सकता है। मुद्रा की पूर्ति व मात्रा को मुद्रा की माँग से स्वतन्त्र माना गया है।

(The Quantity Theory is in the first instance a theory of the demand for money. It is not a theory of output, or of money income, or of the price level. Any statement a bout the variables requires combining the quantity theory with some specifications about the conditions of supply of money and perhaps about other variables as well (Friendman 1956).

मुद्रा का अधुनिक परिमाण सिद्धान्त जिसको संशोधित परिमाण सिद्धान्त (Reformulated Quantity Theory) भी कहा जाता है इस नियम पर आधारित है कि एक व्यक्ति की मुद्रा माँग का आकार उसके धन या साधनों पर निर्भर करती है। जिस व्यक्ति के पास धन या स्थाई आय अधिक (कम) होगी वह मुद्रा की मात्रा अपने पास अधिक (कम) रखेगा या मुद्रा की माँग करेगा। वास्तव में एक व्यक्ति मुद्रा की कितनी मात्रा अपने पास रखता है अथवा माँग करता है। इसका निर्धारण मुद्रा से

प्राप्त होने वाली सीमान्त आय और अन्य वैकल्पिक साधनों (Alternative Assets) से प्राप्त होने वाली सीमान्त आय के मध्य समानता से होता है। मुद्रा (नकदी) को अपने पास रखने से अन्य साधनों की भांति भौतिक आय तो प्राप्त नहीं होती परन्तु यह विनिमय के माध्यम की सेवाएं व संकट के प्रति सुरक्षा आदि की सेवाएं अवश्य देता है। क्योंकि सेवाओं को वस्तुओं की तरह वास्तविक आय माना जाता है। इसलिए मुद्रा से प्राप्त अभौतिक सेवाओं के रूप में प्राप्त सीमांत आय की तुलना अन्य वेकल्पिक साधनों (बांड आदि) से की जा सकती है। इस प्रकार एक व्यक्ति अपने पास मुद्रा की मात्रा इनती रखेगा ताकि मुद्रा से प्राप्त सीमांत आय अन्य साधनों से प्राप्त सीमांत आय के बराबर हो सके। नकदी और वैकल्पिक साधनों, सभी से प्राप्त सीमांत आय जब समान होती है तो सन्तुलन की अवस्था होती है। जिसमें सधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इन दी हुई अवस्था में यदि साधनों से प्राप्त सीमांत आय मुद्रा से प्राप्त सीमांत आय से अधिक हो जाती है तो लोग इन साधनों को अधिक खरीदेंगे और मुद्रा की मांग कम कर देंगे। घटते प्रतिफल का नियम लागू होने पर वैकल्पिक साधनों से प्राप्त सीमांत आय गिरेगी और मुद्रा की मात्रा कम होने पर इसकी सीमांत आय बढ़ेगी, क्योंकि मुद्रा की मात्रा कम होने पर प्रत्येक मुद्रा की इकाई को विनिमय व सुरक्षा सम्बन्धी अधिक सेवाएं देनी होंगी। यह प्रक्रिया जारी रहेगी जब तक फिर से दोनों की सीमांत आय समान नहीं हा जाती। इसके विपरीत यदि साधनों से प्राप्त सीमांत आय मुद्रा से प्राप्त सीमांत आय से कम हो जाती है तो उसी कारण मुद्रा की माँग बढ़ा दी जायेगी। सन्तुलित मुद्रा की माँग वह होगी जहाँ दोनों से प्राप्त सीमांत आय समान हो जाती है।

इस प्रकार फ्रीडमैन मुद्रा को पूँजीगत पदार्थ (Capital asset) मानता है जिसकी व्याख्या पूँजी सिद्धान्त (Capital Theory) के अनुसार ही की जा सकती है। एक व्यक्ति अपने धन को मुद्रा में या वेकल्पिक साधनों के रूप में या दोनों में रख सकता है। फ्रीडमैन के लेखों (1956, 1959) का अधिकतर भाग मुद्रा की माँग की व्याख्या ही करता है।

फ्रीडमैन ने मुद्रा की माँग को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया है :

$$M^d = Pf(r^B, r^E, P, h, y, u) \quad \text{..... (i)}$$

वास्तविक मुद्रा की माँग को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$\frac{M^d}{P} = f(r^B, r^E, P, h, y, u) \quad \text{..... (ii)}$$

M^d नकद मुद्रा की आयोजितत माँग (Planned demand for nominal balances) को दर्शाता है। P सामान्य कीमत स्तर है, और इस प्रकार $\frac{M^d}{P}$ वास्तविक मुद्रा की माँग को प्रकट करता है। r^B r^E, P मुद्रा के वैकल्पिक साधनों जैसे बांड, हिस्से (Equity shares) व टिकाऊ सम्पत्ति से प्राप्त निरपेक्ष आय (r) माँग को दर्शाता है। टिकाऊ साधनों (जमान, मशीन, गाड़ियां आदि) की कीमतों मे प्रतिशत परिवर्तन से प्राप्त हाने वाली आय को दर्शाता है। बांड से प्राप्त होने वाली आय की दर, समता हिस्सों से प्राप्त आय की दर को दर्शाता है। मानवीय धन, Y = मौद्रिक स्थाई आय और U मालिक की रूचियों को प्रकट करता है।

मुद्रा की माँग का निर्धारण

मुद्रा की माँग को निर्धारित करने के लिए समीकरण (i) के चरों को दो भागों में विभक्त किया गया है : (1) वे चर जो साधनों या धन का कितना अनुपात नकदी में रखा जाता है या नकदी की माँग की जाती है का निर्धारण करते हैं जैसे : इन चरों को वैकल्पिक साधनों से आय (Returns on alternative Assets) का नाम दिया जा सकता है।

2. वे चर जो नकदी या मुद्रा की माँग का आकार या स्तर निर्धारित करते है। जैसे । इनको मुद्रा की माँग का आय साधन प्रतिबन्ध (Income or wealth constraints) कहा जाता है। एक व्यक्ति के पास नकदी की असीमित मात्रा नहीं हो सकती क्योंकि उसके पास आय या धन सीमित मात्रा में है। इसलिए आय या धन को नकदी की माँग करने या रखने पर बजट प्रतिबन्ध (Budget constraint) का स्थान या नाम दिया गया है। जितनी स्थाई आय (Y) अधिक होगी (साधनों की सपेक्षा आय स्थिर रहती हुई) मुद्रा कुल माँग अधिक होगी।

(Capital asset) वैकल्पिक परिसंपत्तियों से आय (Returns from Altenative Asset)

समीकरण के (i) के प्रथम तीन चर मुद्रा की दी हुई माँग को कम या अधिक कर सकते हैं। कैसे ?

(क) ब्याज की दर मुद्रा को नकदी में रखने या उसकी माँग करने की अवसर लागत (Opportunity cost) होती है। बांड पर ब्याज की दर (r^B) माबढ़ने पर लोग बांडों को अधिक खरीदेंगे और मुद्रा की कम माँग करेंगे। इस प्रकार ब्याज की दर में परिवर्तन

माद्रा की माँग पर विपरीत प्रभाव छोड़ती है। फ्रीडमैन के अनुसार मुद्रा की माँग वहुत कम ब्याज लोचशीाल है।

(ख) यदि शेयरों पर लाभांश की दर (r^E) बढ़ती है तो लोग शयरों की माँग बढ़ा देगे और मुद्र की माँग कम कर देंगे ताकि दोनों की सीमांत आय में समानता बनी रहे। इसके विपरीत यदि कम होता है तो लोग नकदी की माँग बढ़ा देते हैं।

(ग) यदि शेयरों पर लाभांश की दर बढ़ती हे तो लोग शेयरों की माँग बढ़ा देंगे और मुद्रा की माँग कम कर देंगे ताकि दोंनो की सीमांत आय में समानता बनी रहे। इसके विपरीत यदि कम होता है तो लोग नकदी की माँग बढ़ा देते है।

(ग) इसी प्रकार यदि टिकाऊ सम्पत्ति (Durable Assets) जैसे मोटर, भवन, ज़मीन, जेवरात आदि की कीमतों में व द्धि की दर बढ़ रही है तो लोग नकदी की कम माँग करेंगे और इन पदार्थो की माँग को बढ़ा देंगे ताकि अधिक लाभ अर्जित किया जा सके।

इस प्रकार इन तीनों वैकल्पिक साधनों की आय का मुद्रा की माँग से नकारात्मक सम्बन्ध है। दीर्धकाल में तीनों वैकल्पिक साधनों से प्राप्त आय दर (r) समान स्थापित होती है।

(2) **आय अथवा धन प्रतिबन्ध** (Income or Wealth Constraint)

फ्रीडमैन ने अन्य साधनों की तरह मुद्रा को भी समपत्ति (Asset) माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुद्रा की माँग के सिद्धान्त की संरचना प्रवाह (Flow) की अपेक्षा स्टॉक (Stock) के सन्दर्भ में की गई है क्योंकि सम्पत्ति (Assets) स्टॉक चर होते हैं। इस द ष्टिकोण से समीकरण (i) में प्रविष्ट h और Y का अध्ययन किया जा सकता है। वास्तविक या स्थाई आय (Y) समीकरण में केवल बजट प्रतिबन्ध (Budget constraint) के रूप में कार्य करती है (अर्थात् यह धन को नकदी में रखने की उच्चतम सीमा को व्यक्त करती है)। अन्य साधनों से प्राप्त आय की सहायता से निर्धारित किया जाता है कि धन का कितना भाग नकदी में रखना या मुद्रा की माँग के रूप में होगा। धन का कुल आकार इन साधनों की सापेक्ष आय की सहायता से इसका निर्धारण करता है। समीकरण (i) मा Y इस धन के प्रतिनिधित्व का कार्य करता है।

फ्रीडमैन Y को जो प्रवाह चर है कुल धन (W) जो स्टॉक चर है उसका प्रतिनिधि मानता है। समान्यतः स्थाई आय धन से प्राप्ति (Return) की दर (r) होती है :

$$Y=rW$$

$$W=\frac{Y}{r}$$

इसलिए समीकरण (i) में Y के स्थान पर $\frac{Y}{r}$ जा स्टॉक है को लिखा जा सकता है। केवल सरलता के लिए (Y) लिखा है क्योंकि r समान्य है जिसको समीकरण में पहले ही $r^B r^B$ आदि के रूप में लिखा जा चुका है। इसलिए $\frac{Y}{r}$ करके कभी भी W को प्राप्त किया जा सकता है। उपरोक्त विश्लेषण से दो बातें स्पष्ट होती हैं : पहली कि मुद्रा के माँग सिद्धान्त की रचना स्टॉक के रूप में की गई है। यह कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों से भिन्न है जिन्होंने मुद्रा के माँग सिद्धान्त को आय (प्रवाह) के रूप में व्यक्त किया है । $(M^S = KPY)$

दूसरा यह कि एक व्यक्ति की आय केवल भौतिक और वित्तीय साधनों से प्राप्त नहीं होती बल्कि कार्य से भी आय प्राप्त होती है। बहुत से व्यक्तियों को केवल कार्य से ही आय प्राप्त होती है। इस समस्या का समाधान फ्रीडमैन ने यह व्यक्त करके भली भांति कर दिया है कि धन (W) में केवल भौतिक और वित्तीय साधन सम्मिलित नहीं होते बल्कि मानवीय धन (h) भी शामिल होता है। सामान्य r मानवीय धन पर भी लागू होता है (rh) जैसे मजदूरी दर आदि। It (r) is the capitalised value of income from work like r of other assets. h को केवल मानवीय धन से अनुपात दर्शाने के लिए समीकरण में रख गया है, क्योंकि (W) में सभी प्रकार की सम्पत्ति सम्मिलित है। U समीकरण (i) में लोगों की मुद्रा व अन्य साधनों की माँग के प्रति रूचि को दर्शाता है।

इस प्रकार फ्रीडमैन मुद्रा के माँग फलन को काफी स्थाई (Stable) सिद्ध करता है। मुद्रा का माँग फलन स्थाई होने के कारण आर्थिक क्रियाओं में परिवर्तन के लिए केवल मुद्रा की पूर्ति जिम्मेदारी है। मुद्रा का माँग स्थाई होने के कारण मुद्रा की मात्रा

और कीमत स्तर व आय के माध्य सम्बन्ध को व्यक्त किया जा सकता है। इस सिद्धान्नत के अनुसार मुद्रा स्फीति का कारण मुद्रा की मात्रा में उत्पादन की अपेक्षा कहीं ज्यादा व द्धि होना है। कीमत स्तर को स्थाई रखने के लिए अनिवार्य है कि मुद्रा की मात्रा में व द्धि लगभग उत्पादन में व द्धि के समान हानी चहिए। परन्तु फ्रीडमैन अल्पकाल में मुद्रा की मात्रा व कीमत स्तर के सम्बन्ध को जानना कठिन मानता है। उसके अनुसार दीर्धकाल में मौद्रिक नीति अधिक सफल पाई जाती है। फ्रीडमैन मुद्रा की मात्रा और कुल माँग के मध्य सम्बन्ध के प्रत्यक्ष मानता है।

परम्परावादी सिद्धान्त में सुधार

(Improvement over Classical Theory)

फ्रीडमैन का अधुनिक सिद्धान्त परम्परावादी मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में निम्न आधार पर सुधार या श्रेष्ठ समझा जाता है।

(1) परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रा पुर्ति में परिवर्तन केवल कीमत स्तर को प्रभावित करता है। परन्तु फ्रीडमैन के अधुनिक परिमाण सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन साधनों की माँग व आय को प्रभावित करता है, अर्थात् मुद्रा को केवल आवरण नहीं माना गया है।

(2) कीमतो में स्थिरता के लिए फ्रीडमैन कहता है कि मुद्रा पूर्ति में व द्धि उत्पादन में वद्धि के लगभग समान होनी चहिये। उत्पादन (Y) को स्थिर नहीं माना गया जैसे परम्परावादी मानते थे।

(3) मुद्रा को पूँजीगत साधन के पुल्य समझ कर फ्रीडमैन ने मौद्रिक सिद्धान्त से जोड़ दिया गया।

(4) फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को मुद्रा की माँग का सिद्धान्त सिद्ध किया है जबकि परम्परावादी इसे कीमत स्तर निर्धारित करने का सिद्धान्त मानते थे।

(5) परम्परिवादी आय मुद्रा की माँग लाचशीलता इकाई के बराबर मानते थे परन्तु फ्रीडमैन इसे इकाई से अधिक मानते थे।

आलोचनात्मक टिप्पणी (Critical Comment)

फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित मुद्रा के आधुनिक परिमाण सिद्धान्त के मुख्य गुण व दोष निम्न प्रकार से है :

गुण (Merits)

(1) मुद्रा की माँग के अध्ययन में फ्रीडमैन ने पूँजी सिद्धान्त का समावेश किया। उसके अनुसार मुद्रा को पूँजी पदार्थ (बांड आदि) में परिवर्तित किया जा सकता है जिससे आय प्राप्त होती है और इस आय का वर्तमान मूल्य पूँजी होती है। इस प्रकार फ्रीडमैन ने मुद्रा सिद्धान्त को पूँजी सिद्धान्त के साथा सम्मिलित (integrate) किया।

(2) फ्रीडमैन ने मुद्रा की माँग का स्थाई आय का फलन माना है जो ज्यादा विश्वसनीय है। स्थाई आय धन से प्रत्याशित आय की दर है।

(3) एक और महत्वपुर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने आय का सम्बन्ध धन से जोड़ा ही नहीं बल्कि मानवीय ध्न को भी धन से सम्मिलित किया। मजदूरी आदि मानव धन से ही प्राप्त होने वाली आय है। इससे पहले मानवीय धन की अवहेलना होती रही थी।

(4) फ्रीडमैन ने कीमत स्थिरता रखने के लिए एक मौद्रिक नियम बना दिया कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में व द्धि उत्पादन व द्धि के अनुपात में होनी चाहिये ताकि कीमत स्तर ज्यों का त्यों बना रहे।

(5) फ्रीडमैन ने तर्क दिया कि एक व्यक्ति अपने पास केवल मुद्रा या केवल बांड नहीं रखता। केन्ज़ के इस मत को ठुकराते हुए फ्रीडमैन ने कहा कि व्यक्ति अपने पास नकद, बांड, शेयर आदि अनेक साधनों के रूप में धन को रखता है।

आलोचना (Demerits)

(1) फ्रीडमैन ने अपने सिद्धान्त में ब्याज दर को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। इस प्रकार केन्ज़ीयम विश्लेषण की पूर्ण रूप व माँग आदि को प्रभावित करता है।

(2) मुद्रा की सौदा माँग की अवहेलना का दोषरोपण भी इस सिद्धान्त पर किया जाता है अर्थात् इस सिद्धान्त में मुद्रा की लेन-देन (Transactions) के लिए माँग को सम्मिलित नहीं किया गया।

(3) इस सिद्धान्त को समय रहित स्थैतिक विश्लेषण कहा गया है।

(4) आय को धन व धन को आय में परिवर्तित करना इनता आसान नहीं है जितना इस सिद्धान्त में समझा गया है।

(5) फ्रीडमैन ने मुद्रा की बहुत व्यापक परिभाषा दी है जिसमें समय जमा भी शामिल किये गये हैं। यह उचित नहीं है क्योंकि समय जमा को जब चाहे तब खर्च नहीं कर सकते अर्थात् इसमें तरलता की कमी होती है।

(6) मुद्रा की पूर्ति को बाह्या तत्त्व माना है परन्तु बैंक जमा बैंकों के अरक्षित कोष को बढ़ा देते हैं जिस कारण उधार के माध्यम से मुद्रा पुर्ति बढ़ती है।

(7) कीमतें, उत्पादन आदि भी मुद्रा की पूर्ति बढ़ाने या घटाने में सहायक हाते हैं। परन्तु फ्रीडमैन ने इसकी भी अवहेलना की है।

(8) धन को मुद्रा की माँग के निर्धारण में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। इस कारण भी फ्रीडमैन की आलोचना की जाती है।

REVIEW QUESTIONS

1. What is meany by Demand for money. Explain the classical and Neo-classical theory of the Demand for money.
2. Explain Critically the Keynesian Theory of the Demand for Money.
3. Critically examine the Baumol's theory off the Demand for money.
4. Explain critically the the Tobin's Theory of the Demand for money.
5. Critically examine Friendman's Modern Theory of the demand for money. How is it an improvement over the classical theory.

SELECTED READINGS

William H. Branson, Macroeconomic Theory and Policy Ch. 14

Suraj B. Gupta, Monetary Economics.

Rama Ghosh, Monetary Economics.

Harris, monetary Theory

अध्याय 21

मुद्रा पूर्ति तथा मुद्रा गुणक
(Money Supply and Money Multiplier)

मुद्रा को मापा जा सकता है। परन्तु मुद्रा का माप (Measurement) तभी हो सकता है जब हमें यह सही ज्ञान हो कि मुद्रा क्या है। वैसे ता मुद्रा की अनेकों परिभाषाएँ दी गई हैं। परन्तु मुद्रा को मापने के द ष्टिकोण से दो मत महत्वपूर्ण है :

परम्परावादी और परीक्षण द ष्टिकोण

(The A Priori And Empirical Aplproaches)

परम्परावादी विचारधारा मुद्रा को इसके स्वरूप (Nature) के अनुसार परिभाषित करती है। यह मुद्रा की एसी विशेषता की ओर संकेत करती है जो मुद्रा को अन्य पदार्थ से विल्कुल अलग कर सके। मुद्रा की एसी विशेषता कौन सी है ? यह इसका विनिमय के माध्यम का कार्य (Medium of exchange function) है। मुद्रा का यह एक ऐसा कार्य है जो इसको अन्य वस्तुओं से अनुल्यनीय (unique) बना देता है। कोई अन्य वस्तु सामान्य विनिमय का माध्यम नहीं बना सकती। कोई दूसरा कार्य जैसे धन संग्रह का कार्य (Store of wealth function) मुद्रा को अतुल्यनी (unique) नहीं बना सकता क्योंकि अन्य वस्तुएँ भी इस कार्य को कर सकती हैं। इसलिए परम्परावादी द ष्टिकोण के अनुसार मुद्रा वह बस्तु है जिसको विनिमय के माध्यम बनने की सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो। मुद्रा की परम्परावादी परिभाषा इसकी अन्य बस्तुओं से बिल्कुल प थक कर देती है। इसके बाद यह निष्कर्ष निकालना कि कौन सा मद (items) मुद्रा हैं सरल बन जाता हैं अर्थात् ये वे मदें हैं जिनको भुगतान करते (making payments) में प्रयोग किया जा सकता है। निःसन्देह यह करेन्सी और माँग जमा (Demand Deposits) हैं जो मुद्रा कहलाते हैं। इनका माप किया जा सकता है। इस प्रकार से किया गाया मुद्रा का माप (M1) संकुचित माप कहा जाता है।

परम्परावादी परिभाषा की तुलना में परीक्षण परिभाषा मुद्रा पुर्ति के महत्त्व पर बल देती है। इसके अनुसार मुद्रा पूर्ति दो कारणों के करण महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा पूर्ति के महत्त्व का पहला कारण तो यह है कि यह देश की मौद्रिक आय पर भारी प्रभाव (Dominating effect) छोड़ती है। दूसरा कारण यह है कि केन्द्रीय अधिकारी इस पर नियन्त्रण कर सकता है। वैसे ता अन्य तत्त्व भी है। जो राष्ट्रीय आय को प्रभावित कर सकते है जैसे आसंशायें (Expectations) जलवायु आदि परन्तु इन पर केन्द्रीय अधिकारी नियन्त्रण (control) नहीं कर सकता जबकि मुद्रा पर नियन्त्रण किया जा सकता है। इसलिए मुद्रा पूर्ति सरकारी नीति (Government Policy) के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

इस प्रकार परीक्षण परिभाषा (Empirical Definition) के अनुसार मुद्रा वे तरल परिसम्पत्तियां (Liquide Assets) होती है। जो (1) मौद्रिक आय को प्रभावित करते हैं। और (2) जो केन्द्रीय बैंक या सरकार द्वारा नियन्त्रित किये जा सकते हैं। परीक्षण परिभाषा के अनुसार M1 में समय जमा (Time Deposits) भी सम्मिलित होते हैं जिनको का नाम दिया गया है। इसको मुद्रा का व्यापक माप (Broader measure) भी कहा गया है। मुद्रा के व्यापक माप में करेन्सी तथा सभी प्रकार की जमाएँ सम्मिलित हैं।

बहुत से अर्थशास्त्री M1 का आय से बहुत निकट का सम्बन्ध मानते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री, जैसे मिल्टन फ्रीडमैन आदि के अनुसार आय का M2 (Broader Measure of Money) से घनिष्ट सम्बन्ध माने हैं। मुद्रा का कौन से माप सही है ? यह विश्लेषणकर्त्ता कर आवश्यकता तथा समय पर निर्भर करता है कि वह किस माप को सही मानता या मानती है।

मुद्रा पूर्ति (Money Supply)

उपरोक्त विश्लेषण से सिद्ध होता है कि मुद्रा को मापा जा सकता है। मुद्रा एक स्टाक चर है। विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का जोड़ किसी समय बिन्दु पर मुद्रा की मात्रा या मुद्रा का स्टाक (Stock) कहलाता है। इस प्रकार विभिन्न समय विन्दुओं पर मुद्रा का स्टाक प्राप्त किया जा सकता है जो समयानुसार मुद्रा का पुर्ति वक्र कहलाता है।

मुद्रा की पुर्ति से अभिप्राय मुद्रा के उस स्टाक से है जो किसी समय जनता (Public) के पास होता है। विभिन्न समय विन्दुओं पर जनता के पास पाई हमेशा अर्थव्यवस्था में विद्यमान मुद्रा के कुल स्टाक से कम होती है-क्योंकि जनता शब्द में व सभी आर्थिक इकाइयाँ सम्मिलित की गई हैं (जैसे परिवार, फर्मे और संस्थाएँ) जो मुद्रा की केवल माँग करती हैं। इसमें सरकार और बैंकिग व्यवस्था सम्मिलित नहीं होते हैं क्योंकि वे मुद्रा के उत्पादक हैं। सरकार में केन्द्रीय व सभी राज्य और वैंकिंग व्यवस्था सम्मिलित नहीं होते हैं क्योंकि वे मुद्रा के उत्पादक हैं। सरकार में केन्द्रीय व सभी राज्य सरकारें और बैंकिंग व्यवस्था में केन्द्रीय बैंक व अन्य सभी बैंक जो माँग जमा (Demand Deposits) स्वीकार करते हैं सभी सम्मिलित होते हैं। ध्यान रहे कि जनता (Public) शब्द के अन्दर सभी स्थानीय सरकारें, गैर-बैंक वित्तीय संस्थाएँ और सभी सरकारी उद्यम (Public Sector Undertakings like H.M.T., BHEL, SAIL) शामिल होते हैं। इतना ही नहीं विदेशी सरकारें, विदेशी केन्द्रीय बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि जो अपनी भारतीय मुद्रा (Indian currency) को R BI में जमा रखते हैं से सभी जनता शब्द में सम्मिलित होते हैं।

मुद्रा स्टाक को इस प्रकार मापने का मुख्य उद्देश्य मुद्रा के उत्पादकों से प थक करना है। मौद्रिक विश्लेषण और नीति निर्माण के लिए ऐसा करना अनिवार्य है जैसा आगे चल कर ज्ञात होगा। सिद्धान्त रूप से यह विश्लेषण किया जा सकता है कि मुद्रा की पुर्ति में परिवर्तन निम्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को प्रभावित कर सकता है। यह मुद्रा पूर्ति को मापने के महत्त्व को दर्शाता है।

मुद्रा पूर्ति का महत्त्व

(Importance of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति आर्थिक क्रियाओं को निम्न प्रकार से प्रभावित करती है :

(1) फ्रीडमैन ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि मुद्रा पुर्ति और राष्ट्रीय आय के माध्य घनिष्ट सम्बन्ध हैं। उनके अनुसार यदि मुद्रा पुर्ति को राष्ट्रीय उत्पादन की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ाया जाये तो मुद्रास्फीति उत्पन्न होगी।

(2) मुद्रा मे परिवर्तन कन्ज़ के अनुसार ब्याज की दर और निवेश को प्रभावित करता है, केवल सामान्य परिस्थितियों में केन्ज़ के अनुसार ऐसा होता है।

(3) मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन कीमतों, रोज़गार आदि को प्रभावित करता है जब लोगों के पास मुद्रा अधिक होगी तो वे अधिक खर्च करेंगे। इससे कुल माँग बढ़ेगी

(4) मुद्रा पुर्ति में परिवर्तन यदि मुद्रा स्फीति व मुद्रा अवस्फीति उत्पन्न करता है तो एक देश के आयात और निर्यात प्रभावित होते हैं। इस कारण एक देश का भुगतान शेष असन्तुलित या प्रभावित हो सकता है।

(5) मुद्रा पूर्ति एक देश के व्यापार, उद्योगों आदि को प्रभावित करता है। यह ब्याज दर में परिवर्तन के माध्यम से घटित होता है।

मुद्रा पूर्ति के माप

(Measures of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के मापों का अध्ययन भारत में अपनाये गये मद्रा पूर्ति के मापों के आधार पर किया गया है। भारत में मुद्रा पूर्ति का माप रिज़र्व बैंक आफ इंडिया (RBI) द्वारा प्रकाशित आंकड़ों पर आधारित है। 1967-68 से पहले RBI लोगों के पास रखी गई मुद्रा का ही एक मात्र माप प्रकाशित करता था। आर्थात् जनता (Public) के पास जो करेन्सी और माँग जमा होती थी उनके जोड़ को मुद्रा पूर्ति का माप (M) माना जाता था और इस जोड़ के आंकड़ों को RBI प्रकाशित करता था। परन्तु यह मुद्रा का माप सकुचित माना गया। 1967-68 के बाद RBI ने M के अतिरिक्त मुद्रा पूर्ति का व्यापक माप (Broader Measure of Money supply) अपनाया जिसको कुल मौद्रित संसाधन (Aggregate Monetary Resources or AMR) भी कहा जाता है प्रकाशित करता शुरू कर दिया।

इसके बाद अप्रैल 1977 से मुद्रा के माप में एक और परिवर्तन किया गया। इस परिवर्तन के उपरान्त RBI ने मुद्रा के उपरोक्त दो भागों के स्थान पर मुद्रा के चार वेकल्पिक मापों के आंकड़े प्रकाशित करने शुरू कर दिये। इन नये मापों का M1, M2,

M3 और M4 के द्वारा दर्शाया जाता है। मुद्रा के M1 और M3 पुराने माप M और AMR को प्रकट करते हैं। इन मापों की व्यवहारिक परिभाषाएं (Emprirical definitions) निम्न समीकरणों के आधार पर व्यक्त की गई है :

M or M1 = C + DD + OD

M2 = M1 + Savings deposits with Post Office savings banks.

AMR or M3 = M1 + net time deposits of banks

M4 = M3 + total deposits with the post office savings organisations

(Excluding National Savings certificates)

Where : C = currency held by the public

DD = net demand deposits of banks

OD = other deposits of the RBI

M1 से M4 तक की मुद्राओं के तत्त्वों (Components) का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :

M1 में करेन्सी (C) से अभिप्राय RBI द्वारा जारी किये कागज़ी करेन्सी नोट जैसे कि दो, पांच, दस, बीस, पचास, सौ व पांच सौ रूपये के कागज़ी नोट जमा सिक्के हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भारत सरकार द्वारा जारी किया गया एक रूपये का नोट भी शामिल होता है। यद्यपि यह एक रूपये का नोट कागज़ का बना होता है परन्तु सिक्का ही गिना जाता है। आज कल दो और पांच रूपये के सिक्के भी प्रचलन में हैं। ये सभी मिलकर कुल मुद्रा पूर्ति का 6% या 7% भाग होते हैं। से सिक्के सरकार के निर्देश पर RBI द्वारा जारी किये जाते हैं परन्तु यह सरकार की मौद्रिक जिम्मेवारी (Monetary liability) है।

M1 का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व माँग जमा (DD) है। माँग जमा (DD) से अभिप्राय विशुद्ध माँग जमा से है। एक बैंक द्वारा दूसरे बैंक में रखी गई माँग जमा कुल माँग जमा का हिस्सा है परन्तु मुद्रा पूर्ति में इनको सम्मिलित नहीं किया जाता। क्योंकि मुद्रा पूर्ति में जनता के पास जो माँग जमाएँ हैं उनको ही शामिल किया जाता है। ध्यान रखने की बात है कि मांग जमा में चालू खाते में जमा मुद्रा और बचत खाते में रखी गई मुद्रा का वह भाग जिसको कभी भी निकलवाया जा सकता है शामिल होते हैं। माँग जमाओं पर स्वामित्व को चैकों केक माध्यम से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या संस्था को हस्तान्तरित किया जा सकता है। इसको बैंक मुद्रा (Bank money) भी कहा जाता है। माँग जमाएँ बैंकों द्वारा किये गये साख निर्माण पर भी निर्भर करती हैं।

करेन्सी मुद्रा और बैंक मुद्रा का अनुपात एक देश के मौद्रिकरण (Monetisation) के स्तर, बैंकिगं सुविधाओं के प्रसार व लोगों की बैंक सम्बन्धी आदतों पर निर्भर करती है। यू० के० और यू० एस० ए० जैसी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में 90 प्रतिशत चैक (Cheques) के माध्यम से होते हैं। जब कि भारत जैसे अल्पविकसित देशों में यह अनुपात 30 प्रतिशत के आस पास हैं। M1 का तीसरा तत्त्व अन्य जमाएँ (Other Deposits) हैं। ये वे जमाएँ हैं जो RBI, बैंकों, केन्द्रीय व राज्य सरकारों का छोड़कर अन्य व्यक्तियों, संस्थाओं व विदेशी एजेंसियों द्वारा अपने देश में रख जाती हैं। जैसे IMF, IDBI, IBRD और विदेशी संस्थाओं व फर्मो द्वारा हमारी करेन्सी में रखी गई माँग जमा शामिल हैं। ये अन्य माँग जमाएँ कुल मुद्रा पूर्ति का एक बहुत छोटा, जैसे कि एक प्रतिशत से भी कम, भाग होती है। इसलिए मुद्रा पूर्ति के द ष्टिकोण से इन्हें महत्त्वहीन समझकर विश्लेषण में शामिल नहीं किया जाता है।

मुद्रा के नये मापों की कुछ विशेषताएँ

(Some Features of the new measures of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के पुराने मापों में ही कुछ संशोधन करके RBI द्वारा मुद्रा पूर्ति के नये माप इस प्रकार तैयार किये गये हैं ताकि विभिन्न प्रकार की मुद्रा पूर्ति के मापों की तस्वीर स्पष्ट हो सके। मुद्रा के नये मापों की कुछ विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं।

(1) M1 RBI के पुराने मुद्रा के माप M का ही संशाधित रूप है। पहले मुद्रा पूर्ति के माप (M) में केवल स्टेट को औपोरेखि बैंक के माँग जमा (Demand Deposits) को ही शामिल किया जाता था। परन्तु M1 में स्टेट को-ओपरेटिव बैंक के अतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी बैंक और प्राथमिक सहकारी बैंक (सहकारी समितियां) के विशुद्ध माँग जमा भी सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रकार M1 द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की पूर्ति M से अधिक विस्त त है।

(2) इसी प्रकार M3 भी कुल मौद्रिक साधन (Aggregate Monetary or AMR) का व्यापक रूप है। क्योंकि M3 में सभी प्रकार के सहकारी बैंकों की विशुद्ध माँग जमाएँ और समय जमाएँ (Time Deposits) सम्मिलित हैं।

(3) मुद्रा के नये माप जैसे M2 और M4 डाक घरों की जमाओं (Post office deposits) को भी शामिल करते हैं। पुराने मुद्रा पूर्ति के मापों (M and A MR) में इनको सम्मिलित नहीं किया जाता था।

(4) अब केन्द्रीय बैंक (RBI) द्वारा चार प्रकार की मुद्रा पूर्ति के माप (M1 M2 M3 और M4) प्रकाशित किये जाते हैं। ये चारों मुद्रा पूर्ति के माप तरलता के घटते क्रम अनुसार रखे गये हैं। स्पष्ट है कि M1 सबसे तरल है। अर्थात! इस मुद्रा को तुरंत खर्च किया जा सकता है। इसमें 100% तरलता होती है।

M1 मुद्रा पूर्ति का सामान्य माप है। भारत में M1 की औसत वार्षिक व द्धि दर 1950 के दशक में 3.6%, 1960 के दशक में 7.6%, 1970 के दशके में 11.75%, 1980 के

मुद्रा पूर्ति का सिद्धान्त
(THEORY OF MONEY SUPPLY)

भूतकाल में स्वर्ण मान या चांदी मान प्रणाली (Gold Statandard or Silver Standard) प्रचलित रही है। इनके अन्तर्गत वस्तु मुद्रा (Commodity Money) का प्रचलन था। इसलिए एक देश में मुद्रा की पुर्ति उस देश में उपलब्ध सोने व चाँदी की मात्रा पर ही निर्भर करती थी। इसलिए मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस कारण मुद्रा के माँग सिद्धान्त पर ही अधिक बल रहा है। परन्तु आधुनिक युग में कागज़ी मुद्रा (Paper money) का प्रचलन है। बैंकों का प्रसार होने के कारण जनता बैंकों में अपनी माँग जमाएं रखती है। बैंक साख का निर्माण करते हैं। केन्द्रीय बैंक करेन्सी और निम्नत्तम आरक्षित अनुपात (Minimum Reserve Ratio) में परिवर्तन करके बैंकों के माँग जमाओं को परिवर्तित कर सकता है। हम जानते हैं कि मांग ज़मा मुद्रा होती है। इस प्रकार मुद्रा पूर्ति का निर्धारण केवल सरकार द्वारा ही नहीं बल्कि जनता और और बैंकों द्वारा भी होता है। इसलिए मुद्रा पूर्ति पर नियन्त्रण के लिए मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त की आवश्कता महसूस की गई। इसमें मुद्रा पूर्ति का निर्धारण कैसे होता है आदि प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है।

मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त को समझने के लिए दो प्रकार की मुद्राओं में समझना अनिवार्य है :

(1) **साधारण मुद्रा** (M)

मुद्रा के विभिन्न माप (M or M1, M2, M3, & M4) होते हैं, परन्तु सिद्धान्त के द ष्टिकोण से M अर्थात् संकुचित मुद्रा जिसमें करेन्सी (C) और माँग जमाएँ (DD) और अन्य जमाएँ सम्मिलित होती है को चुना गया है। ये माँग जमाएँ जनता द्वारा बैंकों मे रखी जाती हैं जिनको चैक के माध्यम से हस्तान्तरित किया जा सकता है। अन्य जमाएँ जो विदेशी सरकारों, संस्थाओं व अनतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं आदि द्वारा RBI में रखी होती है वे कुल जमाओं का एक प्रतिशत से भी कम भाग होती है इसलिए उनको छोड़ दिया जाता है। अर्थात् सिद्धान्त के द ष्टिकोण से उनको महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया। इसलिए सरलता के लिए M को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया गया है :

(2) **उच्च शक्ति मुद्रा** (High Powered Money) :

उच्च शक्ति मुद्रा में लोगों के पास करेन्सी (C), बैंकों द्वारा नकदी रूप में रखे गये आरक्षित भण्डार (R) व केन्द्रीय बैंक की अन्य जमाएँ (OD) सम्मिलित होते हैं। अन्य जमाएँ बहुत कम मात्रा में होने के कारण इनको छोड़ दिया जाता है इसलिए H को निम्न समीकरण के अनुसार परिभाषित किया जा सकता है

$H = C + R$

H का उत्पादन सरकार और केन्द्रीय बैंक करते और इसकी माँग जनता व बैंकों द्वारा की जाती है।

समीकरण (i) और (ii) की तुलता करने से ज्ञात होगा कि करेन्सी (C) दोनों प्रकार की मुद्राओं (M & H) में सामान्य है। दोनों प्रकार की मुद्राओं में अन्तर समीकरणों के दूसरे तत्त्वो (DD और R) के कारण उत्पन होता है। परन्तु DD और R के मध्य बहुत गहरा सम्बन्ध है। बैंक आरक्षित मुद्रा (R) के आधार पर ही उधार देते हैं और माँग जमाओं DD का निर्माण करते हैं। यह R वैंको को माँग जमा उत्पन्न करने की उच्च शक्ति (High Power) प्रदान करता है। C + R को उच्च शक्ति मुद्रा (H) का नाम दिया गया। क्योंकि R समीकरण (ii) और DD समीकरण (i) के मध्य नज़दीक और गहरा सम्बन्ध है इसलिए M और H के मध्य भी गहरा सम्बन्ध है। H को आधार मुद्रा (Base money) भी कहा जाता है।

मुद्रा पूर्ति का 'एच' सिद्धान्त या 'गुणक सिद्धान्त'

(Money Multiplier Theory of Money Supply or `H' Theory of Money Supply)

इस सिद्धान्त के अनुसार सन्तुलित मुद्रा पूर्ति का निर्धारण दो तत्त्वों पर निर्भर करता है :

M = mH ; m = money multiplier

H = Higher Powered Money

मुद्रा पूर्ति का निर्धारण एवं (H) और मुद्रा-गुणक पर निर्भर करता है। अर्थात् मुद्रा में परिवर्तन या तो H में परिवर्तन के कारण या मुद्रा-गुणक में परिवर्तन के कारण हो सकता है। इसलिए मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि H कैसे निर्धारित होता है और गुणक कैसे निर्धारित होता है। उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि मद्रा-गणक के स्थिर रहने पर मुद्रा पूर्ति केवल H की मात्रा पर निर्भर करती है। इसलिए H मुद्रा पूर्ति के निर्धारण में अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस कारण इसको मुद्रा पूर्ति का `H' सिद्धान्त भी कहते हैं। सिद्धान्त का अधिकतम भाग H की माँग (Hd) और पूर्ति (Hs) की व्याख्या करता है। हम देखेंगे कि मुद्रा-गणक इस व्याख्या के परिणाम रूप में स्वतः प्राप्त होता है। इस कारण इस सिद्धान्त को मुद्रा पूर्ति का गुणक सिद्धान्त कहा जाता है।

'एच' का निर्धारण (Determination of `H')

'एच' (उच्च शक्ति मुद्रा (H) के निर्धारण का अर्थ है सन्तुलित 'एच' का निर्धारण। सन्तुलित 'एच' का निर्धारण वहां होगा जहां 'एच' की मांग (Hd) 'एच' की पूर्ति (Hs) के बराबर हो।

$H^d = H^s$ ..... (i)

एच का निर्धारण करने के लिए इसके माँग पक्ष व पूर्ति पक्ष की व्याख्या या निर्धारण करना अनिवार्य है।

'एच' की पूर्ति (Supply of H)

विश्लेषण के प्रारम्भ में कल्पना की गई है कि H की पूर्ति स्थिर रहती है और यह सरकार की नीति द्वारा निर्धारित होती है। इस मॉडली में यह बाह्य चर (Exogenous Variable) है। इसलिए इसको स्थिर (H) माना गया है।

'एच' की पूर्ति (Supply of H)

विश्लेषण के प्रारम्भ में कलपना की गई है कि H की पूर्ति स्थिर रहती है और यह सरकार की नीति द्वारा निर्धारित होती है। इस मॉडल में यह बाह्या चर exogenous Variable) है। इसलिए इसको स्थिर (H) माना गया है।

एच की माँग (Demand for H)

'एच' (Hd) हमेशा करेन्सी की माँग (Cd) और बैंकों द्वारा रखे गये आरक्षण की माँग (Rd) पर निर्भर करती है। अतः Hd ज्ञात करने के लिए Cd और Rd की व्याख्या बारी-बारी से की गई है :

लोग सौदे (Transactions) करने के लिए करेन्सी की माँग (Cd) करते हैं जो उनके आय के स्तर पर निर्भर करती है। इसी प्रकार ब्याज की दर भी Cd को प्रभावित करती है। यदि ब्याज की दर ऊंची है तो लोग करेन्सी अपने पास कम रखेंगे अथवा इसकी माँग कम करेंगे। ध्यान करने से ज्ञात होगा कि माँग जमा (Demand Deposits --DD) की माँग भी इन्हीं तत्त्वों पर निर्भर करती है -क्योंकि माँग जमा ऐसे हैं जैसे करेन्सी अपने पास रखना (2) फ्री (DD पर ब्याज प्राप्त नहीं होता) इसलिए Cd और (DDd का गहरा सम्बन्ध है। लोग अपनी करेन्सी का कुछ भाग अपने पास और कुछ भाग माँग जमा के रूप में रखते हैं। वे करेन्सी को किस अनुपात में रखते हैं या माँग करते हैं :

C^d - cDD ..... (ii)

c माँग जमा (DD) का वह अनुपात (Ratio) है जा करेन्सी के रूप में रखा जाता है या करेन्सी की माँग (Cd) की जाती है। दूसरे शब्दों में c करेनसी माँग (Cd) का DD से अनुपात है। c लोगों की Cd और DD के मध्य पसन्दगी को प्रकट करता है। c लोगों के व्यवहार पर निर्भर करता है। जैसे कि लोगों में बैंक की आदत कितनी है, लोग चैक के रूप में भुगतान स्वीकार करते हैं या नहीं आदि। इसलिए c व्यवहारिक अनुपात (Behavioural ratio) होने के कारण परिवर्तित हो सकती है परन्तु इस विश्लेषण में इसको स्थिर माना गया है।

बैंको की आरक्षण (Reserves) की माँग (Rd) किस पर निर्भर करती है ?

बैंकों के आरक्षण की माँग (Rd) लोगों की बैंकों में कुल जमाओं (Total Deposits) पर निर्भर करती है। आरक्षण की कुछ माँग तो कानूनी (Statutory) होती है। जैसे कि बैंकों को अपनी कुल जमा का एक अनुपात (3% to 1 5%), जो केन्द्रीय बैंक निर्धारित करता है, केन्द्रीय बैंक के पास जमा करवाना पड़ता है निसको RRd कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बैंकों को कुछ अधिक-आरक्षण (Excess Reserve) भी रखना पड़ता है जिनको ERd कहा जाता है। बैंक ERd दो कारणों से करता है। एक तो वह जमाकर्त्ताओं की नकदी निकलवाने की माँग (Currency drain) को पूरा करने के लिए आधिक-आरक्षण की माँग ERd करता है और दूसरा चैकों के समाशोधन (Cross-clearing of cheques) की माँग को पूरा करने के लिए भी इसकी माँग करता है। परन्तु यह माँग करता है। परन्तु यह माँग भी बैंक में कुल जमा (Total Deposits) पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार RRd और ERd दोनों लोगों की बैंकों में कुल जमाओं (Total Deposits) पर निर्भर करती है। अर्थात् कुल आरक्षण माँग (Rd) कुल जमा (D) का एक अनुपात है। यह इसका बढ़ता फलन है :

$$R^d = rD \qquad \text{.. (iii)}$$

Or

r = आरक्षण की माँग (Rd) का कुल जमा (D) से अनुपात है। इसको आरक्षण जम अनुपात (reserve-deposit r atio) भी कहा जाता है।

हम जानते हैं कि कुल बैंक जमा (D) दो प्रकार की होती है : एक माँग जमा (DD) और दूसरा समय जमा (TD) । यह कल्पना की गई है। कि TD हमेशा DD का बढ़ता फलन (t) है। अर्थात् DD के बढ़ने पर TD भी बढ़ता है। t समय जमा (TD) की माँग जमा (DD) से अनुपात है।

$$D = DD + TD \qquad \text{.. (iv)}$$

$$TD = tDD \text{ or } t = \frac{TD}{DD}$$

$$D = DD + tTD$$

$$H^d = cDD + r(1+t)DD$$

$$r = \frac{R^d}{D}$$

$$D = (1+t)DD \qquad \text{.. (v)}$$

समीकरण (iii) और (v) का ध्यान करते हुए

$$R^d = r(1+t)DD \qquad \text{.. (vi)}$$

हम जानते हैं कि : $H^d = C^d + R^d$ .... (vii)

समीकरण (ii) और (vi) का ध्यान करते हुए

$$= \{c + r(1+t)\}DD \qquad \text{.. (viii)}$$

मुद्रा-गणक (Money Multiplier)

H के माँग पक्ष (Hd) और पूर्ति पक्ष (Hs) को ज्ञात करते के पश्चात् मुद्रा-गुणक प्राप्त किया जा सकता है। जैसा हम जानते हैं कि H बाज़ार सन्तुलन में उस समय होता है जब H की माँग (Hd) और पूर्ति (Hs) एक दूसरे के बराबर हों।

समीकरण (i) और (vii) का ध्यान करते हुए

H की पूर्ति (Hs) को सरकार द्वारा निर्धारित हुआ बाह्य तत्व माना गया है इसलिए इसको H द्वारा दर्शाया गया है। यह स्थिर है।

$$DD = \frac{1}{c + r(1+t)} H \qquad \text{.. (ix)}$$

इस प्रकार समीकरण (ix) में हमें H और तीन व्यवहारिक अनुपातों (c, r और t) की सहायता से DD का सन्तुलित स्तर प्राप्त होता है। इस समीकरण में $\frac{1}{c+r(1+t)}$ माँग जमा गुणक (Demand Deposit multiplier) है अब समीकरण (i) और (ix) की सहायता से मुद्रा-गुणक (money multiplier) भी प्राप्त किया जा सकता है :

$$M = C + \frac{1}{c+r(1+t)} H$$

$$M = \frac{1+C}{c+r(1+t)} H \qquad \text{..... (x)}$$

इस प्रकार समीकरण (x) दर्शाता है कि मुद्रा की पुर्ति H और तीन व्यवहारिक अनुपातो c, r और t का फलन है, अर्थात् इन पर निर्भर करती है। समीकरण (x) में $\frac{1+C}{c+r(1+t)}$ मुद्रा-गुणक को दर्शाता है जिसको m द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

इस प्रकार मुद्रा पुर्ति का सिद्धान्त दो महत्वपूर्णे तत्त्वों के विश्लेशण पर निर्भर करता है। प्रथम H बाजार में इसका (H) निर्धारण कैसे होता है ? दूसरे मुद्रा-गुणक कैसे निर्धारित होता है। फिर इन दोंनों प्रकार के विश्लेशण के संयोग से मुद्रा पूर्ति (M) का निर्धारण होता है। इसी कारण इसको मुद्रा पूर्ति का H सिद्धान्त या मुद्रा पूर्ति का गुणक सिद्धान्त कहते है। c, r और r जनता और बैंकों के व्यवहार पर निर्भर करती है। इनके स्थिर रहने पर m स्थिर रहता है। m के स्थिर रहने पर मुद्रा की पूर्ति H पर निर्भर करती है। अर्थात् m स्थिर रहने पर H बढ़ता है तो मुद्रा की बढ़ेगी तथा घटने पर घटेगी।

मुद्रा पूर्ति का चित्र द्वारा निर्धारण

(Diagramatic Determination of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति का निर्धारण सिद्धान्त अनुसार निम्न चित्र की सहायता से भी किया गया है। उच्च शक्ति मुद्रा बाज़ार में मुद्रा पूर्ति का निर्धारण वहाँ होता है जहाँ मुद्रा का माँग (Hd) और पूर्ति (Hs) एक दूसरे के बराबर होते हैं। उच्च शक्ति मुद्रा (H) शीर्ष अक्ष (vertical axes) पर और माँग जमा (DD) क्षैतिज अक्ष (Horizontal axis) पर मापे गये हैं। मुद्रा की पूर्ति जो सिद्धान्त में स्थिर (H) मानी गई है का वक्र क्षैतिज़ सरल रेखा (Horizontal striaght line) द्वारा दर्शाया गया है। आर्थात् मुद्रा की पूर्ति माँग जमाओं (DD) के प्रति पूर्णतः बेलोच है। उच्च शक्ति मुद्रा की माँग (Hd) दो भागों से बनी है : Hd = Rd + Cd। करेन्सी की माँग जमा (DD) के अनुपात (cratio) पर निर्भर करती है। भारत में c का मूल्य इकाई के समान है। अर्थात् Cd वक्र 45 के कोण द्वारा ऊपर की ओर खींचा जा सकता है।

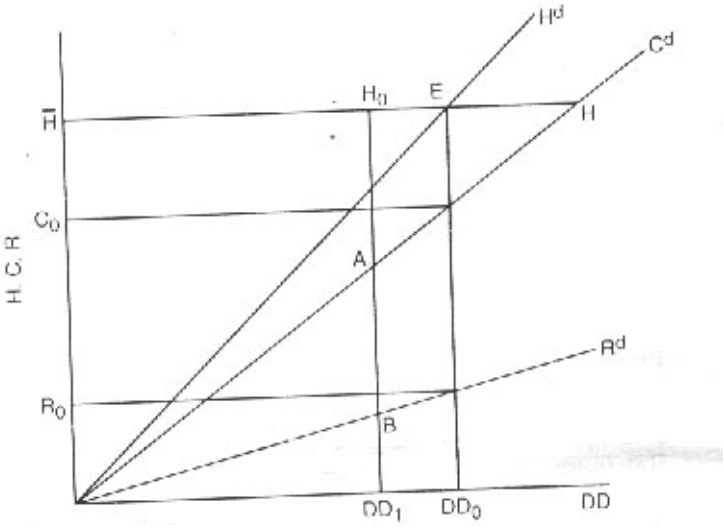

चित्र 1

अर्थात् c के मूल्य पर Cd का ढ़ाल निर्भर करता है। इसी प्रकार आरक्षण माँग वक्र (Rd) का ढ़ाल समीकरण (vi) के अनुसार r(1+t) पर निर्भर करता है। H का माँग वक्र (Hd) इन दोंनों (Cd और Rd) का क्षैतिजीय जोड़ है। इस प्रकार Hd ओर Hd समीकरण (vii) को व्यक्त करता है।

इस प्रकार Hd और Hs दोंनों वक्र प्राप्त होने के बाद हम H बाज़ार में सन्तुलन स्थापित कर सकते हैं। H बाज़ार में सन्तुलन उस DD स्तर पर होता है जहाँ Hd वक्र को काटता है। चित्र 1 के अनुसार DD0 माँग जमा स्तर पर H बाज़ार सन्तुलन में

होता है। DD0 स्तर पर जनता और बैंक H की उतनी ही माँग करते हैं जितनी H की मात्रा मौद्रिक अधिकारी बाज़ार में पेश करते हैं। इन अवस्था में जनता Co करेन्सी की मात्रा और बाकी मात्रा Ro(H-Co=Ro) बैंकों के पास छोड़ देते हैं। DDo पर बैंकों की आरक्षण के लिए माँग (Rd) भी बिल्कुल Ro के समान है। DDo पर जनता Co के बराबर करेन्सी की माँग (Cd) करती है।

प्रत्यक्ष रूप में इस चित्र से यह स्पष्ट नहीं होता कि मुद्रा की संतुलित मात्रा कितनी होगी। किन्तु ध्यान देने से ज्ञात होता है। कि चित्र मे Co + DDo के बराबर सन्तुलित मुद्रा की मात्रा का उत्पादन या पूर्ति की जायेगी क्योंकि M = C + DD

सन्तुलन की स्थिरता (Stability of Equilibrium)

H बाज़ार में सन्तुलन की स्थिरता माँग और पूर्ति के सिद्धान्त के अनुसार बनी रहती है। अब कभी माँग जमा DDo से विचलित होती है तो H की माँग (Hd) और पूर्ति (Hs) में असन्तुलन आ जाता है। परन्तु DD में परिवर्तन कें माध्यम से Hd और Hs पुनः एक दूसरे के समान होकर पहले वाले सन्तुलन स्तर का प्राप्त होते हैं। कैसे ?

मान लीजिये चित्र उपरोक्त चित्र में जमाएँ DD1 हैं। DD1 पर Hd > Hs है। DD1 पर केरन्सी की माँग Cd भी DDo की अवेक्षा कम होती है। इसी प्रकार DD1 पर आरक्षण की माँग (Rd) भी Ro से कम होगी। लोग करेन्सी की A मात्रा अपने पास रखते हैं और बाकी मुद्रा (Ho-A) बैंकों के पास आरक्षण (Reserve) में पड़ी रहती है। परन्तु बैंक DD1 पर B मात्रा ही आरक्षित रखना चाहते हैं। इसलिए बैंको के पास H0A-DD1 B अवांछनीय आरक्षण (Undesired Reserves) हैं। बैंक इस आवश्यकता से अधिक आरक्षण (Excess Reserve) का क्या करेंगे ? अर्थात् पूर्ति है। ध्यान रहे कि यह R की अधिकता अवांछनीय अधिकता (Undesired Excess Reserves) है न कि वांछनीय अधिकता (Desired excess Reserves) वांछनीय R की अधिकता का Rd में सम्मिलित किया जा चुका है। इसलिए बैंको के सामने समस्या है कि वह इस अवांछनीय आरक्षण का क्या करें ?

बैंक क्योंकि व्यवसायिक संस्थाएँ हैं इसलिए वे इन आवांछनीय आरक्षणों से शीघ्रतिशीध्र छुटकारा पाना चाहेंगे-क्योंकि बेकार पड़े फण्ड किसी प्रकार की आय प्रदान नहीं करते। बैंकों के पास दो रास्ते हैं :

(1) वे प्रतिभूतियों में निवेश कर सकते है, (2) वे इस राशि को उधार (Loans and advances) दे सकते हैं। मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त की कल्पना है कि प्रचलित ब्याज दर पर बैंकों के फण्ड की माँग बहुत लाचशील होती है। अतः वे तुरन्त इस अवांछनीय आरक्षित राशि के सरकारी या नीजी प्रतिभूतियों में निवेश कर देते हैं या उधार देने हैं। दोंनों ही अवस्थाओं में DD का बढ़नअवश्यंभावी है। इसलिए DD बढ़ते रहते हैं जब तक Hs > Hd है। DDo माँग जमा होने पर H बाज़ार में पुनः सन्तुलन प्राप्त होता है क्योंकि यहां Hs = Hd हो जाते हैं।

एक समय था जब प्रतिभूतियों में निवेश के अवसर कम होते थे और सारी अवांछनीय राशि उधार ही देनी पड़ती थी। मन्दी की अवस्था में उधार की माँग कम होने पर काफी राशि अवांछनीय रूप से बैंक में आरक्षित रहती थी। और बैंकों को इसका घाटा उठाना पड़ता था। परन्तु आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में सरकारों ने नियोजित विकास का कार्य अपने कंधों पर उठा रखा है जिसके लिए बहुत फण्डों की आवश्यकता पड़ती है। बैंकों को सरकारी बांड व खजाना बिलो (Treasury bills) में निवेश करने का अवसर हमेशा बना रहता है। इतना ही नहीं आधुनिक उत्पादन बड़ी-बड़ी कार्पोरिशनों के माध्यम से होता है जो, डिबैन्चर (बांड) बेचकर पूँजी एकत्रित करती है। बैंक अपने धन को इनमें निवश करते हैं। अर्थात् सामान्यतः बैंक के फण्डों की माँग उनकी पूर्ति से अधिक की रहती है। विशेष रूप से प्रतिभूति बाज़ार का विकास होने पर इस प्रकार की समस्या कम आती हैं।

प्रतिभूतियों के बाज़ार का विकास होने के कारण भारत में बैंकों की कुल जमाओं का भाग जो अवांछनीय अधिक आरक्षण (Undesired excess reserves) के रूप में रखा जाता है कम होता गया है- जैसे 1950-51 मे 6.84 प्रतिशत से गिर कर यह 1960-61 में 2.91 प्रतिशत रह गया। 1976-77 में यह गिर कर 1.97 ही रह गया। यह मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त की इस कल्पना के हक में तर्क है कि बैंकों के फण्डों की माँग बहुत अधिक लोचनशी होती है। यदि ऐसा नहीं होता तो अवांछनीय आरक्षण अनुपात (Undesired excess reserve) में काफी उतार चढ़ाव आते।

बैंकों के प्रतिभूतियों में निवेश व उधार आदि के कारण अर्थव्यवस्था में व्यय बढ़ता है जो आय को बढ़ाता है। इसलिए माँग जमाओं में व द्धि होती है और करेन्सी (Cd) और आरक्षण (Rd) की माँग अर्थात् Hd बढ़ते हैं। अर्थात् जब माँग जमा बढ़ कर DDo हो जाते हैं तो Hd बढ़ कर Hs के बराबर हो जाती है। अतः H व M बाज़ार के सन्तुलन में स्थिरता इन कारणों से बनी रहती है।

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन

(Change in Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के गुणक सिद्धान्त या एच सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि मुद्रा की मात्रा या पूर्ति का निर्धारण उच्च शक्ति मुद्रा (H) की माँग (Hd) वक्र और पूर्ति (Hs) वक्र के मध्य सन्तुलन स्थापित होने से होता है। जहाँ Hd वक्र Hs वक्र को काटता है उससे सन्तुलित DD निर्धारित होते है और उस DD में यदि लोगों की नकदी (Cd) को जमा कर दिया जाये तो मुद्रा की मात्रा (M) ज्ञात होती है। अब यदि Hs में मौद्रिक अधिकारियों द्वारा परिवर्तन किया जाये या किन्हीं कारणों से Hd में परिवर्तन हो जाये तो मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन होगा। जैसा चित्र 2 में स्पष्ट होता है :

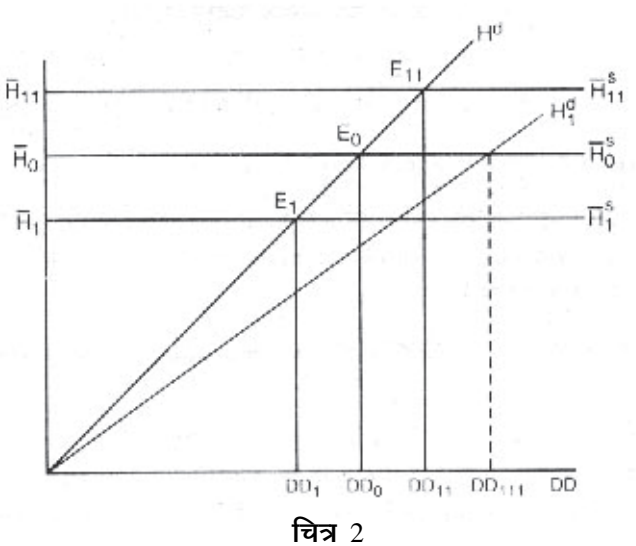

चित्र 2

प्रारम्भिक Hos वक्र और Hd वक्र एक दूसरे को Eo बिन्दु पर काटते हैं। जिससे DD0 मांग जमाओं का स्तर निर्धारित होता है। DDo + लोगों के पास नकदी (C) कुल मुद्रा पूर्ति (M) का निर्धारण करते हैं। अब यदि उच्च शक्ति मुद्रा बढ़ाकर H1s कर दी जाये तो बैंकों के आरक्षण (R) बढ़ते हैं जिस कारण बैंक अधिक साख निर्माण करते हैं और माँग जमाओं (DD) की मात्रा बढ़ती है, जो चित्र 2 में बढ़ कर DD11 हो जाते हैं। DD11 पर लोगों के पास करेन्सी की मात्रा (C) भी अधिक होगी। इसलिए DD11 + मुद्रा की कुल मात्रा (M) का निर्धारण करते हैं। अतः स्पष्ट है कि M की मात्रा या मुद्रा की पूर्ति भी अधिक होगी। इसी प्रकार यदि H की पूर्ति में कमी की जाती है तो मुद्रा की मात्रा भी कम हो जायेगी जैसा H1s के होने पर।

इसी प्रकार यदि उच्च शक्ति मुद्रा की माँग (Hd) में कमी या व द्धि होती है तो भी मुद्रा M की मात्रा परिवर्तित होगी। जैसा चित्र 2 में Hos स्थिर रहते हुए यदि H की माँग (Hd) कम हो जाती है तो Hd वक्र नीचे सरक कर H1d हो जायेगा जो DD के स्तर को बढा कर DD111 कर देगा। इस कारण H बाज़ार में नया सनतुलन स्थापित होगा।

मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्त्व

(Determinants of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के दो मुख्य निर्धारक तत्त्व हैं : (A) उच्च शक्ति मुद्रा (H) या मौद्रिक आधार (Monetary base) और (B) मुद्रा-गुणक (Money multiplier) । मुद्रा पूर्ति के ये मुख्य निर्धारक अनेक तत्त्वों द्वारा प्रभावित होते हैं। मुद्रा पूर्ति पर निम्न तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है।

(A) उच्च शाक्ति मुद्रा या मौद्रिक आधार (H or monetary base)

उच्च शक्ति मुद्रा (H) का आकार यदि एक देश में अधिक है तो मुद्रा पूर्ति का आकार भी अधिक होगा। यदि H का आकार कम है तो मुद्रा पूर्ति भी कम होगी। उच्च शक्ति मुद्रा या मौद्रिक आधार वह मुद्रा है जो नकदी में रखने या केन्द्रीय बैंक द्वारा अरक्षित (Reserve) रखने के लिए उपलब्ध रहती है। मौद्रिक आधार या H में परिवर्तन केन्द्रीय बैंक और सरकार की नीति पर निर्भर करता है। यह नीति निम्न आधार से साख का विस्तार या संकुचन करके मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती है :

(1) केन्द्रीय बैंक की सरकार को विशुद्ध उधार की मात्रा

(2) केन्द्रीय बैंक द्वारा अन्य बैंकों को उधार की मात्रा

(3) केन्द्रीय बैंक का विकास बैंकों को उधार की राशि

(4) केन्द्रीय बैंक के पास उपलब्ध विदेशी मुद्राएँ

(5) विशुद्ध गैर-मौद्रिक जिम्मेवारी जो केन्द्रीय बैंक को उठानी पड़ती है।

उपरोक्त सभी में व द्धि से जनता की नकदी तथा बैंकों के आरक्षण में व द्धि होती है।

(B) मुद्रा की पूर्ति मुद्र-गुणक द्वारा भी प्रभावित होती है। यदि मुद्रा-गुणक का मूल्य अधिक है तो मुद्रा पूर्ति पर इसका धनात्मक प्रभाव पड़ेगा अर्थात् मुद्रा पूर्ति अधिक होगी। इसके विपरीत यदि इस गुणक का मूल्य कम है तो मुद्रा पुर्ति भी कम हौगी। मुद्रा-गणक का मूल्य निम्न तत्त्वों पर निर्भर करता है :

मुद्रा-गुणक के निर्धारक तत्त्व (Determinants of Money Multiplier)

मुद्रा-गुणक (m) तीन व्यवहारिक अनुपातों (c, r and t) का फलन है। क्योंकि ये व्यवहारिक अनुपात है इसलिए वे स्वयं लोगों व बैंकों के व्यवहार पर निर्भर करती है। परन्तु लोगों व बैंकों का यह व्यवहार विभिन्न तत्त्वों द्वारा प्रभावित होता है। इस व्यवहार के निर्धारित करने वाले तत्त्व वास्तव में इन अनुपातो (c, r and t) को निर्धारित करते हैं। इसलिए वे ही तत्त्व अन्ततः (Ultimately) मुद्रा-गुणक के भी निर्धारक है। मुद्रा-गुणक के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है :

(1) **नकद आरक्षित अनुपात** (Cash Reserve Ratio)

नकद आरक्षित अनुपात (r) जो देश के अन्य बैंकों को केन्द्रीय बैंक में जमा रखना पड़ता है मुद्रा पूर्ति का व मुद्रा पूर्ति का व मुद्रा-गणक का महत्त्वपर्ण तत्त्व है। नकद आरक्षित अनुपात (Cash reserve ratio) जितना कम होगा उतनी ही कम राशि बैंकों को केन्द्रीय बैंक में जमा करवानी होगी। इससे बैंकों की उधार देने की शाक्ति बढ़ जाती है। इससे राख का अधिक निर्माण होता है जो मुद्रा की मात्रा को उसी अनुपात में बढ़ा देता है। अर्थात् मुद्रा-गुणक (m) का नकद आरक्षित कोष (r) से विपरीत (inverse) सम्बन्ध है। उदाहरणतः

(2) **करेन्सी माँग जमा अनुपान** (Currency DD Ratio)

करेन्सी अनुपात (c) करेन्सी का माँग जमाओं (DD) से अनुपात है। C के बढ़ने पर मुद्रा गुणक का मूल्य गिरेगा क्योंकि यह इसके हर में दर्ज है। जैसे कि

(3) **समय जमा अनुपात** (Time Deposit Ratio)

यदि कुल जमाओं में समय अनुपात (t) अधिक है ता कम उधार दिया जा सकेगा। इस प्रकार t का मुद्रा-गुणक से विपरीत (Inverse) सम्बन्ध है। इसलिए यह मुद्रा इसलिए यह मुद्रा-गुणक के हर में प्रवेश किये हुए है।

(4) **ब्याज की दर** (Interest rate)

ब्याज की दर का मुद्रा-गुणक पर दोंनों प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है। ब्याज की दर बढ़ने पर नकद आरक्षित अनुपात (r) गिर सकता है-क्योंकि फण्डों को आरक्षित रखने से कोई आय प्राप्त नहीं होती इसलिए ब्याज बढ़ाने पर कम आरक्षित राशि रखी जायेगी ताकि उधार देकर ऊँचा ब्याज दर प्राप्त की जा सके। इसलिए ब्याज दर बढ़ने पर r गिरता है जो मुद्रा-गुणक के मूल्य का बढ़ा देता है क्योंकि r गुणक के हर में शामिल है। दूसरा प्रभाव यह हो सकता है कि ब्याज दर बढ़ने से लोग अधिक मात्रा में समय जमा (Time Deposits) रख सकते हैं अर्थात् t बढ़ सकता है m के मूल्य का गिरायेगा।

(5) **मौद्रिक निति** (Monetary Policy)

मद्रा-गुणक का मूल्य सरकार की मौद्रिक नीति पर भी निर्भर करता है। यदि मौद्रिक अधिकारी नकद आरक्षित अनुपात (r) को बढ़ा देने हैं तो गुणक का मूल्य कम हो जायेगा, और r के घटाने पर मुद्रा-गुणक का मूल्य बढ़ जायेगा-क्योंकि r गुणक के हर में शामिल है।

(6) **वास्तविक आय** (Real Income)

वास्तविक आय के बढ़ने पर आर्थिक क्रियाएँ तीव्र हो जातीं हैं। बैंक अधिक उधार देते हैं जिससे साख व मुद्रा का अधिक निर्माण होता है जो मुद्रा-गुणक को बढ़ा देता है। इससे माँग जमाएँ (DD) अधिक हो जाते हैं व मुद्रा पूर्ति बढ़ती है।

(7) **बैंकिंग सुविधाओं का प्रसार** (Spread of Banking Facilities)

बैंको का अधिक प्रसार होने से साख (Credit) की मात्रा बढ़ेगी जो मुद्रा-गुणक पर धनात्मक प्रभाव डालेगा।

(8) मुद्रास्फीति व मुद्रा अवस्फीति (The Money Multiplier Process)

या

वाणिज्य बैंक और मुद्रा-गुणक प्रक्रिया

(Commercial bank and the money multiplier process)

मुद्रा-गुणक एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत उच्च शक्ति मुद्रा (H) में या मौद्रिक आधार में परिवर्तन करने से मुद्रा, जमाओं और बैंक साख में कई गुणा अधिक परिवर्तन होता है। इस प्रक्रिया में सरकार, वाणिज्य बैंक, जमाकर्त्त और उधार लेने वाले (Borrowers) संलिप्त रहते हैं। मुद्रा-गुणक एक एसी प्रक्रिया को व्यक्त करता है। जिसमें मौद्रिक आधार या H में परिवर्तन करने से मुद्रा, जमाओं और साख का निर्माण होता है, जो H को उच्च शक्ति प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में वाणिज्य बैंको की भूमिका प्रमुख है। इसको एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

कल्पनाएँ

(Assumptions)

विश्लेषण को सरल बनाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण कल्पनाएँ की गई है। :

(1) वाणिज्य बैंकों की सुविधाएँ जनता को उपलब्ध हैं।

(2) वाणिज्य बैंक केवल माँग जमाएँ (Demand Deposits) स्वीकार करते हैं।

(3) बैंक केवल व्यापारियों को उधार देकर की ब्याज के रूप में आय प्राप्त करते हैं।

(4) इन बैंकों की अरक्षित जमा अनुपात = .2 है। आर्थात् r = .2

(5) जनता की करेन्सी मांग-जमा अनुपात (currrency demand deposit ratio) जिसको C द्वारा दर्शाया जाता रहा है =.5 है।

(6) प्रचलित ब्याज दर पर बैंकों से उधार लेने की माँग पूर्णतः लोचशील है। आर्थात् उधार लेने वालों की कोई कमी नहीं है।

गुणक प्रक्रिया का आधार वाणिज्य बैंकों की आंशिक आरक्षित अनुपात व्यवस्था (Fractional reserve system) है। बैंक अपने अनुभब के आधार पर यह जान लेते हैं कि (1) सभी जमाकर्त्ता, एक साथ ही अपनी सारी जमा राशि वापिस निकलवाने नहीं आते। (2) कुछ जमा राशि प्रतिदिन निकलवाई जाती है तो कुछ नई जमा राशि वाणिज्य बैंकों को प्राप्त होती रहती है। इस व्यवस्था में वाणिज्य बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात ही नकद आरक्षण (Cash reserve) के रूप में रखना पड़ता है और बाकी को उधार दिया जा सकता है।

मान लीजिये सरकार 300 करोड़ रूपये की वस्तुएँ व सेवाएँ जनता से क्रय करती है। इस प्रकार उच्च शक्ति मुद्रा में या मौद्रिक आधार में वद्धि (H) 300 करोड़ रूपया जनता को प्राप्त होता है जो अपनी करेन्सी-जमा अनुपात (.5) के अनुसार 100 करोड़ रूपया अपने पास नकदी और 200 करोड़ रूपया वाणिज्य बैंक में माँग जमा (DD) के रूप में जमा करा देगी।

इस कारण वाणिज्य बैंकों के आरक्षित कोष (Reserves) 200 करोड़ रूपये से बढ़ जाएंगे। एसी जमाएँ जो बैंकों में नई नकदी के रूप में होती हैं उनको प्रारम्भिक जमाएँ (Primary Deposits) कहते हैं।

बैंकों की प्रारम्भिक जमाएँ 200 करोड़ रूपये से बढ़ गई हैं वाणिज्य बैंक इन जमाओं को उधार देकर लाभ कमाना चाहेगा। परन्तु वांछित आरक्षण अनुपात (r) जो .2 है के अनुसार अपने पास 40 करोड़ रूपया नकद रूप में रिजर्व के लिए रखना पड़ेगा। बाकी 160 करोड़ रूपया वाणिज्य बैंक उघार देकर ब्याज कमायेगा। यह कल्पना हम पहले ही कर चुके हैं कि उधार लेने वालों की कोई कमी नहीं है। जब बैंक 160 करोड़ रूपया उधार देने हैं तो यह साख निर्माण की पहली प्रक्रिया है। माँग जमा (DD) को मुद्रा में शामिल किया जाता है। इसलिए बैंक 160 करोड़ रूपये नकद रूप में उधार नहीं देंगे। बल्कि बैंक उधार लेने वालों के खातों में जमा कर देंगे तथा उन्हें चैक से निकालने या हस्तांतरित करने की स्वीकृति प्रदान कर देंगे।

इसके आगे बैंकों की एक और महत्त्वपूर्ण भूमिका सामने आती है कि बैंक द्वितीय जमाओं (Secondary or Derived Deposits) का भी निर्माण करते हैं। कैसे ? जिन लोगों ने 160 करोड़ रूपये उधार लिये हैं वे इसे बाज़ार में खर्च का भुगतान मान लीजिये चैकों के माध्यम से करते हैं। अपनी वस्तु व साधन बेच कर 160 करोड़ रूपया प्राप्त करने वाले लोग चैकों को अपने खाते में जमा करवा देंगे। परन्तु ये बैंक भी सारे का सारा अर्थात् 160 करोड़ रूपया बैंक जमा के रूप में नहीं रखेंगे बल्कि अपनी करेन्सी जम अनुपात ड्रेन (currency drain) के अन्तर्गत अपने पास रखेंगे और बाकी राशि 106.66 करोड़ रूपया उघार दे देंगे। यह 106.66 करोड़ बैंक जमा द्वितीय जमा (Secondary Deposits) कहे जायेंगे-क्योंकि बैंक से निकली मुद्रा लौट कर बैंक के पास ही वापिस आती है।

अब वाणिज्य बैंक क्योंकि व्यावसायिक संस्था है इसलिए वह 106.66 करोड़ की राशि को बेकार न रखकर आगे उधार देकर

ब्याज अर्जित करना चाहेगा। परन्तु सारी राशि उधार न देकर वह इसका एक भाग आरक्षित अनुपात (R) के अनुसार (R = .2) अपने पास 21.33 करोड़ रूपये आरक्षित रखेगा और बाकी मुद्रा 85.33 करोड़ को उधार देकर ब्याज कामयेगा। चैक के माध्यम से भुगतान करने का यह लाभ है कि इस कारण अधिकतर मुद्रा बैंक में ही जमा रहती है और वह एक दूसरे के खातों में हस्तांतरित होती रहती है।

उपरोक्त प्रक्रिया जिसमें मुद्रा, जमाओं और साख का निर्माण होता है बार-बार घटित होती है। परन्तु प्रत्येक अगली बार इनका निर्माण कम-कम होता जाता है। इनका जोड़ मुद्रा गुणक, जमा गुणक और साख देने बाला होगा :

कुल साख कितना होगा यह साख गुणक (Credit Multiplier) पर निर्भर करता है।

$$\text{Credit Multiplier} = \frac{1+r}{c+r} = \frac{1-.2}{.5+.2} = 1.1$$

कुल साख का निर्माण $= \frac{1+r}{c+r}.\Delta H = 1.1 x 300 = 330$

कुल बैंक जमा कितनी होगी यह जमा गुणक (Deposit Multiplier) पर निर्भर करता है :

$$\text{Deposit Multiplier} = \frac{1}{C+r} = \frac{1}{.2+.5} = \frac{1}{.7}$$

$$\text{Total Deposits Created} = \frac{1}{.7} x 300 = 428.5$$

$$\text{Money Multiplier (m)} = \frac{1+C}{C+r} = \frac{1+.5}{.5+.2} = \frac{1.5}{.7}$$

$m = \frac{1+C}{C+r(1+t)}$ परन्तु इस विश्लेशण में समय जमा न होने पर t शून्य है, अर्थात् $m = \frac{1+C}{C+r}$ है।

$$= 2.1$$

कुल मुद्रा का निर्माण $= 2.1 \times 300 = 630$

मुद्रा-गुणक प्रक्रिया की सीमाएँ
(Limitations of Money Multiplier Process)

मुद्रा-गुणक प्रक्रिया की कुछ सीमाएँ ::

(1) **समय जमा** (Time Deposits)

मुद्रा-गुणक प्रक्रिया का उपरोक्त विश्लेषण समय जमा (Time Deposits) को शामिल नहीं करता। वास्तव में बैंको में कुछ मुद्रा समय के रूप में रखते हैं। उपरोक्त विश्लेषण में करेन्सी जमा अनुपात (c) केवल माँग जमा (Demand Deposits) अर्थात् $c = \frac{C'}{DD}$ का मान कर चलता है। परन्तु यदि c का मूल्य माँग जमा और समय जमा के आधार पर निकाला जाये तो यह कम होगा-क्योंकि उस परिस्थिति में $c = \frac{C'}{DD+TD}$ होगा। यहाँ C' कुल करेन्सी की मात्रा है। इससे जमा गुणक, साख गुणक और मुद्रा-गुणक का मूल्य परिवर्तित होगा।

(2) **मन्दी की अवस्था** (Recession)

मन्दी की अवस्था में बैंक से उधार कम लिया जाता है। इसलिए बैंक के पास फण्ड बेकार पड़े रह सकते हैं। इसलिए मुद्रा-गुणक का मूल्य गिर जायेगा।

(3) **रिज़र्व बैंक से उधार की राशि** (Borrowed funds from RBI)

जब वाणिज्य बैंक केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर देते हैं तो उसी अनुपात से बैकों के आरक्षण बढ़ जाते हैं। उन्हें करेन्सी जमा अनुपात (c) या आरक्षण अनुपात (R) की शर्ते पूरी नहीं करनी पड़ती। इसलिए सारी राशि को उधार दिया जा सकता है। इससे जमा गुणक, साख गुणक और मुद्रा-गुणक का मूल्य बढ़ जायेगा।

(4) **ग्राहकों की बैक सम्बनधी आदतें** (Banking Habits of the Customers)

यदि ग्राहकों में बैंक सम्बन्धी आदतें पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी हैं तो करेन्सी ड्रेन अर्थात् करेन्सी जमा अनुपात (c) शून्य होगा। इससे बैंकों के आरक्षित भण्डार बढ़ जायेंगे। इनसे ज्यादा उधार दिया जा सकेगा। मुद्रा-गुणक पर धनात्मक प्रभाव पड़ेगा।

(5) **c और r की कल्पना** (c and r have been assumed)

उपरोक्त उराहरण में c और r के मूल्यों की कल्पना की गई है और माना गया है कि ये मूल्य गुणक प्रक्रिया के दोरान स्थिर रहते हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि ये मूल्य परिवर्तित हो सकते हैं। यह लोगों और बैकों के व्यवहार पर निर्भर करती है।

(6) **सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश** (Investment in government securities)

विश्लेषण में यह कल्पना की गई है कि बैंक अपने फण्डों का प्रयोग केवल उधार (Loans and advances) के रूप में ही कर सकते हैं। वास्तव में बैंक सरकारी प्रतिभूति खरीदते हैं। सरकारी प्रतिभूतियां में निवेश करने से मुद्रा-गुणक का मुल्य परिवर्तित होगा। क्योंकि सरकार उधार लेकर समाज पर खर्च करती है। जिससे लोगों के पास उसी अनुपात से करेन्सी बढ़ती है अर्थात् उच्च शक्ति मुद्रा (H) का निर्माण होता है। परन्तु जब बैंक व्यक्ति या फर्मो को उधार देता है तो ऐसा नहीं होता। इस कारण मुद्रा-गुणक का मूल्य भी परिवर्तित होगा।

(7) **उधार की अपर्याप्त माँग** (Inadequate Demand for loans)

यह आवश्यक नहीं है कि हमेशा बैंकों से उधार लेने की माँग प्रर्याप्त हो। उधार की माँग भी मौसमी (Seasonal demand) है। उधार की माँग व्यक्तिगत मनोबैज्ञानिक तत्त्वों पर निर्भर करती है। भविष्य के प्रति आसंशाएँ उधार की मांग पर गह रा प्रभाव छोड़ती हैं।

(8) **सुव्यवस्थित बैंकिंग प्रणाली** (Well Organised Banking System)

मुद्रा-गुणक प्रक्रिया सुचारू रूप से तभी कार्य करेगी जब बैंकों की शाखाएँ सारे देश में सन्तुलित ढ़ग से फैली हों। इतना ही नहीं बैंकों में नियमों की पालन होती हो और कर्मचारी ठीक प्रकार कार्य करते हों। क्योंकि तभी बैंकों में लोगों का विश्वास बैठ सकता है।

उच्च शक्ति मुद्रा (H) का मुद्रा पूर्ति पर प्रभाव

H मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्त्व (factor) है। मद्रा-गुणक के स्थिर रहते हुए ज्यों H की मात्रा बढ़ती है तो मुद्रा पूर्ति भी बढ़ती है। H के बढ़ने पर मुद्रा पूर्ति कितनी बढ़ती है ?

$\Delta M = m\Delta H$ के बराबर बढ़ती है, अर्थात् H में व द्धि ( ) मुद्रा-गुणक के मूल्य (m) से गुण हो कर बढ़ती है। गुणक को इकाई से अधिक और स्थिर माना जाये ता H में परिवर्तन ( ) का मुद्रा पूर्ति ( ) पर क्या प्रभाव पड़ता है निम्न चित्र 3 से स्पष्ट किया जा सकता है :

चित्र 3

चित्र से स्पष्ट है कि H में व द्धि H1 H11 के समान करने से मुद्रा पूर्ति में व द्धि कई गुणा ज्यादा (मुद्रा-गुणक अनुसार) अर्थात् M1 M11 के समान होती है। अतः स्पष्ट है कि H मुद्रा पूर्ति के निर्धारण में अति महत्त्वपूर्ण

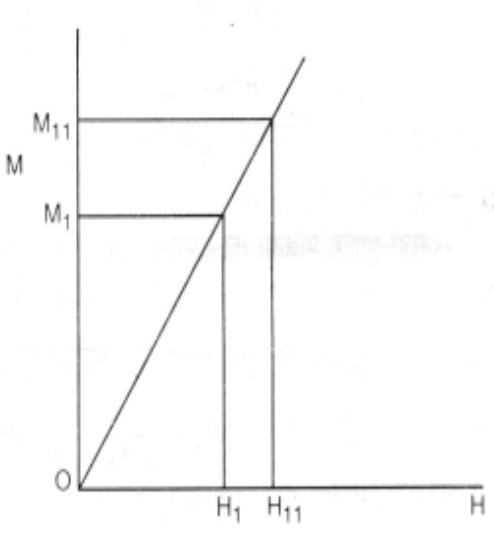

है।

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन करने के लिए H की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। भारत में भी H की मात्रा परिवर्तित होती रहती है। H की मात्रा क्यों और कैसे परिवर्तित होती है ? या वे कौन से तत्त्व हैं जो H की मात्रा को परिवर्तित या प्रभावित करते है ं? इन तत्त्वों की जांच करना मुद्रा पूर्ति के द ष्टिकोण से अति महत्त्वपूर्ण करते हैं ? इन तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

●●●

Unit-III

अध्याय-22

मुद्रा स्फीति तथा बेरोज़गारी

(Inflation and Unemployment)

फिलिप्स वक्र

(The Plilips Curve)

1958 मे ब्रिटिश प्रोफैसर A.W. Philips ने मुद्रा-स्फीति का एक नया विचार पेश किया। यह विचार लगभग 100 वर्षो के दौरान ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में मज़दूरी दर में हुए वार्षिक परिवर्तन के अध्ययन का परिणाम था। यह हम जानते हैं कि मज़दूरी व द्धि के साथ उत्पादकता न बढ़े तो कीमतें बढ़ती हैं। इस तथ्य को दरों में व्यक्त किया जा सकता है। यदि मज़दूरी-दर की व द्धि दर बढ़ जाए और श्रम उत्पादकता में व द्धि दर कम बढ़े, तो यह मुद्रा-स्फीति की दर में व द्धि करेगा। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। अन्य बातें समान रहने पर यदि नकद मज़दूरी की वार्षिक दर 10 प्रतिशत से बढ़े तो मुद्रा-स्फीति 4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ेगी। इसके बाद यदि नकद मज़दूरी दर में व द्धि 10 से 13 हो जाए और श्रम उत्पादकता में व द्धि की दर 6 प्रतिशत ही बनी रहे तो मुद्रा-स्फीति की दर 4% से बढ़कर 7% हो जाएगी।

मज़दूरी-दर की व द्धि दर और मुद्र-स्फीति की दर के मध्य सम्बंध एक और तथ्य को प्रकट करता है। यह है मज़दूरी-दर में व द्धि की दर और श्रमिकों की बेरोज़गारी दर। फिलिप्स ने मज़दूरी-दर में परिवर्तन की दर और बेरोज़गारी दर में विपरीत

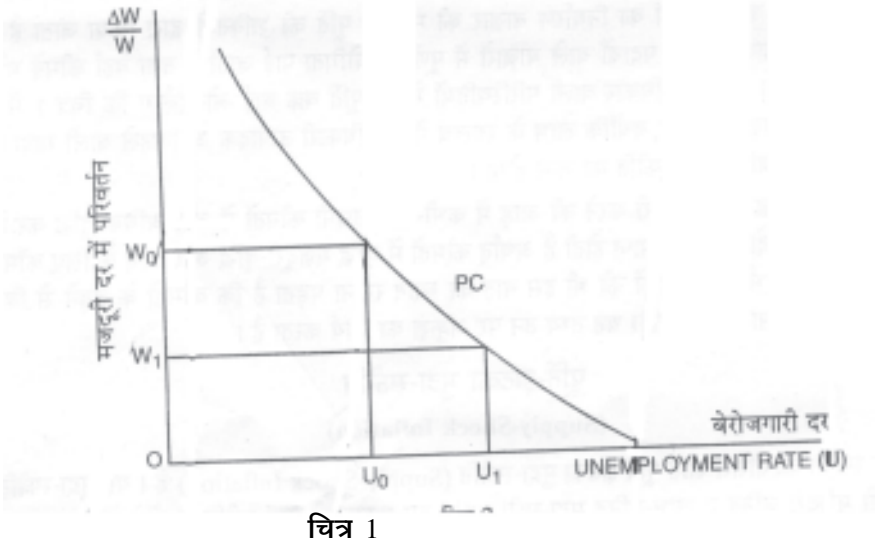

चित्र 1

सम्बंध को खोज निकाला। इस बारे अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी भिन्न समय-अवधि से सम्बन्धित आँकड़े इकट्ठे किए जो मज़दूरी-दर में परिवर्तन की दर और बेरोज़गारी-दर में विपरीत सम्बंध व्यक्त करते हैं। इससे मुद्रा-स्फीति के विश्लेषण में बेरोज़गारी की दर एक महत्त्वपूर्ण तथ्य बन जाता है। फिलिप्स ने मज़दूरी दर में परिवर्तन की दर (जो मुद्रा-स्फीति दर को

निर्धारित करता है) और बैरोज़गारी दर में परिवर्तन के विश्लेषण को एक वक्र द्वारा दर्शाया। यह वक्र उसी अर्थशास्त्री के नाम से (अर्थात् फिलिप्स-वक्र) जाना जाता है।

इस अद्‌भुद सम्बंध को चित्र संख्या 2 द्वारा दर्शाया गया है। इसके X-axis पर मज़दूरी में परिवर्तन की दर W/W दर्शाया गया है। W/W के भिन्न स्तरों पर पाई जाने वाली बेरोज़गारी दर (U) के विंदुओं को जोड़ने से जो वक्र बना वहीं फिलिप्स वक्र कहलाया। इसको चित्र संख्या 2 में दर्शाया गया है।

PC वक्र स्पष्ट दर्शा रहा है कि बेरोज़गारी दर और मज़दूरी दर में परिवर्तन की दर के मध्य विपरीत सम्वंध है। जब बेरोज़गारी दर OU0 है तो मज़दूरी में व द्धि की दर OW0 है और जब बेरोज़गारी दर बढ़कर OU1 होती है तो मज़दूरी की दर में व द्धि दर कम होकर OW1 हो जाती है। दोंनों के मध्य विनिमय (Trade Off) पाया जाता है। यदि बेरोज़गारी दर कम चाहते हैं तो मज़दूरी-दर में व द्धि दर अधिक सहन करती पड़ेगी अर्थात् लागत या पूर्ति जनित मुद्रा-स्फीति अधिक सहन करनी पड़ेगी। और यदि ऊँची बेरोज़गारी-दर सहन कर सकते है, तो मज़दूरी व द्धि दर कम रहेगी।

व्याख्या (Explanation) - फिलिप्स वक्रकी इस प्रकार की आकृत्ति क्यों है ? इसके दो कारण है। :

1. श्रम.-संघ-श्रम संघों की विद्यमानता या उपस्थिति मज़दूरी जनित मुद्रा-स्फीति को जन्म देती है क्योंकि श्रम संघ मज़दूरी दर में श्रम उत्पादकता से अधिक व द्धि करवाने में सफल हो जाते हैं जो मुद्रा-स्फीति को जन्म देती है। मज़दूर संघ जितने अधिक मज़बूत होंगे उतना अधिक मज़दूरी दर बढ़वाने में वे सफल होंगे। मज़दूर दर में व द्धि बेरोजगारी दर से विपरीत का सम्बंध रखेगी। यदि बेरोज़गारी या बेरोज़गारी की दर कम है तो श्रमिक-संघ अधिक संगठित हो जाते हैं क्योंकि रोज़गार प्राप्त श्रमिकों की संख्या अधिक होने के कारण ये संघ अधिक प्रभावी हो जाते हैं और मालिकों से अधिक मज़दूरी दर बढवाने में सफल रहते हैं जो मुद्रा-स्फीति पैदा करते हैं। इसके साथ ही, क्योंकि रोज़गार अधिक होता है। ऐसी परिस्थिति में उद्योगपति हड़तालों की बजाय मज़दूरी बढ़ाना अधिक लाभकारी मानते है। क्योंकि लाभकारी उत्पादन को बंद करना वे लाभकारी नहीं मानते। इस कारण हड़तालों की घमकी से वे शीघ्र मज़दूरी दर बढ़ा देते हैं।

इसके विपरीत दशाओं में जहाँ ऊँची बेरोज़गारी और कम लाभ है उत्पादन बंद करना इतना हानिकारक नहीं समझा जाता जितना मज़दूरी दर बढ़ाना। इसलिए अधिक बरोजगारी दर पर मज़दूरी दर में व द्धि कम होती है। इसलिए कम बेरोजगारी दर पर मज़दूरी व द्धि की दर ऊँची और अधिक बेरोज़गारी दर पर मज़दूरी व द्धि की दर निम्न पाई जाती है। जैसा कि फिलिप्स वक्र द्वारा दिखाया गया है।

2. **श्रम-माँग की अधिकता**-मज़दूरी दर में व द्धि की दर और बेरोज़गारी दर में विपरीत सम्बंध की यह व्याख्या R.G. Lipsey ने की थी। यह व्याख्या मज़दूरों की माँग व पुर्ति वक्र की सहायता से चित्र संख्या 2 के A भाग से शुरू की गई है :

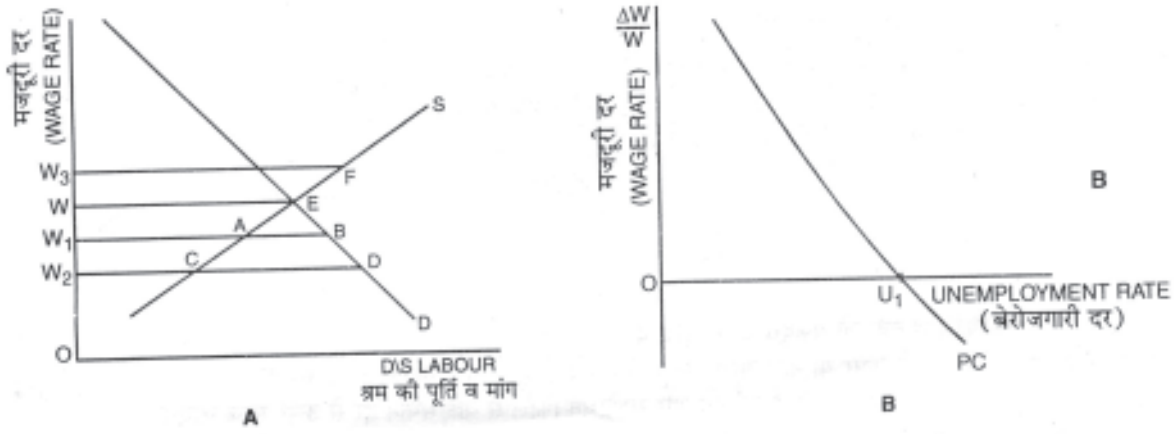

चित्र 2

भाग A में W मज़दूरी दर पर श्रमिकों की माँग श्रमिकों की पूर्ति के समान है। इसलिए श्रम-बाज़ार में पूर्ण-बेरोजगार से तात्पर्य

यह नहीं कि किसी भी प्रकार की बेरोजगारी नहीं है। पूर्ण रोज़गार की अवस्था में भी संघार्षत्मक बेरोज़गारी (Frictional Unemployment) विद्यमान रहती है। OW से कम वाली मज़दूरी दरों पर श्रमिकों की माँग पूर्ति से अधिक होती है। इसी प्रकार OW से अधिक मज़दूरी दरों पर श्रमिकों की पूर्ति माँग से अधिक होगी। जब मज़दूरी OW से कम है तो पूर्ति पर माँग की अधिकता है जिससे एक खास निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह दर जिससे मज़दूरी दर में व द्धि होती है मांग की पूर्ति पर अधिकता से सीधा सम्बंध रखती है। अर्थात् जितनी माँग की पूर्ति पर अधिकता होगी मज़दूरी दर में व द्धि की दर भी उतनी ही ज्यादा होगी। चित्र में OW1 पर माँग की पूर्ति पर अधिकता AB है जबकि यह अधिकता कम है इसलिए मज़दूरी दर में व द्धि की दर अपेक्षाकृत कम होगी। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बेरोजगार लोगों को रोज़गार पाने के लिए जो औसतन समय लगता है वह माँग की पूर्ति पर अधिकता से विपरीत सम्बधं रखता है। स्पष्ट है कि श्रमिकों के लिए माँग की जितनी ज्यादा अधिकता होगी उतना ही रोजगार प्राप्त करने में समय कम लगेगा और बेरोज़गारी कम होगी। ध्यान देने की बात यह है कि OW दर पर जो चित्र में पूर्ण रोज़गार दर्शा रहा है कुछ बेरोज़गारी की मात्रा लिए हुए है। कम मज़दूरी दरों पर जितनी ज्यादा माँग की पूर्ति पर अधिकता होगी उतनी ही बेरोजगारी की मात्रा कम होगी और मज़दूरी दर में व द्धि की दर उनती अधिक होगी। माँग की पूर्ति पर अधिकता कम होने पर विपरीत होगा।

चित्र 2 के भाग A में जब मज़दूरी दर OW है इस अवस्था में मज़दूरी की व द्धि की दर उतनी अधिक होगी। माँग की पूर्ति पर अधिकता कम होने पर विपरीत होगा।

चित्र 2 के भाग A में जब मज़दूरी दर OW है इस अवस्था में मज़दूरी की व द्धि दर शून्य है। इस स्थिति में जो भी बेरोज़गारी की मात्रा है उसे चित्र के भाग B में U1 द्वारा दर्शाया गया है। जितनी माँग की अधिकता होगी उतनी बेरोज़गारी दर कम होगी और हम U1 और O बिन्दु की तरफ बांई ओर सरकते जाएँगे। जहाँ मज़दूरी दर OW से अधिक है वहाँ श्रम-पूर्ति माँग से अधिक है तथा बेरोज़गारी अधिक होगी तथा मज़दूरी दर गिरेगी अर्थात् मज़दूरी दर में व द्धि की दर नकारात्मक होगी और हम U1 बिन्दु के दाई ओर सरकेंगे और फिलिप्स वक्र नकारात्मक भाग में प्रवेश करेगा। जितनी ज्यादा बेरोजगारी होगी मज़दूरी दर गिरने की दर भी उनती ही अधिक होगी अर्थात् मज़दूरी व द्धि पर उतनी ही नकारत्मक होगी। क्या फिलिप्स वक्र ऊपर या नीचे सरकता है ? इसकी व्याख्या एक संशोधित फिलिप्स वक्र द्वारा की जा सकती है।

एक संशोधित फिलिप्स वक्र

(A Modified Philips Curve)

वैसे तो फिलिप्स वक्र मज़दूरी दर में व द्धि और बैरोज़गारी दर के मध्य सम्बंध सथापित करता है,, परन्तु मज़दूरी दर में व द्धि और मुद्रा-स्फीति के मध्य घनिष्ठ सम्बंध होने के नाते मुद्रा-स्फीति और बेरोजगार के मध्य सम्बंध दर्शाया जा सकता है। मुद्रा-स्फीति की दर और बेरोज़गारी की दर के W P मध्य सम्बंध स्थापित करने वाले वक्र को ही हम संशोधित फिलिप्स वक्र करते है। परंतु प्रश्न यह पैदा होता है कि मज़दूरी दर में व द्धि मुद्रा-स्फीति में कितनी व द्धि करती है ? यह निर्भर करता है उत्पादकता में व द्धि की दर पर । यदि उत्पादकता उसी दर से बढ़ती है जिस दर से मज़दूरी दर में व द्धि हुई है तो मुद्रा-स्फीति में कोई बदलाव नहीं आएगा फिलिप्स वक्र यथावत् रहेगा। परंतु यदि मज़दूरी दर में व द्धि 10 प्रतिशत और उत्पादकता में व द्धि 6 प्रतिशत से हुई तो मुद्रा-स्फीति 4% से बढ़ेगी, नहीं कि 10 प्रतिशत से। और फिलिप्स वक्र जो मज़दूरी व द्धि दर और बेरोज़गारी दर के मध्य सम्बन्ध व्यक्त करता है वह उसी अनुपात से (उदाहरण के अनुसार 6 प्रतिशत से) नीचे की ओर सरक जायेगा और कीमत स्तर में व द्धि दर और बेरोज़गारी दर में समबंध प्रकट करेगा यह संशोधित फिलिप्स वक्र चित्र 3 में टूटी रेखा द्वारा स्पष्ट है।

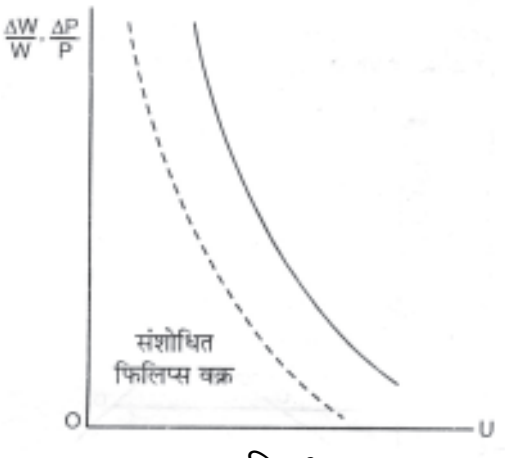

चित्र 3

जैसे प्रारम्भिक फिलिप्स वक्र, जो मज़दूरी दर में व द्धि दर और बेरोज़गारी दर के मध्य सम्बंध प्रकट करता है, ऊपर या नीचे

सरक सकता है। वैसे ही संशोधित वक्र भी सरक सकता है। यदि उत्पादकता दर स्थिर रहे और मज़दूरी-दर बढ़ जाए तो प्रारम्भिक फिलिप्स वक्र समान दर से ऊपर सरक जाएंगे।

यह भी ध्यान देने की बात है कि मज़दूरी दर के अतिरिक्त कुछ और शक्तियाँ भी कीमत स्तर को उन्हीं बेरोज़गारी दरों पर प्रभावित कर सकती हैं। जैसे OPEC जैसे बाहरी शक्तियाँ कीमत स्तर को बिना मज़दूरी दर को प्रभावित किए बढ़ा देती हैं। मुद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर में सम्बंध स्थापित करने बाला फिलिप्स वक्र जिसको हम संशोधित फिलिप्स वक्र कहते हैं ऊपर की ओर सरक जाएगा। संशोधित फिलिप्स वक्र हमें एक एसी परिस्थिति में छोड़ देता है जहाँ मद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर के मध्य विनिमय (Trade off) किया जा सकता है। हम कम बेरोज़गारी दर के लिए ऊँची मुद्रा-स्फीति दर प्राप्त कर सकते हैं और इसके विपरीत भी। फिलिप्स वक्र हमें एक ऐसी परिस्थिति में छोड़ देता है जहाँ मद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर के मध्य विनिमय किया जा सकता है। परन्तु यह वक्र मुद्रा स्फीति दर तथा बेरोज़गारी दर के उस वास्तविक संयोग को नही बता सकता जो किसी समय एक अर्थव्यवस्था में पाया जाता है। यह तभी मालूम हो सकता है जब हम मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र (inflationary pressure curve) को विलिप्स वक्र के साथ चित्र में शामिल करें। मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र क्या है ?

मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र

(The Inflationary Pressure Curve)

मौद्रिक आय, वास्तविक आय और कीमत स्तर में आनुपातिक सम्बंध पाया जाता है। मौद्रिक आय में व द्धि वास्तविक आय में व द्धि से या कीमत स्तर में व द्धि से या इन दोंनों में व द्धि के संयोग से हो सकती है। उदाहरणतः यदि मैद्रिक आय 100 रूपये है और वास्तविक आय 20 रूपये है तो कीमत स्तर 5 रूपये होगा। यदि मौद्रिक आय 20 प्रतिशत से बढ़ जाती है तो मौद्रिक आय 20 प्रतिशत से बढ़ जाती है तो मौद्रिक आय 120 हो जाएगी। यदि वास्तविक आय भी 20 प्रतिशत से बढ़ी तो यह बढ़ कर 20 से 24 हो जाएगी कीमत परंतु कीमत स्तर 5 ही रहेगा। परंतु यह भी हो सकता है कि वास्तविक आय शून्य प्रतिशत से बढ़े जिससे यह 20 ही रह जाए और कीमत स्तर 20 प्रतिशत से बढ़े जिससे यह 5 से 6 हो जाए और मौद्रिक आय 20 प्रतिशत से बढ़ने से 120 हो जाए। मौद्रिक आय में व द्धि वास्तविक आय और कीमत स्तर दोंनों में व द्धि होने से भी हो सकती है। बेरोज़गारी दर में व द्धि होने से उत्पादन की व द्धि दर कम हो जाती है जो कीमत स्तर में व द्धि का दबाव उत्पन्न करता है या इसको बढ़ा देता है (and vice versa)। अतः बेरोज़गार दर में व द्धि तथा कीमत स्तर में व द्धि दर के मध्य सम्वन्ध दर्शाने वाला वक्र मुद्रा स्फीति दबाव वक्र कहलाता है।

मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र का ढाल : ओकन का नियम

(Slope of the Inflationary Pressure Curve : Okun's Law)

ओकन नामक अर्थशास्त्री के अनुसार बेरोजगारी में कमी से कुल उत्पादन की व द्धि दर बढ़ती है और बेरोज़गारी बढ़ने से कुल उत्पादन की व द्धि दर कम हो जाती है। इसी प्रवत्ति को ओकन नियम से जाना गया। इस नियमानुसार बेरोज़गारी में एक प्रतिशत की व द्धि उस वर्ष के कुल वास्तविक उत्पादन में लगभग 2.5 प्रतिशत की कमी लाएगी। इस नियम से हम मुद्रा-स्फीति दबाव का अंदाजा लगा सकते हैं। यदि बेरोज़गारी दर ज्यादा है तो वास्तविक उत्पादन व द्धि दर कम होगी जिससे कुल उत्पादन कम होगा और

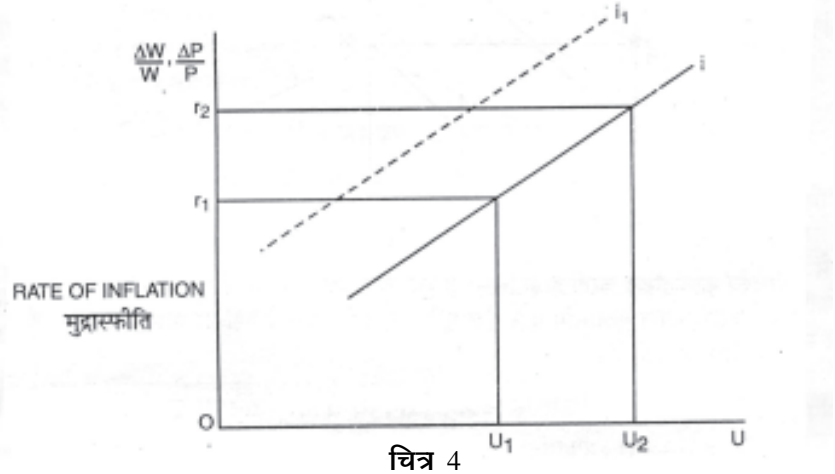

चित्र 4

मुद्रा-स्फीति की दर ऊँची होने का दबाव बनेगा। इसके विपरीत, यदि बेरोज़गारी दर कम है उत्पादन व द्धि ज्यादा हौगी। कुल वास्तविक उत्पादन का अनुपात पूर्णरोज़गार उत्पादन के संदर्भ में अधिक होगा (जैसे पहले वास्तविक उत्पादन पूर्ण रोज़गार उत्पादन का 92 प्रतिशत है और अब बेरोज़गारी कम होने से यह 97 प्रतिशत हो सकता है) इससे मुद्रा-स्फीति की दर कम हो जाएगी। इसलिए मुद्रा-स्फीति दबाब वक्र नीचे से दाईं ओर ऊपर को उठता हुआ होगा जैसे चित्र सं. 4 में दर्शाया गया है।

अब बेरोज़गारी की दर U1 है मुद्रा-स्फीति दर *r*1 होगी और यह बढ़कर जब U2 हो जाती है वो मुद्रा-स्फीति दर बढ़ कर r2 हो जाती है। इसी संबंध को दर्शाने वाला वक्र Inflationary Pressure Curve कहलाता है।

मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र का विवर्तन

(The Shift of the Inflationary Pressure Curve)

मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र का ढाल ओकन नियम को वयक्त करता है-बेरोज़गारी में एक प्रतिशत की कमी या व द्धि मुद्रा-स्फीति में 2.5 प्रतिशत की क्रमशः कमी या व द्धि लाती है। परंतु यह जानना अनिवार्य है कि वक्र नीचे या ऊपर क्यों सरक जाता है। एक कारण तो यह है कि उन्हीं बेरोज़गारी दरों पर मौद्रिक आय कम या अधिक हो जाती है। यह विस्तारवादी मौद्रिक व राजकोषीय नीतियां अपनाने से हो सकता है। जिनसे मुद्रा का प्रचलन बढ़ जाता है। इससे मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र बाईं ओर सरक जाएगा। जैसे चित्र में टूटी रेखा *i*1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। संकुचनात्मक मौद्रिक व राजकोषीय नीति से *i*1 वक्र दाईं ओर सरक जाएगा।

मुद्रा-स्फीति और बेरोज़गारी दर का निर्धारण

(Determination of the Rate of Inflation and Unemployment)

फिलिप्स वक्र और मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र की जानकारी के बाद हम मुद्रा-स्फीति दर को निर्धारित कर सकते हैं। यह दर कैसे बदलती है ? इन प्रश्नों का उत्तर चित्र सं. 5से प्राप्त हो सकता है।

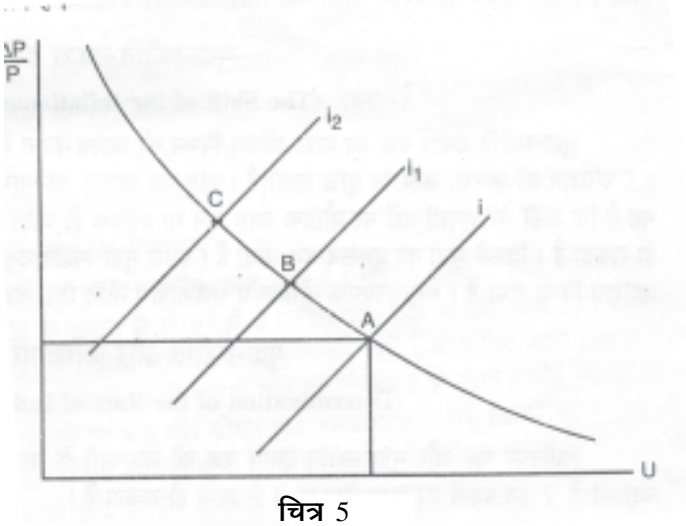

चित्र 5

चित्र 6 के अनुसार मुद्रा-स्फीति की दर P1 और बेरोज़गारी दर U1 निर्धारित होगी जहाँ PC वक्र *i*1 वक्र के M बिंदु दर काटता है। यदि अर्थव्यवस्था में विस्तारवादी मौद्रिक व राजकोषीय नीति अपनाई जाती है तो Inflationary Pressure Curve *i*1 से सरक कर *i*2 की स्थिति में पहुँच जाएगा। यह नया *i*2 Inflationary Pressure curve Pc वक्र को L बिंदु पर काटता है जिससे मुद्रा-स्फीति दर P2 और बेरोज़गारी दर कम होकर U2 बन जाती है। क्योंकि यदि बेरोज़गारी की दर U1 ही रहे तो कीमतों के P3 तक पहुँचने की आशा बनी रहेगी। परंतु उद्यमी कीमतों को बढ़ता हुआ देख कर उत्पादन बढ़ा लेते हैं। जिसको परिणाम

बेरोज़गारी दर का गिरना और मुद्रा-स्फीति का कम होना होगा। इसलिए अन्ततः मुद्रा-स्फीति दर P2 और बेरोज़गारी दर U2 निर्धारित हो जाएगी। Inflationary Pressure Curve मौद्रिक आय में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है इसलिए यह कुल माँग पक्ष प्रतिनिधि है। जबकि फिलिप्स वक्र पूर्ति पक्ष का प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। दोनों अर्थात् कुल माँग और कुल पूर्ति पक्ष जहाँ काटते हैं वहीं पर वास्तविक मुद्रा-स्फीति दर, वास्तविक उत्पादन और बेरोज़गार स्तर निर्धारित हो जाते हैं।

फिलिप्स वक्र : विनिमय व गैर विनिमय दर

(The Philips Curve : Trade off and Non-Trade Off)

यदि मुद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर में स्थाई संबंध है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति और बेरोज़गारी दर के मध्य विनियम दर निर्धारित हो सकती है। अर्थात् एक बुराई को छोड़ने के लिए दूसरी बुराई स्वीकार करनी पड़ती है। कम बेरोज़गारी दर रखनी है तो ऊँची मुद्रा-स्फीति दर सहन करनी पड़ेगी। इसके विपरीत भी सत्य है।

यह हम देख चुके हैं कि मुद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर का निर्धारण मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र और फिलिप्स वक्र के काटने से होता है। यह निर्धारण दोनों वक्रों या किसी एक वक्र में परिवर्तन आने से बदल सकता है। इस तथ्य का विश्लेषण दो भागों में बाँटा गया है। पहला जो 1960 में उपलब्ध हुआ, इसके अनुसार स्थाई फिलिप्स वक्र की मान्यता के आधार पर बेरोज़गारी दर और मुद्रा-स्फीति दर के मध्य स्थाई विनिमय दर पाई जाती है। दूसरा जिसमें फिलिप्स वक्र को अस्थायी माना गया है इसके अनुसार यह विनिमय दर स्थाई नहीं है।

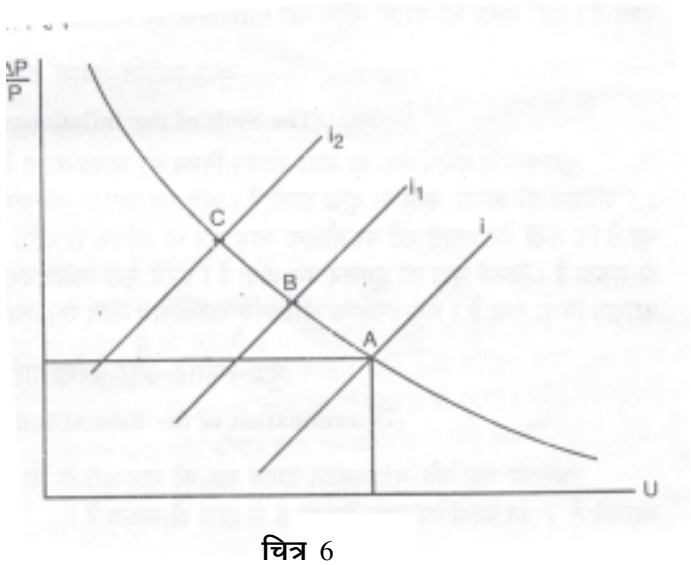

चित्र 6

विनिमय दर (Trade Off)

उसी फिलिप्स वक्र पर जहाँ मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र काट लेता है वहाँ बेरोज़गारी दर और मुद्रा-स्फीति दर निर्धारित हो जाती है। ज्यों-ज्यों मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र विस्तारवादी मौद्रिक व रोजकोषीय नीतियाँ अपनाने से बाईं ओर सरकता जाता है त्यों-त्यों मुद्रा-स्फीति बढ़ने की दर बढ़ती जाती है और बेरोज़गारी दर कम होती जाती है।

चित्र 6 में ये बेरोज़गारी और मुद्रा-स्फीति दर के संयोग A, B और C बिंदुओं द्वारा दर्शाए गए हैं जो दोनों के मध्य विनिमय दरों को दर्शा रहे हैं। अर्थव्यवस्था को इन संयोगों में से ही चुनाव करना पड़ता है। जिस भी संयोग को पसंद किया जाता है उनके अनुसार ही मौद्रिक व राजकोषीय नीति अपनाई जा सकती है। इसके अनुसार Inflationary Pressure Curve को आवश्यकता अनुसार सरकाया जा सकता है। किसी संयोग का चुनाव करते समय यह देखना होता है कि अर्थव्यवस्था का लाभ किस में अधिक है-कम मुद्रा-स्फीति दर रख के अधिक बेरोज़गारी स्वीकार करने या कम बेरोज़गारी और अधिक ऊँची मुद्रा-स्फीति सहन करने में है।

गैर विनिमय दर (The Non-trade off Curve)

फैलप्स (Phelps) और फ्रीडमैन (Friedman) जैसे अर्थशास्त्रियों ने फिलिप्स वक्र के मुद्रा-स्फीति दर और बेरोज़गारी दर के बीच विलोम संबंध (Trade-Off) के बारे में संदेह व्यक्त किया है। इनके अनुसार Trade off नहीं होती है। फिलिप्स वक्र पर कम बेरोज़गारी दर पर मुद्रा-स्फीति बढ़ने और इससे अधिक बेरोज़गारी दर पर मुद्रा-स्फीति घटने की प्रव त्ति पाई जाती है। परन्तु प्राकृतिक बेरोज़गारी दर (Un) पर मुद्रा-स्फीति के न घटने और न बढ़ने की प्रव ति पाई जाती है। स्वाभाविक या प्राकृतिक बेरोज़गारी की दर क्या होती है ?

जिस दर पर श्रम-बाज़ार में बेरोज़गारी की वर्तमान संख्या नौकरियों की संख्या के समान होती है वह प्राकृतिक बेरोज़गारी दर कहलाती है (The natural rate of unemployment is the rate at which the current rate of unemployed in the labour

market is equal to the number of jobs available) यद्यपि बेरोज़गारों के समान संख्या में नौकरियां उपलब्ध होती हैं परन्तु ये बेरोज़गार श्रमिक घर्षणात्मक तथा संरचनात्मक कारणों से रोज़गार प्राप्त नहीं कर सकते हैं क्योंकि नये श्रमिक अपनी योग्यता के अनुसार नौकरियां ढूंढने में समय लगाते हैं। इसी प्रकार कुछ उद्योग बन्द हो रहे होते हैं तो कुछ स्थापित हो रहे होते हैं जो नई नौकरियां उत्पन्न करते हैं। वर्तमान में 4 से 6% बेरोज़गारी की प्राकृतिक दर है। वास्तविक बेरोज़गारी दर और प्राकृतिक बेरोज़गारी दर समान होने पर ही बेरोज़गारी की संतुलित दर कही जाएगी। दोनों में अंतर मुद्रा-स्फीति और बेरोज़गारी दर में परिवर्तन ला देता है। इसलिए प्राकृतिक बेरोज़गारी दर वह दर है जिसको अर्थव्यवस्था दीर्घकाल में प्राप्त करना चाहती है। दीर्घकाल में फिलिप्स वक्र प्राकृतिक बेरोज़गारी दर पर एक लम्बवत् वक्र बन जाता है जैसा कि चित्र 8 में दर्शाया गया है। प्राकृतिक बेरोज़गारी की दर वह दर है जिस पर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम माँग और श्रम पूर्ति वक्र एक-दूसरे को काट लेते हैं।) दीर्घकाल में यह लम्बात्मक (Vertical) कैसे बनता है ?

फ्रीडमैन के अनुसार PC में विवर्तन (Shift) मुद्र-स्फीति की भावी दरों से सम्बन्धित प्रत्याशाओं में परिवर्तन के कारण होता रहता है। फ्रीडमैन ने अनुकूलनीय प्रत्याशाओं का सिद्धान्त (Theory of adaptive expectations) प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार लोग मुद्रा-स्फीति की पूर्व तथा वर्तमान दरों के आधार पर अपनी प्रत्याशाओं का निर्माण करते हैं तथा अपनी प्रत्याशाओं में परिवर्तन तभी करते हैं जब वास्तविक मुद्रा-स्फीति की दर उनकी प्रत्याशित दर से भिन्न हो जाती है। अतः फ्रीडमैन के इन अनुकूलनीय प्रत्याशा के सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा-स्फीति की दरों तथा बेरोज़गारों की दर में अल्पकाल में Trade off हो सकता है किन्तु दीर्घकाल में ऐसा कोई Trade off नहीं हो सकता है। चित्र 8 में E बिन्दु पर प्रारम्भिक स्थिति है जो प्राकृतिक बेरोज़गारी दर 6% तथा मुद्रा-स्फीति दर 4% दर्शा रहा है। अब यदि सरकार 6% बेरोज़गारी दर को अधिक मान कर विस्तारवादी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति अपनाती है तो बेरोज़गारी दर कम होकर 4% तथा मुद्रा-स्फीति दर बढ़ कर 5% हो जायेगी। जैसा कि K बिन्दु दर्शा रहा है। ऐसा इस कारण हुआ क्योंकि विस्तारवादी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र को *i* से सरका कर *i*1 कर देती है। *i*1 अल्पकालीन PC को K बिन्दु पर काट रहा है। अतः अल्पकालीन सन्तुलन में मुद्रा-स्फीति दर 5% तथा बेरोज़गारी दर कम हो कर 4% रह जाती है। इसका कारण यह है कि नकद मज़दूरी का निर्धारण इस प्रत्याशा पर किया गया था कि मुद्रा-स्फीति दर 4% बनी रहेगी। इस अवस्था में फर्मों के लाभ में व द्धि होगी क्योंकि कीमत स्तर बढ़ गया है परन्तु नकद मज़दूरी नहीं बढ़ी है। इस कारण वे अपने उत्पादन में व द्धि करने तथा अधिक श्रमिकों को रोज़गार देने के लिए प्रेरित होंगी। इसलिए अर्थव्यवस्था E बिन्दु से K बिन्दु पर चली जाती है जहां बेरोज़गारी कम होकर 4% रह जायेगी जबकि मुद्रा-स्फीति की दर बढ़कर 5% हो जायेगी। अर्थात् अर्थव्यवस्था ने मुद्रा-स्फीति के रूप में कीमत देकर बेरोज़गारी को कम कर लिया है। यह अल्पकाल में अल्पकालीन फिलिप्स वक्र PC पर ही सम्भव है। फ्रीडमैन मानता है कि बेरोज़गारी की अपेक्षाकृत कम दर की उपलब्धि मात्र एक अस्थायी तत्व होती है। वे मानते हैं कि जब मुद्रा-स्फीति की वास्तविक दर प्रत्याशित दर से अधिक होती है तो केवल अल्पकाल में ही प्राकृतिक दर की अपेक्षा बेरोज़गारी की दर कम होगी, दीर्घकाल में तो बेरोज़गारी की प्राकृतिक दर पुनः प्राप्त होगी।

दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र

(Long Run Philips Curve)

दीर्घकाल में फिलिप्स वक्र स्वाभाविक बेराजगारी दर पर लम्बवत् वक्र बन जाता है। इसको चित्र सं. 7 से दर्शाया जा कता है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है कि फिलिप्स वक्र PC और मुद्रा-स्फीति दबाव वक्र एक दूसरे को E पर काटते हैं 4% मुद्रा-स्फीति और U_n बेराजगारी दर को निर्धारित करते हैं। मान लीजिए यह U_n बेराजगारी दर स्वाभाविक बेराजगारी दर है।

अब यदि विस्तारवादी राजकोषिय और मौद्रिक नीति अपनाई जाए तो मौद्रिक राष्ट्रीय आय में व द्धि हो जाएगी (अर्थात कीमत-स्तर बढ़ेगा) जिससे Inflationary Pressure Curve बाई और i_1 हो जाएगी PC वक्र को K बिन्दु पर काटती है। K बिन्दु अल्पकाल में ऊँची मुद्रा-स्फीति दर और कम बेराजगारी दर के संयोग को दर्शा रहा है। यहाँ पर कीमत-स्तर बढ़ जाता है। परंन्तु नकद मजदूरी पहले वाली ही बनी रहती है। जिससे वास्तविक मजदूरी कम हो जाने से उत्पादकों का उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा प्राप्त होती है। जिससे वास्तविक बेरोजगारी दर गिर कर हो जाती U_1 है। श्रम संघ इस परिस्थिति को पहचान कर नकद मजदूरी में बढ़ोतरी करवाने हेतु संघर्ष करते हैं और सफल हो जाते हैं। इस से उद्यमियों के लाभ गिरते हैं तथा वे उत्पादन कम कर देते हैं। इस कारण बेरोजगारी U_1 से बढ़ने लग जाती है जो अन्नत : को प्राप्त कर जाती है। जिससे

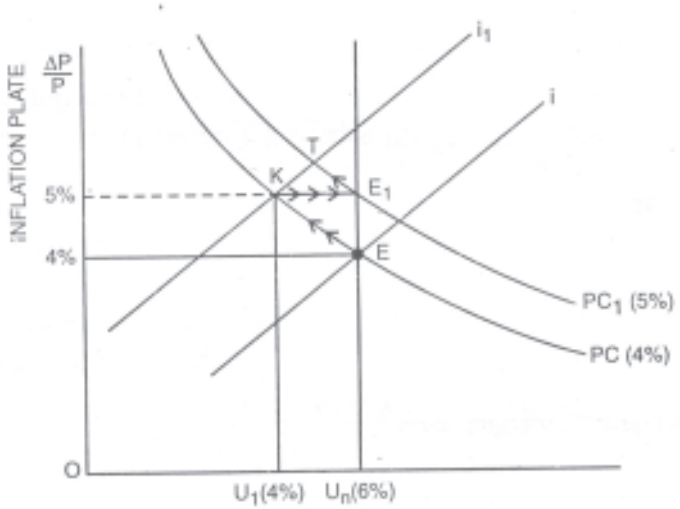

चित्र 7

दीर्घकाल में वक्र सरक कर मुद्रा-स्फीति वाला बन जात है। जो l_1 Inflationary Pressure Curve को E_1 पर काटता हैं जहाँ वास्तविक बेरोजगारी दर और स्वाभाविक बेरोजगारी दर समान हो जाते हैं और पहले वाली अवस्था को प्राप्त होते हैं। परंन्तु अब मुद्रा-स्फीति दर बढ़ कर 5% हो जाती है इसलिए E और E_1 बिंदु मिलाने से जो वक्र बना वह E_1 बिंदु दीर्घकाल में उसी बेरोजगारी U_n को भिन्न-भिन्न (4% and 5%) मुद्रा-स्फीति दरों पर दर्शा रहे हैं। अतः फ्रीडमैन के अनुसार दीर्घकाल में मुद्रा-स्फीति तथा बेरोजगारी में Trade off नहीं है।

मुद्रा-स्फीति तथा विवेकपूर्ण सिद्धान्त

(Inflation and Rational Expectation Theory)

विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त द्वारा मुद्रा-स्फीति तथा बेरोजगारी सम्बन्धी विचार की व्याखा को समष्टिगत आर्थिक सिद्धान्त का मूलाधार माना जाता है। यह नवीन प्रतिष्ठत समष्टि अर्थशास्त्र (New Classical Macroeconomics) के नाम से लोकप्रिय है। जैसा कि ऊपर फ्रीडमैन के अनुकूल प्रत्याशा सिद्धान्त (Adaptive Expectations Theory) कर व्याखा की गई है उससे ज्ञात होता है कि अनुकूल प्रत्याशा सिद्धान्त की कीमत स्तर में परिवर्तन पहले होता है तथा नकद मजदूरी में परिवर्तन बाद में होता है। नकद मजदूरी का कीमत स्तर से कम बने रहना फर्मो के लाभों में व द्धि करता है। इससे अल्पकाल में फर्मे उत्पादन तथा रोजगार में व द्धि करती हैं तथा इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी की दर प्राकृतिक बेरोजगारी दर की अपेक्षा कम हो जाती है।

परन्तु विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त के अनुसार कीमत स्तर में व द्धि के परिणामस्वरूप नकद मजदूरी में व द्धि होने में कोई विलम्ब या देरी नहीं होती है। इस प्रकार विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त बेरोजगारी की प्राकृतिक दर सिद्धान्त का ही अन्य रूप है। इस सिद्धान्त के समर्थक इससे आगे यह तर्क भी देते हैं कि नकद मजदूरियां कीमत स्तर में किसी प्रत्याशित परिर्वतन के साथ शीघ्रता से समायोजित हो जाती है। इसलिए किसी ऐसे फिलिप्स वक्र का अस्तित्व नहीं है जो मुद्रा-स्फीति तथा बेरोजगारी दर में कोई कमी नहीं रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार कुल मांग में व द्धि से उत्पन्न मुद्रा-स्फीति की दर को श्रमिकों तथा फर्मो द्वारा पूर्ण रूप से ठीक प्रकार से पूर्वानुमान लगा लिया जाता है। इस कारण श्रमिकों तथा फर्मो के बीच शीघ्र मजदूरी समझौते हो जाते हैं। इस कारण फर्मो का उत्पादन व रोजगार बढ़ाने की कोई प्रेरणा नहीं मिलती है। इस प्रकार कीमत स्तर में व द्धि होती है तथा वास्तविक उत्पादन तथा रोजगार प्राकृतिक स्तर पर ही बने रहते हैं। इसलिए विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त के अनुसार कुल पूर्ति वक्र पूर्ण रोजगार स्तर पर लम्बवत् सरल रेखा होती है।

वस्तुतः विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त दो मुख्य मान्यताओं पर आधारित है : प्रथम, श्रमिक तथा फर्मे पूर्ण रूप से विवेकशील होते हैं। वे अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों की पूर्ण जानकारी रखते हैं तथा सभी सम्बन्धित सूचनाओं का मजदूरी निर्धारण में उपयोग करते हैं। इतना ही नहीं वे सरकार की आर्थिक नीतियों में जो पूर्ण परिवर्तन होता है उनके प्रभावों का

भी वे ठीक पूर्वानुमान लगाते हैं। इन सुचनाओं तथा पूर्वानुमानो के आधार पर वे अपने हितों को बढ़ाने सम्बन्धी उचित निर्णय लेते हैं। द्वितीय, इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी है कि सभी वस्तु बाजार तथा साधन बाजार अत्याधिक प्रतिस्पर्धा वाले हैं। इसलिए तथा कीमतें अत्याधिक लोचपूर्ण रहती हैं तथा शीघ्रता से उनमें परिवर्तन हो सकते हैं।

वास्तव में विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त यह स्वीकार करता है कि नई सूचनाएँ बहुत शीघ्र बाजारों के माँग व पूर्ति वक्रों में समा जाती है तथा नई सन्तुलित कीमतें निर्धारित करती है। अर्थव्यवस्था में हो रही नई आर्थिक घटनाओं, जैसे तकनीकी परिवर्तन, बाढ़, सुखा या तेल की कीमतों में अचानक व द्धि हो या सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषिय नीतियों में परिवर्तन हो, इनके अनुसार कीमतें तुरंत परिवर्तित होती हैं।

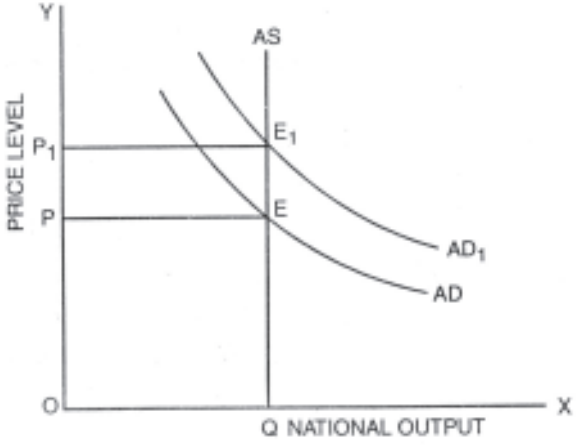

चित्र 8

विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा-स्फीति तथा बेरोजगारी के बीच जो सम्बन्ध बनता है उसको चित्र 9 में प्रकट किया गया है।

चित्र 8 दर्शाता है कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की प्राकृतिक दर दी हुई होने पर पूर्ण रोजगार की अवस्था में वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन का स्तर है। प्रारम्भ में कुल पूर्ति वक्र जो लम्बवत है तथा कुल माँग वक्र को बिन्दु पर काटकर कीमत स्तर का निर्धारण करती हैं। अब मान लो कि सरकार रोजगार तथा नीतियां लागु कर देती है जिससे माँग वक्र बढ़ कर बन जाता है जो वक्र को बिन्दु पर काटकर कीमत स्तर का निर्धारण करता है।

विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक व फर्मे आदि सभी इस बात का ठीक से पूर्वानुमान लगायेगें कि सरकार की विस्तारवादी नीति अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करेगी। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक मजदूरी बढ़वाने के लिए दबाव डालेगें तथा फर्मे उसे पूर्ण जानकारी के आधार पर मजदूरी बढ़ाने को स्वीकार करेंगी। फर्मे अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ा देंगी तथा वित्तिय संस्थाएँ ब्याज दर में व द्धि कीमत के रूप पूर्णतः प्रतिबिम्बित होगी। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन, रोजगार, वास्तविक मजदूरी दर वास्तविक ब्याज दर का स्तर, वास्तविक निवेश तथा उपभोग अपरिवर्तित बने रहेगें। इस तथ्य को फिशर के मुद्रावादी समीकरण की सहायता से समझा जा सकता है। सरकार की विस्तारवादी मौद्रिक नीति मुद्रा की मात्रा में व द्धि करेगी। इससे कुल व्यय में व द्धि करेगी। इससे कुल व्यय में व द्धि होगी जो के समान होती है। इससे में व द्धि के अनुपात में लोगों की मुद्रास्फीति से सम्बन्धित पूर्वानुमान या प्रत्याशाएँ कीमत स्तर में समान व द्धि कर देती हैं। परन्तु में व द्धि के बावजूद वास्तविक वास्तविक उत्पादन उत्पादन तथा रोजगार का स्तर पहले जितना ही बना रहता है।

इस कारण विवेकपूर्ण प्रत्याशा सिद्धान्त के अनुसार विस्तारवादी मौद्रिक नीति का वास्तविक निवेश, उत्पादन तथा रोजगार पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ता है। यह तथ्य चित्र से स्पष्ट हो जाता है। यही कारण है कि कुल पूर्ति वक्र लम्बवत् रेखा के रूप में होता है। इसका आशय यह है कि मुद्रा-स्फीति तथा बेरोगारी के मध्य कोई नही होता। अर्थात इस सिद्धान्त के अनुसार नीचे की ओर गिरता फिलिप्स वक्र नहीं होता है। अतः सरकार की विस्तारवादी मौद्रिक नीति केवल मुद्रा-स्फीति में व द्धि करती है तथा उत्पादन व रोजगार नहीं बढ़ाती है।

REVIEW QUESTION

1. Explain critically rational expectations.
2. How the rate of unemployment and the rate of inflation are determined with the help of philips curve and Inflationary Pressure curves.
3. What is meant by Trade off between rate of unemployment and inflation rate? Explain the effect of rational expectation on the natural rate of unemployment.
4. Expalin the relationship between inflation and rational expectation the

अध्याय-23

अनुकूलनीय तथा विवेकपूर्ण प्रतयाशाएं
(Adaptive and Rational Expectation)

विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ
(RATIONAL EXPECTATION)

अर्थ (Meaning)

संसार की आधुनिक अर्थ व्यवस्थाएँ बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी और मुद्रा-स्फीति का सामना करती रही हैं, विशेष रूप से 1970 के बाद मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति (Monetary and fiscal policy) इन समस्याओं को हल करने में अधिकतर असफल रही है। इन परिस्थितियों ने तर्कपूर्ण आशांसाओं (rational expectations) के सिद्धान्त को जन्म दिया, जिसको Theory of Ratex भी कहा जाता है। Theory of rational expectation का महत्त्व इस बात से स्पष्ट होता है कि यह level of inflation और unemployment कैसे साथ-साथ चल सकते हैं कि व्याख्या करने में सफल रही हैं।

Rational expectation is the application of the principle of rational behaviour to the acquisition and processing of information and to the formation of expectations. अर्थात् इकाईयां (economic agent) के आधार पर expectations का निर्माण किया जाता है। Ratex theory विशेष रूप से व्यक्त करती है कि किसी समय यदि सूचनाएँ अपूर्ण (Incomplete) हैं तो economic agents rational होने के बावजूद भी उनकी expectations incorrect (असत्य) सिद्ध होंगी।

Rational expectation किसी economic variables के स्तर या परिवर्तन की दर के बारे में स्पष्ट रूप से भविष्यवाणी होती है जो सभी उपलब्ध information पर आधारित होती है। केन्ज़ ने expectation को महत्त्व तो दिया परन्तु ये व्याख्या नहीं की, कि इनका निर्माण कैसे होता है। फर्मों को अपनी वस्तुओं की furute prices के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करनी होती है जिसके आधार पवर वे वर्तमान में उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेती है।

विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं के सिद्धानत
(The theory of rational expectations) or (Kind of rational expectations)

John Muth ने 1961 में theory of rational expectation का प्रतिपादन किया था। इससे पहले जो प्रत्याशाएँ निर्मित की जाती थी, उनकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि वे किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं थी। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है–

1. Cobweb model of expectations

Cobweb model of expectation कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित आशंसाओं की व्याख्या करता है। इसका सारांश यह है कि उत्पादन करने के लिए खेत के निर्माण में और वास्तविक उत्पादन करने में समय अन्तराल (time lag) पाया जाता है। ये वे आशंसाएँ हैं जब कृषक फसलों के उगाने के समय उनकी कीमतों के बारे में आशंसाएँ लगाते हैं। ये अशंसाएँ बीजारोपण के समय प्रचलित कीमतों पर आधारित होती हैं। यदि किसी एक अनाज की उस समय कीमत ज्यादा है तो सभी कृषक आशाएँ करते हैं कि भविष्य में भी इसी अनाज की कीमत ज्यादा रहेगी इसलिए सभी कृषक अधिक भूमि उसी फसल के उगाने में लगा देते हैं जिस कारण उस वस्तु की पूर्ति बहुत बढ़ जाती है। परिणामतः उस वस्तु की बाज़ार कीमत पहले की अपेक्षा काफी कम प्रचलित होती है। अगले समय किसान यह देखकर कि वस्तु की कीमत बहुत कम है, किसी अन्य फसल के उत्पादन में अधिक भूमि का प्रयोग करने लग जाते हैं। परिणामतः उनकी आशंसाओं के विपरीत उस पहली वस्तु की कीमत ऊँची होती है क्योंकि यह वर्ष दुर्लभता का वर्ष (year of scarcity) होगा और इससे अगला वर्ष अधिकता का वर्ष (year of planty) होगा। इस सिद्धान्त को मद्देनज़र

रखते हुए उत्पादक का व्यवहार उदासीन (native) कहा जायेगा। अर्थात् वे यह नहीं समझते कि दूसरे किसान भी वही कर रहे हैं जो कि एक किसान स्वयं कर रहा है। इसलिए वे सभी जाल में फँस जाते हैं। इस कारण इसे आशाओं का मकड़ी जाल मॉडल (Cobweb model of expectation) कहा जाता है।

2. Extra-Polative expectation

Cobweb model की यह कमी थीं कि आशंसाएँ किसी चर (variable) के भूतकाल व्यवहार पर निर्भर करती हैं। इस कमी को दूर करने के लिए इस सिद्धान्त में उस चर में परिवर्तन की दिशा (direction of change) को आधार बनाया गया है।

Extra polative expectations in any period is equal to the price level in the previous period plus some proportions of change between the previous two periods.

1946 में हिक्स ने extra polative expectation को प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार मुद्रा स्फीति की प्रत्याशित दर वर्तमान मुद्रा स्फीति की दर + मुद्रा स्फीति में परिवर्तन की दर का समावेश होती है। (expected rate of inflation equals the current inflation rate + adjustment which allows for the rate of change in the inflation.) इस माडल में मुद्रास्फीति की दर (rate of inflation) के बारे में ही नहीं बल्कि मुद्रा स्फीति की दर में परिवर्तन (Change in the rate of inflation) के बारे में भी (expectation) की जाती है।

3. Adaptive expectations

Adaptive expectation hypothesis का निर्माण 1956 में Cagan द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्याशांए पिछली भविष्यवाणी में मियों के अनुसार संशोधित की जाती हैं। (Expectations are revised in according for the last forecasting error)। इसी प्रकार का नाम error learning hypothesis भी है अर्थात् भूतकाल में जो expectation की गई और वे सत्य नहीं पाई गईं तो यह देखा जाता है कि expectation के निर्माण में कहाँ कमी थी। इस कमी को दूर करके भविष्य के लिए फिर से expectation का निर्माण किया जाता है।

Rational Expectations Hypothesis

Muth के अनुसार आशंसाएँ घटनाएँ (events) के प्रति भविष्यवाणी (Predictions) करना है और ये वास्तव में वैसी ही है जैसा कि किसी आर्थिक सिद्धान्त (economic theory) की भविष्यवाणी। Rational expectation hypothesis विशेष रूप से इस बात पर बल देती है कि अर्थव्यवस्था information को बेकार नहीं करती। यह hypothesis निम्न तीन तथ्यों पर बल देती है :

(1) सूचना (Information) दुर्लभ होती है और आर्थिक व्यवस्था सामान्यता इसे waste नहीं करती।
(2) प्रत्याशा (Expectation) का निर्माण इस बात पर भी निर्भर करता है कि अर्थव्यवस्था का ढांचा किस प्रकार का है अर्थात् अर्थव्यवस्था पूँजीवादी है या समाजवादी।
(3) जनता प्रत्याशा द्वारा की गई भविष्यवाणी का अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

Rational expectation किसी मद जैसे कि कीमत, उत्पादन, साधन व वस्तु की माँग व पूर्ति से सम्बन्धित होती है। इनको अर्थव्यवस्था में धन के समान समझा जा सकता है। इन उपरोक्त मदों या चरों का सरकार या अन्य factor से क्या सम्बन्ध है जिसके बारे में भविष्यवाणी की जाती है। इस सम्बन्ध के बारे में जो सूचना उपलब्ध है उस का चर सम्बन्धी भविष्यवाणी का निर्माण करने में प्रयोग किया जा सकता है। Muth के अनुसार information को कए resource या उत्पादन का साधन माना जा सकता है जो अधिकतम उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपभोक्ता और उत्पादक अधिकतम सन्तुष्टि व अधिकतम लाभ कमाने के लिए इन expectation का प्रयोग कर सकते हैं। Muth निष्कर्ष निकालता है कि विवेकपूर्ण आर्थिक इकाई (rational economic agent) जैसे कि फर्म आदि उत्पादन सम्बन्धी expectation का निर्माण करते समय आर्थिक प्रणाली (economic system) से सम्बन्धित सूचना व ज्ञान का प्रयोग करती है।

विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की आलोचना

(Criticism of the rational expectation)

अन्य सिद्धान्तों की भांति विवेक प्रत्याशा सिद्धान्त (theory of rational expectations) की भी कुछ कमियों हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

1. परिणाम की सत्यता (validity of result)

पिछले दशकों से देखने में आया है कि विवेपूर्ण प्रत्याशाओं (rational expectations) के आधार पर मुद्रा स्फीति की दर तथा बेरोजगारी दर (rate of inflation and rate of unemployment) के मध्य सम्बन्ध की भविष्यवाणी की गई है कि जब मुद्रा स्फीति की दर बढ़ती है तो बेरोजगारी की दर (rate of unemployment) कम होगी। परन्तु देखने में आया है कि अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति की दर (rate of inflation) के बढ़ने के साथ-साथ बेरोजगारी की दर (rate of unemployment) भी बढ़ी है। इस सम्बन्ध में (Fiscal) तथा monetary policy असफल रही हैं।

2. अवास्तविक तत्व (Unrealistic element)

Rational expectation की इस बात को लेकर बहुत अधिक आलोचना की गई है कि व्यक्तिगत आशंसाएँ वैसी ही हैं जैसे कि economic theory की भविष्यवाणी (predictions)। यदि ऐसा है तो इसका अर्थ यह होगा कि विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का निर्माण करते समय व्यक्तियों को सभी relevant variables की Past history ही मालूम नहीं है परन्तु उन Variables का परस्पर सम्बन्ध क्या रहा है उस की जानकारी भी है। Rational expectation का निर्माण करना एक व्यक्ति के बहुत अधिक व्यक्तिगत knowledge होने पर निर्भर करता है। ऐसा मानना एक अवास्तविक तत्व को शामिल करना है। (It is simply not possible. Information gathering and processing is a very costly and time taking affair.)

3. लोचशील कीमतें (Flexible prices)

Rational expectation की आलोचना इस बात को लेकर की गई है कि कीमतों को लोचशील (flexible) माना गया है। परन्तु देखने में आया है कि वस्तु की कीमत व मज़दूरी की कीमत व मज़दूरी आदि सम्बन्धी समझौते हो जाते हैं जिससे इन चरों (variables) में इतना अधिक परिवर्तन नहीं होता जितनी कल्पना की गई है।

4. पूँजी तथा मुद्रा का ध्यान नहीं रखा जाता (Capital and money not taken into account)

इस सिद्धान्त की यह आलोचना की गई है कि जब विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का निर्माण किया जाता है तो किसी asset, capital accumulation, inventories, taxes, money आदि का ध्यान नहीं रखा जाता। It is a model in which money has no role to play.

5. सिद्धान्त निष्पक्षता (Unbiasedness)

Muth कहता है कि जब भविष्यवाणी की जाती है तो यह सभी उपलब्ध सूचनाओं पर के ऊपर आधारित होनी चाहिए अर्थात् यह सम्भव नहीं होना चाहिए कि additional information का प्रयोग करके भविष्यवाणी को improve किया जा सके। अर्थात् predictor को पूर्णतः rational होना चाहिए जो वास्तव में सम्भव नहीं है।

6. व्यवहार (Behaviour)

कुछ अर्थशास्त्री rational expectations को आर्थिक चरों के व्यवहार का निर्धारक नहीं मानते। उनके अनुसार व्यवहार में एक आर्थिक चरों (economic agent) जैसे परिवर्तन हो रहा है उसी को सत्य माना जाना चाहिए न कि भविष्यवाणी को।

●●●

अध्याय-24

आर्थिक व द्धि का हैरड-डोमर मॉडल

(HARROD-DOMAR MODEL OF ECONOMIC GROWTH)

आर्थिक विकास को हैरड-डोमर मॉडल विकसित पूँजीवादी देशों की सतत् विकास (Steady Growth) सम्बन्धी समस्या का अध्ययन करता हैं। इस मॉडल की व्याख्या के अनुसार विकसित पूँजीवादी देशों को निवेश एक निश्चित दर से बढ़ानी चाहिए ताकि सतत् विकास की प्रक्रिया को बनाए रखा जा सके।

1. निवेश तथा सतत् व द्धि विकास
(Investment and Steady Growth)

केन्ज़ के अनुसार पूँजीवादी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में कुल माँग (Aggregate Demand) अल्पकाल में पूर्ण रोज़गार उत्पादन-स्तर से कम रहती है। इसलिए कुल माँग में व द्धि करके पूर्ण रोज़गार सन्तुलन के स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। कुल माँग केन्ज़ के अनुसार कुल उपभोग व्यय तथा कुल निवेश व्यय पर निर्भर करती है। अल्पकाल में कुल उपभोग व्यय को स्थिर माना गया है। इसलिए निवेश में व द्धि करके कुल माँग में व द्धि की जा सकती है। निवेश के बढ़ने से अर्थव्यवस्था में गुणक के द्वारा आय तथा माँग बढ़ती है। केन्ज़ की यह व्याख्या अल्पकाल तक सीमित है तथा उन्होंने अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास पर ध्यान नहीं दिया।

वस्तुतः निवेश का द्वैत प्रभाव (Dual Effect) होता है। प्रथम, निवेश में व द्धि करने से गुणक प्रक्रिया के माध्यम से लोगों की आय या कुल माँग में व द्धि होती है, जिसको 'माँग प्रभाव' (demand effect) कहा जाता है। द्वितीय, निवेश में व द्धि करने से पूँजी की मात्रा में व द्धि होती है जिससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता (Productive Capacity) में व द्धि होती है, जिसको 'पूर्ति प्रभाव' (Supply Effect) कहा जाता है। केन्ज़ ने निवेश में 'माँग प्रभाव' का अध्ययन किया परन्तु क्षमता या पूर्ति प्रभाव की उपेक्षा की है। हैरड तथा डोमर ने अपने विश्लेषणों में इन दोनों प्रभावों का समावेश किया है। उन्होंने व्याख्या की है कि विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में निवेश किस दर से किया जाये ताकि सतत् विकास (steady growth) की दर प्राप्त की जा सके।

आर्थिक विकास हा यक मॉडल व्यक्त करता है कि शुद्ध निवेश (net investment) में व द्धि करने से एक तरफ तो वास्तविक आय तथा उत्पादन बढ़ता है तथा दूसरी तरफ उत्पादन-क्षमता बढ़ती है। इसलिए प्रति वर्ष आय का पूर्ण रोज़गार स्तर बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक आय तथा उत्पादन उसी दर से बढ़े जिस दर से उत्पादन क्षमता बढ़ रही है। अन्यथा इन दोनों में अन्तर आने पर अर्थव्यवस्था में कम या अधिक उत्पादन क्षमता (Excess or Less Productive Capacity) उत्पन्न हो जायेगी, जो सतत् विकास (Steady growth) की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देगी। इससे अर्थव्यवस्था में अति-उत्पादन या मुद्रा-स्फीति की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है तथा अर्थव्यवस्था सन्तुलित सतत् विकास दर से विचलित हो जायेगी। इसलिए हैरड तथा डोमर मॉडल ने व्याख्या की है कि निवेश किस दर से बढ़ाया जाये ताकि प्रति वर्ष पूर्ण रोज़गार सन्तुलन को बनाये रखा जा सके तथा अर्थव्यवस्था में सतत् विकास होता रहे। इसके लिए वास्तविक आय तथा माँग को इस दर से बढ़ना होगा ताकि बढ़ते पूँजी स्टॉक की क्षमता को पूर्ण रूप से प्रयोग किया जा सके। आय बढ़ने की इस दर को 'Warranted rate of growth' or 'the full capacity growth rate' या 'पूर्ण क्षमता विकास दर' कहा जाता है।

हैरड ने अपने सिद्धान्त का प्रकाशन डोमर की अपेक्षा पहले किया है। यद्यपि सतत् विकास सम्बन्धी उनकी विस्त त व्याख्या अलग-अलग है परन्तु फिर भी दोनों का मूल विचार एक समान है।

पूर्णधारणाएँ (Assumptions)

हैरड तथा डोमर दोनों के सिद्धान्त निम्न पूर्ण धारणाओं पर आधारित हैं :

(1) प्रारम्भ अर्थव्यवस्था अपने पूर्ण रोज़गार उत्पादन स्तर पर होती है।

(2) आर्थिक मामलो में सरकार हस्तक्षेप नहीं होता।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार रहित अर्थात् बन्द अर्थव्यवस्था (closed economy) है।

(4) सीमानत बचत प्रव त्ति तथा औसत बचत प्रव त्ति एक दूसरे के समान हैं तथा ये स्थिर रहती हैं।

(5) पूँजी स्टॉक का आय से अनुपात (Ratio of Capital Stock to Income Capital-output ration or Capital Co-efficient) स्थिर माना गया है।

(6) पूँजी पदार्थों या मशीनों की टूट फूट तथा घिसाई (Depreciation) नहीं होती है। यह माना गया है कि मशीनों की जीवन अवधि असीमित होती है।

(7) ब्याज दरों में परिवर्तन नहीं होते हैं।

(8) उत्पादन में पूँजी-श्रम अनुपात (Capital-labour ratio) स्थिर रहता है।

(9) बचत तथा निवेश एक ही वर्ष से सम्बन्धित होते हैं।

(10) सामान्य कीमत-सतर स्थिर रहता है अर्थात् मौद्रिक आय तथा वास्तविक आय में समानता बनी रहती है।

2. डोमर का व द्धि मॉडल
(Growth Model of Domar)

डोमर का विकास मॉडल जांच करता हैं कि निवेश के प्रति वर्ष व द्धि किस दर से की जाये ताकि इसेस उत्पन्न आय में व द्धि उत्पादन क्षमता में हुई व द्धि के समान हो सके। निवेश व द्धि की ऐसी दर प्राप्त होने पर अर्थव्यवस्था को प्रतिवर्ष पूर्ण रोज़गार सन्तुलन स्तर पर कायम रखा जा सकेगा।

$\frac{\Delta Y}{\Delta K}$ or $\frac{1}{5}\Delta Y = I \frac{\Delta Y}{\Delta K}$

निवेश का क्षमता प्रभाव (Capacity Effect of Investment)

निवेश में व द्धि होने पर उत्पादन क्षमता तथा वस्तुओं की पूर्ति बढ़ती है क्योंकि मशीनों तथा प्लांट की मात्रा तथा आकार बढ़ जाता है। मान लीजिये वार्षिक निवेश दर I है, तथा प्रत्येक रुपये की वार्षिक उत्पादन क्षमता या उत्पादन-पूँजी अनुपात $\frac{\Delta Y}{\Delta K}$ (ΔY = उत्पादन में व द्धि, DK = पूँजी में व द्धि) है। का अर्थ है कि मान लो एक रुपये के मूल्य का अतिरिक्त उत्पादन (ΔY) की आवश्यकता पड़ती है तो उत्पादन-पूँजी अनुपात होगा। इसलिए वार्षिक निवेश I की उत्पादन क्षमता (ΔY) निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है :

$$\Delta Y = 1 \times$$

यदि $\frac{\Delta Y}{\Delta K} = S$ माना जाये तो $\Delta Y = IS$; S = Output-Capital ratio है।

परन्तु अर्थव्यवस्था में जब नया निवेश किया जायेगा तो पुराने निवेश की उत्पादन क्षमता कुछ कम हो जायेगी। इसका कारण यह है कि अथव्यवस्था में प्रारम्भिक सन्तुलन पूर्ण रोज़गार स्तर पर हो ता है तथा माना निवेश कुछ श्रमिकों को पुराने निवेश से हटा कर नये निवेश में रोज़गार प्रदान करेगा। इसके परिणामस्वरूप पुराने प्लांटों का उत्पादन कुछ कम हो जायेगा तथा अर्थव्यवस्था का उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता IS से कुछ कम हो जोयगी। इसके समाधान के लिए S के स्थान पर सिगमा

(σ) प्रयोग किया जा सकता है तथा इनमें $\sigma < S$ है। इसलिए अब उत्पादन क्षमता (ΔY) को हम $I\sigma$ के समान ($\Delta Y = I\sigma$) दर्शा सकते हैं। इस प्रकार σ को अर्थव्यवस्था में निवेश की विशुद्ध सामाजिक उत्पादकता कहा गया है। इसको सिगमा प्रभाव कहा जाता है।

डोमर के शब्दों में "This is the increase in output which the economy can produce, it is the supply side of our system."

मान लो अर्थव्यवस्था में 50 करोड़ रुपये का निवेश किया गया है तथा उत्पादन-पूँजी अनुपात $\sigma\frac{1}{5}$ है। इस कारण उत्पादन या पूर्ति में व द्धि $(\Delta Y)\ 50 \times \ = 10$ करोड़ के बराबर होगी।

निवेश का आय या माँग प्रभाव (Income or Demand Effect of Investment)

डोमर ने निवेश का आय या माँग पर प्रभाव केन्ज़ीयन गुणक के माध्यम से व्यक्त किया है। अर्थात् आय या माँग में व द्धि (ΔY) हमेशा निवेश में व द्धि (ΔI) तथा बचत प्रव त्ति के आधार पर ज्ञात की जा सकती हैं यदि बचत प्रव त्ति $\left(\frac{\Delta S}{\Delta Y}\right)$ को α (alpha) से व्यक्त किया जाये तो गुणक का मूल्य $\frac{I}{\alpha}$ होगा (क्योंकि गुण $\frac{1}{1-C} = \frac{1}{S} = \frac{1}{\alpha}$)। अब निवेश में की गई व द्धि से आय या माँग में कितनी व द्धि होती है इसको निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है।

$$\Delta Y \ = \Delta I \frac{1}{\alpha}$$

सन्तुलन (Equilibrium)

डोमर मॉडल के पहले भाग में पूर्ति ($\Delta Y = I\alpha$) तथा दूसरे में आय या माँग $\left(\Delta Y = \Delta I \frac{1}{\alpha}\right)$ का समकरण ज्ञात किया गया है। आय की पूर्ण रोज़गार सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करने के लिए कुल माँग पूर्ति के बराबर होनी चाहिए। इस प्रकार हम इस मॉडल के आधारभूत समीकरण (Fundamental Equation) को निम्न प्रकार ज्ञात कर सकते हैं :

$$\Delta I \frac{1}{\alpha} \ = I\sigma \text{ or } \frac{\Delta I}{\alpha} = \sigma$$

or $$\frac{\Delta I}{I} \ =$$

उपरोक्त समीकरण के अनुसार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार सन्तुलन बनाये रखने के लिए विशुद्ध निवेश हमेशा समीमान्त बचत प्रव त्ति (α) तथा पूँजी की उत्पादकता (σ) के गुणनफल के समान होना चाहिए। यह निवेश की वह दर है जिससे अर्थव्यवस्था की पूर्ण उत्पादन क्षमता का प्रयोग करके पूर्ण रोज़गार सन्तुलन कायम रखा जा सकता है तथा सतत् विकास की दर (Steady growth rate) प्राप्त की जा सकती है।

उपरोक्त मूल समीकरण $\frac{\Delta I}{I} = \alpha\sigma$ से प्रकट होता है कि बचत दर (α) जितनी अधिक होगी, पूर्ण रोज़गार सतत् व द्धि (steady growth) बनाये रखने के लिए आवश्यक निवेश की दर उतनी ही अधिक करनी होगी। इसी प्रकार यह भी सत्य है कि उत्पादन-पूँजी अनुपात (σ) जितना अधिक होगा निवेश व्यय में व द्धि भी उतनी ही अधिक होगी। डोमर के अनुसार $\frac{\Delta I}{I}$ तथा

$\alpha\delta$ में धनात्मक सम्बन्ध होता है। आधारभूत समीकरण से जो अति महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होता है वह यह है कि यदि है

तो आय या माँग में व द्धि उत्पादन क्षमता ($\alpha\sigma$) से अधिक होगी जो मुद्रा स्फीति को जन्म देगी। इसके विपरीत यदि $\frac{\Delta I}{I} < \alpha\sigma$ है तो अर्थव्यवस्था में मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

हैरड का मॉडल
(Harrod's Growth Model)

डोमर मॉडल की तरह हैरड का मॉडल भी उन शर्तों (conditions) की खोज करता है जिनसे अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोज़गार सन्तुलन के सतत् विकास दर पर बनाये रखा जा सके। परन्तु हैरड के मॉडल की विस्त त व्याख्या डोमर के मॉडल की विस्त त व्याख्या डोमर के मॉडल की व्याख्या से भिनन है। प्रोफैसर आर.एफ.हैरड (R.F. Harrod) ने अपने प्रसिद्ध लेख 'Towards A Dynamic Econimics' में अपने प्रसिद्ध विकास मॉडल का प्रतिपादन किया है। इस मॉडल के माध्यम से हैरड ने सिद्ध किया है कि अर्थव्यवस्था में सतत् विकास दर (Steady Growth Rate) प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि यदि अर्थव्यवस्था एक बार विचलित हो जाती है तथा असन्तुलन (Disequilibrium) को प्राप्त कर लेती है तो आर्थिक शक्तियां असन्तुलन को निरंतर बढ़ाती जाती हैं जिससे या तो अर्थव्यवस्था में स्थाई मुद्रास्फीति या स्थाई मन्दी स्थापित हो जाती है। हैरड का विश्लेषण गत्यात्मक माना जा सकता है। यह विश्लेषण विकास की तीन अलग-अलग धारणाओं पर आधारित है :

1. वास्तविक व द्धि दर (Actual Growth Rate)—वास्तविक व द्धि दर को G द्वारा प्रकट किया गया है जो बचत अनुपात (saving ratio) तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात (capital output ratio) द्वारा निर्धारित होती है :

$$GV = s$$

G = उत्पादन व द्धि की दर $\left(\frac{\Delta Y}{Y}\right)$

$\left(\frac{\Delta S}{Y}\right) > \alpha\sigma$

V = पूँजी उत्पादन अनुपात (Capital output Ratio) का मूल्य जो $\frac{1}{\Delta Y}$ के बराबर होता है। निवेश (I) पूँजी की मात्रा को व्यक्त करता है।

s = औसत बचत प्रव त्ति ~

इन अनुपातों को समीकरण (1) में प्रतिस्थापित करते हुए :

$$\frac{\Delta Y}{Y} \times \frac{1}{\Delta Y} = \frac{S}{Y}$$

or = or $I = S$

इस समीकरण के अनुसार वास्तविक बचत (ex-post Savings) हमेशा वास्तविक निवेश (ex-port Investment) के समान होती है।

2. सनतुलित विकास दर (The Warranted Rate of Growth)–यह वह विकास दर होती है जिस पर उत्पादक उत्पादन में उतनी ही व द्धि करते हैं जितनी माँग में व द्धि होती है। यह वह विकास दर है जिस पर सभी साधनों को रोजगार प्राप्त रहता है तथा अर्थव्यवस्था सन्तुलन में रहती है। उत्पादक में इस व द्धि को बनाये रखने के प्रयास करते हैं तथा लाभ कमाते हैं। यह समीकरण (2) द्वारा प्रकट की गई हैं :

$$G_w V_r = s \qquad .....(2)$$

Gw सन्तुलित व द्धि दर या पूर्ण क्षमता व द्धि (Warranted Rate of Growth) वह दर होती है जो उद्यमियों द्वारा किये गये निवेश से उत्पन्न उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग करती है, तथा इस कारण उद्यमी सन्तुष्ट रहते हैं। सन्तुलित व द्धि दर (warranted growth rate) को कायम रखने के लिए जो पूँजी चाहिए* (Capital Requirement or V_r) उसका मूल्य G or को required capital output ratio (V_r) से गुणा करके प्राप्त किया जा सकता है। जो कुल पूँजी चाहिए (C_r) वह होती है तथा s के बराबर होती है।

s औसत बचत प्रकृति है जैसा हमने समीकरण (2) में देखा है। अब स्पष्ट है कि यदि हम चाहते हैं कि अर्थव्यवस्था में G_w दर से व द्धि होती रहे तो आय प्रतिवर्ष $\frac{s}{V_r}$ की दर से अवश्य बढ़े :

$$Gw = \frac{s}{V_r}$$

यदि अर्थव्यवस्था $\frac{s}{V_r}$ पर या सन्तुलित दर (G_w) पर व द्धि करती जाती है तो अर्थव्यवस्था का पूँजी स्टॉक पूर्णतः प्रयोग हो सकेगा तथा उत्पादित माल बिक सकेगा। इसलिए निवेशक निवेश की यह दर बनाये रखेंगे। इस प्रकार G_w विकास की एक स्वयं सम्पन्न (selp-sustaining) विकास दर है। जिस पर अर्थव्यवस्था सन्तुलन के पथ पर अग्रसर होती रहती है।

दीर्घकालीन असन्तुलन के अंग
(Factors of Long-run Disequilibrium)

अर्थव्यवस्था में सतत् व द्धि (steady growth) के लिए आवश्यक है कि इसकी वास्तविक व द्धि की दर G हमेशा सन्तुलित व द्धि की दर G_w के समान रहे। यह तभी हो सकता है जब वास्तविक पूँजी स्टॉक (V) वांछित पूँजी स्टॉक (V_r) के समान रहे। यदि किसी समय G तथा G_w एक दूसरे से भिन्न या असमान हैं तो अर्थव्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न हो जायेगा। उदाहरणतः

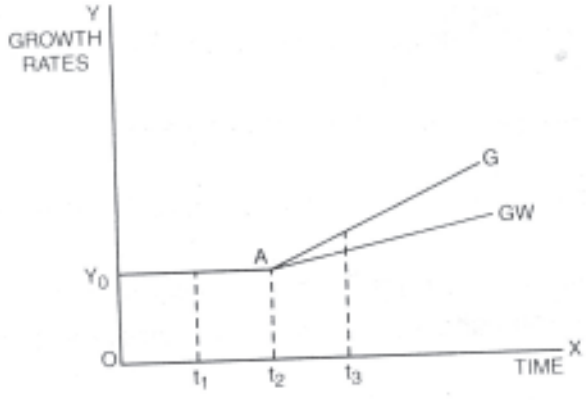

चित्र 1

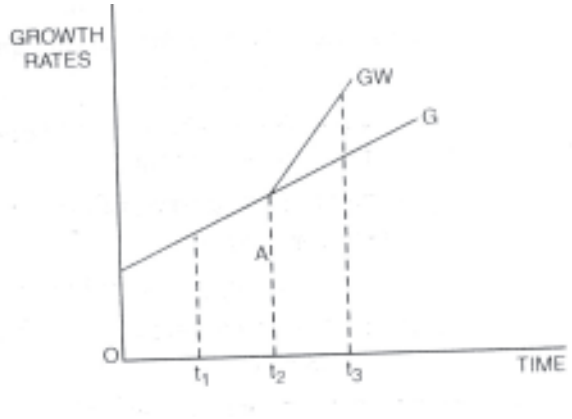

चित्र 2

यदि $G > G_w$ है तो अर्थव्यवस्था में उत्पादन साधनों व वस्तुओं की कमी उत्पन्न हो जायेगी तथा दीर्घकालीन मुद्रास्फीति स्थापित हो जायेगी। इस कारण यह होगा कि आय उत्पादन क्षमता से अधिक बढ़ रही होती है जो मुद्रास्फीति को उत्पन्न करती है। इससे पूँजीगत पदार्थों की कमी भी उत्पन्न हो जायेगी अर्थात् $V < V_r$ हो जाते हैं। इसलि वांछित निवेश बचत से अधिक होगा

जो मुद्रास्फीति में व द्धि करता जायेगा। यह अवस्था केन्ज़ की पूर्ण रोज़गार से अधिक उत्पादन करने वाली जैसी अवस्था है। यह परिस्थिति चित्र 1 में दर्शाई गई है :

इसके विपरीत चित्र 2 में $G_w > G$ दर्शाई गई है जिसमें $V > V_r$ होगी। ऐसी परिस्थिति में दीर्घकालीन मन्दी उत्पन्न हो जायेगी क्योंकि वास्तविक आय (G) उस आय की तुलना में जिसको उत्पादन क्षमता उत्पन्न कर सकती है से काफी धीरे बढ़ती है। इस अवस्था में वास्तविक विकास दर कम होने के कारण साधन बेरोजगार होते हैं। इसलिए वास्तविक पूँजी स्टॉक (V) वांछित पूँजी स्टॉक (V_r) से अधिक ($V > V_r$) है जैसा चित्र 2 में t_3 समय बिन्दु पर दर्शाया गया है। इस कारा निवेशक निवेश कम करना चाहेंगे। अर्थात् वांछित निवेश (ex-ante investment) बचत से कम होगा जिससे कुल माँग पूर्ति से कम हो जायेगी तथा दीर्घकालीन मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हैरड व्यक्त करता है कि यदि G_w कभी G से अलग हो जाती है तो यह तो यह आगे और दूर होती जाती है। जब ये एक बार एक दूसरे से विचलित हो जाती हो जाती हैं तो ऐसा कोई तरीका मॉडल में नहीं है जिससे ये दोबारा समान हो सकें। इसलिए हैरड ने एक तीसरी धारणा, जिसकों आर्थिक व द्धि की प्राकृतिक व द्धि दर (Natural Rate of Growth) कहा गया, का विकास किया।

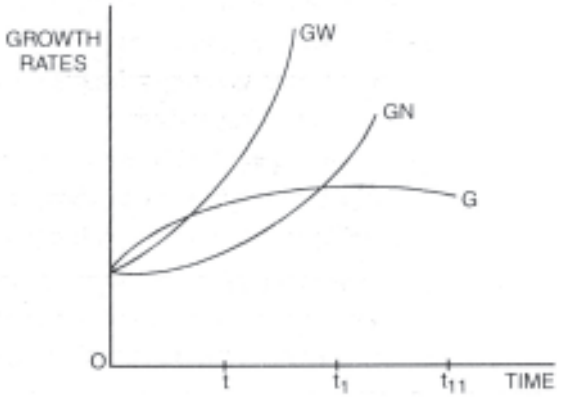

चित्र 3

3. प्राकृतिक व द्धि की दर (The Natural Rate of Growth)

प्राकृतिक व द्धि की दर वह दर है जिसको जनसंख्या व द्धि तथा तकनीकी विकास निर्धारित करते हैं। अन्य शब्दों में यह प्राकृतिक व द्धि की दर जनसंख्या, प्राकृतिक साधनों तथा पूँजीगत पदार्थों की व द्धि दर पर निर्भर करती है। अतः प्राकृतिक व द्धि की दर पूर्ण रोज़गार व द्धि की दर होती है।

G, G_w तथा G_n सभी पूर्ण रोज़गार की अवस्था में ये तीनों बराबर होती हैं। परन्तु इन तीनों में सन्तुलन तलवार की धार पर चलने के समान होता है। यदि तीनों में किसी समय विचलन हो जाता है तो अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन मन्दी या मुद्रास्फीति उत्पन्न हो जाती है। यदि $G_w > G_n$ है तो अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन मन्दी उत्पन्न हो जायेगी। इस परिस्थिति में Gw हमेशा G से भी अधिक होगा क्योंकि वास्तविक व द्धि की दर (G) भी प्राकृतिक व द्धि के आस पास होती है। जैसा कि निम्न Fig. 3 में दर्शाया गया है। इस परिस्थिति में $V > V_r$ होगी क्योंकि $G_w > G_n$ होने से श्रमिकों की कमी होगी श्रमिकों की कमी उत्पादन में व द्धि की दर तथा स्तर को G_w से कम स्तर पर रखेगा जिससे मशीनें तथा अन्य पूँजीगत पदार्थ बेकार हो जाते है। क्योंकि माँग की कमी उत्पन्न हो जाती है। इससे और अधिक मंदी उत्पन्न होती है। ऐसी परिस्थिति में बचत कम होकर शून्य पर पहुँच जाती है।

जाँच करने से ज्ञात होता है कि हैरड का G_w डोमर के $\alpha\sigma$ के समान है।

सीमाएँ (Limitations)

कुछ महत्त्वपूर्ण पूर्वकल्पनाओं के होते हुए ये मॉडल अव्यवहारिक तथा वास्तविक बन गये हैं :

(1) इन सिद्धान्तों में बचत प्रव त्ति तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात के स्थिर माना है जो इनको अवास्तविक बना देता है।

(2) इन मॉडलों में सामान्य कीमत स्तर को स्थिर माना है जो अवास्तविक है। इतना ही नहीं कीमत स्तर में परिवर्तन उत्पादन आदि को भी प्रभावित करता है ऐसा अनेक अर्थशास्त्री मानते हैं।

(3) श्रम तथा पूँजी को एक स्थिर अनुपात में प्रयोग किया जाता है यह अव्यवहारिक पूर्वकल्पना है। वास्तव में श्रम के स्थान पर पूँजी का प्रतिस्थापन तकनीकी प्रगति के साथ बढ़ता रहता है।

(4) इन सिद्धान्तों में आर्थिक विकास के लिए सरकार की भूमिका को नहीं माना गया है। परन्तु आजकल सरकारें आर्थिक व द्धि में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं।

(5) इन मॉडलों में ब्याज की दर को स्थिर माना गया है। परन्तु ब्याज की दर में परिवर्तन होता रहता है जो निवेश को परिवर्तित कर देता है।

(6) इन मॉडल की यह भी एक सीमा है कि इनमें उद्यमियों की आर्थिक व द्धि में भूमिका की अवहेलना की गई है।

(7) इन मॉडलों में उपभोग तथा पूँजीगत पदार्थों में कोई अन्तर स्थापित नहीं किया गया है। इसको भी एक महत्त्वपूर्ण सीमा माना गया है।

इन अनेक सीमाओं के होते हुए हैरड तथा डोमर मॉडलों को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि ये केन्ज़ के सिद्धान्त को गत्यात्मक रूप प्रदान करते हैं।

विकासशील देशों में हैरड-डोमर व द्धि मॉडल की प्रासंगिकता (Relevance of Harrod-Dommar Growth Model for Developing Countries)

विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को विकास के रास्तें में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उनकी आर्थिक व द्धि दर को कम कर देती हैं। हैरड तथा डोमर ने केन्ज़ीयन ढांचे को उपयोग करके सतत् व द्धि (Steady Growth) की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। इनके सतत् व द्धि सम्बन्धी मॉडल विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की समस्याएं के समाधान में कहां तक प्रासांगिक हैं इसका विश्लेषण निम्न प्रकार से किया गया है :

(1) ये मॉडल आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु ऐसा मानना वास्तविकता को ठुकराना है। अल्पविकसित देशों में सरकारें आर्थिक विकास में काफी सहयोगी तथा प्रभावी सिद्ध हुई हैं।

(2) हैरड-डोमर मॉडल प्रारम्भ में ही पूर्ण रोज़गार की स्थिति मान कर चलता है। परन्तु यह गलत तथा काल्पनिक है। इन देशों में छिपी बेरोज़गारी फैली रहती है। पूँजी की विशेष कमी रहती है। जबकि विकसित देशों में जैसा केन्ज़ ने माना है पूँजी की अधिकता होती है।

(3) ये मॉडल मानते हैं कि सीमानत बचत प्रव त्ति तथा औसत बचत प्रव त्ति एक दूसरे के समान होती है परन्तु केन्ज़ स्वयं औसत बचत प्रव त्ति (APS) को सीमान्त बचत प्रव त्ति (MPS) से कम (APS < MPS) मानता है। अल्प-विकसित देशों में समान के गिने चुने लोग ही बचत करते हैं तथा हमेशा उनकी MPS > APS होती है।

(4) ये मॉडल सिथर पूँजी-उत्पादन अनुपात पर आधारित हैं। परन्तु विकासशील देशों में विभिन्न अभावों, बाज़ार अपूर्णताओं तथा सीमाओं के कारण यहाँ पूँजी उत्पादन अनुपात या पूँजी की उत्पादकता में बहुत उतार-चढ़ाव आते हैं। अतः इसको स्थिर मान कर विकासशील देशों की गई कोई भी भविष्यवाणी यही नहीं हो सकती।

(5) विकासशील देशों में आर्थिक व द्धि संस्थागत जैसे बैंक, शिक्षण संस्थान आदि तत्त्वों संरचनात्मक तत्वों तथा संरचनात्मक तत्वों पर निर्भर करती है। परन्तु हैरड-डोमर ने इन सभी तत्वों की अवहेलना की है।

(6) ऐसा प्रतीत होता है कि ये मॉडल व्यापार चक्रों से बचने के लिए सतत् व द्धि को प्राप्त करने का प्रयास है। परन्तु विकासशील देशों में व्यापार चक्र आदि की समस्या न हो कर आर्थिक विकास करने की होती है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि यद्यपि ये मॉडल सतत् व द्धि का अनूठा विश्लेषण करते हैं परन्तु विकासशील देशों की समस्याओं के समाधान में प्रासांगिक प्रतीत नहीं होते हैं।

REVIEW QUESTIONS

1. Explain Harrod-Domar model of economic Growth.
2. Does the high degree of instability in the Harrod's growth model lie ints basic assumptions.
3. Give the similarities and differences between Domar and Harrod Models of growth.

●●●

अध्याय-25

मुद्रा सहित तथा मुद्रा रहित नव-परम्परावादी माडॅल (Neo-Classical Model With Money And Without Money)

नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक अमेरिका अर्थशास्त्री राबर्ट सोलो (Robewt Solow)1 तथा इंग्लैंड के प्रो. जे. ई. मीड (J.E. Meade)2 हैं। आर्थिक व द्धि का यह सिद्धान्त 1950 वें तथा 60 वें दशक में विकसित किया गया। हैरड-डोमर मॉडल की तरह ही यह सिद्धान्त आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वों की व्याख्या करता है। य विभिन्न राष्ट्रों के विकास की दरों ताि उनकी प्रति व्यक्ति आयों में अन्तर भी स्पष्ट करता है। यह सिद्धान्त हैरड-डोमर स्द्धिान्त से तीन तथ्यों मे भिन्न हैः-

(a) हैरड-डोमर का सिद्धान्त श्रम तथा पूँजी से स्थिर अनुपात के उतपादन फलन (Fixed Proportion Production Function) को मानता है। इसलिए यह श्रम तथा पूँजी के बीच प्रतिस्थापन्नता नही मानता। जबकि नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त परिवर्तनशील उत्पादन फलन (Variable Production Function) को मानता है, इसलिए यह श्रम व पूँजी में मध्य प्रतिस्थापन्नता को स्वीकारता है। तकनीकी प्रगति के साथ पूँजी श्रम को प्रतिसाापित करती रहती है।

(b) नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त बचत तथा निवेश में हमेशा समानता मानता है तथा भी व्यक्त करता है कि जब कभी इनमें असमानता होती है तो वह कीमत स्तर में परिवर्तन के द्वारा तत्काल पुनः समान हो जाते हैं। इसके विपरीत हैरड-डोमर इनको हमेशा समान नही मानता है।

(c) हैरड-डोमर मॉडल इस बात की व्याख्या करता है कि जब निवेश द्वारा माँग में व द्धि उत्पादन क्षमता में व द्धि की तुलना में कम होती है तो उसे पूरा करने के लिए निवेश में कितनी व द्धि की जाए। जबकि नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त ने इस तथ्य की ओर ध्यान नही दिया। क्योकि वे बचत ताि निवेश को सदा समान मानते थे।

नव-प्रतिठित सिद्धान्त का कथन है कि बचत तथा निवेश की दर को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार आर्थिक विकास की दर तीव्र करने के लिए इस सिद्धान्त ने पूर्ति पक्ष के कार्यशील तत्वों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है सोलो (Solow) तथा मीड (Meade) द्वारा आर्थिक व द्धि के पूर्ति पक्ष की ओर ध्यान दिलवाने के कारण ही उनके सिद्धान्त को नव-प्र तिष्ठित व द्धि सिद्धान्त (Neo-classical Theory of Growth) की संज्ञा दी गई है। इस सिद्धान्त में बचत तथा निवेश के साथ तकनीकी प्रगति को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है तकनीकी प्रगति से सभी उत्पादकता (total factor productivity) बढ़ जाती है नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त मानता है कि उत्पादन में घटता प्रतिफल (Diminishing Returns in Production) आर्थिक प्रगति माँग के तत्वों का महत्व देता है, जबकि नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ति के तत्वों का अधिक महत्त्व देता है।

मुद्रा रहित नव-प्रतिष्ठित विकास मॉडल

(The Neo-Classical Growth Model without Money)

क्या मुद्रा अर्थव्यवस्था को सन्तुलित विकास पथ (equilibrium growth path) से विचलित कर सकती है ? अन्य शब्दों मे क्या मौद्रिक नीति (Monetary Policy) पूँजी-श्रम अनुपात (Capital Labour Ratio) तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात (Capital-output Ratio) मं परिवर्तन कर सकती है ? यदि ऐसा कर सकती है तो मुद्रा तटस्थ नही है तथा यदि नही कर सकती है तो मुद्रा तटस्थ (Neutral) है। यह हम इसलिए देखना चाहते हैं क्योकि नव-प्रतिष्ठित मॉडल में पूँजी-उत्पादन अनुपात दोनो में परिवर्तन अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास पथ की स्थिरता क लिए आधारभूत है चाहें अर्थव्यवस्था मुद्रा सहित है या मुद्रा रहित है।

पहले मुद्रा रहित अर्थव्यवस्था में हम यह जाँच करेंगे कि अर्थव्यवस्था के सन्तुलन के लिए पूँजी श्रम अनुपात व पूँजी-उत्पादन अनुपात कैसे निश्चित होते है। इस मॉडल का प्रारम्भ हैरड-डोमर मॉडल को ध्यान में रख कर किया गया है जहां पूँजी-उत्पादन अनुपात (v) को स्थिर माना गया है। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था का सन्तुलित पथ काफी अस्थिर हो जाता है।

हैरड-डोमर मॉडल के अनुसार तकनीकी विकास स्थिर रहने पर श्रम की व द्धि पर (n') अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता की व द्धि दर को व्यक्त करता है। प्रारम्भ में यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर है तथा उत्पादन-श्रम अनुपात को $\frac{Y}{n}$ से दर्शाया गया है तब अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन (Y)n' दर से अवश्य बढ़े ताकि रोजगार सन्तुलन स्तर कायम रखा जा सके। n' को प्राक तिक विकास दर (Natural Rate of Growth) कहा गया जिसको जो निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है तथा यह श्रम बाजार मे सन्तुलन को व्यक्त करती है:

$$\frac{Y}{n} = n'$$

Y = कुल उत्पादन, n = कुल श्रम या जनसंख्या, n' = श्रम व द्धि की दर

वस्तुतः हैरड-डोमर मॉडल का सम्बन्ध मुख्यतः प्राक तिक विकास दर से बल्कि उद्यमियों की सन्तुष्टि कायम रखते हुए वस्तु-बाजार में सन्तुलित विकास दर (Warranted Growth Rate) से था। अर्थात Warranted Growth Rate वह विकास दर है जो प्रत्येक समय वस्तु बाजार में सन्तुलन बनाये रखता है (जहां हमेशा वस्तुओं की माँग व पूर्ति बराबर रहते हैं) इसके लिए प्रत्येक समय आयोजित बचत (intended saving) तथा आयोजित निवेश (intended investment) एक दूसरे के समान रहते हैं :

(Intended Saving at time t) St = It (intended investmetn at time t) ..... (i)

हैरड-डोमर मानता है कि आयोजित बचत आय का स्थिर ( ) होता है अर्थात :

$S_t =$ Y_t ..... (ii)

where : S_t = Saving at time t,

= APS = MPS, जो स्थिर माने गये हैं Yt = income at time t.

निवेश के सम्बन्ध में कल्पना की गई है कि आयोजित निवेश आय में परिवर्तन का एक स्थिर अनुपात है। इसलिए आयोजित निवेश (intended or planned investment) को एक सरल त्वरक (Accelerator) से दर्शाया जा सकता है :

..... (iii)

$\overline{Y_t}$ = Present equilibrium income

V = Acce;eratpr (Capital-output Ratio) = पूँजी उत्पादन अनुपात

$\overline{Y_{t-1}}$ = Past equilibrium income

समीकरण (2) और (3) को समीकरण (1) में प्रतिस्थापित करते हुए वस्तु बाजार सन्तुलन (Goods market edquilibrium) को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है :

$$\hat{S}\, Y_t = V\left(\overline{Y_t} - \overline{Y_{t-1}}\right)$$

or $\frac{\hat{S}}{V} = \frac{\overline{Y_t} - \overline{Y_{t-1}}}{Y}$ ..... (iv)

समीकरण (4) के दाहिनी ओर से वास्तविक आय व द्धि दर $\left(\frac{\Delta Y}{Y}\right)$ का ज्ञान होता है तथा यह समीकरण अपने बाई ओर APS का त्वरक के मूल्य Accelerator Coefficient (V) अनुपात को प्रकट करता है इस समीकरण से ज्ञात होता है कि आय में व द्धि दर $\left(\frac{\Delta Y}{Y}\right)$ हमेशा $\frac{\hat{S}}{V}$ के समान होनी चाहिए ताकि वस्तु-बाजार में हमेशा सन्तुलन कायम रखा जा सके। इसी को Warranted Growth Rate कहा गया है।

मान लो प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर है, और Warranted Growth Rate किसी समय natural growth rate के बराबर है। अर्थात् :

$$\frac{\hat{S}}{V} = n' \quad \text{..... (v)}$$

यदि अर्थव्यवस्था समीकरण (5) द्वारा व्यक्त विकास पथ पर अग्रसर होती रहती है तो वस्तु बाजार तथा श्रम-बाजार दोनो हमेशा सन्तुलन में रहते हैं। इसके लिए S, V तथा n' के मूल्य वही होने चाहिए जो समीकरण ;५द्ध को सन्तुष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त कोई अन्य सन्तुलन व द्धि दर का पथ अस्थिर सन्तुलित व द्धि दर का पथ कहलाएगा। जैसे यदि किसी कारण अचानक APS (S) गिर जाती है तो हो जायेगा। इसके परिणामस्वरूप वस्तु बाजार में असन्तुलन होगा, क्योकि रोजगार का स्तर गिरेगा। जिससे आय कम दर से बढेगी तथा श्रम बाजार में श्रमिको की माँग गिरेगी तथा बाजार में भी सन्तुलन नही रह सकेगा।

$\left(\frac{S}{V}\right)$

क्योकि S,V तथा n' सभी बाहर से निर्धारित (exogenously determined) हैं, इसलिए हैरड-डोमर मॉडल में ऐसी कोई आन्तरिक शक्तियां क्रियान्वित नही होतीं जो समीकरण (5) की समानता को कायम रख सकें। फिर समीकरण (5) एक स्थिर सन्तुलित आर्थिक व द्धि का पथ बन सकेगा।

हैरड-डोमर मॉडल v को स्थिर मानता है। इसके विपरीत नव-प्रतिष्ठित मॉडल v को आन्तरिक चर (endogenous variable) बना लेते हैं जिसको मॉडल के अन्दर हो परिवर्तित किया जा सकता है। इसके बाद समीकरण (5) स्थिर सन्तुलित विकास दर पथ का कार्य कर सकेगा। यह निम्न प्रकार से किया गया है :

नव-प्रतिष्ठित मॉडल में V एक पूँजी-उत्पादन अनुपात को दर्शाता है। यदि V स्थिर हो तो वर्तमान उत्पादन (V_t) को उत्पादित करने के लिए अर्थव्यवस्था को कितना पूँजी स्टॉक (Capital Stock) चाहिए ? यह वस्तुतः V का मूल्य है जिसके द्वारा पूँजी-उत्पादन अनुपात ज्ञात किया गया है : $V = \frac{K_t}{Y_t}$ इसको निम्न समीकरण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है :

$$K_t = VY_t$$

K_t = Present Capital Stock ..... (vi)

नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार आयोजित निवेश (Planned Investment) को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि यह वर्तमान समय *t* तथा भूतकाल समय *t*-1 में जो पूँजी की जरूरत होती है (Required Capital Stock) इनके अन्तर के रूप में हो सके अर्थात्:

$$I_t = K_t - K_{t-1} \quad \text{..... (vii)}$$

समीकरण (7) को समीकरण (6) के अनुसार संशोधित करते हुए जहां $Kt = VYt$ है तथा तर्क के आधार पर $Kt\text{-}1 = VYt\text{-}1$ होगा। अत :

$$I_t = VY_t - VY_{t-1}$$

$$It = V(Y_t - Y_{t-1}) \quad \text{..... (viii)}$$

अब हम एक ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं जिससे मुद्रा रहित नव-प्रतिष्ठित मॉडल की जाँच कर सकते हैं।

यह मॉडल एक ऐसी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है जहां की माँग व पूँर्ति या किसी अन्य वित्तीय साधन (बांड आदि) की माँग व पूर्ति विद्यमान नही है। सारे सौदे (transactions) वस्तु विनिमय प्रणाली से किये जाते हैं। यह माना गया है कि अर्थव्यवस्था में भौतिक पूँजीगत पदार्थ (Physical Capital Assets) ही एक मात्र साधन है जिसको K से दर्शाया गया है। अब इस मॉडल का विश्लेषण चित्र. 1 की सहायता से किया सकता है :

चित्र 1 के OX अक्ष प पूँजी-श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{n}\right)$ तथा OY अक्ष पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का उत्पादन $\left(\frac{Y}{n}\right)$ प्रति श्रमिक वास्तविक निवेश $\left(\frac{I}{n}\right)$ तथा प्रतिव्यक्ति बचत $\left(\frac{S}{n}\right)$ मापी गई हैं। चित्र में $Y, \frac{K}{n}$ का फलन है जो $\left(\frac{K}{n}\right)$ तथा $\left(\frac{Y}{n}\right)$ के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करता है अर्थात् :

$$\frac{Y}{n} = f\left(\frac{K}{n}\right) \quad \text{..... (ix)}$$

अर्थात $Y = f(K, n)$ है।

क्योकि यह मॉडल उत्पादन मे घटते प्रतिफल (Diminhing Returns) को मानता है, इसलिए पूँजी-श्रम अनुपात बढ़ने या प्रति श्रमिक पूँजी बढने के कारण उत्पादन घटती दर पर बढ़ता है। जिसको OY अक्ष पर मापा गया है। चित्र में OS वक्र प्रति व्यक्ति आयोजित बचत को दर्शाता है इस मॉडल में कल्पना की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति की APC स्थिर (C) रहती है, इसलिए प्रति श्रमिक बचत भी प्रति व्यक्ति आय $\left(\frac{Y}{n}\right)$ का स्थिर अनुपात है जिसको OS वक्र को निम्न समीकरण 10 से दर्शाया गया है :

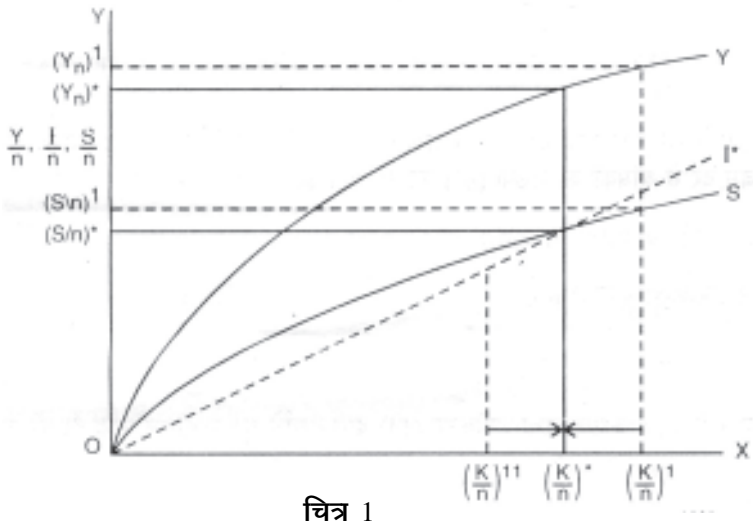

चित्र 1

$$\frac{S}{n} = \hat{S}\left(\frac{\overline{Y}}{n}\right) = 1 - \hat{C}\left(\frac{\overline{Y}}{n}\right) \quad \text{..... (x)}$$

ऊँची पूँजी श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{n}\right)$ पर प्रति श्रमिक बचत या बचत-श्रम अनुपात $\left(\frac{S}{n}\right)$ भी अधिक होगा क्योंकि ऊँची $\frac{K}{n}$ पर $\frac{Y}{n}$ भी ऊँचा होगा तथा $\frac{S}{n}$ हमेशा $\frac{Y}{n}$ पर निर्भर करती है। इसलिए समीकरण (10) में $\left(\frac{\overline{Y}}{n}\right)$ के स्थान पर $\left(\frac{K}{n}\right)$ लिखा जा सकता है। इसको समीकरण (11) में दर्शाया गया है:

$$\frac{S}{n} = \hat{S}\left(\frac{\overline{Y}}{n}\right) \quad \text{..... (xi)}$$

इस मॉडल में यह कल्पना की गई है कि प्रत्येक समय बिन्दु परर वस्तु बाजार सन्तुलन में रहता है, इसलिए आयोजित बचत तथा निवेश हमेशा एक दूसरे के समान रहते हैं। अर्थात् :

$$\frac{S}{n} = \frac{I}{n} \quad \text{..... (xii)}$$

इसका अभिप्राय यह है कि OS वक्र आयोजित बचत तथा आयोजित निवेश को दर्शाता है क्योकि कोई दूसरा वित्तीय साधन नही है जिसमें अपनी बचत को निवेश करते हों। अर्थात बचत को मशीनों आदि भौतिक साधनों में ही निवेश यिका जाता है। इसलिए OS वक्र पर आयोजित बचत तथा निवेश समान है।

चित्र 1 में O1 वक्र उस प्रतिव्यक्ति निवेश को दर्शाता है जो पूँजी-श्रम अनुपात (Capital Labour Ratio or) को स्थिर रखने के लिए जरूरी होता है यह वक्र ऊपर की ओर इसलिए उठता हुआ है क्योकि श्रमिक की संख्या (Labour Force) एक निश्चित स्थिर दर से बढ़ रही (constant n') होती है इसलिए पूँजी भण्डार (K) भी n' दर से अवश्य बढ़े ताकि पूँजी श्रम अनुपात (Capital-Labour Ratio) को स्थिर रखा जा सके। क्योकि निवेश की मात्रा पूँजी संग्रह (Capital Stock) में व द्धि करती है। इसलिए प्रतिश्रमिक जो निवेश की मात्रा (निवेश-श्रमिक अनुपात) चाहिए उसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$\left(\frac{I}{n}\right)^{*} = \left(\frac{K}{n}.n'\right) \quad \text{..... (xiii)}$$

$\left(\frac{I}{n}\right)^{*}$ = Required Investment

$\left(\frac{I}{n}\right)^{*}$ = उतना ही ऊँचा जितनी पूँजी-श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{n}\right\}$ है।

अब हम अर्थव्यवस्था के सन्तुलित व द्धि दर का विश्लेषण कर सकते हैं। सन्तुलित व द्धि दर वह दर होती है जिस पर Y, S तथा K उसी दर से बढ़ते हों जिस दर से श्रमिकों की संख्या (n') बढ़ रही है। इसलिए इस सभी चरों का प्रति व्यक्ति मूल्य स्थिर रहता है।

चित्र.1 में ये दरें (Rates), $\left(\frac{K}{n}\right)^*$ के माध्यम से जाने जा सकते हैं।

इस स्थिति से निम्न समीकरण प्राप्त होता है :

$$\frac{S}{n}\left(\frac{I}{n}\right)^* = \left(\frac{K}{n}\right)^* = n' \qquad \text{..... (xiv)}$$

अब हम कह सकते हैं कि यदि अर्थव्यवस्था समीकरण (14) द्वारा दर्शाये गये सन्तुलित व द्धि दर की शर्त को सन्तुष्ट करती है तो यह इससे विचलित होने की कोई प्रव त्ति नही रखती है। यदि यह विचलित हो भी जाती है तो सन्तुलन को पुनः प्राप्त करने की प्रव त्ति रखती है।

कल्पना करें कि ये चर चित्र 1 में तथा $\left(\frac{K}{n}\right)^1$ स्तर पर हैं। अब $\frac{S}{n} < \left(\frac{I}{n}\right)^*$ हैं तो प्रति श्रमिक निवेश $\frac{I}{n}$ जो इस मॉडल में हमेशा बचत के बराबर माना गया है वह $\frac{S}{n}$ के बराबर ही होगा। इसलिए वास्तविक निवेश की दर $\left(\frac{I}{n}\right)$ उस निवेश की दर से कम है जो $\left(\frac{K}{n}\right)$, पूँजी-श्रम अनुपात को बनाये रखने के लिए जरूरी है अर्थात $\left(\frac{I}{n}\right)^*$ अतः $\left(\frac{K}{n}\right)^1$ पर $\frac{I}{N} < \left(\frac{I}{N}\right)^*$ होने का कारण पूंजी-श्रम अनुपात गिरेगा तथा गिरता रहेगा जब तक यह $\left(\frac{K^*}{n}\right)^*$ को प्राप्त नही कर जाता है इस प्रका हम पुनः $\left(\frac{K}{n}\right)^*$ को स्वतः प्राप्त कर जाते हैं।

ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि $\frac{K}{n}$ में परिवर्तन से पूँजी-उत्पादन (Capital-output Ratio or V) में परिवर्तन होता है अतः हम कह सकते है कि V में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था पुनः सन्तुलन प्राप्त करती है।

मौद्रिक अर्थव्यवस्था में नव-प्रतिष्ठित आर्थि-व द्धि मॉडल
(A Neo-Classical Growth Model with Money)

मुद्रा रहित नव-प्रतिष्ठित विकास मॉडल (Neo-Classical Growth Model without money) को एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था (monetary economy) में भी लागू किया जा सकता है। मुद्रा रहित मॉडल (Non monetary model) में व्यक्ति भौतिक पूँजी (Physical Capital) प्राप्त करके ही बचत का प्रयोग कर सकते थे। परन्तु एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था में बाहय

साधन मुद्रा को प्राप्त करके बचत का प्रयोग किया जा सकता है। इस मॉडल में यह परिकल्पना की गई है कि बांड (Bonds) विद्यमान नही हैं।

मुद्रा बाजार (Money Market)

यह कल्पना की गई है कि में मुद्रा बाजार (money market) को शामिल करने से मुद्रा के वास्तविक शेष की प्रति व्यक्ति माँग $\left(\frac{m^d}{Pn}\right)$ प्रति व्यक्ति उत्पादन $\left(\frac{Y}{n}\right)$ पर निर्भर करती है। यह मुद्रा की क्रय-विक्रय सम्बन्धी माँग (transaction demand for money) को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त मुद्रा की यह माँग आशंसित मुद्रा स्फीति (π^e) तथा भौतिक पूँजी से प्राप्त आय की दर (r^k) पर निर्भर करती है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति वास्तविक मुद्रा शेष के माँग फलन को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

$$\frac{m^d}{Pn} = f\left(\frac{y}{n'}\pi^e, r^k\right) \qquad \text{..... (i)}$$

m^d = demand for nominal balances

P = Price level, n = total population

इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा रही है परन्तु इससे पहले हम केन्ज़ीयन प्रति व्यक्ति मुद्रा की माँग को निम्न प्रकार से व्यक्त करते है :

$$\frac{m^d}{Pn} = f\left(\frac{Y}{n'}r^b\right)$$

..... (ii)

r^b = returns ob bonds

समीकरण (2) में r^b लोगो के speculative behavious को दर्शाता है परन्तु इससे समीकरण (1) इस बात में भिन्न है कि उसमें r^b के स्थान दर r^k रखा गया है जो यह दर्शाता है कि assets, जो मुद्रा का विकल्प है, वह इस मॉडल में भौतिक पूँजी (physical capital) का स्थान रखता है। इसकी भिन्नता इस बात से भी स्पष्ट है कि समीकरण (1) में π^e भी सम्मिलित है। यह इसलिए है क्योंकि केन्ज़ीयन मॉडल में यह कल्पना की गई है कि मुद्रा-स्फीति या मन्दी की दर शून्य है। लेकिन Neo-Classical model में कीमतो को स्थिर नही माना गया है। इसलिए कीमतों के प्रभाव को दर्शाने के लिए इसको equation (1) में शामिल किया गया है। यदि re धनात्मक (positive) है तो मुद्रा के वास्तविक शेष से आय की अनुमानित दर (expected rate of returns) नकारात्मक होगी अर्थात स्टॉक का मूल्य गिर जायेगा बढ़ती हुई कीमतें मुद्रा शेष (money balances) के वास्तविक मूल्य को कम कर देती है। इसलिए ऊंची अनुमानित स्फीति दर (higher expected rate of inflation) पर $\frac{m^d}{Pn}$ अर्थात प्रति व्यक्ति वास्तविक मुद्रा की माँग कम होगी। यदि अर्थव्यवस्था में rk (rate of returns on capital)

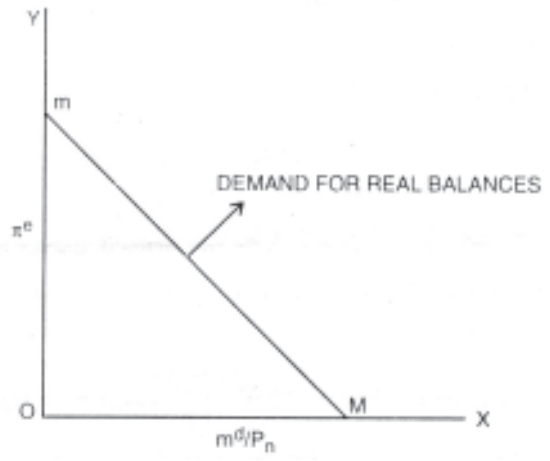

चित्र 2

और $\frac{Y}{n}$

दिया हुआ हो तो demand for real balances का π^e से नकारात्मक सम्बन्ध होगा जैसा कि निम्न चित्र 2 में यह माँग वक्र MM द्वारा दर्शाया गया है। वास्तविक मुद्रा की प्रति व्यक्ति माँग $\left(\frac{M^d}{Pn}\right)$ तथा भविष्य की आसंसित मुद्रास्फीति (π^e) में नकारात्मक सम्बन्ध होता है, क्योकि जब अनुमानित मुद्रा-स्फीति के भविष्य में बढने की आशा होगी तो लोग भी अधिक वस्तुएँ खरीदेगे तथा वास्तविक मुद्रा की माँग कम हो जायेगी आदि।

यदि भौतिक पूँजी की सीमांत उत्पादकता [marginal productivity of physical capital (r^k) बढ़ जाता है तो MM demand curve नीचे सरक जायेगा क्योंकि लोग भौतिक पूँजी अधिक खरीदेंगे तथा $\frac{M^d}{Pn}$ कम करेंगे। इसके विपरीत यदि प्रति व्यक्ति उत्पादन $\left(\frac{Y}{n}\right)$ बढ़ता है तो मुद्रा का मांग वक्र (Demand Curve) ऊपर की तरफ सरकेगा।

मुद्रा की कुल पूर्ति नकदी रूप m^s में एक बाहय तत्व है जो सरकार द्वारा निर्धारित होता है। सरकार ms को देश की आवश्यकताओं के अनुसार नई छापकर बढाती रहती है। प्रति समय मुद्रा के स्टॉक में परिवर्तन यदि $\dot{M}$ है तो मुद्रा में परिवर्तन

की दर होगी। यदि inflation की दर ( ) है तो हम real balances की दर को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं:

..... (iii)

$\dot{m}$ = Change in money supply

= Change in price level

= The rate of change in money supply

= rate of inflation

मौद्रिक बाजार में सन्तुलन की अवस्था में मुद्रा के वास्तविक शेष की प्रति व्यक्ति माँग किसी समय बिन्दु पर प्रति व्यक्ति वास्तविक मुद्रा शेष (real balances) की पूर्ति के बराबर होती हैं :

$$\frac{m^d}{Pn} = \frac{m^s}{Pn} \qquad \text{..... (iv)}$$

Neo-Classical Model में यह एक आधारभूत मान्यता है कि मुद्रा बाजार हमेशा सन्तुलन में होता है क्योकि कीमत स्तर मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन साथ-साथ ही बदलता रहता है। इसलिए दोनो समीकरण (3 व 4) में समानता निक्षित करता है।

इसलिए money market में सन्तुलन Price level adjustment के माध्यम से बनी रहती है। यदि nominal money supply rate, u से बढ़ रही है और प्रति व्यक्ति real balances की मांग $\left(\frac{M^d}{Pn}\right)$ स्थिर है अर्थात मुद्रा की मांग में परिवर्तन शून्य (0) है तो समीकरण (4) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता हैं :

(शून्य) $0 = \mu - \pi - n'$ .... (v)

.... (vi)

समीकरण (5) से स्पष्ट है कि मुद्रा में सन्तुलन इस बात से निर्धारित होता है कि rate of inflaton (r) हमेशा per capita norminal supply की व द्धि दर (u) के बराबर है। क्योंकि n' स्थिर रहता है, इसलिए इनका योग शून्य के बराबर होता है।

मुद्रा के वास्तविक शेष की माँग को ध्यान में रखते हुए यह पूछा जा सकता है कि $\frac{Y}{n'}r^k$ और π^e को कौन निर्धारित करता है जबकि ये तत्व स्वयं मुद्रा की माँग का निर्धारण करते हैं यह चित्र 1 से देखा जा सकता है जिसमें outpur per head $\left(\frac{Y}{n}\right)$ capital labour ratio $\left(\frac{K}{n}\right)$ द्वारा निर्धारित होता है इसी प्रकार r^k जो marginal product of capital है वह OY के slope द्वारा ज्ञात की जा सकती है, इसलिए $\frac{Y}{n}$ और r^k विशेष रूप से $\frac{K}{n}$ द्वारा निर्धारित होते है। इस प्रकार समीकरण 1 में मुद्रा के Demand function में इन चरों (variables) के स्थान पर $\frac{K}{n}$ को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

$\pi = \mu - n'$ $\left(\frac{M}{Pn}\right)$

इससे भी रोचक समस्या यह है कि expected rate of inflation (π^e) को कौन निर्धारित करता है। Neo Classical Growth model में यह कल्पना की गई है कि expected rate of inflation प्रति व्यक्ति नकद मुद्रा की पूर्ति (nominal money supply) की व द्धि के बराबर होता है जिसको निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया गया हैं :

$\pi^e = \mu - n'$ .... (vii)

इसलिए उपरोक्त तथ्यो के आधार पर मुद्रा के demand function को निम्न प्रकार से भी लिखा जा सकता है :

$\frac{m^d}{Pn} f\left(\frac{K}{n}, \mu - n'\right)$ .... (viii)

समीकरण (8) से यह प्रतीत होता है कि किसी दिये $\frac{K}{n}$ पर वास्तविक मुद्रा की माँग $\frac{m^d}{Pn}$ स्थिर होगी यदि money supply में per capita growth rate $(\mu - n')$ स्थिर रहती है।

बचत फलन (Saving Function)

Neo Classical Growth Model में मुद्रा बाजार की प्रक ति या स्वभाव जानने के बाद यह देखा जा सकता है कि इसमें बचत फलन

(Saving Function) भिन्न है। साधारण saving function का अध्ययन करते हुए यह कल्पना की गई है कि प्रति व्यक्ति नियोजित उपभोग प्रति व्यक्ति स्वायत आय (Per Capita Disposable Income) का एक स्थायी अनुपात ($\hat{C}$) है किसी समय में एक व्यक्ति की कुल स्वायत आय उस व्यक्ति द्वारा अर्जित आय (Y) जमा real balances के स्टॉक मं परिवर्तन के बराबर होती है। अर्थात कुल स्वायत आय (Total Disposable Income) $Y + \frac{\dot{M}}{P}$ के बराबर होगी। हम जानते है कि real balances के stock में परिवर्तन धन में परिवर्तन लाता है और इसलिए यह आय का एक भाग समझा जा सकता है। per Capita Consumption function को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है :

$$\frac{C}{n} = \hat{C}\left(Y + \frac{\dot{M}}{P}\right)\frac{1}{n} \qquad \text{..... (ix)}$$

समीकरण (3) का अध्ययन करते हुए हम $\frac{\dot{M}}{P}$ को शामिल कर सकते है जिससे Consumption Function प्राप्त होता है:

$$\hat{C}\left[\frac{Y}{n} + (\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn}\right] \qquad \text{..... (x)}$$

उपरोक्त समीकरण (10) में $\frac{\dot{M}}{P}$ के स्थान पर $(\mu - \pi)$ रख दिया गया है जो change in real money supply को बताता है।

इसको वास्तविक मुद्रा $\left(\frac{m^s}{Pn}\right)$ से गुणा दिया गया है ताकि आय मे हुए परिवर्तन का ज्ञान हो सकें। m^s को n से भाग देना प्रति व्यक्ति real balances में परिवर्तन के कारण जो आय परिवर्तित होती है उसको दर्शाता है। planned saving जिसको लोग उपभोग नही करने की योजना बनाते है उसको निम्न से प्रकट किया जा सकता है:-

$$\frac{S}{n} = \frac{Y}{n} - \hat{C}\left[\frac{Y}{n} + (\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn}\right] \qquad \text{..... (xi)}$$

Saving function प्राप्त करने की लिए

$$\frac{S}{n} = \frac{Y}{n} - \hat{C}\frac{Y}{n} - \hat{C}(\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn}$$

$$= \frac{S}{n}(1 - \hat{C}) - \hat{C}(\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn} = \hat{S}\frac{Y}{n} - \hat{C}(\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn} \quad \text{..... (xii)}$$

उपरोक्त समीकरण का निम्न प्रकार से भी लिखा जा सकता है :

$$\frac{S}{n} = \hat{S}\frac{Y}{n} - \hat{C}(\mu - \pi)\frac{m^s}{Pn} \quad \text{..... (xiii)}$$

क्योकि मुद्रा बाजार में हमेशा सन्तुलन की कल्पना की गई है इसलिए demand for real balances हमेशा supply of real balances के बराबर होगा। मुद्रा की माँग को ध्यान में रखते हुए बचत फलन को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है :
अर्थात्

$$\frac{S}{n} = \hat{S}\frac{Y}{n} - \hat{C}(\mu - \pi)\frac{m^d}{Pn}$$

$\frac{m^d}{Pn}$

यह वही saving function है जो एक non-monetary model के समीकरण (10) में दर्शाया गया था। परन्तु अन्तर यह है कि अब saving $(\mu - \pi)$, अर्थात real balances के rate of change और प्रति व्यक्ति वास्तविक शेष (real balances)

के स्तर पर, और उत्पादन के स्तर पर निर्भर करता है।

प्रारम्भ की पूर्वकल्पना को ध्यान में रखते हुए Planned Saving हमेशा actual investment के बराबर होती है।

$$\frac{S}{n} = \frac{i}{n}$$

इस मौद्रिक विकास मॉडल में मुद्रा की पूर्ति में व द्धि होने से जो मुद्रास्फीति की दर उत्पन्न होती है वह मुद्रा बाजार मे सन्तुलन लाती है। Neo-Classical Model की यह परिकल्पना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि इससे स्पष्ट होता है कि goods market कभी भी असन्तुलन में नही होता।

मुद्रा की गैर-निष्पक्षा मुद्रा का उत्पादन व आय पर प्रभाव

(Non-Neutrality of Money : Effect of Money on Output or Income)

मौद्रिक नीति के सन्तुलित पूँजी-में अनुपात $\left(\frac{k}{n}\right)$ तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात पर पडने वाले प्रभावों को निम्न चित्र के माध्यम से व्यक्त किया गया है। OY पर $\frac{Y}{n}$ को $\frac{K}{n}$ का फलन दर्शाया गया है। जैसा हम पहले देख चुके है OI* वक्र प्रति व्यक्ति निवेश (investment) की उस मात्रा $\left(\frac{K}{n}\right)n'$ को दर्शाता है जो Capital labour ratio को Constant रखने के लिए अवश्य चाहिए जब जनसख्या n' से बढ़ रही होती है। OS वक्र Per Capital Saving को दर्शाता है। यदि Per Capita Money Supply बढ़ा दी जाए तो saving curve upward shift होगा। Saving Curve Upward क्यों shift होगा ? क्योंकि पहले वाले Saving function पर कोई nominal money supply में व द्धि की दर μ' है और rate of inflation है। Neo-Classical model में सन्तुलन वहाँ होता है जहां OS_1 वक्र Oi* रेखा को काटता है। सन्तुलित Capital labour ratio को दर्शाता है और यह equilibrium level of output ratio को भी दर्शाता है। यहाँ Capital Stock और कुल उत्पादन n' rate से बढ़ रहे हैं जैसा चित्र में दर्शाया गया है।

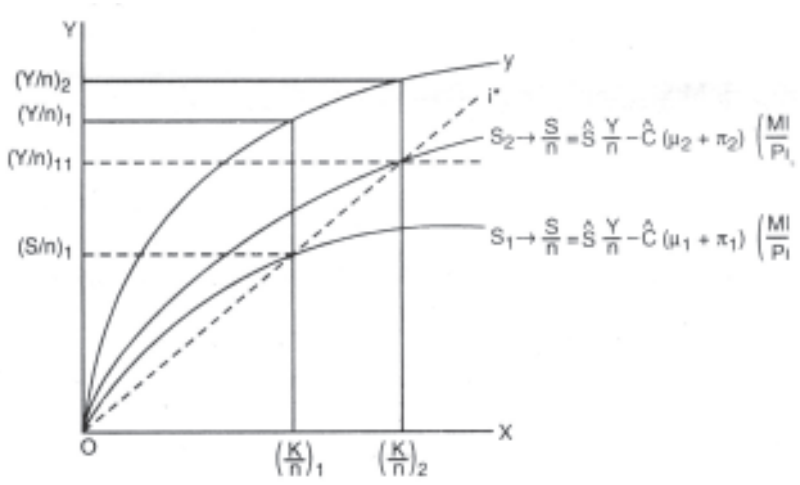

चित्र 3

कल्पना की गई है कि सरकार total money supply को μ_1 से μ_2 rate से बढ़ा देती है। money supply के बढ़ने से saving function पर क्या प्रभाव पड़ता है? money supply की दर बढ़ने से rate of inflation की दर π_1 से π_2 बढ़कर हो जाती है ताकि money market में सन्तुलन बना रहे। हम जानते हैं कि π में व द्धि उसी अनुपात से होती है जिस अनुपात में व द्धि होती है। इस कारण होगा। समीकरण 18 और 19 को ध्यान में रखते हुए जहां μ दिया हुआ हो वहां होगी क्योंकि स्थिर रहता है इसलिए भी स्थिर होगा। समीकरण प्रति व्यक्ति demand for real balances को दर्शाता है। इसके अनुसार expected rate of inflation के बढ़ने से $\frac{m^d}{Pn}$ गिर जाएगा। अतः money supply में व द्धि real Balances की माँग को घटा देगी। क्योंकि मुद्रा स्फीति के अन्तर्गत Real Balances का मूल्य कम होता है इस कारण पूँजीगत पदार्थो की मांग बढ़ेगी जोकि बचत का ही रूप है। इससे Saving curve बढ़कर OS_2 हो जाएगा जो i* वक्र को Capital labour-ratio $\left(\frac{K}{n}\right)_2$ के उँचे स्तर पर काटता है। $\frac{K}{n}$ बढ़ने के कारण $\frac{Y}{n}$ बढ़कर $\left(\frac{Y}{n}\right)_2$ हो जाता है।

इस विश्लेषण से अब स्पष्ट होता है कि neo-classical growth model में मुद्रा तटस्थ नहीं है।

केन्ज-विक्सिल का मौद्रिक विकास मॉडल

(KEYNES - WICKSELL MONETARY GROWTH

MODEL)

नव परम्परावादी विकास मॉडल में यह कल्पना कि बचत हमेशा निवेश के बराबर होती है और real balances की मांग और पूर्ति हमेशा बराबर होती है, इस मॉडल को काफी सरल बना देती है। किसी समय-बिन्दु पर वस्तु बवजार में सन्तुलन विद्यमान होता है क्योंकि वास्तविक और नियाजित (actual and planed) निवेश वास्तविक व नियोजित बचत के बराबर होते है। इसलिए neoclassical model में निवेश के निर्धारक तत्वों की जांच नहीं की जातीं। Capital stock में परिवर्तन बचत में परिवर्तन के अनुसार होता है क्योंकि बचत और निवेश एक दूसरे के बराबर होते हैं इसलिए कभी भी वस्तुओं की माँग की अधिकता नहीं होती परन्तु चाहे कुछ भी हो कीमत स्तर में परिवर्तन मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन आदि के कारण हो सकता है।

मॉडल की रूपरेखा
(Frame-work of the Model)

Neo-classical Model में संशोधन करके Stein and Rose ने Keynes Wicksell Model का प्रतिपादन किया जो इस तथ्य को स्वीकार करता है कि किसी समय बिन्दु पर वस्तु और मुद्रा बाजार असन्तुलित हो सकते हैं। यह संशोधन दो नई बातों को लेकर है :

(1) इस मॉडल में बॉड बाजार का समानेश किया गया है जबकि neo-classical model में मुद्रा तथा भौतिक पूँजी ही केवल मात्र साधन माने गये थे। Bond market समावेश इस मॉडल में किया गया है यद्यपि ऐसा करना अनिवार्य नहीं था क्योंकि वास्तव में वस्तु बाजार में असन्तुलन होता है क्योंकि, Planned investment Planned saving के बराबर नहीं बास्तव में वस्तु बाजार होते हैं और हमने दोनों के निर्धारकों का विश्लेषण करना चाहिए जबकि neo-classical model में केवल बचत का विश्लेषण किया है। Bond market के समावेश करने से planned investment को बॉड पर ब्याज की दर के साथ सम्बन्धित गिया जा सकता है।

(2) एक भिन्न assumption यह है कि यहां निरपेक्ष कीमत स्तर (absolute price level) में परिवर्तन को शामिल किया गया है।

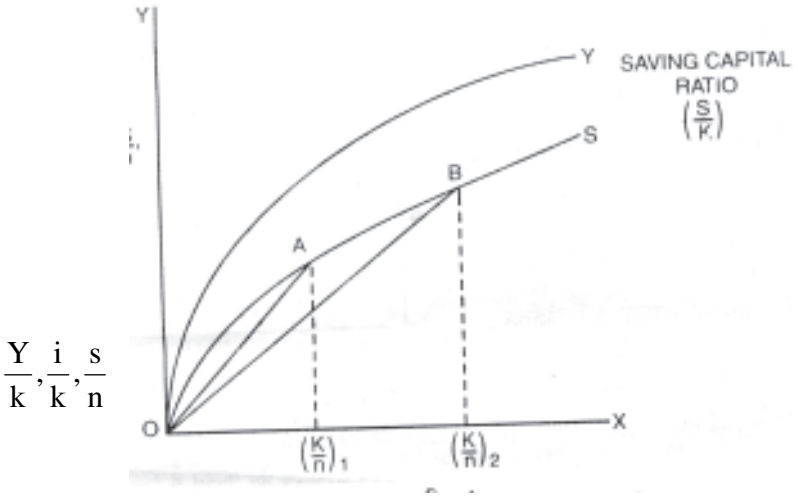

चित्र 4

यह कल्पना की गई है कि जब वस्तुओं की कमी होती है या दूसरे शब्दों में Planned investment planned Saving से बढ़ जाता है तो केवल कीमतें बढ़ती हैं, Inflation is only positive.

Walras के नियम को लागू करते हुए और यह कल्पना करते हुए कि ब्याज की दर बॉड बाजार (bond market) में तुरन्त सन्तुलन

ला देता है इस अवस्था में planned investment की अधिकता तभी inflation लाती है जब सभी बाज़ार सन्तुलन में होते हैं तो inflation की व द्धि दर शून्य (zero) होती है। ऐसी मान्याता neo-classical model में नहीं थी।

Neo-classical mode की तरह ही Keynes Wicksell model इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मुद्रा गैर-निरपेक्ष है (money is non-neutral) क्योंकि यह equilibrium growth path पर capital labour ratio $\left(\frac{k}{n}\right)$ को प्रभावित करता है। परन्तु Keynes Wicksell model सभी markets में हमेशा सन्तुलन की मान्यता के बिना ही (जैसा Neo-classical model में था) इस प्रक्रिया का विश्लेषण करता है जिसके माध्यम से capital labour ratio परिवर्तित होती है। परिणामतः Keyne-Wicksell model में non-neutrality के स्रोत neo-classical model के स्रोत से भिन्न हैं, क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि capital labour ratio में परिवर्तन बचत पर पड़ने वाले वास्तविक शेष प्रभाव (real balance effect) के कारण हो। यह चित्र 4 की सहायता से देखा जा सकता है : क्योंकि neo-classical model में वास्तविक बचत नियोजित बचत का समान होता है (actual saving equals planned saving) इसलिए हम planned saving persons, $\left(\frac{S}{n}\right)$ and capital labour ratio $\left(\frac{k}{n}\right)$, के मध्य यहां सम्बन्ध देखना चाहते हैं अर्थात् हम saving capital ratio $\frac{S}{n}$ निकालना चाहेंगे। यह ratio origin से OS पर एक सरल रेखा A खींच कर निकली जा सकती है। जैसा चित्र नं: 4 में दर्शाया गया है। कि capital labour ratio $\left(\frac{K}{n}\right)_1$ पर saving capital ratio $\left(\frac{S}{k}\right)$ OA का slope है। यदि capital labour ratio इससे ज्यादा है अर्थात $\left(\frac{K}{n}\right)_2$ तो saving capital ratio इससे कम होगी जिसको चित्र में OB द्वारा दर्शाया गया है जाएगी जिस पर slope OA से कम है।

बचत पूँजी (saving Capital) के इस सम्बन्ध को निम्न चित्र द्वारा दर्शाया गया है। Horizon tal अक्ष पर Capital Labour Ratio $\left(\frac{k}{n}\right)$ का माप किया गया है और Vertical अक्ष पर actual saving capital ratio $\left(\frac{\bar{S}}{k}\right)$ को मापा गया है। (Neo-Classical model) में यह ratio planned saving to capital $\frac{S}{k}$ द्वारा दर्शाया गया है।) $S_1 S_1$ Curve उपरोक्त सम्बन्ध को दर्शाता है अर्थात ज्यों $\frac{K}{n}$ बढ़ता है $\frac{\bar{S}}{k}$ गिरता है। यह हम पहले देख चुके है कि capital labour ratio $\frac{K}{n}$ और $\frac{\bar{S}}{k}$ growth rate of population x n' के बराबर होनी चाहिए ताकि equilibrium growth path कायम रखा जा सके। इसका कारण यह है कि actual saving $\left(\bar{S}\right)$ वही है जितना actual investment $\left(\bar{I}\right)$ है कि इसलिए $\left(\bar{S}\right)$ Capital Stock की growth के बराबर है ताकि $\frac{\bar{S}}{k}$ Capital stock की growth rate के बराबर हो सके। आगे $\bar{S}$ और को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। यदि capital labour ratio को समान बनाये रखना है जो equilibrium growth path पर भी बनाए रखना जरूरी है, पूँजी (K) की व द्धि दर आवश्यक रूप से growth rate of population के बराबर हो। जिसका तात्पर्य है कि यदि हम को vertical

अक्ष पर चित्र में मापते हैं तो सन्तुलित capital labour ratio को प्राप्त कर सकते हैं। S'S' Saving curve पर यह सन्तुलित अनुपात है क्योंकि इस पर $\frac{\bar{S}}{k} = n'$ है। Neo-classical model में मुद्रा स्फीति की दर में व द्धि होने से equilibrium capital labour ratio बढ़ जाती है क्योंकि OS saving curve upward shift कर जाता है परिणामतः और $\frac{\bar{S}}{k}$ curve capital labour ratio से सम्बन्धित है जो चित्र नं: (4) से चित्र नं: (5) में दर्शाया गया है अर्थात् S_1S_1 curve चित्र नं: (2) में दाई और सरक जाता है। तथा एक नये सन्तुलित पूँजी श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{n}\right)_2$ की स्थापना होती है। [A new equilibrium capital labour ratio is established at $\left(\frac{K}{n}\right)_2$ S_1S_1 दाई और सरक कर S_2S_2 बन जाता है जैसा चित्र नं: 4 में दर्शाया गया है।

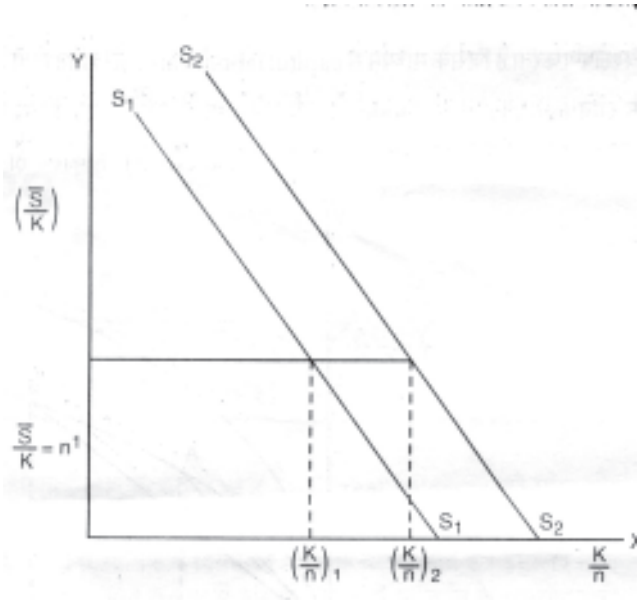

चित्र 5

Keynew Wicksell model की व्याख्या के लिए चित्र नं: (4) का प्रयोग किया जा सकता है। model की detail जानने के लिए कुछ प्रारम्भिक बातों का समझना आवश्यक है। सबसे पहले तो हमें इस model में planned saving के relationship को जांचना होगा। अब यह मान्यता नहीं है कि दोनों बराबर ही होंगे। यहां हमारी कल्पना है कि प्रति व्यक्ति planned saving प्रति व्यक्ति का फलन है।

$\left(\frac{S}{kn}\right)_1$

$$\frac{S}{n} = \hat{S}\frac{Y}{n} \text{ or } \frac{S}{k} = \hat{S}\frac{Y}{K} \quad \text{..... (1)}$$

जहाँ = marginal or average propensity to save है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि Planned saving is a function of output and not of desposable income. (Which includes increase in real balance or real wealth). यह इस बात को दर्शाने के लिए लिखा जाता है कि real balances का planned saving पर प्रभाव पड़ना जरूरी नहीं है जैसा कि (Real Balance) Keynes-Wicksell ने माना है। इसलिए यह non- neutrality का source भी नहीं हैं। Planned investment bond पर ब्याज की दर का function माना गया है। परन्तु इसका और स्पष्टीकरण करना होगा क्योंकि हम एक ऐसे model की व्याख्या कर रहे हैं जिसमें rate of inflation positive है। इसलिए मॉडल में relevant rate of inflation real interest rate से है न कि nominal interest rate से है। जिसको निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है :

P =

P = real rate of interest ..... (2)

= Nominal rate of interest

= rate of Inflation

यहाँ हम कल्पना करते हैं कि firms एक constant capital labour ratio का कायम रखना चाहती हैं यदि real rate of interest (P) marginal product of capital के बराबर रहे तो उस परिस्थिति में planned investment इतना बढ़ाना होगा ताकि capital

stock में व द्धि उतनी हो जितनी कि population में व द्धि की दर है। यह तथ्य निम्न equation की सहायता से दर्शाया जा सकता है,

or i=0 Kn' .... (3)

दूसरे शब्दों में i उस i* के बराबर होगा जो किसी निश्चित पूँजी-श्रम अनुपात को कायम रखने के लिए अनिवार्य है।

यदि real rate of interest marginal product से कम है तो investment चित्र 5 में $\left(\frac{K}{n}\right)_1$ से अधिक होगा। उस परिस्थ्यिों में firms capital labour ratio को बढ़ाने की योजना बनाएगी और इस ratio को घटाने की योजना बनाएगी यदि real rate of interest marginal product of capital से अधिक है।

समीकरण नं : (i) द्वारा दर्शाया गए saving function और समीकरण नंः (3) द्वारा दर्शाए गये investment function के आधार पर saving investment curve निकाले जा सकते हैं जो निम्न चित्र द्वारा दर्शाये गये है :

चित्र 6

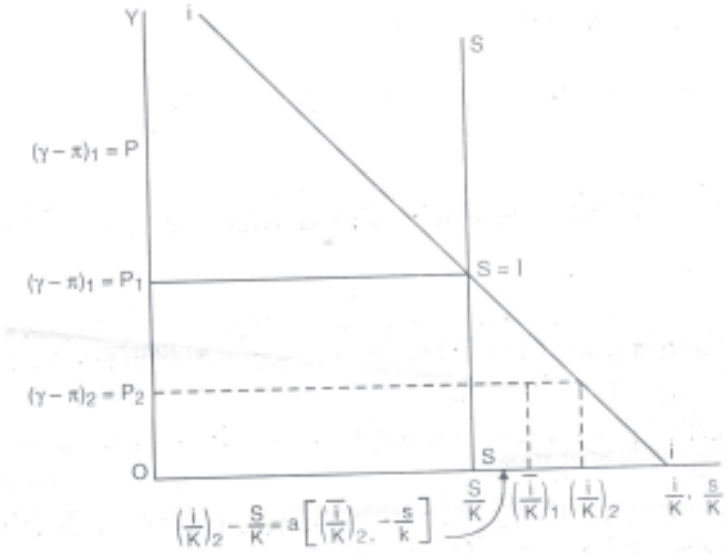

$$\left(\frac{\bar{i}}{K}\right)_2 - \frac{S}{K} = a\left[\left(\frac{i}{K}\right) - \frac{S}{K}\right] \qquad \text{......................} \ (4)$$

चित्र 6 investment function और SS saving function एक दी हुई popula tion growth rate n' को ध्यान में रखते हुए draw किये गये है। यदि n' में परिवर्तन आ जाता है तो SS और ii function भी परिवर्तित होते हैं। real rate of interest $(r-\pi)_1$ P_1, goods market में सन्तुलन को दर्शाता है क्योंकि अर्थव्यवस्था में planned saving और planned investment एक दूसरे के बराबर हैं। यदि real rate of interest $(r- \ )_1$ से कम है तो goods market में माँग की अधिकता होगी जो rate of inflation ज्यादा करेगा या को बढ़ाएगी। उपरोक्त निवेश समीकरण में a कोई स्थिर संस्था है।

असन्तुलन तथा मुद्रास्फीति
(Disequilibrium and Inflation)

यहाँ हम excess demand के विभिन्न पहलूओं की व्याख्या करेंगे। जब वस्तुओं की माँग की अधिकता होती है firms की planned investment demand और व्यक्तियों के planned consumption demand को सन्तुष्ट करना असम्भव हैं क्योंकि excess demand के कारण जब planned investment बढ़ता है तो उस planned investment को पूरा करना असम्भव इसलिए है क्योंकि वास्तविक saving उससे कम होती है। इसके साथ ही उपभोक्ताओं का आयोजित निवेश भी पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि बढ़े हुए वास्तविक निवेश के साथ actual saving भी बढ़ेगी। परन्तु यह actual निवेश में व द्धि intended (planned) investment से कम ही रहती है क्योंकि actual saving actual investment के समान रहती है इसलिए actual saving planned investment से अधिक होगा। इसलिए यह कल्पना की जाएगी कि जब माँग की अधिकता होती है तो actual बचत तथा निवेश planned saving से अधिक होते है, परन्तु planned investment से कम। इस तथ्य को निम्न equation की सहायता की सहायता से लिखा जा सकता है :

..... (5)

जहाँ $\bar{i}$ = Actual investment (Saving)

a = is a parameter which is greater than zero and les than one. (0<a<1)

समीकरण (0) में दर्शाया गया है कि जब planned investment planned saving से ज्यादा होता है तो actual investment planned saving + a times the defference between planned saving and planned investment.

चित्र नं: (6) में वास्तविक निवेश के मूल्य को अर्थात $(r-\pi)_2$ वास्तविक ब्याज की दर पर ratio of actual investment

$\left(\frac{\bar{i}}{K}\right)_2 = \frac{S}{K} + a\left(\frac{i-S}{K}\right)$ capital के बराबर होगी। उस वास्तविक ब्याज की दर पर planned saving $\frac{S}{K}$ है planned investment $\left(\frac{i}{K}\right)_2$ से कम है।

Equation (5) से प्रतीत होता है कि actual saving या actual investment $\left(\frac{i}{K}\right)_2, \left(\frac{S}{K}\right) + a\left[\left(\frac{i-S}{K}\right)_2 - \left(\frac{S}{K}\right)\right]$ के बराबर है। जैसा चित्र में भी दर्शाया गया है।

समीकरण (5) goods market disequilibrium की समस्या पर तो काबू पा जाती है क्योंकि planned saving और plannes investment में अन्तर आने के कारण goods market में असन्तुलन आ जाता है जिसका समाधान समीकरण (5) द्वारा actual saving को actual investment के बराबर करके किया गया हैं।

Neo-classical model में planned saving और निवेश की असमानता सम्भव नहीं थी। परन्तु Keynes-WicKsell model में यह माना गया है कि दोनों के मध्य अन्तर हो सकता है। Goods market equilibrium से एक दूसरी समस्या जिसको Problem of inflation कहते है, उत्पन्न होती है। KeynesWickell model की एक आवश्यक वि

शेषता यह है कि इसमें यह assumption की गई है कि जब goods market में की अधिकता होती है तभी absolute price level बढ़ता है अर्थात् is posit ive. जब ऐसी परिस्थिति होती है तो rate of inflation goods market में exccess demand के एक विशेष अनुपात से बढ़ता है :

$$\pi = b\left(\frac{i}{K} - \frac{S}{K}\right) \qquad \text{..... (6)}$$

चित्र (6) में जब real rate of interest $(r-\pi)_2$ है तो माँग की अधिकता $\left(\frac{i}{K}\right)_2 - \left(\frac{S}{K}\right)$ है। जिसका अर्थ हैं। कि rate of inflation :

$$\pi_2 = b\left[\left(\frac{i}{K}\right)_2 - \left(\frac{S}{K}\right)\right]$$

यदि वास्तविक ब्याज की दर इससे कम हो जाती है तो परिणामस्वरूप अधिक माँग की अधिकता या माँग की अधिकता में व द्धि higher rate of inflation को उत्पन्न करेगी। समीकरण (6) द्वारा Inflation hypothesis excess demand for goods के द ष्टिकोण से भी पेश की जा सकती है। Walras के नियम को goods and money marketl में लागू करते हुए ऐसी एक समीकरण (equation) तैयार की जा सकती है। इस प्रकार से जब equation को व्यक्त किया जाएगा तो यह model के स्पष्टीकरण को सरल बना देगी। समीकरण (6) को निम्न प्रकार से rearrange किया गया है :

$$\frac{i}{K} = \frac{\pi}{b} + \frac{S}{K}$$

This inflation of planned investment can then be substituted into equation 5 definition of actual investment so that actual investment is defined in terms of planned saving and the rate of investment.

Therefore, actual investment (and saving) is equal to planned saving plus a proportion of the rate of Inflation.

$$\frac{\pi}{b} = \left(\frac{i}{K} - \frac{S}{K}\right)$$

$$= \pi = b\left(\frac{i}{K} - \frac{S}{K}\right)$$

$$= \frac{S}{K} + a\left(C\frac{\pi}{b} + \frac{S}{K} - \frac{S}{K}\right) \frac{\bar{i}}{K} = \frac{a\pi}{b} + \frac{S}{K}$$

नव-प्रतिष्ठित तथा केन्ज-विक्सिल मॉडल की तुलना
(Comparison of neo-classical and Keynew-Wicksell Model)

Neo-Classical और Keynew-Wicksell growth model दोनों ही इस परिणाम पर पहुँचते है कि money supply की grow rate में परिवर्तन करने से capital labour ratio on the equilibrium growth path बदल जाएगी।

Money will in general be non-neutral in both the models. और जब यह non-neutral है इससे अभिप्रायः हुआ कि किसी भी model में मुद्रा की व द्धि दर बढ़ाई जाती है तो capital labour ratio बढ़ जाती है। यहाँ तक कि model में अपनाए गये basic functions के मध्य भी कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। दोनों में saving function विशेष रूप से एक जैसा है। जैसा देखने में आया है कि saving को real balance पर निर्भर हुआ माना भी जा सकता है और नहीं भी। प्रत्येक model में demand function for real balance एक जैसा है।

दोनों models में केवल मात्र भिन्नता यह है कि Keyens-Wicksell Model में Planned investment को specify किया गया है और यह Planned saving से भिन्न हो सकता है परन्तु neo-classical growth model में Planned saving, planned investment समान रहता है। दोनों में यह अन्तर एक आधारभूत अन्तर से उत्पन्न होता है।

दोनों models में केवल मात्र भिन्नता यह है कि Keyens-Wicksell Models में Planned investment को specify किया गया है और Planned saving से भिन्न हो सकता है परन्तु neo-classical growth model में Planned saving, planned investment समान रहता है। दोनों में यह अन्तर एक आधारभूत अन्तर से उत्पन्न होता है।

दोनों models में आधारभूत अन्तर यह है कि neo-classcial model में यह कल्पना की गई है कि सभी market स्थायी रूप से सन्तुलन में है जबकि Keynes-Wicksell model की कल्पना यह थी कि inflation तभी होता है जब goods market disequilibrium में market स्थायी रूप से असन्तुलन में होती है।

केन्ज Wicksell model का निर्माण इस पूर्व कल्पना पर आधारित है कि goods and money market स्थायी रूप से असन्तुलन में हो सकती है। यह Keynesian और New Keynesian model से भिन्न है। ये models भी असन्तुलन की अवस्था का ध्यान देते है। भिन्नता यह है कि growth model वस्तुओं की excess demand के द ष्टिकोण से असन्तुलन का अध्ययन करता है जबकि Neo-Keynesia model का सम्बन्ध goods market में excess supply के कारण माना गया है। परन्तु जब कोई आधारभूत अन्तर नहीं है जैसे कुछ अर्थशास्त्री Barro आदि ने Neo-Keynesian model को विस्त त किया और excess demand and inflation की स्थिति को शामिल किया। आधारभूत अन्तर यह है कि Neo-Keynesian Short Run Models Labour and goods Market के मध्य links (जोड़) पर ध्यान देता है। Keynes-Wicksell Growth Model जिनकी जाँच यहाँ की गई है, labour market की जाचँ नहीं करता। यह इस पूर्व कल्पना पर आधारित है कि बेरोज़गारी नहीं पाई जाती।

पूर्ण रोजगार के द ष्टिकोण से Keynes-Wickshell growth model neo-classical के समान है क्योंकि दोनों में अन्तर इस बात से उत्पन्न होता है कि Keynes-Wickshell model में Overful employment और बेरोजगारी दोनों की सम्भावना विद्यमान है। क्योंकि जब real rate of interest कम होने के कारण माँग की अधिकता होती है goods market में असन्तुलन आ जाता है। (Intended Investment is more than intended saving). वस्तु बाजार में माँग अधिकता श्रम बाजार में भी मांग की अधिकता उत्पन्न कर देगी इसलिए Overfull employment की स्थिति उत्पन्न होगी। दूसरी तरफ यदि real of interest सन्तुलित rate (P) से बढ़ जाता है जैसा चित्र में स्पष्ट होता है int ended investment is less than intended saving. यह स्थिति वास्तविक निवेश को गिरा देगा इससे वस्तु बाजार में वस्तु की कमी होगी जो श्रम बाजार में श्रम की माँग की कमी कर देगी। इससे बेरोजगारी उत्पन्न होगी। इस प्रकार Keynes-Wichshell model business Cycles (व्यापार चक्रों) की व्याख्या करता है जबकि neo-classical model नहीं करता। Neo-Classical Model में पूर्ण रोजगार की कल्पना की जाती है।

REVIEW QUESTION

1. Explain Neo-classical theory of Growth in an economy without money.
2. Expalin critically Neo-classical theory of growth in an economy with money.
3. Explain how equilibrium is attained in a Keynes-Wicksell Monetary Growth Model.
4. Show the relationship between equilbrium and inflation in Keyns-Wicksell Monetary Growth Model.

Selected Reading

Harris, Monetary Theory.

अध्याय-26

खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण

(Determination of National Income in an Open Economy)

केन्ज़ के आर्थिक सिद्धान्त का सबसे बड़ा योगदान इस बात की व्याख्या करना था कि राष्ट्रीय आय का सन्तुलित स्तर कैसे उत्पन्न किया जा सकता है। केन्ज़ का यह विश्लेषण एक बन्द अर्थव्यवस्था (closed economy) अर्थात् विदेशी व्यापार रहित अर्थव्यवस्था तक सीमित था। केन्ज़ के अनुसार राष्ट्रीय आय में सन्तुलन उस समय स्थापित होता है जब नियोजित बचत तथा नियोजित निवेश एक-दूसरे के समान (S = I) होते हैं। सन्तुलन की अवस्था में जब निवेश में व द्धि कर दी जाती है तो सरल गुणक (Simple Multiplier) के माध्यम से आय में व द्धि होती है। आय में हुई व द्धि बचत में व द्धि करती है। आय में व द्धि की यह प्रक्रिया बनी रहती है जब तक बचत बढ़कर दोबारा निवेश के बराबर नहीं हो जाती है। परन्तु आधुनिक अर्थव्यवसथाएं खुली अर्थव्यवस्थाएं (open economies) हैं। जिनमें वस्तुओं को आयात (imports) तथा निर्यात (exports) किया जाता है। आयात तथा निर्यात भी राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते हैं। इतना ही नहीं विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multipler) का मूल्य भी सरल गुणक के मूल्य से भिनन होता है। इसलिए केन्ज़ के आय सिद्धान्त का विस्तार इस प्रकार किया गया है ताकि एक खुली अर्थव्यवस्था में सन्तुलित आय तथा विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या की जा सके।

बन्द अर्थव्यवस्था की तरह खुली अर्थव्यवस्था में भी यह प्रमुख पूर्वकल्पना की गई है कि कीमतों में परिवर्तन नहीं होता। दूसरी पूर्व कल्पना यह है कि विनिमय दर (Exchange Rate) भी परिवर्तित नहीं होता हैं। तीसरी पूर्वकल्पना की गई है कि किसी प्रकार का कर (taxes) तथा सरकारी व्यय (government expenditure) नहीं है।

1. आयात फलन
(Import Function)

उपभोक्ता अपनी आय को या तो उपभोग वस्तुओं (Consumption goods) पर व्यय कर सकते हैं या इसकी बचत (saving) कर सकते हैं। केन्ज़ के अनुसार कुल उपभोग (Aggregate Consumption) तथा कुल बचत (Aggregate saving) दोनों राष्ट्रीय आय (National Income) के बढ़ते फलन (Increasing Functions) हैं। अर्थात् आय (Y) में व द्धि करने से कुल उपभोग (C) तथा कुल बचत (S) दोनों बढ़ते हैं। इसलिए उपभोग फलन (Consumption Function) को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है :

$$C = a_0 + bY; \text{ where } b = \frac{dc}{dy} \text{ MPC} > 0 \quad \text{..... (1)}$$

बचल भी आय का फलन होने के कारण इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$S = -a_0 + sY; \text{ where } s = \frac{ds}{dy} = \text{MPS} > 0 \quad \text{..... (2)}$$

हम जानते हैं कि $Y = C + S$ होती हैं और आय में परिवर्तन (ΔY) से उपभोग (C) तथा बचत (S) दोनों में परिवर्तन होता है। इसलि $\Delta Y = \Delta C + \Delta S$ होगा। अतः इस समीकरण के दोनों ओर से ΔY से भाग देने पर

$$\frac{\Delta Y}{\Delta Y} =$$

$1 = b + s$; b = MPC, s = MPS हैं।

इससे स्पष्ट है कि $b < 1$ तथा $s < 1$ हैं $\because s = 1 - b$ होगा।

एक खुली अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं की कुल आय का एक भाग वस्तुओं की आयात पर भी खर्च किया जाता है। आयात माँग (Import demand) राष्ट्रीय आय (Y) पर निर्भर करने के कारण इसको आय के बढ़ते फलन के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। आयात फलन (import function) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

$$M = M_0 + mY \text{ ; where } m = \qquad .....(3)$$

M_0 = आयात का वह भाग जो आय पर निर्भर नहीं करता।

mY = आय प्रेरित आयात (Income induced imports)

समीकरण (3) से स्पष्ट है कि ज्यों आय बढ़ती है आयात भी बढ़ते हैं। आयात तथा आय के इस मध्य सम्बन्ध को आयात फलन (import-function) कहा जाता है :

$$M = f(Y)$$

इसको निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

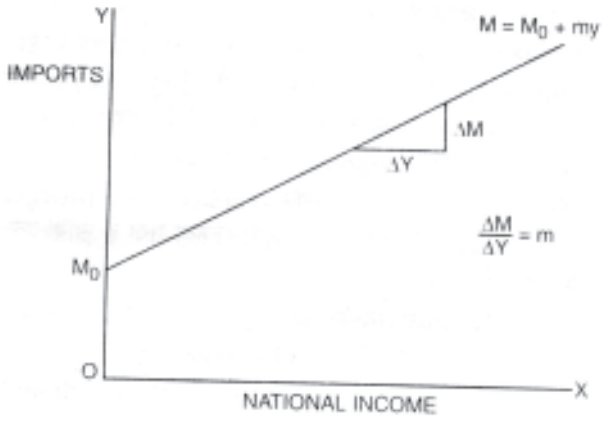

चित्र 1

चित्र 1 में स्पष्ट है कि आय के शून्य स्तर पर भी M_0 के समान आयात किये जाते हैं। ऐसा एक देश अपनी पूँजी स्टॉक को निर्यात के बदले या विदेशों से उधार लेकर कर सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि ज्यों आया शून्य से बढ़ती है तो आयात भी बढ़ते जाते हैं। आय के बढ़ने में आयात कितने बढ़ते हैं ? यह किसी देश की सीमांत आयात प्रव त्ति (MPI) जिसको चित्र में आयात फलन के ढाल $\left(\frac{\Delta M}{\Delta Y}\right)$ द्वारा दर्शाया गया है, इसके समान होती है। सरल रेखीय आयात फलन (Linear import function) से निम्न दो आयात प्रव त्तियाँ स्पष्ट होती हैं :

(1) **सीमान्त आयात प्रव त्ति (MPI)**—सीमान्त आयात प्रव त्ति राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आयात में जो परिवर्तन होता है उसका माप है। (Marginal propensity to import is the measure of change in imports as a result of change in the national income) सरल रेखीय फलन पर यह हमेशा स्थिर रहती है। जैसा चित्र में दर्शाया गया है।

$$MPI = \frac{\Delta M}{\Delta Y}$$

(ii) **औसत आयात प्रव त्ति (API)**—औसत आयात प्रव त्ति आयात का राष्ट्रीय आय से अनुपात का माप है (Average propensity to import is the measure of imports to national income)। चित्र में दर्शाये गये आयात फलन पर औसत आयात प्रव त्ति आय में व द्धि के साथ कम होती जाती है।

$$API =$$

विभिन्न देशों की औसत आयात प्रव त्ति में काफी अन्तर पाया जाता है। वे देश जिनके पास अधिक साधन (Resources) हैं या जो देश आयात पर प्रतिबन्ध लगाते हैं उन देशों की औसत आयात प्रव त्ति कम होती है। जैसे यू.एस.ए. (USA) तथा भारत जैसे देशों की API काफी कम है। भारत की औसत आयात प्रव त्ति .02 तथा .02 के बीच है, तथा अमेरिका की .07 है। कुछ छोटे देशों जैसे ब्रिटेन तथा हालैंड की औसत आयात प्रव त्ति क्रमशः 0.2 तथा .04 है।

सीमान्त आयात प्रव त्ति तथा औसत आयात प्रव त्ति की सहायता से आयात माँग की आय सापेक्षता (Income elasticity of demand for imports) ज्ञात की जा सकती है। यदि सीमान्त आयात प्रव त्ति को औसत आयात प्रव त्ति से भाग दे दिया जाये तो वह आयात माँग की आय सापेक्षता प्राप्त की जाती है :

$$e_m = \qquad ; e_m = \text{Income elasticity of demand for imports.}$$

∵ आयात माँग की आय सापेक्षता निम्न प्रकार निकाली जाती है

$$= \frac{d\text{M}}{\text{M}} \cdot \frac{\text{Y}}{d\text{M}} = \frac{d\text{M}}{d\text{M}} \cdot \frac{\text{Y}}{\text{M}}$$

or
$$\left(\frac{d\text{M}}{d\text{Y}}\right) / \left(\frac{\text{M}}{\text{Y}}\right) = \frac{\text{MPI}}{\text{API}}$$

यदि आय में 10 प्रतिशत की व द्धि होने के कारण आयात 5 प्रतिशत बढ़ते हैं तो आयात माँग की आय सापेक्षता 0.5 के बराबर होगी। यदि किसी देश की औसत और सीमान्त प्रव त्तियाँ समान हैं तो आयात माँग की आय सापेक्षता इकाई के समान होगी। तथा ज्यों एक देश की आय बढ़ती है तो उस देश के आयात भी उसी अनुपात से बढ़ते हैं अर्थात् राष्ट्रीय उत्पादन में विदेशी व्यापार का भाग स्थिर रहता है। यदि सीमांत आयात प्रव त्ति औसत आयात प्रव त्ति से अधिक है तो राष्ट्रीय उत्पादन में विदेशी व्यापार का भाग बढ़ेगा तथा यह देश की विदेशी व्यापार पर बढ़ती निर्भरता का सूचक है। इसके विपरीत होने पर यह निर्भरता कम होती है। परन्तु ऐसे निष्कर्ष निकालने अनुचित भी हो सकते हैं क्योंकि MPI और API दोनों समय-समय पर बदलती रहती हैं।

2. विदेशी व्यापार गुणक
(Foreign Trade Multiplier)

एक बन्द अर्थव्यवस्था में गुणक का मूल्य एक खुली अर्थव्यवस्था में गुणक (Foreign Trade Multiplier) के मूल्य से भिन्न होता है। इसका क्या कारण ?

एक बन्द अर्थव्यवस्था में सन्तुलित आय का स्तर उस समय स्थापित होता है जब राष्ट्रीय बचत (S) राष्ट्रीय निवेश (I) के बराबर (S = I) होती है। निवेश व्यय करने से राष्ट्रीय आय में व द्धि होती है परन्तु बचत करने से राष्ट्रीय आय में कमी होती है। निवेश व्यय का रूप होने के कारण आय प्रजनन में व द्धि करता है क्योंकि कुछ व्यक्तियों द्वारा किया गया व्यय अन्य व्यक्तियों की आय होती है। परन्तु बचत आय का वह भाग है जो व्यय का रूप नहीं ले पाता और आय को नहीं बढ़ाता। इसलिए बचत आय प्रजनन में स्राव (Leakage) का कार्य करता है। ऐसी परिस्थिति में यदि आयात तथा निर्यात को भी सम्मिलित कर लिया जाये तो आय प्रजनन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? निर्यात विदेशी लोगों द्वारा घरेलू वस्तुओं पर किये गये व्यय को प्रकट करता है। इसलिए निर्यात से घरेलू देश की आय में व द्धि होती है। इसके विपरीत आयात घरेलू आय को विदेशी वस्तुओं पर व्यय करने को प्रदर्शित करता है। अर्थात् घरेलू देश की आय में व द्धि होती है। इसके विपरीत आयात घरेलू आय को विदेशी वस्तुओं पर व्यय करने को प्रदर्शित करता है। अर्थात् घरेलू आय का एक भाग घरेलू वस्तुओं पर खर्च न होकर विदेशी वस्तुओं की आयात पर खर्च कर दिया जाता है इसलिए, विदेशियों की आय बढ़ती है। आय का यह भाग घरेलू देश की आय में व द्धि नहीं करेगा तथा यह आय प्रजनन में स्राव (Leakage) का कार्य करता है। विदेशी व्यापार के कारण राष्ट्रीय आय में शुद्ध व द्धि निर्यात (X) तथा आयात (M) के अन्तर (X – M) के समान होगी। अतः एक खुली अर्थव्यवस्था में निवेश तथा निर्यात (1 + X) आय में व द्धि

करते हैं और बचत तथा आयात $(S+M)$ आय के स्राव हैं।

अतः खुली अर्थव्यवस्था में सन्तुलित आय का स्तर वहां निर्धारित होगा जहा $I+X=S+M$ होगा। सन्तुलित आय का समीकरण एक खुली अर्थव्यवस्था के लिए निम्न प्रकार का होता है :

$$Y = a_0 + bY + I + X - M \qquad .....(4)$$

उपरोक्त समीकरण में M के स्थान पर आयात का फलन समीकरण 3 के अनुसार $(M_0 = mY)$ रखते हुए :

$$Y = a_0 + bY + I + X - (M_0 + mY)$$
$$Y = a_0 + bY + I + X - M_0 - mY$$
$$Y - bY + mY = a_0 + I + X - M_0$$
$$Y(1 - b + m) = a_0 + I + X - M_0$$

$$Y = \quad . \, a_0 + I + X - M_0 \qquad ..... (5)$$

Foreign Autonomous

Trade Multiplier Expenditure

एक खुली अर्थव्यवस्था में समीकरण (5) के अनुसार जब कभी निवेश या निर्यात में व द्धि की जाती है तो विदेशी व्यापार गुणक

Foreign Trade Multiplier के द्वारा आय में व द्धि होगी। विदेशी व्यापार गुणक को प्रायः K_f द्वारा प्रकट किया गया है :

$$K_f = \frac{1}{1-b+m}$$

विदेशी व्यापार गुणक को स्रावों के अनुसार $[1-b$ के स्थान पर सीमान्त बचत प्रव त्ति (s) रख कर] व्यक्त किया जा सकता है :

$$K_f =$$

$\left(\frac{1\;1\;1}{0.3+0.2 \;\; 1-b+m \;\; s+m}=\right)\frac{1}{0.5}=2$

अतः स्पष्ट है कि स्राव जितना ही कम होगा या सीमान्त बचत प्रव त्ति (s) तथा सीमानत आयात प्रव त्ति (m) जितने कम होंगे विदेशी व्यापार गुणक का मूल्य उतना ही अधिक होगा। उदाहरणतः

यदि $s = 0.3$ तथा $m = 0.2$ हो तो गुणक का मूल्य :

$$K_f = \qquad \text{होगा।}$$

विदेशी व्यापार गुणक का रेखाकृत्ति द्वारा प्रदर्शन
(Graphic Representation of Foreign Trade Multiplier)

किसी भी देश के निर्यात (X) घरेलू देश की राष्ट्रीय आय पर निर्भर नहीं करते हैं। अर्थात् राष्ट्रीय आय के विभिन्न स्तरों पर निर्यात की मात्रा स्थिर रहती है। इसी प्रकार घरेलू निवेश (I_d) भी आय पर निर्भर नहीं करता। अतः निर्यात और घरेलू निवेश स्वतन्त्र व्यय (Autonomous Expenditure) हैं जो बाह्य तत्वों पर निर्भर करते हैं। इसके विपरीत बचत (saving) तथा आयात (imports) दोनों घरेलू आय में व द्धि के साथ बढ़ते रहते हैं या आय का बढ़ता फलन है। इसी कारण $(S+M)$ फलन निम्न चित्र में आय के बढ़ते फलन के रूप में प्रकट किये गये हैं तथा

चित्र 2

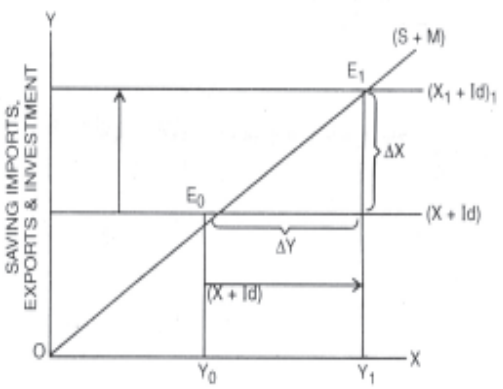

निर्यात और घरेलू निवेश $(X + I_d)$ फलन के रूप में X-अक्ष के समानान्तर दर्शाया गया है।

चित्र 2 में $(S + M)$ फलन $(X + I_d)$ फलन को E_0 बिन्दु पर काटता है तथा Y0 आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित होता है। इसके उपरान्त यदि किसी कारण निर्यात (X) में व द्धि (ΔX) हो जाती है तथा घरेलू निवेश (I_d) स्थिर रहते हुए $(X + I_d)$ फलन ऊपर की ओर सरक कर $(X_1 + I_d)$ हो जाता हैजो $(S + M)$ फलन के साथ मिल कर E_1 पर सन्तुलित आय का Y_1 स्तर निर्धारित करता है। इस प्रकार आय में व द्धि (ΔY) निर्यात में हुई व द्धि (ΔX) की तुलना में कई गुणा अधिक है। इसका कारण विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multiplier) है जो सीमान्त बचत प्रव त्ति (s) तथा सीमान्त आयात प्रव त्ति (m) के योगफल के व्युत्क्रम $\text{inverse}\left(\frac{1}{s+m}\right)$ के समान है।

विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार कार्य करता है ?
(How the Foreign Trade Multiplier Works)

विदेशी व्यापार गुणक केन्ज़ के सरल गुणक के अनुसार व्यय पर निर्भर करता है। जब निर्यात (X) में व द्धि होती है तो विदेशी लोग घरेलू वस्तुओं पर व्यय बढ़ा देते हैं। जिससे निर्यातकों की आय बढ़ती है। निर्यातक अपनी बढ़ी हुई आय का कुछ भाग बचा कर रखेंगे तथा कुछ भाग आयात पर खर्च करेंगे तथा बढ़ी हुई बाकि आय को घरेलू उपभोग वस्तुओं पर व्यय करेंगे। आयात में हुई व द्धि उन विदेशी लोगों की आय में व द्धि करती है जिन देशों से वस्तुएं आयात की जाती हैं। परन्तु निर्यातों में व द्धि से बढ़ी हुई आय को जो भाग घरेलू वस्तुओं पर खर्च किया जाता है वह घरेलू राष्ट्र की आय को बढ़ा देता है। बढ़ी हुई आय का फिर कुछ भाग घरेलू उपभोग पदार्थों पर खर्च होता है जो घरेलू आय को बढ़ाता है जिसका कुछ भाग बचत तथा आयात के रूप में विभक्त हो जाता है। निर्यात व द्धि के परिणामस्वरूप घरेलू वस्तुओं पर बढ़ा हुआ व्यय विभिन्न अगली समय अवधियों में तब तक आय में निरन्तर व द्धि करता जायेगा जब तक कि विदेशी व्यापार गुणक अपना कार्य पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं कर लेता है।

निर्यात में वुद्धि केवल निर्यात उद्योगों में ही आय तथा रोज़गार में व द्धि नहीं करती है बल्कि उन सभी उद्योगों में आय तथा रोज़गार बढ़ता है जिन उद्योगों के पदार्थों की माँग निर्यात में व द्धि के कारण बढ़ी हुई आय के परिणामस्वरूप बढ़ती है। निर्यात में व द्धि का कारण विदेशी लोगों की घरेलू वस्तुओं के लिए रूचि में व द्धि होना हो सकता है। इस प्रकार निर्यात में व द्धि से सारी अर्थव्यवस्था की आय तथा रोज़गार में व द्धि होती है।

विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता
(The Reverse Working of Foreign Trade Multiplier)

निर्यात में व द्धि तथा आयात में कमी के अन्तर्गत विदेशी व्यापार गुणक राष्ट्रीय आय में व द्धि करता है अथवा आय पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है। इसके विपरीत निर्यात में कमी तथा आयात में व द्धि होने पर विदेशी व्यापार गुणक राष्ट्रीय आय में कमी करता है अथवा आय पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ता है। विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता इसी प्रकार उत्पन्न होती है जिस प्रकार एक सरल गुणक की विपरीत क्रियाशीलता कार्य करती है। इसको निमन चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये आयात में व द्धि हो जाती है जिससे राष्ट्रीय आय का पहले से अधिक भाग विदेशी वस्तुओं की आयात पर तथा कम भाग घरेलू वस्तुओं की खरीद पर व्यय किया जाता है। इससे बचत फलन ऊपर बाईं ओर सरक जायेगा जो राष्ट्रीय आय को विदेशी व्यापार गुणक द्वारा कम कर देता है।

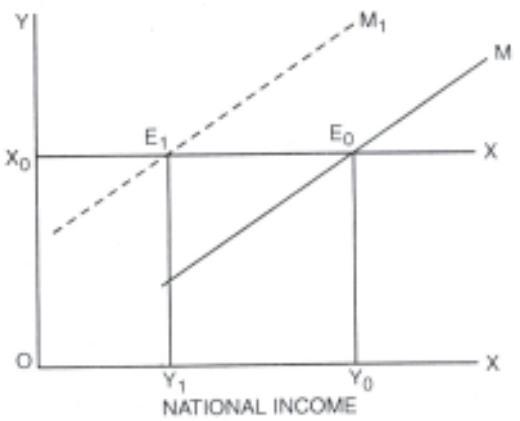

चित्र 3

चित्र 3 दर्शा रहा है कि प्रारम्भिक राष्ट्रीय आय-सन्तुलन E_0 बिन्दु पर स्थापित होता है तथा Y_0 सन्तुलित आय निर्धारित होती है। अब

यदि आयात में व द्धि होने के कारण आयात फलन M से सरक कर M_1 हो जाता है तो सन्तुलन E_0 से सरक कर E_1 पर स्थापित होता है तथा राष्ट्रीय आय Y_0 से विदेशी व्यापार गुणक द्वारा कम होकर Y_1 हो जाती है। इसको ही विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता कहते हैं। यह क्रियाशीलता निर्यात X_0 से कम करके भी दर्शाई जा सकती है।

3. एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण
(The Determination of National Income in a Small Open Economy)

एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय के निर्धारण में महत्वपूर्ण धारणा यह है कि घरेलू देश की आय में परिवर्तन विदेशी देश जिसके साथ व्यापार किया जा रहा है की आय पर किसी प्रकार का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। घरेलू निवेश (I_d) तथा निर्यात (X) दोनों आय स्वतन्त्र (Autonomous) माने गये हैं। निर्यात विदेशी देश की आय के स्तर पर निर्भर करते हैं।

एक बन्द अर्थव्यवस्था में सन्तुलन प्राप्त करने के लिए आयोजित निवेश (Planned Investment) को आयोजित बचत (Planned Saving) के बराबर होना होता है। इसको प्रायः व्यक्त किया जाता है कि राष्ट्रीय आय में इन्जैक्शनज़ (injections), जैसे स्वतन्त्र निवेश आदि, राष्ट्रीय आय से स्राव (Leakages), जैसे बचत आदि के समान अवश्य होने चाहिएं। एक खुली अर्थव्यवस्था की सन्तुलित आय के लिए भी बिल्कुल वही शर्त लागू होती है, परन्तु इसमें दो इन्जैक्शन्ज़ (घरेलू निवेश तथा निर्यात) तथा दो स्राव (बचत और आयात) होते हैं।

एक खुली अर्थव्यवस्था में सन्तुलन की शर्त को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

$$I_d + X = S + M \quad .....(8)$$

समीकरण (8) को दोबार लिखते हुए :

$$X - M = S - I_d \quad .....(9)$$

समीकरण (9) बताता है कि सन्तुलन की अवस्था में बचत (S) तथा घरेलू निवेश (I_d) का अन्तर व्यापार शेष (Balance of Trade), जिसको $X - M$ द्वारा दर्शाया गया है, के समान होता है। अब हम सन्तुलित राष्ट्रीय आय तथा व्यापार शेष के बीच सम्बन्ध को निम्न रेखा-चित्र की सहायता में दर्शाते हुए सन्तुलित आय का निर्धारण कर सकते हैं। चित्र में X–M वक्र का ढाल नकारात्मक है। आय में व द्धि से X स्थिर रहता है परन्तु आयात (M) बढ़ते जाते हैं; जिसके परिणामस्वरूप $X - M$ कम होता जाता है तथा यह वक्र नीचे की ओर झुकता जाता है। इसके विपरीत $S - I_d$ का ढाल आय (Y) में व द्धि के साथ बढ़ता जाता है क्योंकि आय व द्धि के साथ I_d स्थिर रहता है परन्तु बचत बढ़ती जाता है क्योंकि आय व द्धि के साथ I_d स्थिर रहता है परन्तु बचत बढ़ती जाती है। अतः $S - I_d$ का ढाल सीमान्त बचत प्रव त्ति के समान है दोनों वक्र E_0 बिन्दु पर परस्पर काटते हैं तथा Y_0 सन्तुलित आय का निर्धारण करते हैं तथा B_t के समान व्यापार शेष (Balance of Trade) स्थापित करते हैं। चित्र में Y_0 आय के सन्तुलित स्तर पर सकारात्मक व्यापार शेष (Surplus Balance of Trade) दर्शाया गया है B_t के समान है।

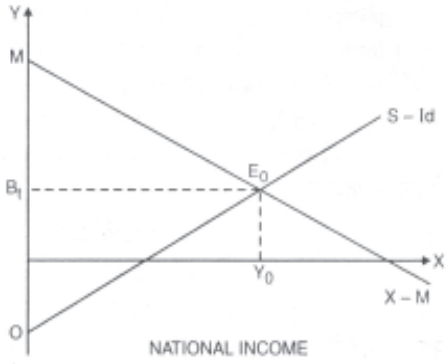

चित्र 4

एक देश चालू खाते (Current Account) पर जब सकारात्मक व्यापार शेष (Surplus Balance of Trade) दर्शाता है तो वह विदेशी देश से अपनी लेनदारी (claims) बढ़ा रहा होता है तथा देनदारी (Liabiities) कम कर रहा होता है। अर्थात् वह विदेशी निवेश कर रहा होता है। इसको हम निम्न प्रकार लिख सकते हैं :

$$X - M = I_f \quad ..... (10)$$

समीकरण (10) में I_f शुद्ध विदेशी निवेश (Net Foreign Investment) को प्रकट करता है। अब हम राष्ट्रीय आय में सन्तुलन की शर्त (National Income Equilibrium Condition) को दोबारा निम्न प्रकार लिख सकते हैं :

$$S = I = I_d + I_f \quad ..... (11)$$

समीकरण (11) व्यक्त करता है कि बचत (S) कुल निवेश (I), जो घरेलू निवेश (I_d) और विदेशी निवेश (I_f) का जोड़ होता है, के समान होनी चाहिये ताकि सन्तुलित राष्ट्रीय आय प्राप्त की जा सके।

4. खुली छोटी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में परिवर्तन
(Change in Income of an Open Small Economy)

खुली छोटी अर्थव्यवस्था की आय में परिवर्तन के लिए दो तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं : (1) घरेलू निवेश में परिवर्तन (dI_d) तथा निर्यात में परिवर्तन (dX), (2) खुली छोटी अर्थव्यवस्था में गुणक (Foreign Trade Multiplier)

अतः राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के समीकरण को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$$dY = \frac{1}{s+m}(dI_d + dX) \qquad .....(12)$$

$= K_f$ अर्थात् विदेशी व्यापार गुणक है तथा dI_d और dX क्रमशः घरेलू निवेश में परिवर्तन तथा निर्यात में परिवर्तन को व्यक्त करते हैं।

एक खुली छोटी अर्थव्यवस्था में गुणक इसी प्रकार कार्य करता है जैसे कि यह बन्द अर्थव्यवस्था में कार्य करता है।

यद्यपि घरेलू निवेश में व द्धि (dI_d) या निर्यात में व द्धि (dX) राष्ट्रीय आय पर समान प्रभाव छोड़ते हैं, वे व्यापार शेष (Balance of Trade) पर अलग-अलग प्रभाव छोड़ती हैं। चित्र-5 घरेलू निवेश (I_d) में व द्धि करने से भुगतान शेष पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है।

363

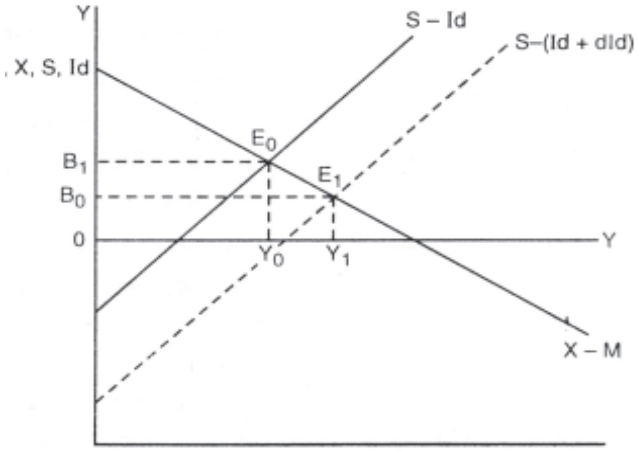

चित्र 5

चित्र 5 में प्रारम्भिक सन्तुलन E_0 द्वारा दर्शाया गया है जिस पर Y_0 सन्तुलित आय तथा B_1 व्यापार शेष (Balance of Trade) निर्धारित होता है। इसके बाद ज्यों घरेलू निवेश में व द्धि (dI_d) कर दी जाती है तो $S - I_d$ वक्र नीचे सरक कर $S - (I_d + dI_d)$ हो जाता है जो $X - M$ फलन को E_1 पर काट कर सन्तुलन स्थापित करता है। E_1 सन्तुलन बिन्दु पर Y_1 सन्तुलित आय स्तर तथा B_0 ध नात्मक व्यापार शेष (Surplus Balance of Trade) निध ारित होता है। अतः घरेलू निवेश में व द्धि करने से गुणक द्वारा आय का स्तर Y_0 से बढ़कर Y_1 तथा धनात्मक व्यापार शेष कम होकर B_1 से B_0 हो जाता है। इसका कारण यह है कि घरेलू निवेश में व द्धि से आय का स्तर बढ़ता है परन्तु बढ़ा हुआ आय का स्तर आयात बढ़ा देता है जिससे धनात्मक व्यापार शेष (Surplus Balance of Trade) कम हो कर B_0 ही रह जाता है।

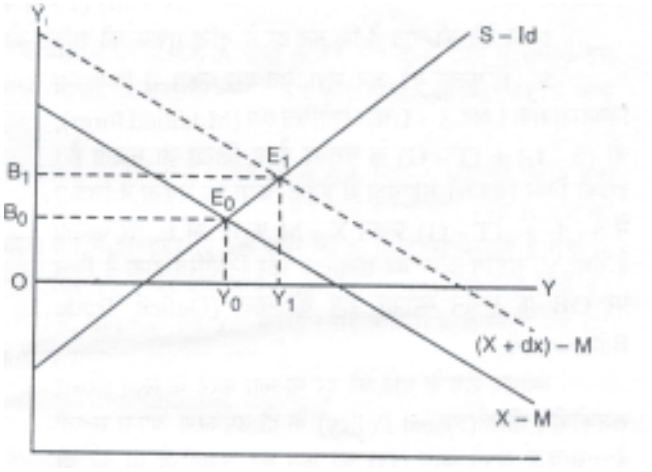

चित्र 6

अब मान लीजिये निर्यात में व द्धि की जाती है तथा घरेलू निवेश स्थिर रहता है। निर्यात व द्धि (dX) का आय तथा व्यापार शेष पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्न चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है।

$$dY = (I_d + dX)$$

चित्र-6 में प्रारम्भिक सन्तुलन E_0 पर स्थापित होकर Y_0 सन्तुलित आय स्तर तथा B_0 व्यापार शेष निर्धारित करता है। अब यदि निर्यात में व द्धि (dX) कर दी जाती है तो $X - M$ फलन ऊपर की ओर सरक कर $(X + dX) - M$ बन जाता है जो $S - I_d$ फलन के साथ मिलकर E_1 पर सन्तुलन निर्धारित करता है। व्यय में व द्धि होने के कारण गुणक द्वारा आय बढ़ती है तथा निर्यात में व द्धि होने के कारण धनात्मक भुगतान शेष (Surplus Balance of Trade) बढ़ कर B_1 निर्धारित होता है। यद्यपि आय में हुई व द्धि आयातों को भी बढ़ा देती है परन्तु इसका शुद्ध प्रभाव धनात्मक पड़ता है। इसका व्यापार शेष पर शुद्ध प्रभाव क्या होगा इसको अलग से भी अध्ययन किया जा सकता है।

5. सरकासरी व्यय तथा कर प्रभाव
(Effect of Government Expenditure and Taxation)

हमें ज्ञात है कि एक बन्द अर्थव्यवस्था मॉडल में सरकार अपने व्यय तथा करों में परिवर्तन करके राष्ट्रीय आय के स्तर को प्रभावित कर सकती है। एक खुली अर्थव्यवस्था में भी सरकार अपने व्यय तथा करों में परिवर्तन के द्वारा अपने देश की राष्ट्रीय आय को प्रभावित कर सकती है। अपनी राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) में परिवर्तन करके तट करों (Tariffs) में परिवर्तन कर सकती है तथा आयातों को प्रभावित कर सकती है। सरलता के लिए कल्पना की गई है कि सरकीर व्यय (G) आय स्वतन्त्र है तथा घरेलू वस्तुओं पर ही किया जाता है। कर की केवल आनुपातिक आय कर प्रणाली (Proportional Income Tax System) की मान्यता की गई है :

$$T = tY \text{ ; where } t < 1 \quad .....(13)$$

उपभोक्ताओं का वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय कर के बाद की स्वायत राष्ट्रीय आय [disposable (post-tax) national income] अर्थात् $(1 - t)$ Y पर निर्भर करता है। विभिन्न सीमान्त प्रव त्तियाँ भी इसी के अनुसार परिभाषित की गई हैं। सभी फलनों की सरल रेखीय होने की कल्पना की गई है।

$$C = C_0 + b\,(1 - t)\,t \quad .....(14)$$

$$M = M_0 + m\,(1 - t)Y \quad ..... (15)$$

$$S = S_0 + s\,(1 - t)Y \quad .....(16)$$

Where, C_0, M_0 and S_0 are the autonomous elements of consumption, imports and saving. $C + S = 1$ राष्ट्रीय आय की सन्तुलन की शर्तों को (Injections = Leakages) निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$I_d + X + G = S + M + T \quad .....(17)$$

After differentiation of equation (17) :

$$dI_d + dX + dG = s\,(1 - t)\,dY + m\,(1 - t)\,dY + t\,dY \quad .....(18)$$

समीकरण (18) को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

$$dY = (dI_d + dX + dG) \quad .....(19)$$

अतः गुणक (Multiplier) बराबर है :

$$K_f = \frac{1}{(s+m)(1-t)+t} \quad ..... (20)$$

ध्यान देने की बात है कि कर दर में व द्धि गुणक की शक्ति को कम कर देता है।

$S - I_d$ फलन को अब संशोधित इस प्रकार से किया जा सकता है ताकि इसमें सरकारी व्यय (G) तथा कर (T) का समावेश किया जा सके। अतः $S - I_d$ को संशोधित रूप (Modified form), जो $(S - I_d) + (T - G)$ के बराबर होगा, लिखा जा सकता

है। इसको निम्न चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है चित्र-7 में $S - I_d + (T - G)$ फलन $X - M$ फलन को E_0 पर काटता है तथा Y_0 राष्ट्रीय आय का सन्तुलित स्तर निर्धारित होता है जिस पर OB के समान व्यापार शेष का घाटा (Deficit Trade Balance) है।

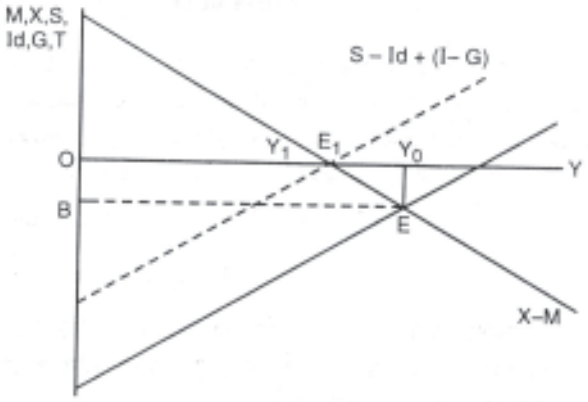

THE EFFECT OF REDUCING GOVERNMENT

चित्र 7

व्यापार शष के घाटे को दूर या कम करने के लिए सरकार राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) को दो उपकरण अपना सकती है—सरकार अपने व्यय (G) को कम कर सकती है या कर दर (Tax Rate) में व द्धि कर सकती है। निम्न चित्र सरकारी व्यय (G) में कटौती के प्रभाव को दर्शाता है :

चित्र-8 दर्शाता है कि सरकारी व्यय में कटौती करने से पहले अर्थव्यवस्था E बिन्दु पर सन्तुलन में थी तथा Y_0 राष्ट्रीय आय तथा B के समान घाटे वाला व्यापार शेष था। सरकारी व्यय में कटौती करने के उपरान्त वक्र ऊपर की ओर सरक कर $S - I_d + (T - G_1)$ हो जाता है जो $X - M$ फलन को E_1 पर काटता है। E_1 पर सन्तुलित आय कम होकर Y_1 तथा व्यापार शेश में घाटा (Deficit Balance of Trade) समाप्त होकर शून्य रह जाता है।

दूसरा प्रभाव कर दर (Tax Rate) में व द्धि करके देखा जा सकता है। कर दर में व द्धि $X - M$ के ढाल को कम कर देगा, क्योंकि अब आय के प्रत्येक स्तर पर M कम हो जायेगा। इसलिए $X - M$ कुछ ऊपर की ओर चित्र अनुसार सरक जायेगा। इसी प्रकार $S - I_d + (T - G)$ वक्र भी T में व द्धि के कारण ऊपर की ओर सरकेगा। इसका प्रभाव निम्न चित्र की सहायता से देखा जा सकता है। चित्र 9 में कर व द्धि से पहले Y_1 सन्तुलित आय तथा B के समान घाटे का बाज़ार शेष (Deficit Trade Balance) था कर में व द्धि के उपरान्त आय घटर कर Y_0 तथा घाटे का व्यापार शेष समाप्त हो कर शून्य हो गया है।

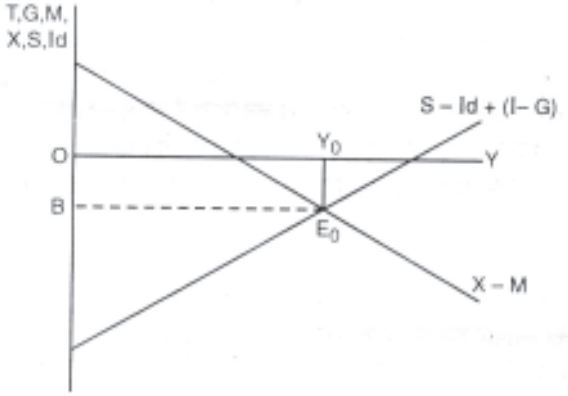

INCLUDING GOVERNMENT IN THE SMALL

चित्र 8

6. एक बड़ी खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण
(Determination of National Income in a Large Open Economy)

यह मान्यता कि आयातों में व द्धि आयातक देशों की राष्ट्रीय आय को प्रभावित नहीं करती सही नहीं है, विशेष रूप से जब बड़े देशों के बीच व्यापार हो रहा हो। जब एक बड़े राष्ट्र, जैसे अमेरिका, की आय में व द्धि होने के कारण इसकी आयात बढ़ती है तो निर्यातक देश, जैसे भारत, के निर्यात बढ़ते हैं। इससे भारत की राष्ट्रीय आय में व द्धि होगी। भारत की राष्ट्रीय आय में व द्धि होने के कारण इसके आयात बढ़ेंगे जो मान लीजिए अधिकतर अमेरिका से ही किये जाते हैं। इससे अमेरिका की राष्ट्रीय आय में व द्धि होगी जो इसके आयातों में व द्धि करके भारत की राष्ट्रीय आय में फिर व द्धि करेगी। इस प्रकार, बड़े व्यापारिक राष्ट्रों की आय पर 'प्रतिक्रियात्मक प्रभाव' (Repercussion Effect) पड़ता रहता है।

ऐसी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की राष्ट्रीय आय का निर्धारण करने के लिए इन प्रतिक्रियात्मक प्रभावों (Repercussion effects) को भी अवश्य शामिल किया जाना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि यह जाँच की जानी चाहिये कि सभी व्यापारिक राष्ट्रों की आय का निर्धारण एक साथ (simultaneously) कैसे किया जाये ?

यह निर्धारण हम कल्पना करके कर सकते हैं कि मान लीजिये विश्व में दो ही देश A तथा B देश हैं। दोनों देशों में सम्पर्क इस प्रकार का है कि A देश के आयात B देश के निर्यात तथा B देश के निर्यात हैं। अतः दोनों देशों की राष्ट्रीय आय एक दूसरे पर निर्भर (interdependent) है।

दोनों देशों के बीच आय-प्रतिक्रिया निम्न चित्र की सहायता से दर्शाई जा सकती है। चित्र-10 में AA रेखा A राष्ट्र की आय तथा B राष्ट्र की आय के बीच सम्बन्ध प्रकट करती है। A देश में OA राष्ट्रीय आय व्यापार से स्वतन्त्र है। इसी प्रकार BB रेखा B देश की राष्ट्रीय आय तथा A देश की राष्ट्रीय आय के मध्य सम्बन्ध प्रकट करती है। ये दोनों रेखाएं एक दूसरे को E बिन्दू पर काटती हैं तथा A देश में सन्तुलित आय का स्तर Y_A^0 तथा B देश में सन्तुलित आय का स्तर Y_B^0 है जो एक साथ (simultaneous) निर्धारित होती है। यदि B देश में आय Y′ है तो A देश में भी आय Y′ होगी जो B देश में आय बढ़ा कर Y″ करेगी। यह प्रक्रिया जारी रहेगी जब तक दोनों देश E बिन्दु को प्राप्त नहीं कर लेते जो दोनों की आय में एक साथ सन्तुलन स्थापित करता है।

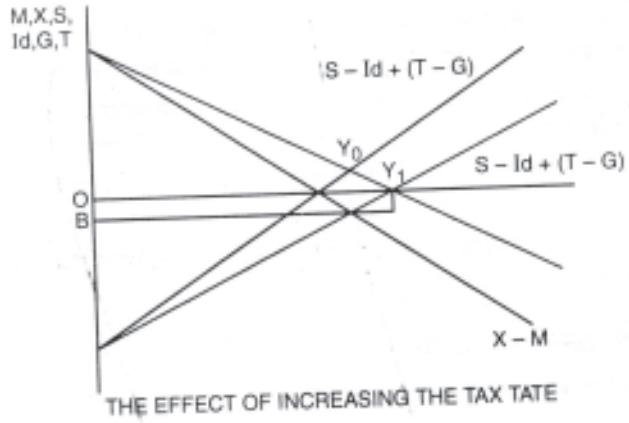

चित्र 9

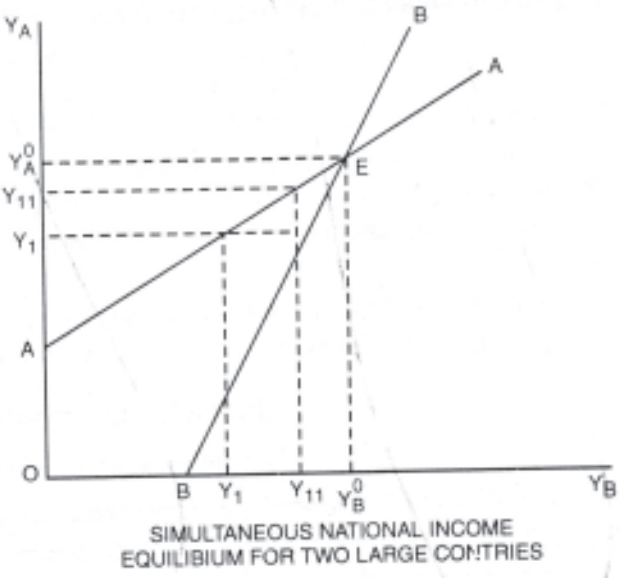

चित्र 10

अब यदि A देश में निवेश या सरकारी व्यय व द्धि करने के कारण राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है तो AA वक्र ऊपर की ओर सरक जाता है जो B देश की सन्तुलित आय को बढ़ा देता है। इस तथ्य को निम्न चित्र-11 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र-11 में प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु E है। अब यदि A देश में सरकार व्यय (G) में व द्धि करने के परिणामस्वरूप दोनों देशों की आय में परस्पर सम्बन्ध A′A′ रेखा द्वारा स्थापित होता है जो BB रेखा के साथ मिलकर E_1 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करता है। दोनों देशों की सन्तुलिता आय बढ़कर इस प्रकार A देश में Y_A' तथा B देश में Y_B' स्थापित होती है। दोनों राष्ट्रों की आय में एक साथ (simultaneous) सन्तुलित पुनः E_1 बिन्दु पर स्थापित होता है।

●●●

अध्याय-27
अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का हस्तान्तरण
(International Transmission of Disturbance)

अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का हस्तान्तरण
(The International Transmission of Disturbances)

राष्ट्रीय आय तथा व्यापार शेष के बीच जो सम्बन्ध पूर्व विश्लेषण में ज्ञात होता है वह विभिन्न व्यापारिक देशों के मध्य घटनाओं के हस्तान्तरण के लिए यन्त्र (mechanism) का कार्य करता है। एक छोटा देश दूसरे देश में हो रही आर्थिक घटनाओं से स्वयं तो प्रभावित होता है परन्तु वह स्वयं छोटे होने के कारण अपनी आर्थिक घटनाओं को हस्तान्तरित नहीं कर पाता है। परन्तु एक बड़ा देश घटनाओं का आयात भी करता है तथा उनका अन्य देशों को निर्यात भी करता है। घटनाओं का यह हस्तान्तरण स्थिर विनिमय दर (Fixed Exchange Rate) तथा लोचशील विनिमय दर (Floating Exchange Rate) प्रणाली।

स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत हस्तान्तरण
(Transmission Under Fixed Exchange Rate)

सैद्धान्तिक द ष्टिकोण से यह सिद्ध हो गया है कि एक देश से दूसरे देश में घटनाओं या नीति परिवर्तन का हस्तान्तरण होता रहता है। दूसरे देश में आर्थिक परिवर्तन के प्रति एक देश किस हद तक प्रतिक्रिया करता है यह दूसरे देश के आकार, इसका खुलापन (राष्ट्रीय आय का कितना भाग व्यापार में प्रयोग किया जाता है) तथा गुणक जो MPS, MPI तथा MPT (b, m, t) पर निर्भर करता है। किसी देश की अपनी आर्थिक घटनाओं तथा नीति परिवर्तन को हस्तान्तरिक करने की प्रव त्ति इस बात पर निर्भर करता है कि दूसरे देश की तुलना में इसका अपना आकार तथा इसका अपना खुलापन (openness) तथा इसका गुणक कितना है।

इस सन्दर्भ में सन् 1979 में 31 देशों का अध्ययन किया गया। यह जांचा गया कि देशों की राष्ट्रीय आय (GNP) का एक प्रतिशत राजकोषीय विस्तार (Fiscal Expansion) जैसे सरकारी व्यय (G) में व द्धि आदि करने से राष्ट्रीय आय गुणक जिसमें अन्तःक्रिया प्रभाव (Repercussion Effect) भी शामिल है तथा अन्य देशों की अर्थवयवस्थाओं को प्रभावित करने की क्षमता कितनी है।

अमेरिका की GNP अन्य लगभग चार देशों की GNP के समान है तथा घरेलू गुणक 1.47 है। अमेरिका में किया गया राजकोषीय विस्तार इसकी सीमान्त आयात प्रव त्ति कम होते हुए इसके व्यापार शेष पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसका कारण आय व द्धि से आयातों का बढ़ना था। इसके परिणामस्वरूप अन्य देशों (OECD) की GNP लगभग 0.74 प्रतिशत से बढ़ी।

ऐसा ही अध्ययन जब जापान (Japan), जिसकी GNP अमेरिका की GNP का लगभग 45 प्रतिशत है, के लिए किया गया तो यह पाया गया कि जापान में किया गया राजकोषीय विस्तार वहां की आय तथा अन्य प्रभाव अमेरिका की तुलना में काफी कम उत्पन्न कर सका। इसका कारण जापान का अमेरिका की तुना में छोटा आकार तथा कम गुणक का मूल्य जो लगभग 0.2 प्रतिश था होना रहा है।

जर्मनी (Germany) जिसकी GNP जापान की GNP का लगभग 2/3 भाग है का भी अध्ययन किया गया। जर्मनी काफी खुला अर्थव्यवस्था है परन्तु कम मूल्य के गुणक वाला देश है। इसके खुलेपन के कारण इसका आकार तथा गुणक कम होते हुए भी जर्मनी में किया राजकोषीय विस्तार अन्य देशों की GMP पर लगभग 0.23 प्रतिशत प्रभाव जो जापान की तुलना में काफी अधिक प्रभाव है छोड़ सका।

इसी प्रकार फ्रांस, जिसकी GNP का आकार छोटा परन्तु अधिक खुली अर्थव्यवस्था है, अन्य देशों पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव छोड़ सका। यू.के. (U.K.) भी छोटा देश होने के कारण अन्य देशों की GNP पर कम प्रभाव छोड़ सका है।

परिवर्तन विनिमय दर के अन्तर्गत हस्तान्तरण
(Transmission Under Floating Exchange Rates)

यदि विनिमय दर पूर्ण परिवर्तनशील है तो विदेशी व्यापार सन्तुलन को कायम रखने के लिए विनिमय दर ऊपर नीचे होती रहेगी। इसका गुणक, घटनाओं के हस्तान्तरण और सरकार नीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

मान लीजिये किसी छोटे देश के घरेलू स्वतन्त्र निवेश में व द्धि, dI_d, कर दी जाती है जो $S - I_d$ फलन को नीचे की ओर सरका देती है। इससे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी जो आयातों (M) को बढ़ा देती है। आयातों के बढ़ने के कारण इस देश का प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन उत्पन्न हो जायेगा जो प्रारम्भ में शून्य था। यह प्रतिकूल व्यापार शेष विनिमय दर को कम कर देगा ताकि निर्यात बढ़ सकें और आयात कम है। चित्र 1 में कर व द्धि से पहले Y_1 सन्तुलित आय तथा B के समान घाटे का बाज़ार शेष (Deficit Trade Balance) था कर में व द्धि में उपरान्त आय घट कर Y_0 तथा घाटे का व्यापार शेष समाप्त हो कर शून्य हो गया है।

6. एक बड़ी खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण
(Determination of National Income in a Large Open Economy)

यह मान्यता कि आयातों में व द्धि आयातक देशों की राष्ट्रीय आय को प्रभावित नहीं करती सही नहीं है, विशेष रूप से जग बड़े देशों के बीच व्यापार हो रहा हो। जब एक बड़े राष्ट्र, जैसे अमेरिका, की आय में व द्धि होने के कारण इसकी आयात बढ़ती है तो निर्यातक देश, जैसे भारत के निर्यात बढ़ते हैं। इससे भारत की राष्ट्रीय आय में व द्धि होगी। भारत की राष्ट्रीय आय में व द्धि होने के कारण इसके आयात बढेंगे जो मान लीजिए अधिकतर अमेरिका से ही किये जाते हैं। इससे अमेरिका की राष्ट्रीय आय में व द्धि होगी जो इसके आयातों में व द्धि करके भारत की राष्ट्रीय आय में फिर व द्धि करेगी। इस प्रकार, बड़े व्यापारिक राष्ट्रों की आय पर 'प्रतियित्मन प्रभाव' (Repercussion Effect) पड़ता रहता है।

ऐसी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की राष्ट्रीय आय का निर्धारण करने के लिए इन प्रतिक्रियात्मक प्रभावों (Repercussion effects) को भी अवश्य शामिल किया जाना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि यह जाँच की जानी चाहिये कि सभी व्यापारिक राष्ट्रों की आय का निर्धारण एक साथ (simultaneously) कैसे किया जाये ?

यह निर्धारण हम कल्पना करके कर सकते हैं कि मान लीजिये विश्व में दो ही देश A तथा B देश हैं। दोनों देशों में सम्पर्क इस प्रकार का है कि A देश के आयात B देश के निर्यात तथा B देश के आयात A देश के निर्यात हैं। अतः दोनों देशों की

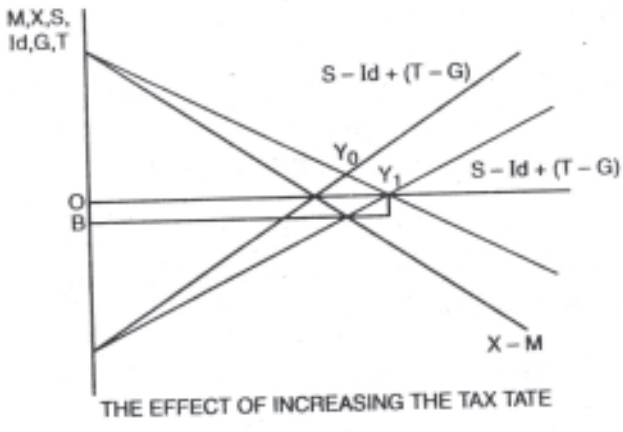

चित्र 1

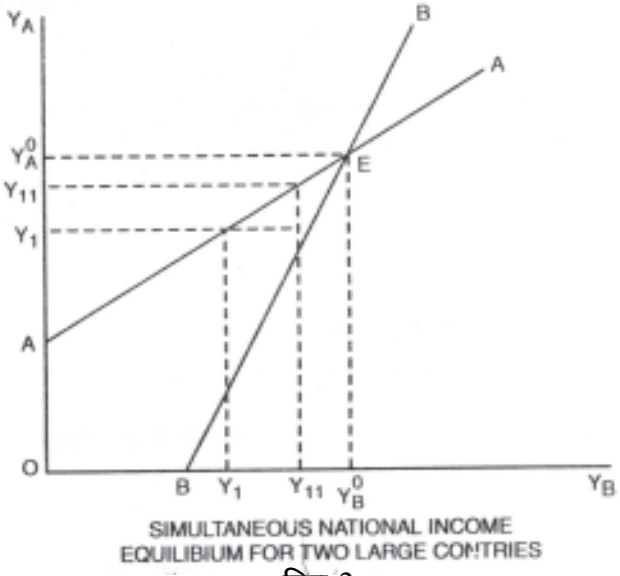

चित्र 2

राष्ट्रीय आय एक दूसरे पर निर्भर (interdependent) है।

दोनों देशों के बीच आय-प्रतिक्रिया निम्न चित्र की सहायता से दर्शाई जा सकती है। चित्र-2 में AA रेखा A राष्ट्र की आय तथा B राष्ट्र की आय के बीच सम्बन्ध प्रकट करती है। A देश में OA राष्ट्रीय आय व्यापार से स्वतन्त्र है। इसी प्रकार BB रेखा B देश की राष्ट्रीय आय तथा A देश की राष्ट्रीय आय के मध्य सम्बन्ध प्रकट करती है। ये दोनों रेखाएं एक दूसरे को E बिन्दू पर काटती हैं तथा A देश में सन्तुलित आय का स्तर Y_A^0 तथा B देश में सन्तुलित आय का स्तर Y_B^0 है जो एक साथ (simultaneous) निर्धारित होती है। यदि B देश में आय Y' है तो A देश में भी आय Y' होगी जो B देश में आय बढ़ा कर Y'' करेगी। यह प्रक्रिया जारी रहेगी जब तक दोनों देश E बिन्दु को प्राप्त नहीं कर लेते जो दोनों की आय में एक साथ सन्तुलन स्थापित करता है।

अब यदि A देश में निवेश या सरकारी व्यय में व द्धि करने के कारण राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है तो AA वक्र ऊपर की ओर सरक जाता है जो B देश की सन्तुलित आय स्तर को बढ़ा देता है। इस तथ्य को निम्न चित्र-3 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

इसको निम्न चित्र 4 की सहायता से व्यक्त किया गया है। चित्र में प्रारम्भिक सन्तुलन Y_0 आय के स्तर पर होता है जहाँ S

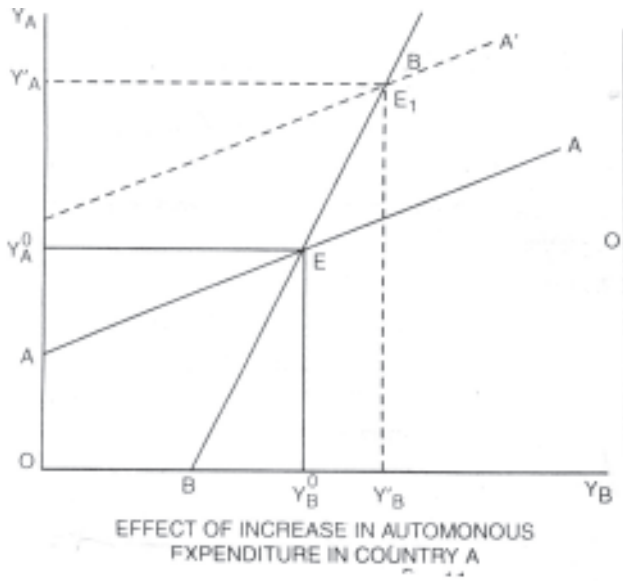

EFFECT OF INCREASE IN AUTOMONOUS EXPENDITURE IN COUNTRY A

चित्र 3

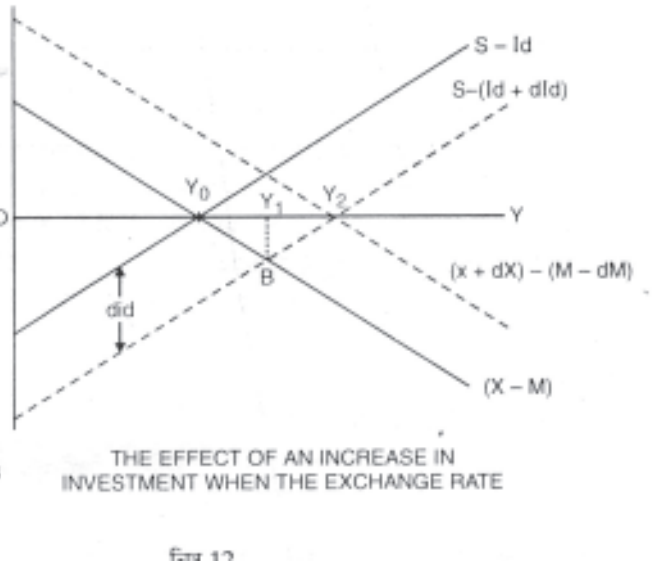

THE EFFECT OF AN INCREASE IN INVESTMENT WHEN THE EXCHANGE RATE

चित्र 4

$-I_d$ फलन तथा $X-M$ फलन एक दूसरे को काटते हैं। ज्यों घरेलू निवेश में व द्धि (dI_d) की जाती है तो ($S-I_d$) फलन नीचे की ओर सरक कर $S-(I_d+dI_d)$ का स्थान ग्रहण कर लेता है। यदि स्थिर विनिमय दर प्रचलित है तो सन्तुलित आय का स्तर Y_1 पर स्थापित होगा जिस पर Y_1 B के समान प्रतिकूल व्यापार शेष उत्पन्न हो गया है। परन्तु विनिमय दर पूर्ण परिवर्तनशील होने के कारण विनिमय दर गिरेगा, जिससे निर्यात (X) बढ़ते हैं तथा आयात (M) गिर जाते हैं। इस कारण नये $(X+dX)-(M-dM)$ तथा $S-(I_d+dI_d)$ फलन एक दूसरे को आय के Y_2 स्तर पर इस प्रकार सन्तुलन स्थापित करते हैं कि व्यापार शेष शून्य रह जाता है। परिवर्तन विनिमय दर के अन्तर्गत $X-M$ फलन पूर्ण रूप से निष्क्रिय है तथा उतना ही सरकता है जितना सन्तुलित आय तथा शून्य व्यापार शेष निर्धारण करने के लिए अनिवार्य है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह है कि परिवर्तनशील विनिमय दर के अन्तर्गत स्थिर विनिमय दर की अपेक्षा राष्ट्रीय आय में अधिक व द्धि होती है। अर्थात् परिवर्तनशील विनिमय दर के अन्तर्गत गुणक अधिक शक्तिशाली होता है। इसके अन्तर्गत निर्यात व द्धि (dX) आयात में व द्धि (dX), $dX = dM$, के बराबर होती है।

एक और ध्यान देने की बात यह है कि परिवर्तनशील विनिमय दर के अन्तर्गत एक अर्थव्यवस्था अपने आप को अन्य देशों की घटनाओं से सुरक्षित रख सकती है। अन्य देशों की घटनाओं को विनिमय दर में परिवर्तन द्वारा वह आयात निर्यात को समान कर लेती है। जैसे अन्य देश के विकासात्मक प्रयासों से वहां आय बढ़ती है तथा उनके आयात बढ़ते हैं तथा घरेलू देश के निर्यात बढ़ते हैं। घरेलू देश में अनुकूल व्यापार शेष उत्पन्न होगा। इससे घरेलू देश का विनिमय दर बढ़ेगा जो निर्यातों को

कम करेगा तथा आयातों को बढ़ा देगा तथा पुनः व्यापार शेष शून्य पर स्थापित हो जायेगा।

REVIEW QUESTIONS

1. Explain Import function. Determine foreign trade multiplier.
2. Explain how income is determined in a small open economy.
3. Explain the determination of income in a large open economy.
4. Explain International Transmission of Income.

READING BOOKS

BO. Sodersten, International Economics.

अध्याय-28

स्थिर तथा परिवर्तनशील विनिमय दर के अन्तर्गत हस्तान्तरण

(Transmission under Fixed Exchange Rates and Floating Exchange Rates)

व्यावार शेष पर प्रभाव (Effect on Balance of Trade)–अवमूल्यन का यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। कोई भी देश अपनी मुद्रा का अवमूल्यन व्यापार शेष या भुगतान शेष के घाटे को दूर करने के लिए ही करता है। क्या अवमूल्यन व्यापार शेष में घाटे की स्थिति में सुधार लाता है ? हमेशा नहीं। अवमूल्यलन का व्यापार शेष पर पड़ने वाला प्रभाव अनिर्धारणीय है। ऐसा क्यों है ?

अवमूल्यन का व्यापार शेष पर पड़ने वाला प्रभाव आयात माँग तथा निर्यात पूर्ति की लोचशीलताओं पर निर्भर करता है। भुगतान शेष में घाटे पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है या नहीं यह मार्शन-लर्नर शर्तों (Marshall-Lerner Condition) की सन्तुष्टि पर निर्भर करता है।

Marshall-Lerner Condition : When the sum of the two demand elasticities for imports in absolute terms, is greater than unity, devaluation reduces the balance-of-trade deficit.

$$(e_x + e_m) > 1$$

where the terms e_x and e_m respectively show the price elasticity of demand for exports and imports of the currency-devaluation country.

यदि किसी देश में मार्शल-लर्नर शर्तें सन्तुष्ट नहीं होती हैं तो उस देश की मुद्रा का अवमूल्यन करने से व्यापार शेष के घाटे में व द्धि होगी।

आय समन्वय तन्त्र (Income Adjustment Mechanism)

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विभिन्न देशों की सापेक्षिक कीमतों तथा विनिमय दरों में परिवर्तन से उनके स्वतन्त्र भुगतान शेषों (Autonomous Balance of Payments) में परिवर्तन होता है। यदि विदेशी विनिमय दर तथा कीमत स्तर रहें तथा उनके आय स्तर में परिवर्तन किया जाये तो भी भुगतान शेष में परिवर्तन हो सकता है। अन्य शब्दों में स्वतन्त्र भुगतान शेष आय स्तर से भी फलनात्मक सम्बन्ध रखता है। किसी दिये हुए विनिमय दर तथा कीमत स्तर पर किसी देश में आय स्तर के बढ़ने के कारण आयात अधिक हैं। इसका अर्थ हुआ कि किसी देश के भुगतान शेष में घाटे को घरेलू आय स्तर को कम करके या विदेशों में आय स्तर के बढ़ने पर दूर किया जा सकता है।

किसी अन्य देश में आय परिवर्तन से घरेलू आयात तथा विदेशी की निर्यातें किस हद तक परिवर्तित होती हैं। यह आयात की सीमान्त प्रव त्ति (Marginal Propensity to import) या आयात माँग की आय लोचशीलता (income elasticity of demand for imports) द्वारा मापी जा सकती हैं। हम जानते हैं कि आयात हमेशा आय पर निर्भर करती हैं। इसलिए सीमानत आयात प्रव त्ति (m) आय की मात्रा में परिवर्तन के कारण आयात में हुए परिवर्तन का अनुपात होती हैं।

$$m = \frac{d\text{M}}{dY}; d = \text{Change, M} = \text{Total Imports ; Y} = \text{National Income}$$

आय में परिवर्तन से आयातों में सापेक्षिक परिवर्तन कितना होता है, इसका माप करने के लिए आयात माँग की आय लोचशीलता का प्रयोग किया जा सकता है। आयात माँग की आय लोचशीलता कुल आयातों में प्रतिशत परिवर्तन का कुल आय में प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात है। अर्थात् :

$$E_m = \frac{dM}{M} \div \frac{dY}{Y}$$

$$= \frac{dM}{M} \cdot \frac{Y}{M} \text{ or } \frac{dM}{dY} \div \frac{M}{Y}$$

$$= \frac{\text{Marginal Propensity to Import } \left(\frac{dM}{dY}\right)}{\text{Average Propensity of Import} \left(\frac{M}{Y}\right)}$$

अतः आयात माँग की आय लोचशीलता (E_m) को ज्ञात करने का सरल सूत्र प्राप्त किया गया है।

आय प्रभाव (Income Effect)

मान लीजिए किसी A देश के भुगतान शेष में 1000 करोड़ रुपये का घाटा है तथा B देश के भुगतान शेष में 1000 करोड़ रुपये की बचत (Surplus) है। यदि A देश की सीमान्त आयात प्रव त्ति (MPI) .4 तथा B देशी की MPI .6 के बराबर है तो दोनों देशों की आयों में परिवर्तन होने के कारण भुगतान शेष स्वतः सन्तुलित हो जायेंगे। A देश 1000 रु. के अपने लोगों पर कर आदि लगा कर B देश को 1000 रु. की भुगतान करेगा ताकि घाटा दूर किया जा सके। आय गिरने के कारण A देश के आयात $.4 \times 1000 = 400$ रुपये मूल्य के समान गिर जायेंगे। B देश में आय बढ़ने के कारण उसके आयात (A देश के निर्यात) $.6 \times 1000 = 600$ रु. मूल्य के समान बढ़ जायेंगे। अतः A देश के आयात 400 रु. के समान कम हो जाते हैं तथा A देश के निर्यात 600 रु. के समान बढ़ जाते हैं। इस प्रकार A देश का घाटा स्वतः दूर हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि दोनों देशों की सीमान्त आयात प्रव त्तियों का जोड़ इकाई के समान $(MPI_A + MPI_B) = I\,nw \sim Ueefo\,(MPI_A + MPI_B) > 1$ है तो A देश का भुगतान शेष बचत (Surplus) में बदल सकता है। ऐसा तभी हो सकता है जब आय प्रभाव अत्यधिक शक्तिशाली है।

राष्ट्रीय आय तथा भुगतान शेष में गहरा सम्बन्ध देखा जा सकता है। किन्हीं बाह्य तत्त्वों में परिवर्तन के कारण, जैसे घरेलू निवेश, निर्यात तथा आयातों में स्वतन्त्र परिवर्तन (Autonomous Change) के कारण एक खुली अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय तथा उसका भुगतान सन्तुलन प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव विदेशी व्यापार गुणक (The Foreign Trade Multilier) के सक्रिय होने के कारण उत्पन्न होते हैं।

विदेशी व्यापार गुणक
(The Foreign Trade Multiplier)

इस भाग में यह दर्शाया गया है कि बाह्य हस्तक्षेप जैसे घरेलू निवेश, निर्यात तथा आयातों में स्वतन्त्र परिवर्तन (Autonomous Changes) एक खुली अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय तथा भुगतान शेष को कैसे प्रभावित करता है ?

विदशी व्यापार का निकालना
(Derivation of the Foreign Trade Multiplier)

केन्ज़ के आय निर्धारण सम्बन्धी मॉडल को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि एक खुली अर्थव्यवस्था में कुल माँग (AD), जिसको $AD = C + I + X - M$ समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है, में परिवर्तन (ΔD) से राष्ट्रीय आय में परिवर्तन (ΔY) होता है। राष्ट्रीय आय में यह परिवर्तन (ΔY) कुल माँग में परिवर्तन (ΔD) का कई गुणा (Multiple) होता हैं इसलिए $\Delta Y/\Delta AD$ एक खुली अर्थव्यवस्था का गुणक (Open Economy Multiplier) होता है जिसको विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multiplier) कहा जाता है।

हम जानते हैं कि राष्ट्रीय आय उस समय सन्तुलित होती है जब आय के स्राव (Leakages), जिसको $S(Y) + M(Y)$ द्वारा बचत (S) तथा आयात (M) के रूप में व्यक्त किया जाता है, बाह्य इन्जैक्शनज (exogenous injections), जिसका $I + X$ द्वारा निवेश (I) तथा निर्यात (X) के रूप में व्यक्त किया जाता है, बिल्कुल एक दूसरे के बराबर हों। जब कभी इन इन्जैक्शनज में व द्धि करके इनको स्रावों से अधिक कर दिया जाता है तो गुणक के द्वारा आय बढ़ने से स्रावों में व द्धि होती है जो सन्तुलन की अवस्था में बढ़ कर इन्जैक्शनज के समान हो जाते हैं। अतः सन्तुलन की अवस्था में $DD = (MPS + MPM)\, DY$ .....(1)

समीकरण (i) में संशोधन के उपरान्त :

$$\text{Foreign-trade multiplier} = K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta D} = \frac{1}{MPS + MPM}$$

एक बन्द अर्थव्यवस्था के गुणक $\left(\frac{1}{MPS}\right)$ की अपेक्षा एक खुली अर्थव्यवस्था का गुणक कम शक्तिशाली होता है, क्योंकि :

$$\frac{1}{MPS} > \frac{1}{MPS + MPM}$$

भुगतान शेष प्रभाव (The Balance-of-Trade Effect)

बाह्य समष्टि चरों (निवेश, निर्यात आदि) में परिवर्तन करने से भुगतान शेष पर दो प्रभाव पड़ते हैं :

(1) **स्वतन्त्र प्रभाव** (Autonomous Effect)–आय की अपेक्षा बाह्य हस्तक्षेप से भी बाह्य क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है तथा इसका भुगतान शेश पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव प्रत्येक आय के स्तर पर निर्यात या आयात में परिवर्तन होने के कारण हो सकता है। निर्यात में ये परिवर्तन आय में परिवर्तन से स्पतन्त्र रहता है।

(2) **प्रेरित प्रभाव** (Induced Effect)–अर्थवयवस्था में किया गया कोई भी हस्तक्षेप चाहे वह विदेशी क्षेत्र में या घरेलू क्षेत्र में किया गया है, यह राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के माध्यम से भुगतान शेष में परिवर्तन को प्रेरित करता है। यह प्रेरित प्रभाव उस समय घटता है जब किसी भी बाह्य चर (निवेश या निर्यात) में परिवर्तन होने से कुल माँग में परिवर्तन (ΔD) होता है जो राष्ट्रीय आय में गुणक के द्वारा परिवर्तन करता है; आय में परिवर्तन (ΔY) से आयातों में परिवर्तन ($MPM \times \Delta Y$) की प्रेरणा उत्पन्न होती है।

किसी हस्तक्षेप का भुगतान शेष पर प्रभाव प्रेरित प्रभाव तथा स्वतन्त्र प्रभाव का मिलाजुला प्रभाव होता है। जब कभी विदेशी क्षेत्र में परिवर्तन उत्पन्न होता है तो प्रेरित प्रभाव स्वतन्त्र प्रभाव के विपरीत कार्य करता है। अन्य शब्दों में राष्ट्रीय आय समन्वय तन्त्र भुगतान शेष का एक शक्तिशाली स्थायित्व तन्त्र (Powerful stabilizing machanism) है।

विशेष द ष्टान्त (Specific Illustration)

उपरोक्त व्यवस्था को गहराई से समझने के लिए कुछ ठोस उदाहरण समझे जा सकते हैं। निम्न तीनों उदाहरणों में कल्पना की गई है : $MPS = 0.10, MPM = 0.15$। इसलिए विदेशी गुणक :

$$K_r = \frac{1}{.10 + 0.15} = 4$$

यह भी कल्पना की गई है कि किसी भी निम्न हस्तक्षेप से पहले दी हुई खुली अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय सन्तुलन में होती है। अतः

(1) निवेश में व द्धि (Increase in Investment)–मान लीजिए घरेलू निवेश में १०० करोड़ रुपये की व द्धि की गई है, इसका राष्ट्रीय आय तथा भुगतान शेष पर पड़ने वाला प्रभाव निम्न प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है :

विदेशी व्यापार गुणक ४ होने के कारण राष्ट्रीय आय में व द्धि $= 4 \times 100 = 400$ करोड़ रुपये होगी।

निवेश में व द्धि से भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि यहां पर केवल प्रेरित प्रभाव ही घटित होता है तथा स्वतन्त्र प्रभाव विद्यमान नहीं है (क्योंकि निवेश में व द्धि से आय बढ़ती है जो आयात बढ़ने की प्रेरणा देती है।)

$$MPM \times \Delta Y = 0.15 \times 400 = 60 \text{ करोड़ रुपये}$$

इससे भुगतान शेष 60 करोड़ रुपये से असन्तुलित तथा घाटे वाला बन जायेगा, यदि प्रारम्भ में यह सन्तुलित की अवस्था में है तो।

(2) आयात में कमी (A Decrease in Imports)–मान लीजिए किसी खुली अर्थव्यवस्था में आयात तट कर (Tariff) दर बढ़ाने से आयात 100 करोड़ रुपये कम हो जाती हैं तथा घरेलू वस्तुओं पर 100 करोड़ रुपये खर्च बढञ जाता है। इसका राष्ट्रीयअ ाय तथा भुगतान शेष पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इसका निर्धारण निम्न प्रकार किया जा सकता ह।

विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा घरेलू वस्तुओं पर 100 करोड़ खर्च बढ़ने से घरेलू उत्पादन की कुल माँग (AD) में व द्धि 100 रुपये से होगी। इस प्रकार राष्ट्रीय आय (गुणक = 4) $4 \times 100 = 400$ करोड़ रुपये से बढञेगी। आय में यह व द्धि आयातों को बढ़ायेगी। अतः भुगतान शेष में कुल सुधार आयातों में प्रारम्भिक कमी के कारण आए सुधार की तुलना में कम हो पायेगा। आय में हुई व द्धि के कारा ऐसा होगा। आय में व द्धि से आयात बढ़ाने की प्रेरणा प्राप्त होती है जो आयातों में $MPM \times Y = 0.15 \times 400 = 60$ करोड़ रुपयें की व द्धि करेगा। प्रारम्भ में आयातों में कमी = 100 करोड़ रुपये तथा आयातों में प्रेरित व द्धि 60 करोड़ रुपयें। इस प्रकार भुगतान शेष में कुल सुधार केवल $100 - 60 = 40$ करोड़ रुपयें का ही हो सकेगा

अब आगे हम बन्द-अर्थव्यवस्था के ISLM मॉडल को बाह्य क्षेत्र (external sector) के साथ जोड़ कर अध्ययन करेंगे। बाह्य क्षेत्र में सन्तुलन भुगतान शेष (balance of payment or BP) में सन्तुलन को प्रकट करता है। 1950 व 1960 के दशकों से पहले सभी राष्ट्र स्थिर विनिमय दर (fixed exchange rate) को अपनाये हुए थे। इस समय तक पूंजी का आवागमन (capital flow) सीमित था। राष्ट्र भुगतान शेष में असन्तुलन को दूर करने के लिए अपनी मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों का प्रयोग इस प्रकार करते थे ताकि आय व कीमतों में परिवर्तन के द्वारा आयातों व निर्यातों में वांछित परिवर्तन किया जा सके व भुगतान शेष में सन्तुलन बनाये रखा जा सके। अर्थात आयातों व निर्यातों में ही परिवर्तन करना यह दर्शाता है कि भुगतान शेश के चालू खाते (current account) पर ही ध्यान केन्द्रित रहता था तथा पूंजी खाते की अब तक के भुगतान शेष सम्बन्धी में अवहेलना की जाती रही। परन्तु 1970 के आस-पास तथा इसके बाद पूंजी के आवागमन में तीव्र गति से व द्धि होती गई जो भुगतान शेष को असन्तुलित करने में अधिक प्रभावी होती गई। इससे विनिमय दर में परिवर्तन की आवश्यकता तीव्र होती गई।

विनिमय दर पूंजी प्रवाह में व द्धि के अतिरिक्त निम्न दो सकारात्मक प्रभावों के कारण भी स्थिर विनिमय दर के स्थान पर परिवर्तनशील विनिमय दर अपनाने के लिए बाध्य कर दिया :

परिणामतः अनेक विकसित देशों जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, फ्रांस, आस्ट्रेलिया आदि देशों ने स्थिर विनिमय दर के स्थान पर परिवर्तन विनिमय (flexible exchange rate) की नीति अपना ली। परिवर्तनशील विनिमय दर का पूंजी के आवागमन पर भी प्रभाव पड़ता है।

(1) Policy Independence and Exchange Rate Flexibility

परिवर्तनशील विनिमय दर अपनाने से नीति निर्धारक भुगतान शेष में धाटे की चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं तथा वे घरेलू उद्देश्यों (domestic goals) पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। परिवर्तनशील विनिमय दर आन्तरिक शेष (internal balance) जैसे पूर्ण रोजगार आदि तथा बाह्य शेष (external balance) जैसे भुगतान शेष में सन्तुलन आदि उद्देश्यों के मध्य सम्भावित तथा सक्षम टकराव (confict) को दूर कर सकता है। यह टकराव संलग्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है :

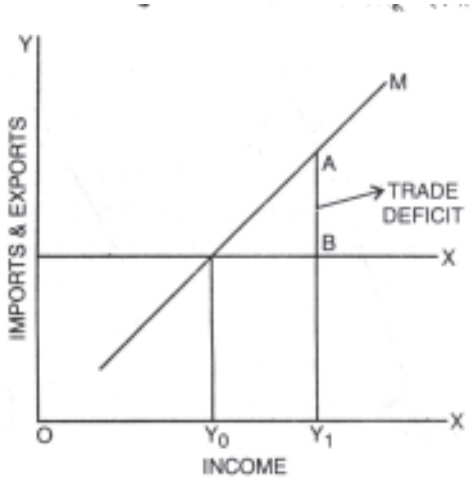

चित्र 1

चित्र १ में स्पष्ट है कि Y_0 आय का स्तर सन्तुलित स्तर है क्योंकि यहां व्यापार शेष शून्य या सन्तुलन में है। आय का Y_1 स्तर सन्तुलित नहीं कहा जा सकता क्योंकि यहां आयात (Y_1A) निर्यात (Y_1B) से अधिक है तथा व्यापार शेष में घाटा है।

स्पष्ट है कि स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत आन्तरिक शेष (inter-

nal balance) तथा बाह्य शेष (external balance) के उद्देश्यों के मध्य टकराव उत्पन्न होगा। चित्र में दी गई अवस्था के अन्तर्गत यदि व्यापार शेष के घाटे को दूर करने के लिए (बाह्य उद्देश्य) संकुचनात्मक मौद्रिक व राजकोषिय नीति अपनाते हैं तो इसेस राष्ट्रीय आय तथा रोजगार कम होगा तथा हम Y_1 आय स्तर से Y_0 की ओर अग्रसर होते हैं। इससे हमारा आनतरिक उद्देश्य सन्तुष्ट नहीं होगा। इसके विपरीत यदि घरेलू आय तथा रोजगार बढ़ाने का प्रयास करते हैं तो व्यापार शेष में घाटा बढ़ता जाता है।

इसके विपरीत परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर में स्वतः अवमूल्यन इस अनुपात से होगा कि आयात व निर्यात पुनः बराबर हो सकेंगे तथा व्यापार शेष का घाटा स्वतः दूर हो जायेगा। इसके लिए आय व रोजगार कम करने की आवश्यकता नहीं है।

(2) Flexible Exchange Rates and Insulation from Foreign Stocks

परिवर्तनशील विनिमय दर घरेलू अर्थव्यवस्था को बाह्य आर्थिक उतार-चढ़ावों (external economic shocks) से सुरक्षित (insulate) रख सकता है। जैसे विदेशी मन्दी से घरेलू निर्यात कम हो जाते हैं जो देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव छोड़ते हैं। कैसे ? इसको निम्न चित्र की सहायता से किया जा सकता है :

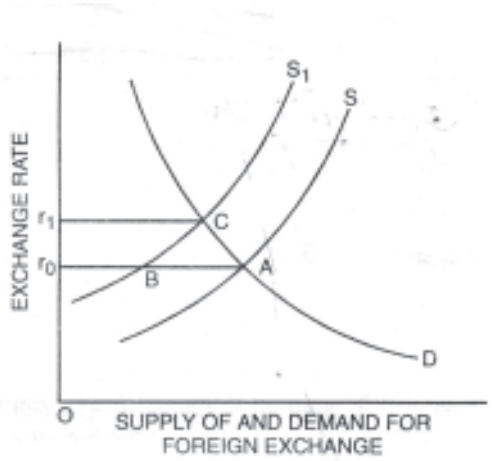

चित्र 2

चित्र २ में विदेशी विनिमय की मांग D वक्र तथा पूर्ति S वक्र द्वारा दर्शाई गई है। दोनों वक्र A बिन्दु पर काट करके r_0 विनिमय दर का निर्धारण करते हैं, तथा यहां पर विदेशी विनिमय बाजार सन्तुलन में होता है। मान लीजिये विदेशों में मदी उत्पन्न हो जाती है जिससे घरेलू निर्यात गिर जाते हैं। इससे विदेशी मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है जो S वक्र को बाईं ओर S_1 पर सकका देती है। यदि विनिमय दर r_0 पर ही स्थिर रहे तो AB के समान भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न हो जायेगा तथा बाह्य शेष (external balance) असन्तुलित रहेगा। परन्तु यदि परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली अपनाई गई है तो घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन इस प्रकार तथा इस अनुपात से होगा कि विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति स्वतः C बिन्दु पर सन्तुलन में होगी व विनिमय दर कम होकर r_1 हो जायेगी। अतः इस प्रकार के बाह्य उतार-चढ़ावों से लोचशील विनिमय दर के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था स्वतः हही सुरक्षित (insulate) रहती है।

पूंजी प्रवाह में व द्वि भुगतान शेष को बढ़-चढ़ कर प्रभावित करती रही। भुगतान शेष के सिद्धान्तों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होने लगा। दो अर्थशास्त्रियों, J.Marcus Fleming and Robert Mundell, ने इस क्षेत्र में बड़ा योगदान (large contributions) दिया। इसलिए इस मॉडल का नाम जिसका हम आगे अध्ययन करने जा रहे हैं, 'Mundell Fleming Model' पड़ा।

अध्याय-29

मुंडेल-फलैमिंग मॉडल

(Mundell-Fleming Model)

मुंडेल फलैमिंग माडॅल में कीमतों को स्थिर तथा पूंजी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गतिशील माना गया है। इसलिए इस माडॅल को"A Fixecd price model with capital mobility" के नाम से भी जाना जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी गतिशील होने के कारण ब्याज की दर का प्रभाव भुगतान शेष पर पड़ता है। घरेलू अर्थव्यवस्था में यदि व्याज की दर बढ जाती है तो विदेशी पूंजी का आगमन बढ जायेगा क्योकि कवदेशी निवेशक अधिक ब्याज कमाने के लिए इस देश के बैंको में अपनी पूंजी अधिक जमा करवायेंगें इसके भुगतान शेष में पुंजी खाते में प्राप्तियाँ (Receipts) बढ़ जायेंगी तथा भुंगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत यदि ब्याज दर कम हो जाती है तो पुंजी का निकास होता है। इसलिए पुंजी गतिशील होने के कारण भुगतान शेष के विश्लेषण में पुंजी खाते तथा ब्याज की दर को सम्मिलिम करना होगा। ऐसा हम एक बान्द अर्थव्यवस्था के परिचित ISLM मॉडल का विस्तार करके, जिसमें भुगतान शेष (Balance of Payment or BP) की व्याख्या भी साथ-साथ की जाती हो कर सकते है। ऐसा करने से IS-LM मॉडल का रूप IS-LM-BP मॉडल भी कहा जाता है। इसकी व्याख्या के लिए पहले हम एक खुली अर्थव्यवस्था में IS तथा LM वक्र ज्ञात करेंगें इसके बाद भुगतान शेष वक्र (BP curve) की व्याख्या, पूंजी की गतिशील को कम या अधिक मान कर, करेंगे।

एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था का IS वक्र

(The IS schedule for a small open economy)

वक्र किसी अर्थव्यवस्था के वास्तविक ब्याज तथा वास्तविक ब्याज दर के विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है। एक खुली अर्थव्यवस्था के वस्तु बाजार (goods market) की सन्तुलन की शर्त वही है जो एक बन्द अर्थव्यवस्था में होती है। अर्थात् राष्ट्रीय आय प्रवाह के स्त्राव इस प्रवाह के इन्जैक्शनज के बराबर होने चाहिए। एक बन्द अर्थव्यवस्था के वस्तु बाजार में सन्तुलन शर्त निम्न समीकरण (i)

द्वारा व्यक्त की जा सकती है :$I + G + X = S + M$ .....(i)

I= Investment ; G = Government budget deficit (expenditure less tax revenue) ;X = Exports; s= Saving and M = Imports

सरलता के लिए कल्पना की गई है कि सरकारी व्यय (G) आय के प्रति स्वतन्त्र है। हम मानते हैं कि बचत (S) और आयात (M) वास्तविक आय (Y) के बढते फलन हैं। अर्थात आय के बढने से S तथा M दोनों बढ़ते होते है। S तथा M पर ब्याज की दर (r) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता माना गया है। S,M तथा Y के मध्य सम्बन्ध निम्न चित्र के C भाग में दर्शाया गया है। ब्याज की दर (r) तथा विदेशी आया को दिया हुआ माना गया है। निवेश ब्याज दर से विनरीत सम्बन्ध रखता है। निर्यात (X) तथा सरकारी व्यय (G) ब्याज (r) तथा आय से अप्रभावित रहते है। $I + G + X$ का ब्याज दर (r) से सम्बन्ध चित्र 1 के भाग A में दर्शया गया हैं।

भाग (B) मे 45° कोण वाली रेखा समीकरण (i) की सन्तुलन की शर्त $(I + G + X = S + M)$ को व्यक्त कर रही है। भाग (C) में $S + M$ को Y का बढाता फलन दर्शया गया है।

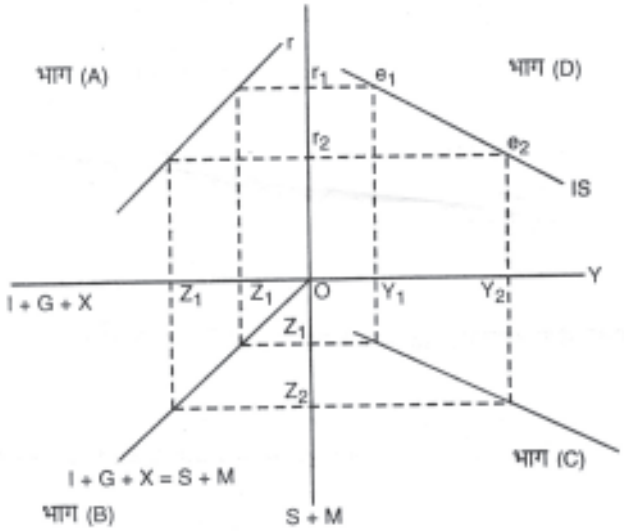

चित्र 1

अंब हम भाग (D) में IS वक्र निकाल सकते हैं इसके जिए हमें ब्याज की कोई प्रचलित दर माननी होगी। चित्र में ब्याज की दर यदि r_1 है तो यह अर्थव्यवस्था में Z_1 इन्जैक्शन (I+G+X) प्रदान करती है। वस्तु बाजार सन्तुलित होने के लिए Z_1 इन्जैक्शन Z_1 स्राव (S+M) के सामान होने चाहिए जो तभी हो सकता तब आय का स्तर Y_1 हो। भाग (D) में बिन्दु e_1 ब्याज की दर r_1 तथा आय के स्तर Y_1 के संयोग को प्रकट करता हुआ IS वक्र पर पड़ता है। r_2 जो कि r_1 से कम ब्याज की दर है अर्थव्यवस्था में निवेश की मात्रा बढ़ायेगा तथा इन्जैक्शन बढ़ Z_2 कर के सामान हो जायेंगे वस्तु बाजार में सन्तुलन के लिए स्राव Z_2 के समान होने चाहिये जो आय के Y_1 स्तर पर ही सम्भव है। इसलिए r_2 तथा Y_2 को संयोग वस्तु बाजार में सन्तुलन को प्रकट करता है जिसको e_2 प्रकट करता है। इसलिए e_2 बिन्दु IS वक्र का बिन्दु है। IS वक्र यहाँ भी नकारात्मक ढाल वाला है।

एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था LM का वक्र

(The LM Curve For a Small Open Economy)

LM वक्र वास्तविक ब्याज (r) दर तथा वास्तविक आय (Y) के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जो मुद्रा बाजार (money market) में सन्तुलन स्थापित करते है। केन्ज के विश्लेष्ण को स्वीकार करते हुए यह माना गया है कि मुद्रा की क्रय विक्रय की मांग

(money demand for transaction motives) जिसको L_1 द्वारा दर्शया गया है। आय का बढता फलन है। जबकि सट्टा उदेश्य के लिए मुद्रा की मांग जिसको L_2 द्वारा दर्शाया गया है ब्याज की दर सवे विपरीत सम्बन्ध रखती है। (inverse relationship) रखती है। ये सम्बन्ध चित्र 2 में प्रकट किये गये है।

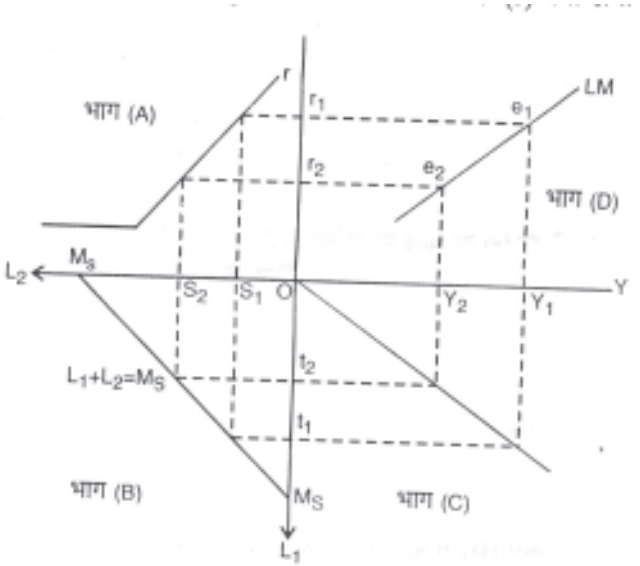

चित्र 2

मुद्रा की पूति को बाहर से निर्धारित (exogenously determined) जैसे के सरकार या मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित

हुआ माना गया है। मुद्रा बाजार में सन्तुन के लिए मुदा की मांग (L_1+L_2) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर होना चाहिए। अर्थातः

$$L_1+L_2=M_s$$

समीकरण (ii) को चित्र 4 के भाग (B) में दर्शाया गया है। तथा भाग (D) में वक्र निकाला गया है। यहां पर हमे आय के स्तर को दिया हुआ मानना होगा क्योकि आय वस्तु बाजार में निर्धारित होती है। इस दी हुई आय के स्तर पर ब्याज दर (r) क्या होगा यह यहां मुद्रा बाजार द्वारा निर्धारित किया जायेगा।

चित्र का भाग (C) दर्शा रहा है। कि जब वास्तविक आय का स्तर Y_1 होता है तो क्रय विक्रय सम्बन्धी मुद्रा की मांग t_1 होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि मुद्रा की आकी मात्रा या पूर्ति, $S_1=M_s-t_1$, सटटा उदेश्य के लिए रखी गंई है। सटटा उदेश्य के लिए मुद्रा की मांग इसकी पूर्ति (S_1) को भाग (A) के काट कर ब्याज के दा का निर्धारित करती है। r_1 ब्याज दर पर तथा Y_1 आय स्तर पर मुद्रा बाजर सन्तुलन में होता है। Y_1 तथा r_1 का संयोग भाग (D) में बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है जो LM वक्र का बिन्दु है।

Y_1 से कम आय के स्तर Y_2 पर क्रय-विक्रय के लिए मुद्रा की मांग भी कम, t_1 होगी। इसका अर्थ होगा कि मुद्रा की अब अधिक मात्रा, S_2 सटटा उदेश्य के लिए रखी जाती है। मुद्रा बाजार में सन्तुलन स्थापित करने के लिए ब्याज की दर निर्धारित e_2 होती है। r_1 तथा Y_2 का संयोग भाग (D) e_2 में बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है जो LM का कोई एक बिन्दु है। इस प्रकार नया सन्तुलन बिन्दु, e_2, पहले वाले सन्तुलन बिन्दु e_1, से नीचे तथा बाई ओर है। इन बिन्दुओं को मिलाने से LM वक्र का ढाल धनात्मक होता है।

भाग (B) में यदि मुद्रा की पूर्ति में व द्वि की जाती है जो M_sM_s रेखा बाहर की ओर सरक जायेगी तथा मुद्रा बाजार में सन्तुलन स्थापित करते हुए LM वक्र दाई ओर सरक जायेगी।

एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था का BP वक्र

(The BP Schedule for a Small Open Economy)

भुगतान शेष वक्र किसी दिये हुए विनिमय दर (exchange rate) पर वास्तविक ब्याज दर (r) के उन संयोगों को प्रकट करता है जिन पर भुगतान शेष सन्तुलन में होता है। इस विश्लेषण में भुगतान शेष के चालू खाते (current account) तथा पूंजी खाते (current account) दोनो को सम्मिलित किया गया है।

यह माना गया है कि आयात आय का बढता फलन तथा निर्यात, X, बाहर से निर्धारित (exogenously determined) होते)है। इसका अर्थ यह हुआ कि चालू खाता शेष (current-account balance), जिसको X-M द्वारा प्रकट किया जा सकता है। आय का घटता फलन होता है क्योकि आय बढ़ने से M बढ़ता हैं जो X-M को गिरा देता है। यह सम्बन्ध चित्र 3 के भाग में दर्शाया गया है। आय का यह वह स्तर जो चालु खाते में सन्तुलन दर्शाता है उसको R_0 द्वारा प्रकट किया गया है। Y_0 से अधिक आय के स्तर (Y_1) पर चालू खाते में धाटा तथा

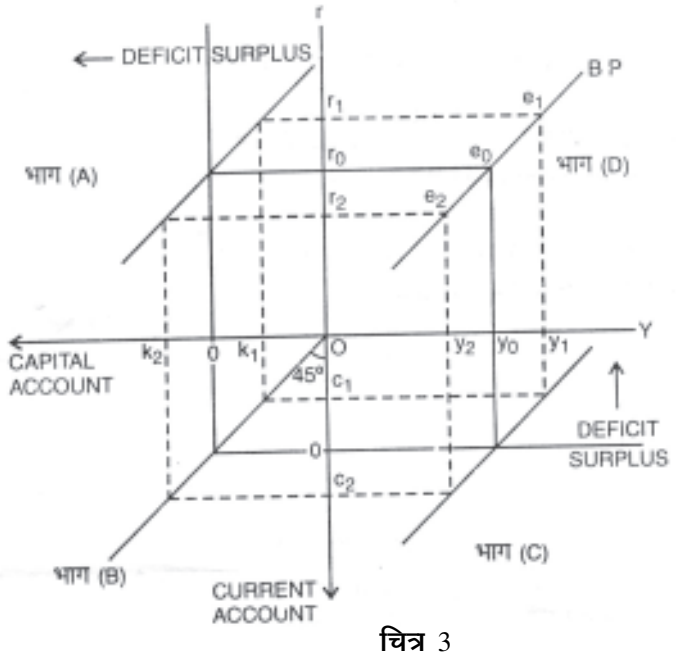

चित्र 3

इससे कम आय के स्तर (Y_0) पर चालू खाते में बचत(surplus) उत्पन्न करता है।

पुंजी खाते (surplus account) का प्रवाह मॉडल व्यक्त करता है कि पुंजी का प्रवाह घरेलु ब्याज पर (r) का बढ़ता फलन है टता फलन है। विदेशी ब्याज दर को स्थिर मानते हुए घरेलू ब्याज दर (r) तथा शुद्ध पूंजी प्रवाह (net inflow of capital) के मध्य सम्बन्ध चित्र के भाग (A) में दर्शाया जा सकता है। r_0 ब्याज की धरेलू दर पूंजी खाते में सन्तुलन दर्शा रही है।

r_0से अधिक ब्याज की दर (R_1) पर पूंजी खाते में बचत (पूंजी का शुद्ध आगमन, net inflow of capital) तथा r_0 से कम ब्याज दर (r_2) पर पूंजी खाते में घाटा (Deficit in the capital account) उत्पन्न करेगा जो पूंजी का शुद्ध निकास (net outflow of capital) उत्पन्न करेगा।

हम जानते हैं कि भुगतान शेष में सन्तुलन के लिए चालू खाते में हुए घाटे (deficit) को पूंजी खाते में इसके बराबर की बचत (surplus) द्वारा पूरा किया जात है। इसी प्रकार चालू खाते की बचत पूंजी खाते के धाटे को पूरा करती है। यह सम्बन्ध चित्र (B) के भाग 45° में को रेखा द्वारा दर्शाया गया है जो पूंजी खाते तथा चालू खाते के शुन्य शेष से होकर गुजराती है।

अब हम चित्र के भाग (D) शेष वक्र (BP) को निकाल सकते है। BP वक्र Y_0तथा r_0 के संयोग के अन्दर से गुजरेगा।

चित्र के भाग (C) में स्पष्ट है कि Y_0 से अधिक आय पर चालू खाते में घाटा रहेगा जो C_1के समान होगा जिसको पूंजी खाते में इसके बराबर की बचत (K_1) द्वारा पूरा करना आवश्यक है ताकि भुगतान शेष में सन्तुन स्थापित किया जा सके। पूंजी खाते में K_1 बचत अधिक ब्याज की दर r_1 पर ही सम्भव हो सकती है। इसलिए r_1तथा Y_1का संयोग, जिसको e_1 द्वारा भाग (D) में दर्शाता गया है, भुगतान शेष में सन्तुलन करेगा। इसके विपरीत क्रिया कम आय स्तर Y_2 पर देखी जा सकती है जो BP वक्र के e_2 बिन्दु की स्थापना करता है। भाग (D) में इन बिन्दुओं (e_0, e_1तथा e_2) का मिलाने से BP वक्र निकलता है जिसका ढाल धनात्मक है।

एक महत्वपूर्ण बाम ध्यान देने की यह BP वक्र LM वक्र से कम या अधिक ढाल वाला हो सकता है। । इन वक्रो के सापेक्षिक ढाल इनके फलनो के निर्धारकों पर निर्भर करते है। उदाहरणतः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी जितनी अधिक गतिशील अर्थात ब्याज की दर में परिवर्तन से पूंजी का आवागमन अपेक्षाक त अधिक प्रभावित होता हैं। होगी उतना ही पुंजी खाते के वक का ढाल कम होगा BP तथा वक उतना ही चपटा या कम ढाल वाला होगा अपवाद की सिथति में जहां पूंजी पूर्णतः गतिशील जब धरेलू तथा विदेशी परिसम्पतियां (assets) एक दूसरे के पूर्ण प्रतिस्थापन्न हो वहां (vertical) वक क्षैतिलीय होगा दूसरी अन्तिम स्थिति में तब पूंजी पुर्णतः गतिहीन होती है तो BP का ढाल लम्बन्त् (vertical) होगा क्योकि ब्याज दर में परिवर्तन पूंजी के प्रवाह को प्रभावित नहीं करता है। इस अवस्था में पूंजीं खाते का BP को प्रभावित नहीं करता।

उनरोक्त BP वक्र इस मान्यता के आधार पर निकाला गया है कि विनिमय दर स्थिर रहती है। परन्तु यदि विनिमय दर में परिवर्तन हो जामा है तो इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? मार्शल-लनर शर्त की विद्यमनता स्वीकार करते हूए यदि विनिमय दर गिर (depreciate) जाता है तो इससे निर्यात बढेंगे तथा आयात कम हो जायेगे। इसका परिणाम यह होगा कि चालू खाते में सन्तुलन पहले से आय स्तर (Y_1) जो (Y_0) से अधिक है उस पर हो सकेगा। अर्थात चित्र के भाग (C) में चालू खाता वक्र दाई ओर सरक जायेगा परन्तु पूंजी खाते वक्र पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योकि इस पर तो केवल ब्याज दर का प्रभाव पडता है। इसका परिणाम यह होगा के वक्र दाई ओर सरक जायेगा। अर्थात दिये हुए दर तथा पूंजी खाते कह दी गई अवस्था पर भुगतान शोष में सनतुलन पहले की तुलना में अधिक वास्तविक आय स्तर पर प्राप्त किया जा सकता है।

परिवर्तनशील विनिमय दर सहित मुंडेल फलैमिंग मॉडल में सन्तुलन

(Equilibrium in the Mundel-Fleming Model with Floating Exchange Rates)

मुंडेल फलैमिंग मॉडल में विनिमय दर को परिवर्तनशील मानते हूए तीनो वक्रों को एक साथ रख कर सन्तुलन किया जा सकता है। BP वक्र पर परिवर्तनशील विनितय दर मान कर निकाला गया है। इसको चित्र 4की सहायता से प्रकट किया जा सकता है।

चित्र 5 दर्शा रहा है कि मॉडल में सामान्य सन्तुलन E बिन्दु पर स्थापित होता है जहॉ तीनों वक अर्थात IS,LM तथा परस्पर काट रहे होते है।

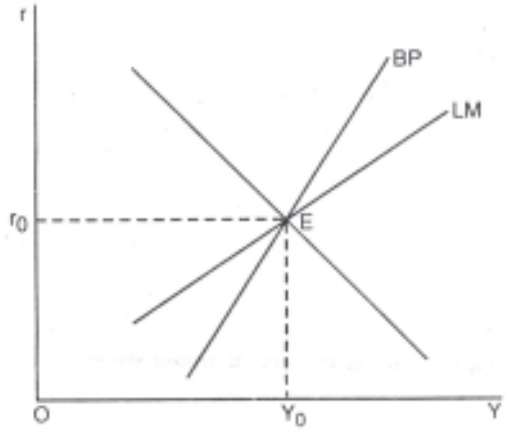

चित्र 4

जंब विनिमय दर परिवर्तनशील होता है तो चित्र 4 की अवस्था हमेशा प्राप्त की जा सकती है। इसका कारण यह है कि विनिमय दर इस प्रकार समन्वय (adujust) करता है कि BP वक्र वहां से होकर गुजरेगा जहां IS तथा LM वक एक दुसरे को काट रहे होते है। जब तक यह अवस्था प्राप्त नहीं हो लेती उस समय तक विनिमय दर परिवर्तित होता रहेगा तथा वक को दाये या बायें सरकाता रहेगा और BP में परिवर्तन करता रहेगा।

मौद्रिक विस्तार का मुंडेल फलैमिंग मॉडल में प्रभाव

(Effect of Monetary Expansion in Mundell-Fleming Model)

मुद्रा की मात्रा में व द्वि से LK वक दाई ओर सरकता है तथाा ब्याज की दर गिरती है। इसका मुंडेल फलैमिंग में सनतुलन पर क्या प्रभाव पडेंगा ? यह प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है। कि पुंजी कितनी गतिशील (mobile) हैं इसकी व्याख्या दो हद की मान्याताओं के आधार पर की ला सकती है। एक हद की मान्यता यह हो सकती है। कि पूंजीं पुर्णतः गतिशील है तथा दूसरी माल्यता यह हो सकती है कि पूंजी पूर्णतः गतिहीन हैः

(a) Perfectly immobile capital

पूंजी पूर्णतः गतिशील होने की अवस्था में किसी स्थिर ब्याज दर पर पूंजी का असीमित प्रवाह सम्भव है अर्थात् इस स्थिर ब्याज दर के साथ आय (Y) के विभन्न स्तरो पर BP सन्तुंलन में हो सकता है। इस अवस्था में वक क्षैतिजीय (horizontal) या शुन्य ढाल वाला होगा। इसकी व्याख्या चित्र 5 में कही गई है जहां प्रारम्भिक सन्तुलन E_1 बिन्दु पर है जहां प्रारम्भिक IS_1,LM_1 तथा वक एक दूसरे काट रहे है इस अवस्था में Y_1 आय का स्तर तथा r_1 ब्याज की दा का निर्धारण होता है।

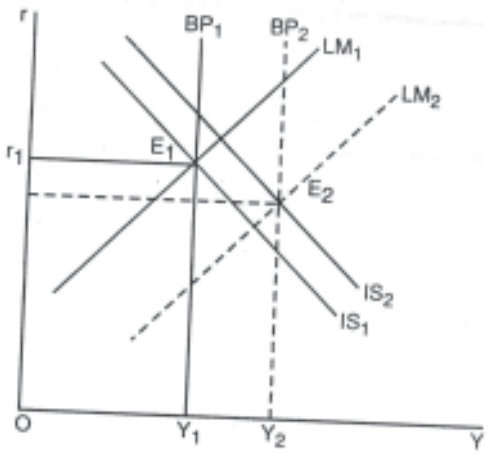

चित्र 5

अब यदि मुद्रा की मात्रा में व द्वि कर दीं जाती है तथा पुंजी पुर्णतः गतिहीन होती ह। तो इसका आय तथा ब्याज दर पर क्या प्रभाव होगा। इससे LM_1 वक सरक LM_2 कर बन जायेगा जो IS_1 वक को काट कर अल्पकाल में विनिमय दर के न बदलंने के कारण भुगतान शेष में धाटे के साथ सन्तुलन स्थापित करता है ब्याज दर गिरने के कारण Y में व द्वि आयातों को बढ़ाती है तिससे धाटे में धाटा उत्पन्न होता है इस अवस्था में यउि परिवर्तन शील विनिमय दर है तो विनिमय दर कगर जायेगी तथा इससे निर्यातों में व द्वि के कारण IS वक दाई ओर सरकेगा तथा विनिमय दर में गिरावट के कारण अब BP अधिक आय Y_2 पर सन्तुलित

हो सकेगा। इस प्रकार अन्ततः E_2 बिन्दु पर सन्तुलन हो सकेगा जहां IS_2 तथा BP_2 वक्र LM_2 को काटते है। यहां rगिर जायेगा परन्तु इतना नहीं जितना अल्पकाल में स्थिर विनिमय दर की अवस्था में गिरता। उत्पादन परिवर्तनशील विनिमय दर की अवस्था में अधिक बढ़ता है क्योकि स्थिर विनिमय दर की अवस्था निर्यात नहीं बढ़ते तथा IS वक्र दाई ओर नहीं सरकता।

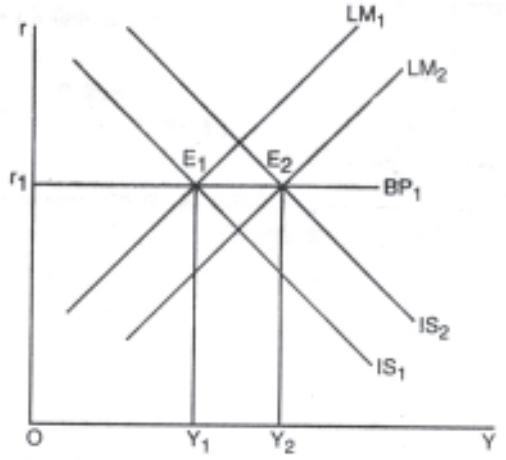

चित्र 6

(b) Perfectly mobile capital

जब पूंजी पूर्णतः गतिशील होती है तो मुद्रा की मात्रा में व द्वि LM_1 वक्र की दाई ओर LM_2 सरका देगी जिससे ब्याज दर गिरता है तथा आय बढ़ती है (IS_1 को LM_2 जहां काटती है) । आय बढने से आयात बढते हैं तथा जिससे भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न होता है। असके साथ ही ब्याज दर गिरने से पूंजी की निकासी होती हैं। भुगतान शेष में धाटा अधिक उत्पन्न हो जाता है जिससे विनिमय दर गिर जाता है जो निर्यातों में व द्वि के द्वारा IS वक्र को दाई ओर सराका देता है जिससे आय में व द्वि होती है तथा कय विकय की मुद्रा की मांग बढ जती है तथा ब्याज दर बढता है इस विश्लंषण की व्याख्या चित्र 6 में की गई है। IS वक्र दाई ओर इतना सरकता कि ब्याज दर में व द्वि E_2 पर अन्तिम सन्तुलन प्राप्त करने के लिए अपने पूर्वत् दर पर पहुंख जाती है तिस पर पपंजी पुर्णतः गतिशील है। इसका अर्थ कि विनिमय दर अकधक नीचे गिरेगा ताकि वक्र को नियातों में व द्वि द्वारा काफी दाई ओर सरका सके। इससे निर्यातों में व द्वि तथा आयातो कमी अधिक होने से देश अपने चालू खाते में बचत (surplus)उत्पन्न कर सकेगा मथा असका समन्वय पूंजी निकासी से होगा।

राजकोषिय विस्तार का प्रभाव

(Effect of Fiscal Expansion)

मुंडेल-राजकोषिय विस्तार का प्रभाव भी दो अवस्थाओ में प्रकट करता है : (a) जंब पूंजी पूर्णतः गतिहीन तथा, (b) जब पूंजीपूर्ण्सतः गतिशील हो।

(a) Capital cannot move

राजकीय विस्तार से अभिप्राय सरकारी व्यय (g) आदि में व द्वि आदि से राजकोषिय धटा उत्पन्न करता है। इससे IS प्रारम्भिक वक्र दाई ओर सरकता है तथा स्थिर LM_1 के आय मिलकर अल्पकालीन सन्तुलन स्थापित करता है जिस पर अधिक आय तथा उंचा ब्याज दर उत्पन्न हो जाता है क्योकि कार्य में व द्वि से आयातो में व द्वि हो जाती हैइस धाटे के कारण पूंजी का प्रवाह स्थिर रहते हुए विनिमय दर गिर जाता है। जो वक्र को IS वक्र मे सरका देता है जैसा कि चित्र 7 में दर्शाया गया है:

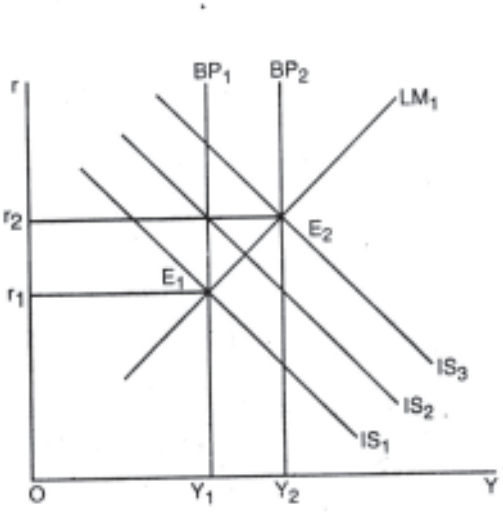

चित्र 7

पूजी पूर्णतः गतिहीन होने के कारण वक्र पुर्णतः लम्बवत् (BP_1) होगा। आय का स्तर (Y_2) पहुंचने के कारण चालू खाते में BP धाटे में चला जाता है जिससे विनिमय दर मे गिरावट हो जाती है जो BP को पर पुरः सन्तुलन में पहुंचा देता है। Y में व द्वि से मुद्रा की मांग

में वृ,द्वि हो जाती है जो r को बढा कर r_2 पर पहुंचा देती।

(b) Capital perfectly mobile

जंब पूंजी पूर्णतः गतिशील होती है तो वक्र क्षैतिजीय (horizontal) होता है चित्र 10 में दर्शाया गया है कि LM_1 वक्र स्थिर रहते हुए राजकोषिय विस्तार के कारण IS_1 वक्र दाई ओर सरक कर पर स्थापित हो जाता है जो प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु E_1 को E_2 पर सरका देता है। अर्थात ब्याज दर में तथा Y में अल्पकालीन वृद्वि हो जाती । ब्याज दर में हुई वृद्वि के कारण पुंजी का आगमन असीमित मात्रा में होने लगता है। दूसरी ओर आय में वृद्वि के कारण चालू खाते में धाटा उत्पन्न हो जाता है। परन्तु पूंजी खाते में बचत (surplus) r_2 ब्याज की दर के कारण चालू खाते के धाटे से अधिक हो जाता है। अतः भुगतान शेष में बचत उत्पन्न हो जाती है। इसको दुर करने के लिए विनिमय दर में व द्वि की जाती है। इसको दूर करने के लिए विनिमय दर मे व द्वि (over-valuation) की जाती है जो IS_2 को पुनः IS_1 पर साका देता है तथा E_1 पर स्थाई सन्तुलन बना रहता है। जैसा कि चित्र 8 में दर्शाया गया है। इस अवस्था में LM तथा BP वक्र में कोई परिवर्तन न होने के कारण प्रारम्भिक तथा अन्तिम सन्तुलन पर ही बना रहता है। IS_1 वक्र वापिस IS_1 में समा जाता है तथा राजकोषिय विस्तार प्रभावित सिद्व होता है।

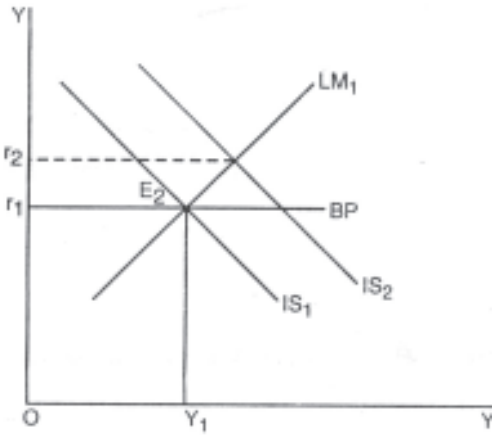

चित्र 8

अध्याय-30

मुद्रा स्फीति के प्रभाव
(Effect of Inflation)

मुदा स्फीति के प्रभावों का अध्ययन करने से पहले इसकी किस्मों का समझना अति आवश्यक है :

मुद्रा-स्फीति के प्रकार
(types of inflation)

मुद्रा-स्फीति विभिन्न प्रकार की होती है। मुद्रा-स्फीति के मुख्य प्रकार निम्नलिखित है :-

A. गति के आधार पर मुद्रा-स्फीति (Inflation on the basis of Rate or Speed)

1. **रेंगती मुद्रा-स्फीति** (Creeping Inflation) - जब वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें समय के साथ-साथ धीरे-धीरे बढ़ें तो उन्हे रेंगती मुद्रा-स्फीति कहा जाता है। कीमत बढ़ने की यह गति औसतन तीन प्रतिशत व इससे भी कम होती है। रेंगती मुद्रा-स्फीति आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य व महत्त्वपूर्ण होती है। इससे अर्थव्यवस्था को लाभ ही प्राप्त होते हैं।

2. **चलती मुद्रा-स्फीति** (Walking Inflation) - मुद्रा-स्फीति की दर में जब कुछ तेजी आती है तो उसको चलती मुद्रा-स्फीति कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कीमतों के बढ़ने की दर औसतन तीन प्रतिशत से चार प्रतिशत वार्षिक होती है। इसको नियन्त्रित करना अनिवार्य होता है ताकि मुद्रा-स्फीति गम्भीर रूप धारण न कर सके।

3. **दौड़ती मुद्रा-स्फीति** (Running Inflation) -इस प्रकार की मुद्रा-स्फीति उस समय होती है जब कीमतें बहुत तीव्र गति से बढ़ने लगें। कीमतों के बढ़ने की दर 8 प्रतिशत से 11 प्रतिशत वार्षिक होती है। दौड़ती मुद्रा-स्फीति स्थिर आय वाले कर्मचारियों, श्रमिकों व गरीब वर्ग के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। इसका आय के वितरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

4. **सरपट दौड़ती हुई या अति मुद्रा-स्फीति** (Galloping or Hyper Inflation) -इसके अन्तर्गत वस्तुओं की कीमतें अति तीव्र गति से बढ़ती हैं। कीमतें बढ़ने की कोई सीमा नहीं होती। कीमतें बढ़कर आसमान छूने लगती हैं। दिन प्रतिदिन व घण्टा प्रति घण्टा कीमतें बढ़ने लगती हैं। उसी दर से मुद्रा का मुल्य कम हो रहा होता है। यहां तक कि लोगों का करेन्सी में विश्वास उठने लगता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी में इस प्रकार की मुद्रा-स्फीति हुई थी। होटल से लोग चाय पी कर बाहर निकलते तो चाय के प्याले की कीमत बढ़ी मिलती थी।

B. प्रक्रिया के आधार पर मुद्रा-स्फीति **(Inflation on the basis of Process)**

1. **बजट घाटा-प्रेरित स्फीति (Deficit Induct Inflation)** -मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में सरकारें बहुत से आर्थिक व सामाजिक कार्य स्वयं करती है। अतः उनका व्यय हमेशा आय (Revenue)से अधिक रहता है। सरकार इस अधिक व्यय

को केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर पूरा करती है। केन्द्रीय बैंक नये करेंन्सी नोट छाप कर सरकार की मांग को पूरा करता है। इस कारण मुद्रा की पूर्ति उत्पादन में व द्धि से कहीं ज्यादा बढ़ जाती है जो मुद्रा-स्फीति को जन्म देता है।

2. **वेतन-प्रेरित स्फीति** (Wage-induced Inflation) -श्रमिक संघ मजदूरी दर बढ़वाने में सफल रहते हैं। जो उत्पादन लागत को बढ़ाता है। श्रमिकों की मजदुरी उनकी उत्पादकता से अधिक होने पर मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करती है। उत्पादन उस दर से नहीं बढ़ता जिस दर से मजदूरी बढ़ती है। यह वेतन प्रेरित स्फीति को जन्म देता है।

3. **लाभ प्ररित स्फीति** (Profit -induced Inflation) -उत्पादक बाजार की अपूर्णताओं (Mark Imperfection) जैसे एकाधिकार या अल्पाधिकार का अवसर पा कर अपने लाभों को असामान्य रूप से बढ़ा लेते हैं। यह तभी हो सकता है जब वे वस्तुओं की कीमतों में व द्धि करें। अतः इस कारण भी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है।

4. **अवरोध गति मुद्रा-स्फीति** (Stagflation) - 1970 के तुरंत बाद विश्व के कुछ देशों में एक विचित्र स्थिति पैदा हुई जिसमें माँग गिरने के कारण उत्पादन व रोजगार गिर रहा था परन्तु कीमतें बढ़ रही थीं। माँग गिरने पर सामान्यतः कीमतें गिरती हैं। परन्तु इस कारण उत्पादन में रूकावटें बनी रहती हैं। मजदूरी व कीमतें बढ़ती हैं। परन्तु उत्पादन में गतिरोध बना रहता है, जो अवरोध गति मुद्रा-स्फीति कहलाता है।

C. सरकारी नियन्त्रण के आधार पर (On the basis of Government Control)

1. **खुली मुद्रा-स्फीति** (Open Inflation) -ऐसी परिस्थिति जहाँ कीमतों के बढ़ने पर कोई सरकारी नियन्त्रण न हो खुली मुद्रा-स्फीति कहलाती है। इसके अन्तर्गत माँग व पूर्ति की प्रक्रिया की कीमतों का निर्धारण करती है। खुली मुद्रा-स्फीति गम्भीर रूप धारण कर सकती है।

2. **दबी मुद्रा-स्फीति** (Surpressed Inflation) -ऐसी मुद्रा-स्फीति जिसमें सरकार अपने प्रशासिनक उपायों जैसे राशनिंग कीमत नियंत्रण, वित्तीय सहायता आदि के द्वारा बढ़ती हुई कीमतों को दबा देती है या रोक देती है, उसे दबी मुद्रा-स्फीति कहते हैं। जैसे भारत में गेहूँ, पैट्रोल आदि की कीमतों पर सरकार नियन्त्रण रखती है। भविष्य में यदि सरकारी नियंत्रण को समाप्त कर दिया जाये तो कीमतें तेजी से बढ़ने लगती हैं। बहुत से अर्थशास्त्रियों जैसे फ्रीडमैन आदि ने दबी मुद्रा-स्फीति को खुली मुद्रा-स्फीति की अपेक्षा ज्यादा हानिकारक बताया है- क्योंकि राशनिंग व कीमत नियन्त्रण के फलस्वरूप चोर-बाजारी, भ्रष्टाचार तथा रिश्वत में व द्धि होती है।

D. राजनीतिक स्थिति के आधार पर मुद्रा-स्फीति (Inflation on the basis of Political Condition)

1. **युद्धकालीन मुद्रा-स्फीति** (War Time Inflation) -युद्ध के अन्तर्गत सरकार बहुत सी वस्तुओं जैसे उपभोग पदार्थ आदि को खरीद कर अपने स्टाक में व द्धि करती है। इसके परिणामस्वरूप एक तो वस्तुओं की पूर्ति कम हो जाती है और दूसरे सरकार मुद्रा का प्रसार अधिक कर देती है। इतना ही नहीं लोगों में असुरक्षा व अनिशितता बढ़ती हैं। ये सभी मुद्रा-स्फीति को बढ़ाते हैं। इसको युद्ध कालीन मुद्रा-स्फीति कहा जाता है।

2. **युद्धोत्तर मुद्रा-स्फीति** (Post-Ware Inflation) -युद्ध के दौरान गाड़ियों, मशीनों, पुलों, इमारतों आदि के नष्ट्र होने के कारण सरकार उनका निर्माण करती है। इसलिए वस्तुओं व साधनों की माँग बढ़ती है। परन्तु उत्पादन अपेक्षाकृत कम बढ़ता है। इसलिए कीमतें तेजी से बढ़ने लगती हैं। भारत-पाक युद्ध के बाद भारत में कीमें बहुत तीव्र गति बढ़ी है।

3. **शांतिकालीन मुद्रा-स्फीति** (Peace Time Inflation) -आार्थिक विकास शांति काल के अंतर्गत ही सम्भव है। इसलिए आर्थिक योजनाओं के माध्यम से सरकारें घाटे का बजट आदि अपना कर भारी मात्रा में निवेश खर्च करती हैं। इससे मुद्रा का अधिक प्रसार होता है और वस्तुओं की माँग बढ़ती हैं। यह मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करती है जिसको शांतिकालिन मुद्रा-स्फीति कहा जाता है।

E. क्षेत्र के आधार पर मुद्रा-स्फीति (Inflation on the basis of Area)

1. **क्षेत्रिय मुद्रा-स्फीति (Sectoral Inflation)** -जब अर्थव्यवस्था के किसी एक भाग में कीमतें बढ़ रही हों तो उसे क्षेत्रिय या खण्डीय मुद्रा-स्फीति कहतें हैं।

2. **राष्ट्रीय मुद्रा-स्फीति (National Inflation)** -जब मुद्रा-स्फीति सारे राष्ट्र में व्याप्त हो तो उसे राष्ट्रीय मुद्रा-स्फीति कहतें हैं।

मुद्रा-स्फीति के प्रभाव

(Effect of Inflation)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सी० एन० वकील के अनुसार मुद्रा-स्फीति की तुलना एक डाकू से की जा सकती है। दोनों लूटते हैं, परन्तु अन्तर इतना है कि डाकू दिखाई देता है, मुद्रा-स्फीति दिखाई नही देती। डाकू एक समय-अवधि में कुछ एक को लुटता है, परन्तु मुद्रा-स्फीति सारे राष्ट्र को लूटती है, डाकू को अदालत में खड़ा किया जा सकता है, परन्तु मुद्रा-स्फीति सारे राष्ट्र को लुटती है, डाकू को अदालत में खड़ा किया जा सकता है, परन्तु मुद्रा-स्फीति कानूनी है। मुद्रा-स्फीति देश में आर्थिक व सामाजिक उथल-पुथल मचा देती है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रभाव इस प्रकार हैं:

1. **उत्पादन और विकास पर प्रभाव** (Effect on Production and Development)- यदि अर्थव्यवस्था में साधन बेरोजगार हैं तो कीमत स्तर का धीमी गति से बढ़ना रोजगार और विकास दर के लिए टॉनिक का कार्य करेगा। कीमतों के बढ़ने से उत्पादकों के लाभ बढ़ेगें जिससे प्रेरित होकर वे उत्पादन बढ़ाएंगे। राष्ट्रीय आय और रोजगार दोनों में व द्धि होगी। परन्तु वास्तविक मुद्रा-स्फीति पूर्ण रोजगार प्राप्ति के बाद प्रारम्भ होती है। वास्तविक मुद्रा-स्फीति के उत्पादन पर गंभीर और नकारात्मक प्रभाव देखे जा सकते हैं। क्योंकि मुद्रा-स्फीति बचत और पूँजी निर्माण पर बुरा प्रभाव छोड़ती है। यह सट्टेबाजी को बढ़ावा देती है, संग्रह को बढ़ाती है। जो साधन उत्पादन कार्यो में लगने थे उनका दुरूपयोग होता है।

2. **आय वितरण पर प्रभाव** (Effects on Distribution of Income) - यदि सभी लोगों की मौद्रिक आय में व द्धि दर कीमत-स्तर में हुई व द्धि दर के समान है तो देश में आय बँटवारे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उदाहरणतः यदि कीमत स्तर में की 100% व द्धि से बढ़े तो इससे किसी की भी क्रय शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। इसलिए ऐसी परिस्थिति में आय के वितरण पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा। पंरन्तु यदि कुछ लोगों की आय कीमत-स्तर से अधिक बढ़ती है उनको लाभ होगा अर्थात् आय का वितरण उनके हक में होगा। जिनकी आय अपेक्षाक त कम बढ़ती है उनको हानि होगी। ऐसे मजदूर, कर्मचारी और निर्धन वर्ग के लोग होते हैं जिनकी मौद्रिक आय लगभग स्थिर रहती है।

3. **ऋणि और ऋणदाता** (Debtors and Creditors) - मुद्रा-स्फीति का प्रभाव दोनो प्रकार की श्रेणियों(ऋणी, ऋणदाता) पर अलग-अलग पड़ेगा। मुद्रा-स्फीति से ऋणदाता को हानि होगी क्योंकि जब ऋणी उसकी राशि वापिस लौटाने आएगा तो मँहगाई के कारण उस राशि का वास्तविक मूल्य कम रह जाता है। ऋणी को लाभ होगा क्योंकि उसके द्धारा कर्ज चुकाने के लिए दी गई राशि का वास्तविक मूल्य कम रह जाता है।

4. **निवेशकत्ताओं पर प्रभाव** (Effects on Investors) - मुद्रा-स्फीति के दौरान जो लोग ब्याज कमाने के लिए बांड व डिबैन्चरज में निवेश करते है उन्हे हानि होती है और वे इनमें निवेश करना पंसद नहीं करते। इसके विपरित लोग शेयर आदि में पूँजी पंसद करते है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कीमते बढ़ने पर हिस्सों पर अधिक लाभ अर्जित होता है।

5. **किसानो पर प्रभाव** (Effects on Farmers) - किसान अधिकतर ऋणी होते हैं और मुद्रा-स्फीति के दौरान ऋणियों को लाभ होता है। अतः किसानों को लाभ होगा। परंतु दुसरे द ष्टिकोण से देखा जाए तो मालूम पड़ेगा कि जिन पदार्थो को किसान खरीदता है- जैसे कपड़ा, जुता, लोहा, सीमेन्ट, मशीनरी आदि इन पदार्थो की कीमतें अनाज आदि (जो किसान बेचता है) की कीमतों से कहीं अधिक बढ़ती हैं। इस कारण मुद्रा-स्फीति के अंतर्गत व्यापार की शर्ते किसानों के हित में नहीं रहतीं।

6. **निश्चित आय के वर्ग पर प्रभाव** (Effects on Fixed Saliried People) - बन्धी आय वाले कर्मचारी जैसे मजदूर, अध

यापक, क्लर्क आदि मुद्रा-स्फीति के अंतर्गत सबसे अधिक हानि उठाते हैं। क्योंकि वस्तुओं की कीमतें बढ़ती रहती हैं पर इनकी आय बहुत कम बढ़ती है। इसलिए इनकी वास्तविक आय गिर जाती है।

7. **बचत पर प्रभाव** (Effects on Saving) - बचत पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि कीमतें बढ़ने के कारण लोगों को वस्तुओं पर अधिक खर्च करना पड़ता है। मुद्रा का मूल्य गिरता रहता है। इसलिए बचत करने की शक्ति व इच्छा दोनों कम हो जाती है।

8. **भुगतान सन्तुलन पर प्रभाव** (Effects on Payments) - मुद्रा-स्फीति से वस्तुएँ महँगी हो जाती हैं। इस कारण निर्यात गिर जाते हैं व आयात बढ़ते हैं। इसके फलस्वरूप भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल (Unfavourable Balance of Payments) हो जाते हैं।

9. **बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं पर प्रभाव** (Effects on Payments) - इन संस्थाओं पर मुद्रा-स्फीति का अच्छा प्रभाव पड़ता है क्योंकि उत्पादकों तथा व्यापारियों की आय बढ़ने के कारण व अधिक नकदी जमा करते हैं। और अधिक लेते हैं। अर्थात इन संस्थाओं का व्यवसाय बढ़ता है। इस कारण इनके लाभ भी बढ़ते हैं।

10. **राशनिंग** (Rationing) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत सामान्य उपभोग की वस्तुएँ महँगी हो जाती हैं। इसलिए सरकार गरीब वर्ग के कल्याण के लिए राशन की दुकानें आदि शुरू कर देती है।

11. **सरकार पर प्रभाव** (Effects on Government) - सरकारें भी मुद्रा-स्फीति की मार से अछूती नहीं रहतीं। जब कीमतें बढ़ती हैं तो सरकार को वस्तुएं , सेवाएँ व कच्चा माल बढ़ी हुई कीमतों पर खरीदना पड़ता है। इस कारण सरकार को पहले से अधिक खर्च करना पड़ता है। खर्चे पूरे करने के लिए जब सरकार अधिक कर लगाती है तो जनता इसको पसंद नहीं करती। इससे राजनीतिक अस्थिरता भी आ सकती है।

12. **नैतिक प्रभाव** (Moral Effects) - मुद्रा-स्फीति की अधिक मार गरीब वर्ग पर पड़ती है। समस्या भूखे मरने तक आ पहुँचती है। जब व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती तो वह अनैतिक कार्य जैसे चोरी, तस्तकरी और काला बाजारी जैसे धँधे करने लग जाता है।

मुद्रा-स्फीति का आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव

(Favourable Effects of Inflation on Economic Development)

मुद्रा-स्फीति निम्नलिखित से आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव छोड़ती है-

(i) उत्पादन में व द्धि (Increase in Production) कीमतें बढ़ते रहने से उत्पादकों में आशावादी वातावरण बना रहता है। वे भविष्य में अधिक लाभ की आशाँए लगाते हैं। इसलिए वे अधिक निवेश करते हैं। इस कारण उत्पादन बढ़ता है जिससे आय व रोजगार का स्तर बढ़ता है

(ii) बचत में व द्धि (Increase in Saving) मुद्रा-स्फीति से पूँजीपतियों को गरीब वर्ग की अपेक्षा अधिक लाभ पहुँचता है। अमीर और अधिक अमीर व गरीब और अधिक गरीब होता जाता हैं अमीर वर्ग की बचत प्रव ति अधिक होने के कारण देश की कुल बचत बढ़ती है क्योंकि मुद्रा-स्फीति में पूँजीपतियों व अमीरों की आय बढ़ी है। देश की बचत बढ़ने से निवेश भी बढ़ता है।

(iii) पूँजी निर्माण में व द्धि (Increase in Capital Formation) मुद्रा-स्फीति में पूँजी निर्माण की प्रक्रिया (Process of capital formation) को बल मिलता हैं। कीमतें बढ़ने के कारण लोगों का वास्तविक उपभोग कम हो जाता है। वास्तविक उपभोग

कम होने से वास्तविक बचत बढ़ जाती है। क्योंकि बढ़ने से राष्ट्र की वास्तविक आय या उत्पादन कम नहीं हो सकता। (Y= C +S) इस प्रकार हर प्रकार से बचत बढ़ती है। कीमतें बढ़ती रहने के कारण निवेश भी बढ़ता है जो पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र कर देता है।

(iv) रोजगार में व द्धि (Increase In Employment) कीमतें बढ़ने के कारण रोजगार भी बढ़ता है क्योंकि उत्पादन कार्य बढ़ते है।

(v) व्यर्थ पड़े साधनों का प्रयोग (Use of Idle Resources) मुद्रा-स्फीति के अर्न्तगत लाभ की आशा में सभी बेकार पड़े साधनों का उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने लगता है। इससे देश की देने क्षमता बढ़ती है। यह आर्थिक विकास का ही एक पहलू है।

(vi) उत्पाकता में व द्धि (Increase in Productivity) मुद्रा-स्फीति के कारण साधनों की सीमांत व औसत उत्पादकता (Productivity) बढ़ती जाती है। इससे देश का उत्पादन व आय बढ़ती है।

(vii) प्रति व्यक्ति आय में व द्धिर (Increase in per Capital Income) मुद्रा-स्फीति के अर्न्तगत लोगों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है क्योंकि राष्ट्रीय उत्पादन व आय में तीव्र व द्धि होती है।

मुद्रा-स्फीति के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव

(Unfavourable Effects of Inflation on Economic Development)

कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे (Singer) हैबरलर आदि निम्न आधार पर मुद्रा-स्फीति के आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव मानतें हैं:

(i) प्रतिकूल व्यापार शेष (Unfavourable Balance of Trade) कीमतें बढ़ती रहने के कारण निर्यात कम व आयात बढ़ जाते है। इससे भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है। यह देश पर विदेशी ऋण को बढ़ाता है जो हानिकारक है।

(ii) आथिक असमानता में व द्धि (Increase in Inequality of Income) मुद्रा-स्फीति में अमीर और अधिक अमीर व गरीब और गरीब होता जाता है। दोनों वर्गो के मध्य बढ़ती यह खाई सामाजिक तनाव का कारण बनती है।

(iii) काले धन में व द्धि (Increase in Black Money) मुद्रा-स्फीति मुनाफाखोरी व भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। क्योंकि मुद्रा-स्फीति में आर्थिक क्रियाँए अधिक व तीव्र गति से बढ़ती रहती है, इसलिए ऐसा करने के अधिक अवसर उपलब्ध होते है। इससे काले धन में भी व द्धि होती है।

(iv) आर्थिक विकास के लिए मुद्रा-स्फीति अनिवार्य (Inflation is not necessary for Economic Development) इंगलैड व अमेरिका का इतिहास बताता है कि आर्थिक विकास के लिए मुद्रा-स्फीति अनिवार्य है।

(v) अनिश्चिता (Uncertainty) कब कीमते बढ़ने से रूक जायें या तीव्र हो जाये, इस बारे में अनिश्चितता बनी रहती है। इससे आर्थिक क्रियाओं में रूकावट आती है।

बाल्डरस्टोन (Balderstone) के अनुसार , "यह हमारी सबसे बड़ी भूल है कि हम ऐसा सोचते है कि थोड़ी सी स्फीति अच्छी होती है। यदि एक बार रेंगती हुई स्फीति को स्वीकार कर लेते है तो कुछ समय पश्चात ही बच्चा रेंगना बन्द करके चलने, दौड़ने तथा कूदने लग जाता है"

निष्कर्ष (Conclusion) निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास बताते हैं कि

स्थिर व गिरती कीमतों पर भी विकास की गति तीव्र रही है। जैसे 1870 से 1895 के मध्य कीमतें गिरी पर विकास की दर कायम रही। भारत की प्रथम योजना के अर्न्तगत कीमतें बहुत कम बढ़ी लेकिन विकास की दर तीव्र बनी रही।

मुद्रा-स्फीति को नियन्त्रित करने के उपाय

(Measures to Control inflation)

मुद्रा-स्फीति को नियन्त्रित न किया जाए तो इसके भयानक परिणाम हो सकते हैं। इससे उत्पन्न होने वाली आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक बुराइयों का अध्ययन हम कर चुके हैं। हाट्रे (Hawtrey) के अनुसार, "यदि मुद्रा-स्फीति को प्रारम्भ में ही स्थापित होने की अनुमति दे दी जाये तो इसके नियन्त्रण से बाहर होने की सम्भावना रहती है। इसकी निम्न उपायों से नियन्त्रित किया जा सकता है :-

1. मौद्रिक उपाय (Monetary Measures) - मिल्टन फ्रीडमैन के अनुसार जब मुद्रा की पुर्ति उत्पादन में व द्धि की दर से अधिक बढ़ा दी जाती है तो उसका परिणाम मुद्रा-स्फीति होता है। मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए मुद्रा पर नियन्त्रण करना होगा, जैसेः-

(i) **मुद्रा की मात्रा पर नियन्त्रण (Control over Money) -** केन्द्रीय कैंक द्वारा नई करेन्सी के निर्गमन पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब केन्द्रीय बैंक को सरकार उधार देने पर मज़बूर न करे। अतः केन्द्रीय सरकार को स्वयं को नियन्त्रित करना होगा।

(ii) **साख पर नियन्त्रण (Credit Control) -** बैंको द्वारा साख का अधिक निर्माण मुद्रा-स्फीति का कारण बनता है। इसलिए केन्द्रीय कैंक विभिन्न एपा जैसे खुले बाज़ार की क्रियायें, बैंक दर, निम्नतम आरक्षित कोष अनुपात तथा अन्य चयनात्मक उपाय अपनाकर बैंकों की साख निर्माण की शक्ति कम कर सकता है।

(iii) **पुरानी मुद्रा का विमुद्रीकरण (Demonetisation of old Currency) -** मुद्रा-स्फीति के सभी उपाय असफल हिने पर इस उपाय को अपनाया जाता है। पुरानी करेन्सी के स्थान पर नई करेन्सी जारी कर दी जाती है। पुरानी करेन्सी को नई करेन्सी में परिवर्तित करने की अनुमति तो प्रदान कर दी जाती है परन्तु तुंरत नहीं। भारत सरकार ने 1977 में 1000 रुपये तथा 10,000 रुपये के नोटों का विमुद्रीकरण किया था।

2. राजकोषीय उपाय (Fiscal Policy Measures) - इसके अन्तर्गत सरकार अपने व जनता के व्यय पर नियन्त्रण करती है। जैसे :-

(i) **करों में व द्धि (Increase in Taxes) -** करों की संख्या व पुराने करों की दरों दोनों में व द्धि करके सरकार लोगों की स्वायत आय (Disposable Income) को कम कर सकती है। स्वायत्त आय व क्रय शक्ति कम होने पर लोग कम वस्तुएँ व सेवाएँ क्रय कर पाायेंगे। इससे कुल माँग गिरेगी और मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण कर लिया जायेगा।

(ii) **बचत वाले बजट (Surplus Budget) -** मुद्रा-स्फीति रोकने के लिए सरकार बचत वाले बजट अपना सकती है। इनके अन्तर्गत सरकार अपनी आय से कम खर्च करती है। इससे व्यय व मांग कम हो जाती है और मुद्रा-स्फीति रूक सकती है।

(iii) **अनुत्पादक सरकारी व्यय में कटौती (Reduction in Unproductive Government Expenditure) -** सरकार बहुत से अनुत्पादक खर्च करती है जैसे चुनावों आदि पर व्यय। ऐसे खर्चो को टालना या खत्म कर देना चाहिये। इससे मांग नहीं बढ़ पायेगी।

(iv) **सार्वजनिक ऋणों में व द्धि (Increase in Public Debts)** - सरकार बांड जारी करके निजी क्षेत्र से ऋण ले सकती है। इससे निजी क्षेत्र की क्रय शक्ति कम हो सकेगी व मांग कम हो जायेगी।

(v) **पुराने ऋणों को चुकाने में विलम्ब (Delay in the payment of old Debts)** - जिन ऋणों को चुकाने का समय हो गया है सरकार उनके लौटाने में देरी कर सकती है। इससे निजी क्षेत्र की क्रय शक्ति नहीं बढ़ पायेगी।

3. **अन्य उपाय (Other Measures)** - कुछ अन्य उपाय निम्न प्रकार है-

(i) **उत्पादन में व द्धि (Increase in Production)** - मुद्रा-स्फीति का महत्त्वपूर्ण कारण वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में कमी है। इससे बढ़ती हुई कीमतें रूक सकती है।

(ii) **निर्यातों में कमी (Decrease in Exports)** - वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने के लिए निर्यातों को भी कम किया जा सकता है। इस कारण भी मुद्रा-स्फीति रूक सकती है।

(iii) **आयातों में व द्धि (Increase in Imports)** - वस्तुओं के आयातों को बढ़ाकर भी उनकी पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है। इससे बढ़ती हुई कीमतें रूक सकती हैं।

(iv) **उचित निवेश नीति (Proper Investment Policy)** - उन उद्योगों में निवेश बढ़ाना चाहिये जिनमें उत्पादन अल्पकाल में बढ़ाया जा सके।

(v) **कीमत नियंत्रण व राशनिंग (Price Control and Rationing)** - सरकार विभिन्न वस्तुओं की कीमतें स्वयं निर्धारित कर सकती है तथा उनको बढ़ाने की अनुमति नहीं देती। इसी प्रकार वस्तुओं की कमी देख कर सरकार राशन की दुकानें खोल सकती है ताकि कम कीमतों पर प्रत्येक को वस्तुएँ उपलब्ध हो सकें।

(vi) **बचत को प्रोत्साहन (Encouragement to Savings)** - सरकार विभिन्न बचत योजनाएं जैसे अनिवार्य बचत योजना (i) **(Compulsory saving Scheme)** - आदि अपना कर लोगों के खर्च को कम कर सकती है।

(vii) **उचित मजदूरी नीति (Proper Wage Policy)** - मजदूरी में व द्धि भी लागत-जनित मुद्रा-स्फीति को बढ़ाता है। मजदूरी बढ़ती है, फिर उत्पादन लागत बढ़ती है जो कीमतों को बढ़ाती है। बढ़ती कीमतों के कारण मजदूर फिर अधिक मजदूरी की मांग करते हैं।

मुद्रा-विस्फीति

(Deflation)

मुद्रा-विस्फीति मुद्रा-स्फीति की विपरीत अवस्था है। मुद्रा-विस्फीति वह अवस्था है जिसमें वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें निरंतर गिर रही होती है। अर्थात् मुद्रा का मूल्य निरंतर बढ़ रहा होता है। गिरती हुई कीमतों के कारण उत्पादक हानि से बचने के लिए उत्पादन कम कर देते हैं। इससे रोजगार का स्तर भी कम हो जाता है और सामान्य बेरोजगारी बढ़ती है। इस अवस्था में कूल मांग कूल पूर्ति से कम रहती है।

मुद्रा-विस्फीति के कारण **(Cause of Deflation)**

मुद्रा-विस्फीति के अनेक कारण हैं:-

1. **मुद्रा की मात्रा में कमी** (Reduction in the Supply of Money) - बचत का बजट अपना कर, जनता और बैंकों को सरकार अपने बांड व सिक्योंरटियों को बेचकर व साख पर नियंत्रण करके आदि उपायों से मुद्रा की मात्र, चलन में है, को कम करके वस्तुओं की मांग कम कर सकती हैं जब वस्तुओं की मांग उनकी पूर्ति से कम होती है तो मुद्रा-विस्फीति उत्पन्न होती है।

2. **अधिक कर** (More Taxes) - सरकार जनता पर अधिक कर लगा कर उनकी स्वायत्त आय (Disposable Income) कम कर सकती है। इससे वस्तुओं व सेवाओं की मांग गिर जाती है जो कीमतों को गिराती है।

3. **केन्द्रीय बैंक द्वारा सांख का संकुचन** (Contraction of Credit by Central Bank) - केन्द्रीय बैंक यदि विभिन्न उपाय जैसे बैंक दर बढ़ा कर, बांड व सिक्योरिटी बेच कर, बैंकों की निम्नति नकद अनुपात या चयनात्मक तरीकों को अपना कर साख का संकुचन करता है तो साख का संकुचन (Contraction of Credit) - केन्द्रीय बैंक यदि विभिन्न उपाय जैसे बैंक दर बढ़ा कर, बांड व सिक्योरिटी बेचकर, बैंकों की निम्नतम नकद अनुपात या चयनात्मक करीकों को अपना कर साख का संकुचन करता है तो साख का संकुचन (Contraction of Credit) होता है। इससे वस्तुओं व सेवाओं की मांग कम हो जाती है।

4. **सार्वजनिक ऋण में व द्धि** (Increase in Public Debt.) - सरकार जनता व बैंको से ऋण प्राप्त करके भी उनकी क्रय शक्ति कम कर देती है। इस कारण भी कुल माँग कम हो जाती है और कीमतें गिरने लगती है।

5. **ऋण का भुगतान** (Repayment of Public Debt) - यदि सरकार के भुगतान को टाल (defer) देती है तो इस कारण भी व्यय कम हो सकता है जो माँग को नही बढ़ने देता।

6. **अति उत्पादन** (Over Production) - यदि वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन उनकी माँग से अधिक हो जाये तो कीमतें अपने आप गिरने लग जाती है। उत्पादक निवेश कम कर देते है। इस प्रकार व माँग कम होती जाती है।

मुद्रा-विस्फीति के प्रभाव

(Effects of Deflation)

मुद्रा-विस्फीति के प्रभाव मुद्रा-स्फीति के प्रभावों से विपरीत होते है। समाज के विभिन्न वर्गो पर इसके प्रभाव तथा सामान्य प्रभाव निम्न प्रकार से अध्ययन किये जा सकते है।

1. **उत्पादन तथा व्यापारियों पर प्रभाव** (Effects on Producers and Traders) - मुद्रा-विस्फीति के अन्तर्गत वस्तुओं की कीमते तो शीघ्र गति से गिरती हैं परन्तु उस गति से साधनों (जैसे श्रमिक) की कीमतें नही गिरतीं। इस कारण उत्पादन लागत ऊँची बनी रहती है परन्तु उत्पादन वस्तु की कीमत गिर जाती है। उत्पादकों को हानि होती है। व्यापारी वर्ग भी हानि उठाता है क्योकि माँग गिरने के कारण उनके स्टाक बढ़ जाते है जिनका मूल्य गिरता जाता है।

2. **निवेशकर्त्ताओं पर प्रभाव** (Effects on Investors) - जिन निवेशकर्त्ताओं से बांड आदि में निवेश किया होता है उनको मुद्रा-विस्फीति के कारण लाभ होता है, क्योकि उनकी ब्याज के रूप में स्थिर या बँधी आय है। परन्तु जो उद्योगों व व्यापार में निवेश करते है उनको हानि होती है क्योकि गिरती रहती है। अतः अपरिवर्तनशील आय वाले निवेशकर्त्ताओं को लाभ व परिवर्तनशील आय वाले निवेशकर्त्तातओं को लाभ व परिवर्तनशील आय वाले निवेशकर्त्ताओं को हानि होती है।

3. **उपभोक्ताओं पर प्रभाव** (Effectst on Consumers) - बन्धी आय वाले उपभोक्ताओं को लाभ होता है क्योकि उन्हें सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती है। परन्तु मुद्रा-विस्फीति के कारण जो बेरोजगार हो जाते है उन उपभोक्ताओं पर इसका

बुरा प्रभाव पड़ता है।

4. **श्रमिक तथा वेतन भोगी पर प्रभाव** (Effects on Labourers and Salaried persons) - स्थिर आय वाले श्रमिकों व कर्मचारियों को विशेष लाभ प्राप्त होता है, क्योकि कीमतों के कारण उनकी आय बढ़ जाती है। परन्तु उद्योग धन्धे बन्द होने लगते हैं जिससे बेरोजगारी का भय बना रहता है।

5. **ऋणी और ऋणदाता पर प्रभाव** (Effects on Creditors and Debtors) - ऋणी वर्ग को हानि होती है क्योकि मुद्रा-विस्फीति के अन्तर्गत उनके ऋण का वास्तविक मूल्य बढ़ जायेगा। अतः उनको अधिक भार उठाना पड़ेगा। इसके विपरीत ऋणदाता को लाभ प्राप्त होगा।

6. **किसानों पर प्रभाव** (Effects on Farmers) - अनाज आदि की कीमतें कम हो जाती है इसलिए किसानों की आय कम हो जाती है। इतना ही नही किसान आम तौर पर ऋण से ग्रस्त रहते है जिसका वास्तविक भार भी बढ़ जाता है। अर्थात इन्हें काफी हानि उठानी पड़ती है।

7. **बेरोजगारी** (Unemployment) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत माँग व कीमते गिरती रहती है। उत्पादन व उद्योग-धन्धें बन्द होते जाते हैं। इसलिए सामान्य बेरोजगारी फैलती जाती है।

8. **अनुकूल भूगतान सन्तुलन** (Favourable Balance of Payments) - कीमतें गिरने क कारण एक देश क निर्यात बढ़ जाते है और आयात कम हो जाते है। आयात कम इसलिए होते है कि जब उसी देश में ही कीमतें गिरती है तो लोग बाहर के देशो से वस्तुएँ आयात ने करके अपने देश में वस्तुओं को खरीदने लग जाते है। इससे भुगतान शेष सन्तुलन अनुकूल हो जाता है।

9. **आर्थिक विकास** (Economic Development) - विस्फीति में कुल माँग के गिरने क कारण आर्थिक विका प६र इसका बुरा प्रभाव पडता है। उत्पादन, आय, रोजगार सभी कम होते है।

10. **कर भार में व द्धि** (Increase in Burden fo Taxes) - विस्फीति के अन्तर्गत कर के रूप में चुकाने वाली राशि का वास्तविक मूल्य या भार बढ़ जाता है।

11. **सार्वजनिक ऋण भार में व द्धि** (Increase in the Burden of Public Debt.) - कीमतें गिरते रहने के कारण सरकार द्वारा लिये गये ऋण का वास्तविक मूल्य व भार बढ़ जाता है। इस कारण इसके लौटाने में कठिनाई होती है।

12. **सामाजिक व नैतिक पतन** (Social and Moral Degradation) - इसके अंतर्गत बेरोजगारी व निराशा की स्थिति उत्पन्न होती है। श्रमिकों और मालिकों के माध्य झगड़े शुरू हो जाते हैं व आर्थिक प्रगति विपरीत दिशा ले लेती है। देश की आर्थिक, सामाजिक व राननीतिक स्थिति चिंताजनक व अस्थिर बन जाती है। निराशा के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है।

इस प्रकार मुद्रा-विस्फीति की हानियां समाज के हर वर्ग को उठानी पड़ती है।

मुद्रा-विस्फीति को रोकने के उपाय

(Measures of control Deflation) -

मुद्रा विस्फीति को रोकने के निम्न उपया है।। यही उपाय मुद्रा-स्फीति को रोकने के भी हैं। केवल उनका प्रयोग भिन्न है।

1. **मौद्रिक उपाय** (Monetary Measures)

(i) मुद्रा की मात्रा में व द्धि (Increase in the Supply of Money) - जो मुद्रा चलन में (Money in circulation) है यदि उसकी मात्र में व द्धि कर दी जाये तो व्यक्तियों का खर्च बढ़ेगा। इससे गिरती हुई कीमतें रूक सकती हैं।

(ii) साख की अधिक निर्माण (More Credit Creation) - केन्द्रीय बैंक ऐसे उपाय अपना सकता है जो अन्य बैंकों को अधि ाक साख निर्मित करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे उत्पादन कार्य बढ़ेगें जो आय व रोजगार बढ़ा कर मांग को बढ़ाने में सफल हो सकते हैं।

2. **राजकोषीय उपाय** (Fiscal Measures)

(i) **सार्वजनिक व्यय मं व द्धि** (Increase in Public Expenditure) - सरकार सड़कों, नहरों, पुलों, इमारतों आदि के निर्माण पर खर्च बढ़ा कर रोजगाार बढ़ा सकती है। इससे लोगों को आय व क्रय शक्ति प्राप्त होती है जो वस्तुओं व सेवाओं की मांग को बढ़ाती है।

(ii) **सार्वजनिक ऋणों का भुगतान** (Repayment of Debts) - सरकार ऋणों का भुगतान जनता को तुरंत करके उसकी क्रय शक्ति बढ़ा सकती है, जिससे मांग बढ़े और कीमतें गिरने से रूक जायें।

(iii) **करों में कमी** (Reduction in Taxes) - करों में कटौती करने से लोगों की स्वायत्त आय बढ़ जाती है। इसलिए वे अधिक खर्च करते हैं जो मांग व कीमतों को बढ़ाता है।

(iv) **उद्योगों को मौद्रिक सहायता** (Increase in the Supply of Money) - इस कारण उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। उत्पादन कार्य शुरू हो जाते हैं।

3. **अन्य उपाय** (Other Measures) -

(i) **न्यूनतम कीमत निश्चित करना** (Fixing a Minimum Support Price) - वस्तुओं की कीमतों की निम्नतम सीमा निश्चित की जा सकती है। भारत में सरकार ने व्यापारियों की जमाखोरी और मुनाफाखोरी को रोकने के लिए अनेक क षि पदार्थों की निम्नतम कीमतें निश्चित की हुई है। इस कारण पदार्थों की कीमतें इससे नीचे नहीं गिर सकतीं।

(ii) **निर्यातों में व द्धि** (Increase in Exports) - निर्यात करों को कम करके या निर्यातकों को वित्तीय सहायता प्रदान करके निर्यातों को बढ़ाया जा सकता है। इससे देश में वस्तुओं की पूर्ति कम होगी जो गिरती कीमतों को रोक सकेगी।

(iii) **अतिरिक्त उत्पादनको नष्ट करना** (Destruction of Surplus Production) - इस कदम से उत्पादकों को एक बार तो हानि होगी परन्तु बाद में वस्तुओं के न रहने पर उनकी कीमतें बढ़ेगीं । आस्ट्रेलिया व अमेरिका ने ऐसे कदम अनाज को लेकर उठाये हैं।

(iv) **सरकार द्वारा क्रय** (Purchases by the Government) - सरकार फालतू हुए उत्पादन को स्वयं भी खरीद सकती है। इस कारण बाजार में वस्तुओं की पूर्ति कम हो जाती है जो कीमतों को गिरने से रोकेगी।

मुद्रा-स्फीति तथा विस्फीति के मध्य की अवस्थाएँ

(Positions between Inflation and Deflation)

आर्थिक इतिहास के अनुसार अर्थव्यवस्थाएँ व्यापार चक्रों से गुजरती हुई आगे बढ़ती हैं। अर्थात् आर्थिक क्रियाओं व कीमतों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। परन्तु मुद्रा-स्फीति के तुरंत बाद मुद्रा-विस्फीति नहीं आती बल्कि मुद्रा-अविस्फीत (Disinflation) आती है। इसी प्रकार मुद्रा-विस्फीति (Deflation) के तुरंत मुद्रा-स्फीति नहीं बल्कि मुद्रा-संस्फीति (Reflation) की अवस्था आती है। अतः मुद्रा-अविस्फीति (Disinflation) व मुद्रा संस्फीति (Reflation) क्या है, यह जानना जरूरी है।

मुद्रा-स्फीति व मुद्रा -संस्फीति के मध्य अन्तर

(Difference between inflation and Reflation)

(1) मुद्रा-स्ीति अनैच्छित होती जबकि मुद्रा-संस्फीति ऐच्छिक होती है।

(2) मुद्रा-स्फीति के परिणाम हानिकारक होते हैं (जैसा हम देख चुके हैं) परन्तु मुद्रा-संस्फीति के परिणाम निश्चित रूप से अच्छे होते हैं क्योंकि इससे रोजगार, आय आदि में व द्धि होती है।

(3) मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत कीमतें बहुत ऊँची चली जाती है जब कि संस्फीति के अन्तर्गत कीमतें बढ़ती हैं परन्तु सामान्य कीमत स्तर से नीचे रहती हैं।

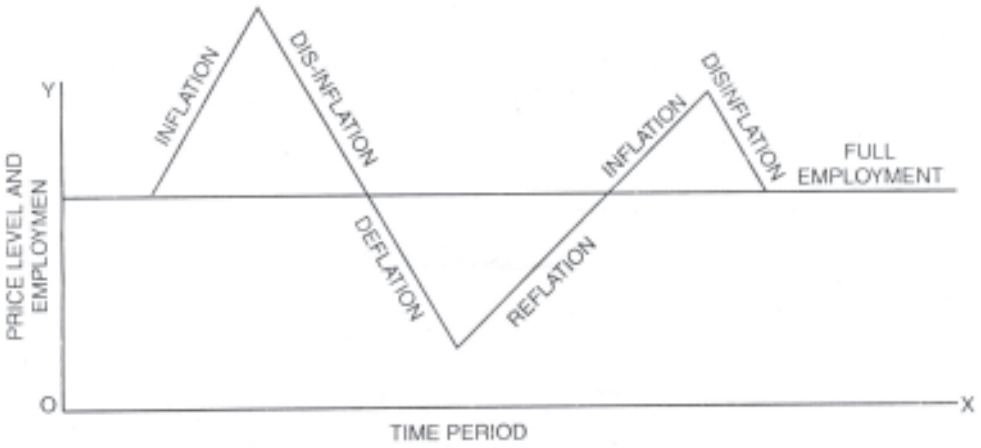

चित्र 1

(4) मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण करना कठिन है परन्तु मुद्रा-संस्फीति पर नियंत्रण करना इतना कठिन नहीं है।

मुद्रा-अविस्फीति का अर्थ (Meaning of Disinflation) - यदि किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति की अवस्था है तो उसको रोकने के प्रयासों के परिणामस्वरूप मुद्रा-अविस्फीति की अवस्था आयेगी। यदि यह सामान्य स्थिति को पार कर जाती है तो मुद्रा-विस्फीति का रूप धारण कर लेती है।

मुद्रा-विस्फीति तथा अविस्फीति में अंतर

(Differnece between Deflation and Disinflation)

इन दोनो में निम्न अंतर है-

(1) **मुद्रा-अविस्फीति** (Disinflation) प्रयासों का परिणाम है, जबकि मुद्रा-विस्फीति अपने आप शक्तियों की क्रिया का परिणाम है।

(2) **मुद्रा-अविस्फीति** (Disinflation) के अन्तर्गत कीमतों को सामान्य स्तर तक लाने का प्रयास होता है जबकि मुद्रा-विस्फीति में कीमतें सामान्य स्तर से काफी नीचे जा चुकी होती है।

मुद्रा-स्फीति अन्यायपूर्ण क्यों?

(Why is Inflation Unjust ?)

निम्न कारणों के आधार पर मुद्रा-स्फीति को अन्यायपूर्ण कहा जाता हैः-

1. **निर्धनों पर अधिक भार** (Most Burden on the Poor) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत गरीब और गरीब होते जाते हैं। वस्तुाओं की कीमतें बढ़ रही होती हैं। गरीब लोग अनिवार्य उपभोग पदार्थ भी आवश्यकतानुसार खरीदने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं। इस कारण इनका स्वास्थ्य व उत्पादकता गिर जाती है। गरीबों के साथ अन्याय होता है।

2. **आर्थिक विषमता में व द्धि** (Econonic Inequality) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत अमीर और अमीर व गरीब और गरीब हो जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक असमानता बढ़ती जाती है। यह सामाजिक अन्या है। उत्पादक और व्यापारी लाभ कमातें है, परन्तु स्थिर आय वाले व्यक्ति कष्टपूर्ण जीवन जीने पर मजबूर होते हैं।

3. **वैधानिक डाकू** (Legal Dacoait) - प्रो.सी.एन.वकील ने मूद्रा-स्फीति की तुलना एक डाकू से की है। दोनों ही व्यक्त्यिों से वस्तुएँ छीनते हैं। अन्तर इतना है कि डाकू दिखाई देता है, मुद्रा-स्फीति अद श्य है। डाकू का शिकार एक या कुछेक व्यक्ति होते हैं जबकि मुद्रा-स्फीति का शिकार सारा देश होता है। डाकू को अदालत में खड़ा किया जा सकता है जबकि मुद्रा-स्फीति वैधानिक होती है।

4. **ऋणदाताओं को हानि** (Loss to Creditors) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत ऋणदाताओं को हानि होती है। ये लोग अपनी आवश्यकताओं को कम करके बचत करते हैं। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में सहायता करते हैं। उनको लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ती है। यह अन्यापूर्ण है।

5. **बचत करने वालों को हानि** (Loss to Savers) - मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत बचत का वास्तविक मूल्य गिर जाता है। यह बचत करने वालों के साथ न्यायपूर्ण नहीं है।

6. **व्यापार चक्रों के दुष्प्रभाव** (Ill-effects of Trade Cycles) - मुद्रा-स्फीति की एक सीमा होती है। सरकार के उपायों तथा व्यापार चक्रों के सिद्धान्त अनुसार कुछ समय बाद मुद्रा-स्फीति व मंदी का सामना करना पड़ता है। सामान्य

बेरोजगारी और गरीबी का सामना सारे देश को करना पड़ता है।

मुद्रा-विस्फीति अनुपयुक्त क्यों है?

(Why is Delfation called Inexpedient?)

मुद्रा-विस्फीति निम्न कारणों के आधार पर अनुपयुक्त कही जा सकती हैः-

1. **उद्योग धंधे बन्द होने लगते हैं (Industrial activities cease to function) -** गिरती हुई कीमतों के कारण उत्पादन कार्य बन्द होने लगते हैं। बेरोजगारी बढ़ती जाती है। निवेश गिरने लग जाते हैं।

2. **मुद्रा विस्फीति को रोकना कठिन (Difficult to control Deflation) -** एक बार कीमतें गिरने लगती हैं तो उन पर काबू पाना कठिन होता है, अर्थात् वे गिरती जाती हैं। यह सारे समाज के लिए विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करता है।

3. **वेतन भोगियों को अस्थाई लाभ(Temprorary Gain to Salaried Classes) -** गिरती हुई कीमतें वेतनों के वास्तविक मूल्य को बढ़ा देती है। यह वेतन भोगी व्यक्तियों के लिए लाभकारी है। परन्तु बेरोजगारी बढ़ने से उनको अपनी नौकरी खतरे में पड़ती प्रतीत होती है। अनिश्चितता और भय का वातावरण छाया रहता है।

   इस प्रकार मुद्रा-स्फीति व अविस्फीति दोनों ही समाज के लिए हानिकारक है। इसलिए सभी अर्थयवस्थाओं का उद्देश्य कीमत स्थिरता बनाये रखना होता है।

REVIEW QUESTIONS

1. Explain Kenyes views on inflation.
2. Explain Bant Hansen's Theory of demand inflation.
3. Explain the types of inflation. Does inflation help in economic growth.
4. Explain the effects and importance of inflation. How can it be checked.

●●●

अध्याय-31

मुद्रा-स्फीति के मांग पक्ष तथा पूर्ति पत्र सिद्धान्त

(Demand side and supply side theories of inflation)

1. **अर्थ (Meaning)**

मुद्रा-स्फीति मुख्यतः एक मौद्रिक प्रक्रिया है। यह एक ऐसी अवस्था है। जिसमें मुद्रा का मूल्य तो निरन्तर गिर रहा है तथा वस्तु व सेवाओं की मौद्रिक कीमतें (Money Prices) निरन्तर बढ़ रही होती हैं। किसी कारण से अचानक कीमत स्तर में अधिक व द्धि को मुद्रा स्फीति की संज्ञा देना अनिवासर्य नहीं है। मुद्रा-स्फीति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कीमत स्तर में व द्धि कायम रहती हे।'' (A high price is not necessarily inflationary, Inflation is a sustained rise in the prie level) अतः स्पष्ट है कि मुद्रा-स्फीति बढ़ती हुई कीमतों की प्रक्रिया है, न कि कीमतों का ऊँचा स्तर।

पौल इन्जिग के शब्दों मे, ''मुद्रा-स्फीति असन्तुलन की वह अवस्था है जिसमें क्रयशक्ति बढ़ने के कारण या इसके परिणामस्वरूप कीमत स्तर में व द्धि होती है।।'' (Inflation is a state of disequilibrium in which an expansion of purchasing power tends to cause or is the effect of an increase of the price level-Paul Einzing)। प्रोफेसर गार्डनर ऐक्ले के अनुसार ''औसत या सामान्य कीमत स्तर में निरन्तर ऊँची व द्धि-स्फीति कहा जाता है'' (As a persistnet and apprecioable rise in the general of average level of prices- G. Achley)। इस अध्याय में मुद्रा-स्फीति के सिद्धान्तों, जैसे केन्ज तथा बेन्त हैन्सन में मांग जनित मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त तथा पूर्ति जनित मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही मुद्रा-स्फीति के कारणो, समस्याओं, नियंतत्र्ण सम्बन्धी उपायों आदि का अध्ययन किया गया है। मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी को दो भागों में बांटा गया हैः

1. मांग-मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त (Theory of Demand Inflation)
2. पूर्ति या लागत जनित मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त (Theory of supply or Cost Push Inflation)

1. मांग-मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त (Theory of Demand Inflation)- इसमें केन्ज तथा बेन्त हेन्सन के विचारों का अध्ययन किया गया हैः

2. मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी केन्ज का विचार

(Kenyes's view on Inflation)

केन्ज ने मुद्रा-स्फीति को दो भागों में विभग्त किया है (1) अर्द्ध-मुद्रा-स्फीति (Semi-inflation) (2) पूर्ण-मुद्रा-स्फीति (Full inflation)। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई हैः-

1. **अर्द्ध मुद्रा-स्फीति** (Semi-inflation)- अपूर्ण रोजगार की अवस्था में जब मुद्रा की मात्र या उपभोग व निवेदश प्रव ति के बढ़ने पर जब कीमतें बढ़ती हैं उसे अर्द्ध-मुद्रा-स्फीति कहा जाता है। अपूर्ण रोजगार की अवस्था में जब मुद्रा में व द्धि के कारण वस्तुओं की माँग बढ़ती है तो कीमत स्तर में व द्धि के साथ उत्पादन व रोजगार की मात्र भी बढ़ती है। इसलिए वस्तुओं की कीमतें उस अनुपात में नहीं बढ़तीं जिस अनुपात में मुद्रा की मात्र बढ़ती है। पूर्ण रोजगार से पूर्व की अवस्था में कीमत स्तर में होने वाली व द्धि केन्ज के अनुसार अर्द्ध मुद्रा-स्फीति कहलाती है।

वैसे तो केन्ज का मत है कि अपूर्ण रोजगार स्तर पर साधनों की पूर्ति पूर्ण लोचशील होती है। इसलिए उत्दापन बढ़ने के कारण उत्पादन साधनों की कीमतें भी (मजदूरी आदि) नहीं बढ़ती और उत्पादन लागत नहीं बढ़ती। इसलिए कीमतें भी नहीं

बढ़तीं। परन्तु व्यवहार में कच्चे माल की कीमत, भवनों आदि के किराए, साधनों की अगतिशीलता के कारण साधनों की कीमतें आदि बढ़ती हैं जो सीमांत लागत को बढ़ता देते है। इसलिए अपूर्ण रोजगार की अवस्था में उत्पादन व कीमतें साथ-साथ बढ़तें हैं। साधनों की अगतिशीलता के कारण जो मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है उसे अड़चन मुद्रा-स्फीति (Bottleneck Inflation) कहते हैं। इसको चित्र १ में स्पष्ट किया गया है।

2- **पूर्ण मुद्रा-स्फीति** (Full Inflation) पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के बाद जब मुद्रा की पूर्ति में व द्धि या उपभोग व निवेश प्रव ति में व द्धि के कारण माँग बढ़ती है तो केवल कीमतें ही बढ़ती है, उत्पादन व रोजगाार नही बढ़ते। इस अवस्था में उत्पादन नहीं बढ़ सकता क्योंकि पूर्ण रोजगार प्राप्त हो चुका है।

इसलिए कीमतें उसी अनुपात में बढ़ती है जिस अनुपात में मुद्रा की मात्र बढ़ती है। इस अवस्था को केन्ज ने पूर्ण, खुली, वास्तविक या निरपेक्ष (Full, open, true or obsolute inflation) मुद्रा-स्फीति का नाम दिया है। यह भी चित्र 1 में स्पष्ट किया गया हैः

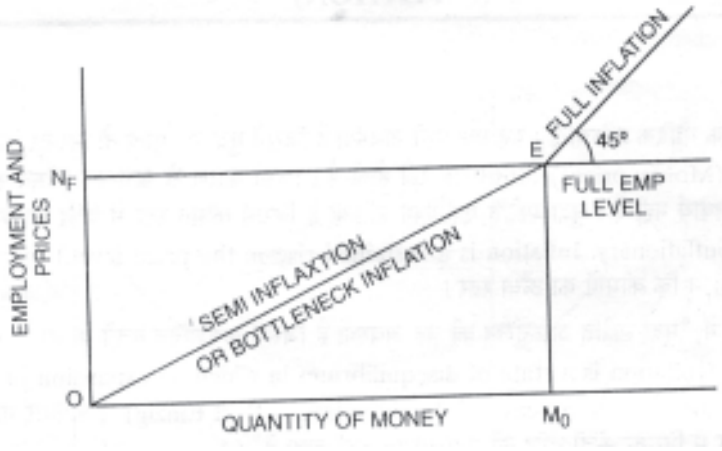

चित्र 1

चित्र 1 में दर्शाया गया है कि जब मुद्रा की मात्र o से M_0 तक बढ़ती है तो कीमतें और रोजगार दोनो बढ़तें है। कीमतें मुद्रा में की गई व द्धि की अपेक्षा कम अनुपात से बढ़ती है क्योंकि रोजगार बढ़ने से उत्पादन भी बढ़ता है। अतः OEरेखा अर्द्ध-मुद्रा स्फीति को व्यक्त करती है। परन्तु M_0 मुद्रा की मात्र पर पूर्ण रोजगाार स्थापित होता है। M_0 के बाद मुद्रा की मात्र मं की गई प्रत्येक व द्धि कीमत स्तर को उसी अनुपात से बढ़ाती है अर्थात मुद्रा की मात्र और कीमत स्तर में समान आनुपातिक सम्बन्ध स्थापित होता है जिसको केन्ज पूर्ण मुद्रा-स्फीति का नाम देता है। EF रेखा पूर्ण मुद्रा स्फीति को प्रकट करती है।

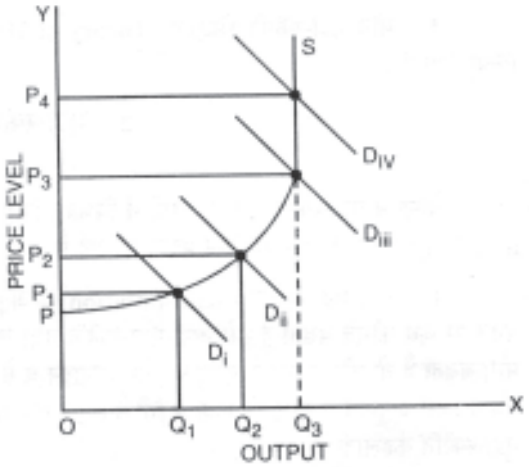

चित्र 2

मुद्रा-स्फीति के सिद्धान्त (Theories of Inflation)-कारणों के आधार पर सिद्धान्तों को दो भागो में बांटा गया हैः

1. माँग प्रेरित मुद्रा-स्फीति (Demand Pull Inflation)
2. लागत जनित मुद्रा-स्फीति (Cost Push Inflation)

1. **माँग प्रेरित मुद्रा-स्फीति** (Demand Pull Inflation)- यह वह अवस्था है जिसमें वर्तमान कीमतों पर कुल माँग कुल पूर्ति से अधिक बनी रहती है। इस कारण कीमतें व कीमत स्तर बढ़ता रहता है। इस प्रकार की मुद्रा-स्फीति का कारण माँग की पूर्ति पर अधिकता होती है इसलिए इसको माँग प्रेरित मुद्रा-स्फीति कहते हैं। कुल माँग की कुल पूर्ति पर अधिकता पूर्ण रोजगार व अपूर्ण रोजगाार दोनों अवस्थाओं में हो सकती है जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है:

चित्र 2 के OX अक्ष पर उत्पादन का स्तर व OY अक्ष पर कीमत स्तर I S कुल पूर्ति वक्र है। D1 माँग वक्र S पूर्ति वक्र को काट कर P1 कीमत स्तर निर्धारित होता है। OQ_F) OQ_F पर माँग में व द्धि (D1 से D2½) कीमत स्तर को P1 से P2 बढ़ाती है। क्योंकि यहां अपूर्ण रोजगार स्तर है। इसलिए माँग बढ़ने पर उत्पादन व रोजगार तथा कीमतें सभी बढ़ते है। इसलिए कीमत स्तर अधिक नहीं बढ़ सकता। परन्तु पूर्ण रोजगार उत्पादन (OF) पर कुल मांग जब D3 से बढ़ कर D4 होती है तो कीमत स्तर में व द्धि (P3 से P4) अत्यधिक होती है क्योंकि यहां पूर्ण रोजगार प्राप्त है, इसलिए मांग के बढ़ने पर उत्पादन नहीं बढ़ पाता केवल कीमत स्तर बढ़ता है।

ऐसा क्यों होता है अथवा मांग की अधिकता मुद्रा-स्फीति को क्यों जन्म देती है? इस प्रश्न से सम्बन्धित केन्ज का सिद्धान्त अग्र प्रकार से है:-

मुद्रा-स्फीतिक अन्तराल

(Inflationary Gap)

मुद्रा-स्फीतिक अन्तराल की धारणा (Concept of INflationary Gap) केन्ज ने अपने लेख How to pay for the war (1940) में मुद्रा-स्फीतिक अन्तराल को व्यक्त किया है। युद्ध के दौरान सरकार और व्यक्तियों द्वारा उपभोग पदार्थों की मांग बढ़ाई जाती है। क्योंकि भविष्य अनिश्चित प्रतीत होने लगता है। अतः व्यय की जाने वाली मुद्रा की मात्र व उपलब्ध वस्तुओं की मात्र में अन्तर हो जाता है। इस अन्तर के कारण कीमतों में व द्धि होती है जिसको मुद्रा-स्फीतिक अन्तराल कहते हैं।

कुरीहारा के अनुसार ''मुद्रा-स्फीतिक अन्तर अनुमानित व्यय का आधार कीमतों पर उपलब्ध उत्पादन की तुलना में आधिक्य है।'' (An excess of anticipated expenditure over available output (at base prices) is called inflationary gap- Kurihara)

अतः स्फीतिक अन्तराल = स्वात्य आय-उपलब्ध उत्पादन

Inflationary Gap = Disposable Income - Net National Product (NNP)

स्फीतिक अन्तराल का विस्त त विश्लेषण निम्न प्रकार है-

केन्ज का माँग-मुद्रा-स्फीति विश्लेषण मुद्रा-स्फीतिक अंतराल द्वारा व्यक्त किया गया है। पूर्ण रोजगार उत्पादन की अवस्था में जब निवेश बढ़ा दिया जाए तो कुल माँग बढ़ जाती है, परंतु वास्तविक उत्पादन नहीं बढ़ता बल्कि गुणक के द्वारा केवल मौद्रिक आय बढ़ती है। इस कारण कुल मांग बढ़कर वास्तविक उत्पादन से अधिक हो जाती है जो कीमतों में व द्धि करती है। मौद्रिक स्वायत आय और वास्तविक उत्पादन के मध्य अंतर आ जाता है जिसको मुद्रा-स्फीतिक अंतराल कहा जाता है जो चित्र में Ym-Yp के अंतर द्वारा दर्शाया गया है। E बिंदु वास्तविक आय Yp, जो पूर्ण रोजगार उत्पादन

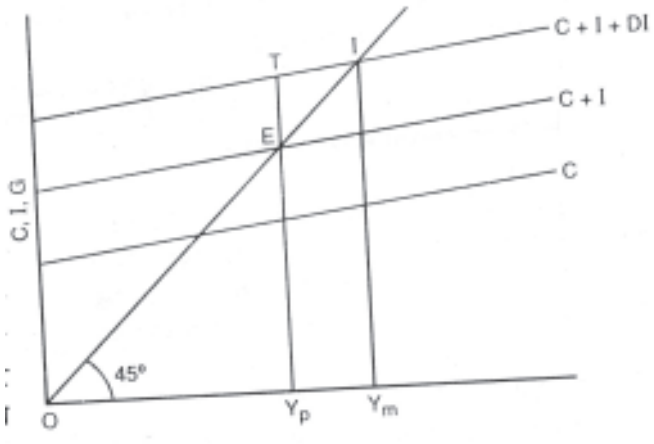

चित्र 3

स्तर भी है, और कुल व्यय में संतुलन को दर्शाता है। अब निवेश में व द्धि होने पर C+I+dI कुल व्यय जो पहले से ET मात्र से बढ़ गया है मुद्रा-स्फीतिक अंतराल को जन्म देता है। क्योंकि पूर्ण रोजगार की स्थिति होने से वास्तविक उत्पादन नहीं बढ. ाया जा सकता अतः कीमतें बढ़ जाती है। नया संतुलन E1, पर अर्थात् Ym आय स्तर पर होता है, जो कीमतें बढ़ने के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई मौद्रिक आय का द्योतक है, जैसा चित्र 2 में दर्शाया गया है।

मुद्रा-स्फीतिक का उपरोक्त विश्लेषण स्थैतिक है परंतु वास्तव में यह एक लंबे अर्से पर फैली प्रक्रिया होती है इस नाते इसका स्वरूप वस्तुतः गत्यात्मक है। क्योंकि कीमतों और मजदूरी में समन्वय तथा आय की प्राप्ति और व्यय के मध्य समय अंतराल पाया जाता है। इसलिए मुद्रा-स्फीति विशिष्ट समयावधि के अंतर्गत हुई प्रक्रिया का परिणाम होने के कारण एक गत्यात्मक अध्ययन है। यदि यह समय अंतराल कम तथा मौद्रिक आय व उत्पादन का अन्तर अधिक हो तो बढ़ती हुई कीमतें अधिक गंभीर रूप धारण कर सकती हैं। केन्ज ने अपनी पुस्तक How to pay for the War में लिखा है कि ये समय अंतराल और दूसरी रूकावटें तीव्र मुद्रा-स्फीति से हमें बचाती है।, अन्यथा कीमतों में व द्धि और तीव्र हो सकती हैं इसी पुस्तक में केन्ज ने मुद्रा-स्फीतिक अंतराल रूपी धारणा का प्रयोग किया। युद्ध के दौरान सरकारी व्यय में व द्धि हो जाती है, परंतु इस व द्धि को खत्म करने के लिए उपभोग व निवेश आदि व्यय में कमी नहीं हो पाती, परिणामस्वरूप मुद्रा-स्फीतिक अंतराल पैदा हो जाता है। मुद्रा-स्फीतिक अंतराल के कारण जो कीमतों के बढ़ने का सिलसिला शुरू होता है वह, विशिष्ट परिस्थितियों में, ध ीरे-धीरे घटता हुआ अन्ततः पूरी तरह समाप्त हो जाता है। यह Convergent Inflationary Gap की स्थिति का सूचक है। इसके विपरीत, ऐसी परिस्थितियाँ भी अर्थव्यवस्था में विद्यमान हो सकती हैं जिनके कारण कीमतों के बढ़ने का सिलसिला लगाातार बिना रूके चलता रहे और Inflationary Gap का आकार कम होने के बजाय बढ़ता जाए। यह Divergent INflationary gap की स्थिति कहलाती है। इन दोनों का हम क्रमशः वर्णन करेंगे।

स्फीतिक अन्तराल को समाप्त करने के तरीके

(Methods of Removing the Inflationary Gap)

मुद्रा-स्फीतिक अन्तराल को समाप्त या कम करने के उपाय न किये जाँए तो यह बढ.ने की प्रव ति भी धारण कर सकता है। इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। स्फीतिक अन्तराल को समाप्त करने के केन्ज ने दो उपाय सुझाये हैंः

अ) उत्पादन बढ़ाने के सभी उपाय तुरन्त प्रयोग में लाकर उत्पादन बढ़ाया जाये।

ब) लोगों की स्वायत आय (Disposable Income) को कम किया जाये ताकि वे कम खर्च करें व कम माँग कर सकें। यह कार्य सरकार करों की दर बढ़ा कर, सार्वजनिक ऋण लेकर, लोगों की बचतों को बढत्रकर आदि तरीकों को अपना कर कर सकती है।

बेन्त हैन्सन का माँग मुद्रा-स्फीति सिद्धान्त

(Bent Hansen's Demand Inflation Theory)

केन्ज द्वारा प्रतिपादित मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी सिद्धान्त केवल वस्तु-बाजार को ध्यान में रखकर प्रतिपादित किया गया है। वस्तु-बाजार में वस्तुओं की माँग उनकी पूर्ति से अधिक होने के कारण मुद्रा-स्फीति अन्तराल उत्पन्न होता है जो मुद्रा-स्फीति को जन्म देता है। केन्ज ने मुद्रा-स्फीति के व्याख्या में साधन बाजार की पूर्णरूप से अवहेलना की है। परन्तु डेनमार्क के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर बेन्त हेन्सन ने अपनी पुस्तक A study in the theory of Inflation में मांग जनित मुद्रा-स्फीति का बड़ा रोचक विश्लेषण किया है। उन्होंने वस्तु-बाजार तथा साधन बाजार दोनों को मद्देनजर रखते हुए मुद्रा-स्फीति की व्याख्या की है। उन्होनें इस बात पर बल दिया कि वस्तु बाजार में सन्तुलन है तो भी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति हो सकती है। हेन्सन के अनुसार वस्तुओं की मांग की अधिकता (Goods Gap) तथा साधनों की मांग की अधिकता (Factor Gap) दोनों मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न करती हैं। इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैंः

मान्यताएँ (Assumptions)

1) वस्तु-बाजार तथा साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान रहती है।

2) साधनों की पूर्ति सीमित होती है।

3) मजदूरी दर निम्नतम मजदूरी-दर से नीचे नहीं हो सकती है।

4) कीमत तथा मजदूरी परिवर्तनशील (Flexible) हैं।

5) समय अन्तराल को स्वीकार किया गया है।

6) मजदूरी तथा कीमत स्तर में परिवर्तन की दर इन बाजारों में Goods Gap तथा Factor Gap के आकारों पर निर्भर करती है। अर्थात् जिस बाजार में यह gap जितना अधिक होगा उतनी ही शीघ्रता से में उनकी कीमत अधिक शीघ्रता से परिवर्तित होगी।

व्याख्या (Explanation)

हेन्सन के अनुसार,अर्थव्यवस्था में पूर्ण मुद्रा-स्फीति (Complete Inflation) तभी होती है जब Goods gap तथा Factor gap दोनों विद्यमान होते हैं तथा धनात्मक होते हैं। वैसे किसी एक बाजार में मांग की पूर्ति पर अधिकता होने से भी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न हो सकती है। यदि वस्तु-बाजार सन्तुलन में है या Goods gap शुन्य है परन्तु साधन बाजार में साधनों की मांग उनकी पूर्ति से अधिक (Factor gap) होने के कारण साधन कीमत बढ़ती है जो उत्पादन लागत को बढ़ा देती है। इससे वस्तु-बाजार में पूर्ति बाइं ओर सरकेगी जो कीमत-स्तर को बढ़ा देगी तथा मुद्रा-स्फीति उत्पन्न हो जायेगी।

मुद्रा-स्फीति की दर (Rate of Inflation)

हेन्सन के अनुसार मुद्रा-स्फीति की दर निम्न दो बातों पर निर्भर करती है:

अ) दोनों बाजारों में अन्तराल का आकार: अर्थात Goods gap तथा Factor gap जितने बड़े होंगे उतनी ही मुद्रा-स्फीति की दर अधिक होगी।

ब) बाजारों की प्रक ति व क्रियाशीलता: माँग की अधिकता के कारण कीमत स्तर तथा मजदूरी तेजी से बढ़ती हैं या धीरे-धीरे बढ़ती हैं। यदि तेजी से बढ़ती है तो मुद्रा-स्फीति की दर तीव्र होगी अन्यथा धीमी होगी।

चित्र 4 की सहायता से हेन्सन के मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी विचारों की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है:

चित्र 4 में OX अक्ष पर उत्पादन तथा श्रम की मांग व पूर्ति तथा OY अक्ष पर कीमत स्तर तथा वास्तविक मजदूरी दर मापी गई है। फलन है जो इस बात का व्यक्त करता है कि श्रम पूर्ति सीमित होने के कारण विभिन्न वास्तविक मजदूरी दरों पर कितनी मात्र की पूर्ति की जा सकती है। S_0 वक्र श्रम-पूर्ति सीमित होने के कारण जो अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सकता है (जैसा कि OQ_0 मात्रा) उसको दर्शाता है। इस पर वास्तविक मजदूरी दर. $\left(\frac{W}{P}\right)$ में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

D वक्र तथा S_0 वक्र का अन्तर goods gap (D-S) and S-S_0 वक्रों का अन्तर Factor को मापता है। Gods gap के कारण कीमत स्तर बढ़ता है तथा Factor gap के कारण मजदूरी बढ़ती है। $\left(\frac{W}{P}\right)_1$ तथा $\left(\frac{W}{P}\right)_4$ के बीच में Goods map धनात्मक

है। अर्थात् इस स्थिति में वस्तु बाजार मुद्रा-स्फीति बढ़ाने वाला है। जबकि साधन बाजार में $\left(\frac{W}{P}\right)_2$ तथा $\left(\frac{W}{P}\right)_3$ के बीच साधन अन्तराल धनात्मक है इन दोनों अन्तरों के धनात्मक होने के कारण मुद्रास्फीति तेजी से बढ़ती है।

चित्र 4 में वस्तु तथा साधन बाजारों में सन्तुलन की प्रक्रिया इस प्रकार होती है कि जब अर्थव्यवस्था A बिन्दु पर होती है तो वस्तु-बाजार में वस्तु की माँग व पूर्ति बराबर होने से A बिन्दु सन्तुलन को प्रकट करता है। परन्तु साधन बाजार में उत्पादक उत्पादन की B तक पूर्ति बढ़ाना चाहते हैं, इसलिए श्रमिकों की मांग बढ़ेगी तथा मजदूरी बढ़ेगी जा $\frac{W}{P}$. को नीचे की ओर ले जायेगा। इसके विपरीत G बिन्दु पर साधन बाजार सन्तुलन में है परन्तु वस्तु-बाजार में मांग पूर्ति से GH अधिक है। इस कारण वस्तु कीमत (P) बढ़ेगी जो . $\frac{P}{W}$ को ऊपर की ओर ले जायगी। अतः ये दोनों प्रक्रियाए अन्ततः मुद्रास्फीति की दर का निर्धारण करती हैं।

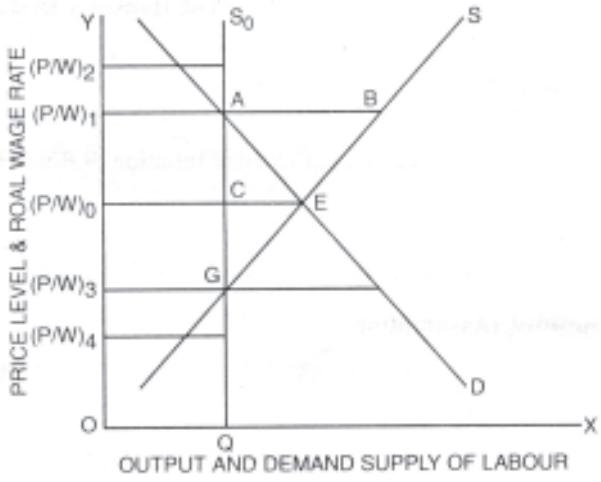

चित्र 4

$\frac{P}{W}$, Gaps, price level आदि की स्थिति निम्न चार्ट द्वारा दर्शाई गई है :

Inflationary Conditions

$\frac{P}{W}$	Goods gap	Factor gap	Wage	Price
$\left(\frac{P}{W}\right)_1$	Zero	V. Large (A-B)	Money wage rises Real wage rises	Constant
$\left(\frac{P}{W}\right)_0$	Large (C-E)	Large (C-E)	Money wage rises constant	Rises
$\left(\frac{P}{W}\right)_3$	very Large (G-H)	Zero	Constant Real wage falls	Rises rapidly.

दोनों अन्तरालों (Gaps) का आकार जितना अधिक होगा तथा कीमत/मजदूरी दर जितनी अधिक परिवर्तनशील होगी मुद्रा-स्फीति दर उतनी ही अधिक तीव्र होगी। उदाहरणः जब मजदूरी दर..... है तो वस्तु बाजार में सन्तुलन है परन्तु साधन बाजार में AB के समान अन्तराल (Gap) है जो मजदूरी दर को बढ़ायेगा। ..... दर पर वस्तु-बाजार में gap तथा साधन बाजार में gap बराबर (CE) है अर्थात् यहां कीमत तथा नकद मजदूरी दोनों समान दर से बढ़ेगें जिससे वास्तविक मजदूरी स्थिर रहेगी। चित्र के अनुसार बिन्दु A वस्तु बाजार सन्तुलन तथा बिन्दु G साधन बाजार सन्तुलन को दर्शाता है।

हेन्सन का विश्लेषण किसी सरकारी नीति जैसे मजदूरी नीति, श्रम-संघ का दबाव आदि नहीं मानता है। इसलिए प्रोफेसर एकले ने इसको मांग मुद्रा-स्फीति का खोखला विश्लेषण कहा है।

श्रेष्ठता (Superiority)

हेन्सन का सिद्धान्त केन्ज के सिद्धान्त से निम्न आधार पर श्रेष्ठ कहा जा सकता है:

1) हेन्सन ने वस्तु तथा साधन बाजार दोनों का समन्वय करके मुद्रा-स्फीति का विश्लेषण किया है, जबकि केन्ज ने केवल वस्तु-बाजार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा है।

2) हेन्सन के सिद्धान्त में गत्यात्मकता का समावेश किया गया है जबकि केन्ज का विश्लेषण पूर्ण रूप से स्थैतिक है।

आलोचना (Criticism)

1) वस्तु व साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता अवास्तविक है। वास्तविक जगत में एकाधिकार प्रतियेागिता अधिक पाई जाती है।

2) माँग की अपेक्षा मुद्रा स्फीति के अन्य कारण भ्झी होते हैं, जैसे लागत व द्धि परन्तु इस माडल में उनकी अवहेलना की गई है।

3) पूर्ण रोजगार सम्भव पूर्ति (S_0) मान लेने के बावजूद साधन बाजार में अन्तराल की व्याख्या बनावटी सी प्रतीत होती है।

4) सरकारी नीतियों की अवहेलना की गई है जो सही नहीं है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि उन्होंने दोनों बाजारों को मिला कर जो विश्लेषण किया है वह अच्छा है।

2. लागत-जन्य स्फीति

(Cost -Push Inflation or supply side theory)

यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें कीमतों में निरन्तर व द्धि उत्पादन लागत में व द्धि के कारण होती है। १६६० के बाद विभिन्न देशों में कुल माँग कम होने पर भी कीमतें बढ़ती पाई गई। इन कीमतों में व द्धि का कारण उत्पादन लागत का बढ़ना ही हो सकता है। अतएव उत्पादन लागतों में व द्धि होने के फलस्वरूप जो मुद्रा-स्फीति होती है उसे लागत जन्य स्फीति (Cost-Push Inflation) कहा जाता है। यह एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें कीमतें बढ़ने के साथ-साथ उत्पादन तथा रोजगार कम जो जाता है। यह माँग जनित मुद्रा-स्फीति से विपरीत है। इसलिए इसको पूर्ति पक्ष सिद्धान्त (Supply Side Theroy) भी कहा जाता है।

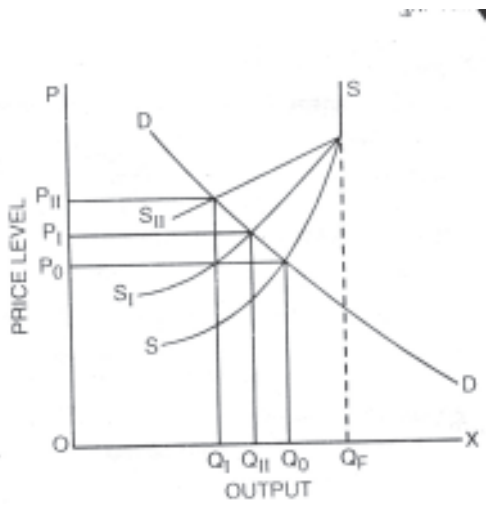

चित्र 5

रेनलर्ट के शब्दों में, ''लागत प्रेरित स्फीति सिद्धान्त का आधार यह ळे कि श्रम तथा व्यापार दोनों में ही संगठित समूह अपनी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत सामान्य प्रतिस्पर्धा बाजारें में प्रचलित कीमतों से उँची रखते हैं। '' (The basis of cost-push theroy of inflation is that organised groups, both business and labour, establish higher prices for thier products or services rthan would prevail in perfectly competitve markets. - J.C. Ranlert)

व्याख्या :

इस स्थिति या सिद्धान्त को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्थ में SS पूर्ति वक्र DD माँग वक्र को P_0 पर काटता है तथा P_0 सन्तुलित कीमत निर्धारित होती है। मान लीजिए श्रमिक संगठित हो कर अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। इसक कारण पूर्ति वक्र बाई ओर पहले S1S स्थापित होती है जो DD माँग वक्र के साथ मिलकर कीमत स्तर को P_1 तक बढ़ा देती है। इसके बाद फिर पर्ति वक्र बाई ओर सरक कर S2S हो जाता है जो कीमत स्तर को P_2

बढ़ा देता है। इस प्रकार कीमत स्तर P0 से .P_0 और P_1 से P_2 बढ़ जाता है जबकि उत्पादन व रोजगाार का स्तर Q_0 से गिर कर Q_1 और Q_1 से Q_2 स्थापित होता है

कारण (Cause) - इसके निम्न तीन कारण हैं-

1) **प्रमुख कच्चे माल की लागत में व द्धि (**Increase in the post of main Raw material) - जब प्रमुख कच्चे माल की कीमत बढ़ने के कारण उत्पादन लागत में व द्धि होती है तो अन्तिम वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ती है। यह लागत जन्य मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करती है।

2) **मजदूरी दर में व द्धि** (Increase in Wage Rate) श्रमिक संगठित होकर श्रम संघों का निर्माण करते हैं इससे उनमें सौदा रने की शक्ति (Bargaining Power) बढ़ जाती है और वे मजदूरी दर में व द्धि करवाने में सफल हो जाते हैं। इससे उत्पादकों की उत्पादन लागत बढ़ती है और वे कीमतें बढ़ाने लग जाते हैं। यह समय-समय पर होता रहता है। इनको मजदूरी प्रेरित मुद्रा-स्फीति (Wage-induced inflation) कहते हैं।

3) **लाभ की दर में व द्धि** (Increase in the Rate of Profit) उत्पादक एकाधिकार व अल्पाधिकार की स्थिति से लाभ उठाकर कीमतें चढ़ा देते हैं और अधिक लाभ कमाते हैं। लाभ की दर में व द्धि के कारण यह लाभ प्रेरित मुद्रा-स्फीति (Profit induced inflation) कहलाता है। केन्द्रीय बैंक नये करेन्सी नोट छाप कर सरकार की मांग को पूरा करता है। इस कारण मुद्रा की पूर्ति उत्पादन में व द्धि से कहीं ज्यादा बढ़ जाती है जो मुद्रा-की पूर्ति उत्पादन में व द्धि से कहीं ज्यादा बढ़ जाती है जो मुद्रा-स्फीति को जन्म देता है।

4) **वेतन प्रेरित स्फीति (Wage-induced Inflation)** श्रमिक संघ मजदूरी दर बढ़वाने में सफल रहते हैं जो उत्पादन लागत को बढ़ाता है। श्रमिकों की मजदूरी उनकी उत्पादकता से अधिक होने पर मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करती है। उत्पादन उस दर से नहीं बढ़ता जिस दर से मजदूरी बढ़ती है। यह वेतन प्रेरित स्फीति को जन्म देता है।

5) **लाभ प्रेरित स्फीति** (Profit-induced Inflation) उत्पादक बाजार की अपूर्णताओं (Market Imperfections) जैसे एकाधिकार या अल्पाधिकार का अवसर पाकर अपने लाभों को असामान्य रूप से बढ़ा लेते हैं। यह तभी हो सकता है जब ये वस्तुओं की कीमतों में व द्धि करें। अतः इसक कारण भी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है।

6) **अवरोध गति मुद्रा-स्फीति** (Stagflation) १६७० के तुरंत बाद विश्व के कुछ देशों में एक विचित्र स्थिति पैदा हुई जिसमें मांग गिरने के कारण उत्पादन व रोजगार गिर रहा था परन्तु कीमतें बढऋ रही थीं। मांग गिरने पर सामान्यतः कीमतें गिरती हैं। परन्तु इस कारण उत्पादन में रूकावटें बनी रहती हैं। मजदूरी व कीमतें बढ़ती हैं परन्तु उत्पादन में गतिरोध बना रहता है, जो अवरोध गति मुद्रा-स्फीति कहलाता है।

C) **सरकारी नियंत्रण के आधार पर** (One the basis of Government Control)

1) **खुली मुद्रा-स्फीति** (Open Inflation) ऐसी परिस्थिति जहाँ कीमतों के बढ़ने पर कोई सरकारी नियंत्रण न हो खुली मुद्रा-स्फीति कहलाती है। इसके अन्तर्गत मांग व पूर्ति की प्रक्रिया ही कीमतों पर निर्धारण करती है। खुली-मुद्रा-स्फीति गम्भीर रूप धारण कर सकती है।

2) **दबी मुद्रा-स्फीति** (Suppressed Inflation) ऐसी मुद्रा-स्फीति जिसमें सरकार अपने प्रशासनिक उपायों जैसे राशनिंग, कीमत नियंत्रण, वित्तीय सहायता आदि के द्वारा बढ़ती हुई कीमतों को दबा देती है या रेाक देती है, उसे बदी मुद्रा-स्फीति कहते हैं जैसे भारत में गेहूँ, पेट्रोल आदि की कीमतों पर सरकार नियंत्रण रखती है। भविष्य में यदि सरकारी नियंत्रण को समाप्त कर दिया जाये तो कीमतें तेजी से बढ़ने लगती है। बहुत से अर्थशास्त्रीयों जैसे फ्रीडमैन आदि ने दबी मुद्रा-स्फीति को खुली मुद्रा-स्फीति की अपेक्षा ज्यादा हानिकारक बताया है-क्योकि राशनिंग व कीमत नियंत्रण के फलस्वरूप जोर'-बाजारी, भ्रष्टाचार तथा रिश्वत में व द्धि होती है।

D) **राजनीतिक स्थिति के आधार पर मुद्रा-स्फीति** (Inflation on the basis of Political Condition) 1) युद्धकालीन मुद्रा स्फीति (War Time Inflation) युद्ध के अन्तर्गत सरकार बहुत सी वस्तुओं जैसे उपभोग पदार्थ आदि को खरीद कर अपने स्टाक में व द्धि करती है। इसके परिणामस्वरूप एक तो वस्तुओं की पूर्ति कम हो जाती है और दूसरे सरकार मुद्रा का प्रसार अधिक कर देती है। इतना ही नहीं लोगों में असुरक्षा व अनिश्चितता बढ़ती है। ये सभी मुद्रा-स्फीति को बढ़ाते हैं इसको युद्धकालीन मुद्रा-स्फीति कहा जाता है।

2) **युद्धोत्तर मुद्रा-स्फीति** (Post war Inflation) युद्ध के दौरान गाड़ियों, मशीनों, पुलों, इमारतों आदि के नष्ट कोने के कारण सरकार उनका पुननिर्माण करती है। इसलिए वस्तुओं व साधनों की मांग बढ़ती है। परन्तु उत्पादन अपेक्षाक त कम बढ़ता है। इसलिए कीमतें तेजी से बढ़ने लगती है। भारत-पाक युद्ध के बाद भारत में कीमते बहुत तीव्र गति से बढ़ी हैं।

3) **शांतिकालीन मुद्रा-स्फीति** (Peace Time Inflation) आर्थिक विकास शांति काल (Peace Time) के अन्तर्गत ही सम्भव है। इसलिए आर्थिक योजनाओं के माध्यम से सरकारें घाटे का बजट आदि अपना कर भारी मात्रा में निवेश खर्च करती हैं। इससे मुद्रा का अधिक प्रसार होता है ओर वस्तुओं की मांग बढ़ती है। यह मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करती है जिसको शांतिकालीन मुद्रा-स्फीति कहा जाता है।

E) **क्षेत्र के आधार पर मुद्रा-स्फीति** (Inflation on the basis of area)

1) **श्रेत्रीय मुद्रा-स्फीति** (Sectoral Inflation) जब अर्थव्यवस्था के किसी एक भाग में कीमतें बढ़ रही हों तो उसे क्षेत्रीय या खण्डीय मुद्रा-स्फीति कहते हैं।

2) **राष्ट्रीय मुद्रा-स्फीति** (National Inflation) जब मुद्रा स्फीति सारे राष्ट्र में व्यापत हो तो उसे राष्ट्रीय मुद्रा-स्फीति कहते हैं।

मुद्रा-स्फीति के अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु इन कारणों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है।

1) **माँग पक्ष** (Demand Side)

2) **पूर्ति पक्ष** (Supply Side)

1. माँग पक्ष

(Demand Side)

ये वे कारण हैं जो कुल माँग (Aggregate demand) को बढ़ा देते हैं। कुल पूर्ति के स्थिर रहते हुए यदि कुल माँग में व द्धि की जाए तो औसत कीमत स्तर बढ़ जाता है जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है। कुल पूर्ति वक्र (AS) के स्थिर रहते हुए कुछ ऐसे कारण हो जाते है। जिससे कुल माँग (AD) बढ़कर AD से AD_1 बन जाती है। कीमत स्तर P_1 से बढ़कर P_1 हो जाता है। जब किन्हीं कारणों से कुल माँग वक्र निरन्तर बढ़ती (increase) रहे तो मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ये कौन से कारण है? इनका अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है :

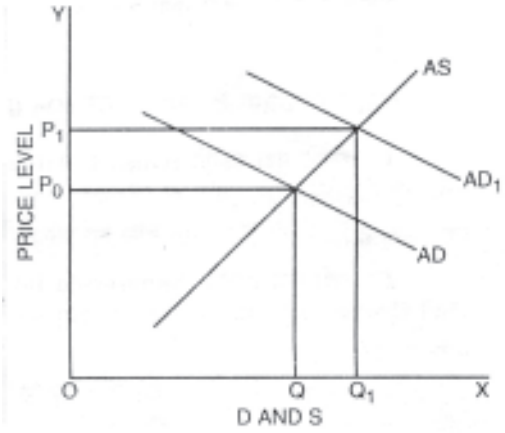

चित्र 6

(i) **सरकार के व्यय में व द्धि** (Increase in government expenditure) आर्थिक विकास की गति तीव्र करने, सुरक्षा व्यवस्था को

मजबूत बनाने तथा कानून व न्याय व्यवस्था को सुद ढ़ बनाने के लिए सरकारों के व्यय में निरंतर व द्धि होती रहती है। बढ़ता हुआ सरकारी व्यय आय व रोजगार को बढ़ाता है। इस कारण वस्तुओं व सेवाओं की माँग में बुहत ज्यादा व द्धि होती है। इस कारण बढ़ती हुई माँग मुद्रा-स्फीति को जन्म देती है।

(ii) **मौद्रिक नीति** (Monetary Policy) राष्ट्रीय आय व रोजगार को बढ़ाना मौद्रिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। आय व रोजगार में व द्धि के लिए निवेश में व द्धि अति आवश्यक है। निवेश तभी बढ़ सकता है जब विस्तारवादी या सस्ती मौद्रिक नीति (Cheap Monetary Policy) अपना कर व्याज दर कम की जाये और ज्यादा से ज्यादा मुद्रा व साख का निर्माण जाये। इस कारण देश में निवेश खर्च आदि बढ़ते हैं जो कुल माँग को बढ़ा कर मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करते हैं।

(iii) **घाटे का वित्त** (Deficit Financing) सामान्यात सरकारें घाटे का बजट (Deficit Financing) अपनाती हैं, अर्थात् उनका व्यय उनकी आय से अधिक रहता है। घाटे को पूरा करने के लिए वे केन्द्रीय बैंक से उधार लेती है। केन्द्रीय बैंक उधार दी गई राशि का कुछ भाग नये करेन्सी नोट छाप कर पूरा करता है। इस कारण मुद्रा की पूर्ति व खर्च बढ़ता है। इससे वस्तुओं की माँग बढ़ती है जो कीमतों को बढ़ाती रहती हैं।

(iv) **विदेशी विनिमय के भण्डार में व द्धि** (Increase in the stock of Foreign Exchange) जैसे भारतीय मूल के प्रवासी, निर्यातक आदि विदेशी मुद्राएँ (डालर आदि) अर्जित करते है और उसको रिर्जव बैंक में जमा करके इसके बदले घरेलू मुद्रा प्राप्त करते हैं तो लोगों के पास घरेलू मुद्रा(रूपये) की पूर्ति बढ़ जाती है। आयात करने वाले इसके विपरित करते हैं। इस लेन-देन (Transactions) में विदेशी मुद्रा का स्टाक बढ़ता है तो घरेलू मुद्रा की पूर्ति लोगों के पास बढ़ती है जो मुद्रा-स्फीति की कारण बनती है।

(v) **काला धन** (Black Money) यह समाज का बिना हिसाब-किताब का धन (Unaccounted Wealth of Society) होती है। कर से बचने के लिए आय का हिसाब-किताब सरकार को नहीं दिया जाता। यह आय काले धन के रूप में सचंय होती है रहती है। इस धन को लोग उपभोग व विलास की वस्तुओं पर बेझिझक खर्च करते रहते हैं। इस कारण कुल मांग में व द्धि होती रहती है जो मुद्रा-स्फीति को बढ़ाती या उत्पन्न करती है।

(vi) **जनसंख्या में व द्धि** (Increase in Population) जनसंख्या में व द्धि से लागों की विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं जैसे उपभोग पदार्थ, भवन निर्माण, दवाइयों, वाहनों आदि की माँग निरन्तर बढ़ती रहती है जो कीमतों को बढ़ाती है। अल्प-विकसित देश उत्पादन तीव्र गति से नहीं बढ़ा पाते परन्तु जनसंख्या इन देशों में तीव्र गति से बढ़ती है। इसलिए कुल माँग बढ़ती है और कीमतें बढ़ने लग जाती हैं।

(vii) **निर्यातों में व द्धि** (Increase in Exports)निर्यातों में व द्धि से देश में लोगों की आय बढ़ती है। इसलिए वे अधिक वस्तुओं की मांग करते है और कीमतें बढ़ने लग जाती हैं। इतना ही नहीं निर्यातों के कारण वस्तुओं की पूर्ति भी कम हो जाती है।

(ix) **निवेश व्यय में व द्धि** (Increase in Investment Expenditure) यह कुल माँग में व द्धि को एक महत्त्वूपर्ण कारण है। लाभ की आशा में निजि घरेलू निवेश व्यय किया जाता है। इससे पूँजीगत पदार्थो, कच्चे माल आदि की माँग बढ़ती है जो कीमतों को बढ़ाती है।

(x) **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश** (Foreign Direct Investment) विदेशी निवेशकर्त्ता जब एक देश में निवेश भारी मात्रा में करने लगे तो यह वस्तुओं और सेवाओं की माँग को बढ़ा देता है इससे देश में मुद्रा स्फीति उत्पन्न होती है। आजकल भारत में भारी मात्रा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश बढ़ रहा है। इससे मुद्रा-स्फीति की आशा बनी रहती है।

(xi) **अनुत्पादक व्यय में व द्धि** (Increase in Unproductive Expenditure) कोई भी अनुत्पादक व्यय जैसे युद्ध खर्च, बाढ़ के नियंत्रण पर व्यय, चुनाव आदि पर व्यय सभी कुल माँग को बढ़ाने वाले है। इनसे वस्तुओं की पूर्ति नही बढ़ती। परिमाणातः मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है।

(xi) **उपभोक्ता साख** (Consumer Credit) कई बार बैंक टिकाऊ उपभोग जैसे टी.वी., स्कूटर, कार आदि के लिए उधार देना शुरू कर देते है। इससे माँग बढ़ती है तथा मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है। इन उपरोक्त में से किसी एक कारण से भी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न हो सकती है। तथा कई कारणों के होने पर भी मुद्रा-स्फीति हो सकती है।

पूर्ति पक्ष

(Supply Side)

अर्थव्यवस्था में कुछ कारण ऐसे हो सकते हैं जो वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति को कम (Decrease) कर देते हैं। स्थिर माँग वक्र के साथ ज्यों पूर्ति वक्र के कम होने के कारण बाई ओर सरकता जाता है। तो कीमतें बढ़ती रहती हैं। जैसा आगे दिए चित्र से प्रकट हो रहा है।

चित्र 7 में प्रारम्भिक कुल माँग वक्र DD कुल पूर्ति वक्र SS को काट कर P_0 कीमत स्तर पर निर्धारित करती है। मान लीजिए लागतों में व द्धि के कारण उत्पादक प्रचलित कीमत P_0 पर कम मात्रा बेचने को तैयार होते है, अर्थात् पूर्ति वक्र S_1S बन जाती है जो माँग वक्र को ऊपर काट कर P_1 कीमत निर्धारित करती है। इस प्रकार कीमत स्तर बढ़ता रहता है। इसको लागत-जनित मुद्रा-स्फीति (Cost-push inflation) भी कहतें हैं।

पूर्ति में यह कमी क्यों होती है? या पूर्ति वक्र बाई ओर (Leftward) क्यों सरक जाता है? इन कारणों की जाँच निम्न प्रकार से की गई है :

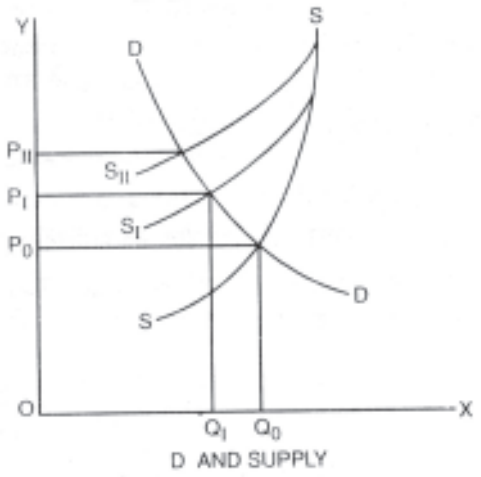

चित्र 7

(i) **कृषि उत्पादन में कमी** (Decrease in Agriculture Production) बाढ़ सुखे बीमारियों के कारण जब फसलें बरबाद हो जाती हैं या बोई नहीं जाती तो कृषि उत्पादन कम होता है इससे खाद्यान पदार्थो की पूर्ति कम हो जाती है। इतना ही नही कृषि बहुत से उद्योगों को कच्चा माल भी प्रदान करती है। कच्चे माल की कीमत बढ़ने के कारण औद्योगिक पदार्थो की उत्पादन लागात बढ़ जाती है। इससे इन पदार्थो का पूर्ति वक्र बाई ओर सरक कर मुद्रा-स्फीति को उत्पन्न करता है।

(ii) **औद्योगिक उत्पादन में कमी** (Decrease in Industrial Production) श्रमिकों द्वारा की गई हडतालों, बिजली की कमी, कच्चे माल की कमी आदि के कारण औद्योगिक उत्पादन गिर जाता है। इस कारण कुल पूर्ति वक्र बाई ओर सकर कर मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करता है। मशीनों, औजारों आदि की कीमत बढ़ने के कारण यह उत्पादन लागात को भी बढ़ा देता है जो कीमतों को बढ़ाने में सहायक होते है।

(iii) **सरकार की कर नीति** (Taxation Policy of the Government) जब सरकार कर की दरें बढ़ा देती है तो उत्पादक निरूत्साहित होते है। जैसे उत्पादन कर, बिक्री कर, निगम कर, ब्याज पर कर की दरें सरकार बढ़ा देती है तो उत्पादको के लाभ कम हो जातें है। वे कम उत्पादन करतें है। इस प्रकार पूर्ति कम होने पर कीमतें बढ़ती हैं।

लागत प्रेरित मुद्रा-स्फीति

(Cost-Push Inflation)

उत्पादन लागत में व द्धि मुद्रा-स्फीति को जन्म देती है। जब बेरोजगारी के होते हुए मजदूरी और कीमतें निरंतर बढ़ती रहें या मजदूरी और कीमतें बेरोजगारी के साथ-साथ बढ़ें, उस परिस्थति में मुद्रा-स्फीति का कारण मांग आधिक्य नहीं होता क्योंकि कुल मांग के बढ़ने से बेरोजगारी कम होती है और उत्पादन बढ़ता है। देखा गया है कि बेरोजगारी के बावजूद भी श्रम संगठन बेतन बढ़वाते हैं ओर बहुत सी फर्में मांग के कम होते हुए भी मजदूरी बढ़ा देती हैं। मजदूरी व द्धि और कच्चे माल की कीमतों में व द्धि होने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है। इन कारणों से वस्तुओं की कीमतों में व द्धि होती है। इसीलिए इस प्रकार की मुद्रा-स्फीति को लागत-जनित या लागत प्रेरित या पूर्ति पक्ष मुद्रा-स्फीति कहा जाता है। इसे रोकने के लिए मौद्रिक और राज कोषीय तरीके नहीं अपनाए जा सकते, क्योंकि ऐसा करने से बेरोजगाी बढ़ती है। संकुचनात्मक राजकोषीय नीति और महँगी मौद्रिक नीति के माध्यम से कुल व्यय घटा कर जब मुद्रा-स्फीति रोकने का प्रयास किया जाता हैं तो ऐसा करने से कुल माँग

घटती है ओर बेरोजगारी बढ़ती है। श्रम बाजार में श्रम-संघ और वस्तु-बाजार में एकाधिकार तत्व अधिक लाभ के लिए कीमतों में व द्धि के लिए जिम्मेवार हैं। जैसे बाजारें की संरचना रही है श्रम-संघ मजदूरी बढ़वाने में सफल रहकर मजदूरी-प्रेरित मुद्रा-स्फीति ओर एकसधिकारात्मक बाजारों में उत्पादक असामान्य लाभ अधिक करके लाभ प्रेरित मुद्रास्फीति को जन्म देते हैं। १६७०के बाद पूर्ति-पक्ष मुद्रा-स्फीति का एक और स्रोत मान लिया गया जिसको प्रायः पूर्ति झटके (Supply Shocks) कहा गया जैसा कि १६७३-७४ में यू.एस.ए. में खेती की फसल असफल होने के कारण हुआ। स्पष्ट यह है कि यह सरकार के नियंत्रण से बाहर होता है।

मजदूरी प्रेरित मुद्रा-स्फीति

(Wage-Push Inflation)

मजदूरी में व द्धि मुद्रा-स्फीति का कारण माना गया है। श्रम-संघ मजदूरी को श्रमिकों की उत्पादकता से अधिक बढ़वाने में सफल हो जाते हैं, जिससे प्रति इकाई उत्पादन की श्रम लागत बढ़ जाती है और फर्में उसे पूरा करने के लिए वस्तु-कीमतों में व द्धि कर देती हैं। बार-बार ऐसा होने से कीमतों का बढ़ना मुद्रा-स्फीति का रूप ले लेता है।

अपूर्ण प्रतियोगी श्रम-बाजारों, जो श्रम संघों की उपस्थिति से पैदा होते हैं, के कारण ही मजदूरी दर नीचे की ओर होती है जैसा कि चित्र ४ में दर्शाया गया है।

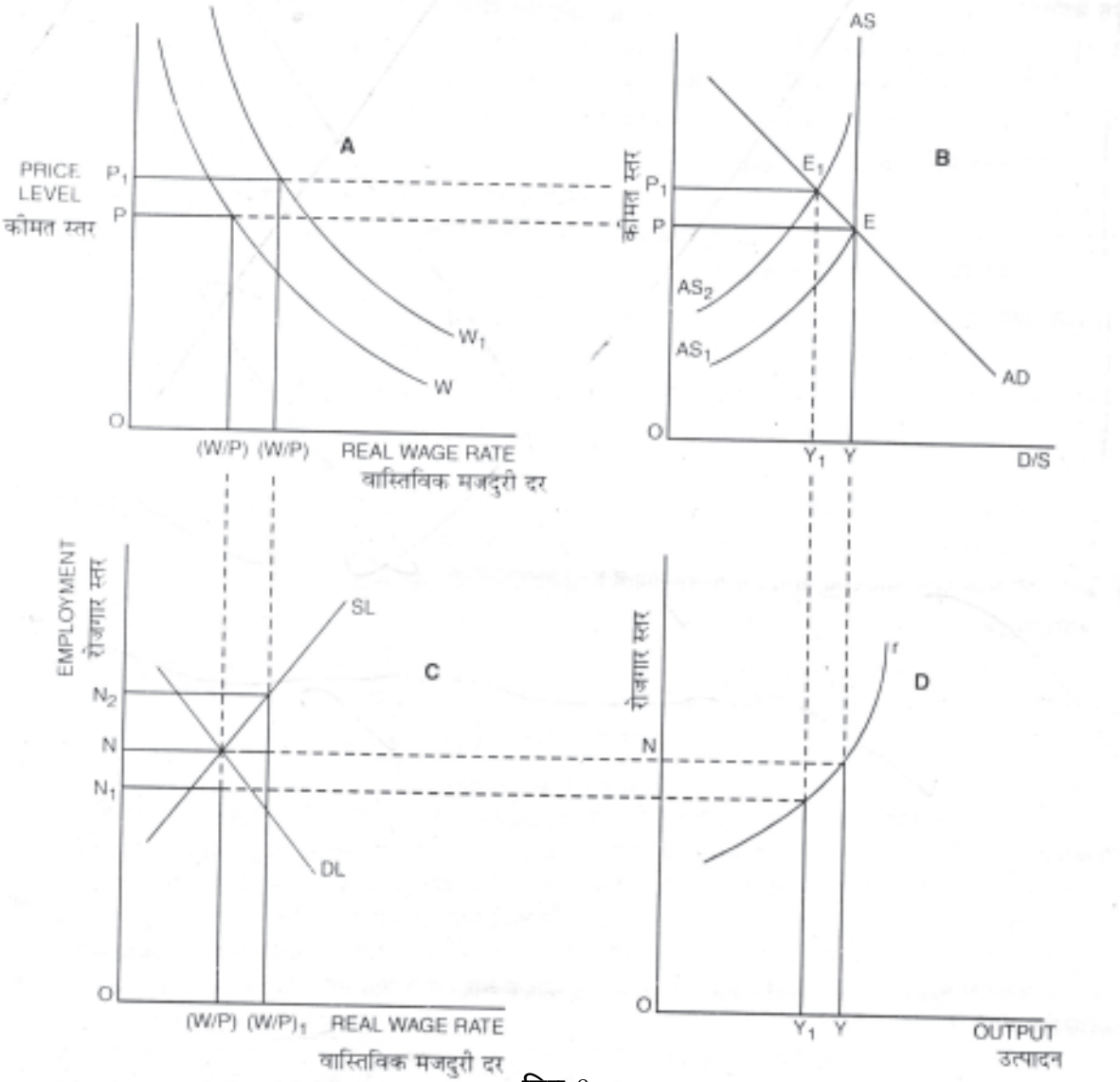

चित्र 8

अध्याय-2
सन्तुलन की धारणाएँ
(Concepts of Equilibrium)

अर्थशास्त्र में सन्तुलन की अवस्था को एक स्वाभाविक स्थिति समझा जाता है जिसमें आर्थिक शक्तियों के परिवर्तन की कोई प्रव त्ति नहीं होती है। विभिन्न आर्थिक क्रियाएं चाहे उपयोग है या उत्पादन या कोई अन्य सभी सन्तुलन की ओर स्वतः अग्रसित होती हैं। इसलिए सन्तुलन की धारणा अर्थशास्त्र 'केन्द्रीय बिन्दु' (Focal Point) का स्थान रखती है। इसी कारण अर्थशास्त्र को 'सन्तुलन-विश्लेषण का विज्ञान' (Science of Equilibrium Analysis) भी कहा जाता है।

सन्तुलन का अर्थ
(Meaning of Equilibrium)

सन्तुलन (Equilibrium) शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्दों 'Acquus' अर्थात् समान + 'Libra' अर्थात् साम्य (Balance) से हुई है। अतः सन्तुलन (Equilibrium) शब्द का शाब्दिक अर्थ समान साम्य (Equal Balance) होता है।

यद्यपि अर्थशास्त्र में सन्तुलन शब्द भौतिक विज्ञान (Physics) से लिया गया है, परन्तु फिर भी अर्थशास्त्र में सन्तुलन शब्द का अर्थ भौतिक विज्ञान से कुछ भिन्न है। भौतिक विज्ञान के अनुसार, सन्तुलन विश्राम की वह स्थिति (The state of rest) है जिसमें कोई गति या परिवर्तन नहीं होता। भौतिक विज्ञान के अनुसार जब दो विरोधी शक्तियाँ समान बल का प्रयोग कर रही हों परन्तु स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन न आए तो वह स्थिति सन्तुलन की अवस्था कहलाती है। उदाहरणतः रस्सा-कशी (Tug of war) में जब दोनों विरोधी टीमें बराबर बल का प्रयोग कर रही होती हैं, तो रस्सा विराम की स्थिति में या स्थिर स्थिति में आ जाता है। इस स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन या गति नहीं होती है। यह स्थिति भौतिक विज्ञान में सन्तुलन की स्थिति कही जाती है।

अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अर्थ वह स्थिति है जिसमे गति (Movement) तो होती है परन्तु परिवर्तन का अभाव पाया जाता है या जिसमें व द्धि या कमी की प्रव त्ति नहीं पाई जाती (Equilibrium is a state in which there is absence of change or in which there is no tendency to expand or contract).

अर्थशास्त्र में सन्तुलन एक ऐसी अवस्था को कहा जाता है जिसमें मुख्य चर (Variables) बदलने की प्रव त्ति नहीं रखते। जैसे मांग व पूर्ति के सन्तुलन में मांग, पूर्ति तथा कीमत बदलने की प्रव त्ति नहीं रखते हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि अर्थशास्त्र में सन्तुलन की अवस्था को स्थिर अवस्था या गतिहीनता (Absence of movement) की अवस्था भी नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि इसमें आर्थिक चर या शक्तियां निरन्तर गति करती रहती हैं परन्तु उनमें व द्धि या कमी नही होती है। उदाहरणतः सन्तुलन की स्थिति में हर वर्ष राष्ट्रीय उत्पादन पहले जितना ही बना रहता है, जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएं तो होती हैं (जैसे मज़दूरों को मज़दूरी मिलती है, किसान अनाज उगाते हैं, उद्योगपति लाभ कमाते हैं आदि) तथा कुछ वस्तुओं का उत्पादन घट रहा होता है तथा अन्य का उत्पादन बढ़ रहा होता है परन्तु अर्थव्यवस्था इकाई के रूप में गतिहीन होती है, क्योंकि राष्ट्रीय उत्पादन नहीं घट बढ़ रहा होता है।

परिभाषाएँ (Definitions)

1. प्रो. जे. के. मेहता के शब्दों में, ''सन्तुलन अर्थशास्त्र में गति में परिवत्रन की अनुपस्थिति व्यक्त करता है जबकि भौतिक विज्ञानों में यह गति की अनुपस्थिति व्यक्त करता है।'' (Equilibrium denotes in economics absence of change in movement, while in physical sciences it denotes absence of movement itself -J.K. Mehta)
2. प्रो. हैन्सन के अनुसार, ''सन्तुलन एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें उस समय की आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन को कोई प्रव त्ति नहीं होती।'' (Equilibrium is a situation in which economic forces as tehy exist at the time have no tendency to change - Prof. Hanson)
3. स्टीगलर के अनुसार, ''सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिससे हटन की कोई प्रव त्ति नहीं होती है।'' (Equilibrium is a position from which there is no tendency to move - Stigler)

अतः अर्थशास्त्र में सन्तुलन की स्थिति एक आदर्श या ईष्टतम (optional) स्थितिहोती है जिससे आर्थिक चरों या शक्तियों की हटन की कोई प्रव त्ति नहीं होती है। इसलिए अर्थशास्त्र में सन्तुलन की स्थिति की दो मुख्य विशेषताएं (Features) हैंः प्रथम, सन्तुलन की स्थिति में गति तो होती है परन्तु गति की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे उत्पादन में व द्धि की दर स्थिर रहना सन्तुलन की अवस्था का सूचक है। द्वितीय, सन्तुलन की अवस्था में आर्थिक इकाइयाँ अपनी ईष्टतम स्थिति में होती हैं। जैसे उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा होता है तथा उत्पादक सन्तुलन की स्थिति में अधिकतम लाभ या कम हानि उठा रहा होता है। सभी आर्थिक इकाइयों व सारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य सन्तुलन बिन्दु को प्राप्त करना होता है। सन्तुलन में आर्थिक शक्तियाँ अपने आप को दोहराती रहती हैं तथा उनके मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

सन्तुलन के प्रकार
(Kinds of Equilibrium)

सन्तुलन के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैंः

स्थिर, अस्थिर तथा तटस्थ सन्तुलन
(Stable] Unstable and Neutral Equilibrium)

A. **स्थिर सन्तुलन (Stable Equilibrium):** जब कोई आर्थिक इकाई किसी कारण से अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से विचलित या हट जाती है तो आर्थिक तत्वों या शक्तियों में स्वतः इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि वह सन्तुलन की पहले वाली अवस्था को पुनः प्राप्त कर लेती है, उसको स्थिर सन्तुलन कहा जाता है। जैसे मटके में रखी गेंद को हिलाने से वह पुनः अपनी पहले वाली स्थिति में आ जाती है। सामान्य मांग व पूर्ति का सन्तुलन एक स्थिर एक स्थिर सन्तुलन को दर्शाता है।

स्थिर सन्तुलन की स्थिति को निम्न चित्र 1 की सहायता से समझा जा सकता है चित्र 1 के OX अक्ष पर एक वस्तु की मांग व पूर्ति की मात्रा वक्र को DD वक्र तथा पूर्ति वक्र को SS वक्र द्वारा दर्शाया गया है। E बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन उनके एक दूसरे को काटने से स्थापित होता है तथा OP कीमत सन्तुलित कीमत निर्धारित होती है। OP कीमत पर वस्तु की मांग व पूर्ति बराबर हैं अर्थात् OQ मात्रा के समान है। यदि कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तो वस्तु की मांग OQ_1 तथा पूर्ति OQ_{II} हो जाती है। OP_1 कीमत पर वस्तु की पूर्ति मांग से अधिक होने के कारण कीमत गिरने की प्रव त्ति रखती है तथा गिर कर OP हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि कीमत OP से गिरकर OP_2 हो जाए तो मांग की मात्रा OQ_{III} तथा पूर्ति की मात्रा OQ_{IV} हो जाती है। यहां मांग पूर्ति से अधिक होने के कारण कीमत बढ़ने की प्रव त्ति रखती है तथा वह OP_2 से बढ़ कर फिर OP हो जाती है। अतः मांग व पूर्ति की शक्तियां स्वतः इस प्रकार कार्य करती है कि पहले वाली सन्तुलन अवस्था पुनः प्राप्त हो जाती है। कीमत, मांग व पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं आता है। अतः यह स्थिर सन्तुलन कहा जाता है।

B. **अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium):** जब कोई आर्थिक इकाई किसी कारण से अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से विचलित या हट जाती है तो आर्थिक तत्वों या शक्तियों में इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि वह प्रारम्भिक सन्तुलन की स्थिति से निरन्तर दूर हटती चली जाती है, इसको अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सन्तुलन यदि भंग हो जाता है तो कुछ ऐसी शक्तियां पैदा होती हैं जो व्यवस्था को सन्तुलन से दूर ले जाती हैं। प्रो. पीगू के अनुसार, ''एक आर्थिक प्रणाली उस समय अस्थिर सन्तुलन में होती है जब जरा सा परिवर्तन आगे शक्तियों मे इस प्रकार परिवर्तन करता है कि इस प्रणाली को प्रारम्भिक स्थिति से निरन्तर दूर ले जाता है।'' (An economic system is in unstable equilibrium if the small disturbances call out for further disturbing forces which act in a cumulative manner to drive the system away from its initial position -Pigou)

अस्थिर सन्तुलन की अवस्था को असामान्य मांग व पूर्ति वक्रों की सहायता से समझा जा सकता है। रेखाचित्र नं. 2 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर उसी वस्तु की कीमत मापी गई है। चित्र में SS वक्र पूर्ति वक्र हैं (जिसका ढाल ऋणात्मक है) तथा DD वक्र मांग वक्र है (जिसका ढाल घनात्मक है)। OP कीमत सन्तुलित कीमत है, जिस पर मांग व पूर्ति दोनों बराबर तथा सन्तुलन में हैं। यदि कमीत बढ़ कर OP1 हो जाती है तो पूर्ति OQ1 तथा मांग OQ2 हो जाती है। यहां मांग की मात्रा पूर्ति से अधिक होने के कारण कीमत बढ़ती जाएगी। कीमत दोबारा अपनी प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की ओर लौटने की प्रव त्ति नहीं रखती है। इसके विपरीत यदि कीमत कम होकर OP2 हो जाती है तो मांग कम होकर OQ3 तथा पूर्ति बढ़ कर OQ4 हो जाएगी। अतः पूर्ति मांग से अधिक (S>D) होने के कारण कीमत निरन्तर गिरती हो जाएगी और अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से दूर हटती जाएगी। मांग व पूर्ति की आर्थिक शक्तियां इस प्रकार क्रिया करती हैं कि प्रारम्भिक सन्तुलन कीमत OP से प्रव त्ति निरन्तर गिरती ही जाएगी

और अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से दूर हटती जाएगी। मांग व पूर्ति की आर्थिक शक्तियां इस प्रकार क्रिया करती हैं कि प्रारम्भिक सन्तुलन कीमत OP से प्रव त्ति निरन्तर दूर होती जाती है।

C. **तटस्थ सन्तुलन (Neutral Equilibrium):** तटस्थ सन्तुलन एक ऐसी अवस्था है, जिसमें कोई आर्थिक इकाई अपने प्रारम्भिक सन्तुलन से विचलित होने पर जो नई अवस्था प्राप्त करती है वह उसी पर कायम रहती है। प्रारम्भिक सन्तुलन से विचलित या हटने से ऐसी आर्थिक शक्तियों का उदय नहीं होता जो आर्थिक प्रणाली को अपने प्रारम्भिक सन्तुलन पर पुनः स्थापित कर सकें या इसे निरन्तर दूर होती जाएँ। सन्तुलन भंग होने पर जो नई अवस्था बनती है उससे प्रारम्भिक सन्तुलन की ओर आने की या उससे दूर हटने की प्रव त्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था को ही हम तटस्थ सन्तुलन (Neutral Equilibrium) कहते हैं।

तटस्थ सन्तुलन की अवस्था उस समय उत्पन्न हो सकती है जब मांग व पूर्ति वक्रों के ढाल समान हों। इसको चित्र 3 की सहायता से समझा जा सकता है। चित्र 3 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर उस वस्तु की कीमत मापी गई है। DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र हैं। चित्र में दर्शाया गया है कि जब कीमत OP होती है तो मांग व पूर्ति E बिन्दु पर सन्तुलन में तथा मांग व पूर्ति बढ़कर OP1 हो जाती है तो सन्तुलन की नई अवस्था E1 पर स्थापित हो जाती है तथा यह कायम रहती है इसके विपरीत जब कीमत गिरकर OP2 हो जाती है तो नया सन्तुलन E2 पर स्थापित होता है तथा यह भी कायम रहता है। E2 बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति की मात्राएं समान हैं।

सन्तुलन की उपरोक्त तीनों अवस्थाओं को एक बर्तन और गेद के उदाहरण से चित्र 4 में स्पष्ट किया गया है:

i. एक गोल-तले वाले बर्तन में पड़ी गेंद स्थिर (Stable) सन्तुलन की अवस्था में होती है। क्योंकि यदि गेंद को हिला दिया जाता है तो वह इधर-उधर हिलने के बाद अपने प्रारम्भिक सन्तुलन की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

ii यदि बर्तन को उल्टा करके गेंद इसके सबसे ऊँचे वाले भाग पर रख जाती है तो अस्थिर (unstable) सन्तुलन की अवस्था होती है। क्योंकि यदि गेंद को वहां से हिला दिया जाता है तो वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में नही आ सकती बल्कि उसे दूर हटती जाती है।

iii समतल ज़मीन पर रखी गेंद तटस्थ (Neutral) सन्तुलन की अवस्था को व्यक्त करती है। गेंद को यदि इस स्थिति से हिला दिया जाता है तो वह नई अवस्था प्राप्त करती है वहीं पर स्थिर हो जाती है वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था से न दूर हटने की प्रव ति रखती है तथा न ही वह उसको प्राप्त करने की प्रव त्ति रखती है। इस स्थिति में गेंद की प्रव त्ति तटस्थ (Neutral) है। ऐसी स्थिति को ही तटस्थ सन्तुलन कहा जाता है।

एकाकी तथा बहु-सन्तुलन
Single and Multiple Equilibrium

1. **एकाकी सन्तुलन (Single Equilibrium):** ऐसी स्थिति जिसमें सन्तुलन की केवल एक ही अवस्था या स्थिति उत्पन्न होती हो तो वह एकाकी सन्तुलन (Single Equilibrium) कहलाता है। एकाकी सन्तुलन एक स्थिर सन्तुलन होता है। यदि आर्थिक शक्तियाँ इस सन्तुलन को विचलित हो जाती हैं तो स्वयं इस प्रकार की प्रक्रिया उत्पन करती हैं कि दोबारा वही सन्तुलन की अवस्था प्राप्त हो जाती है। प्रो. काल्डोर के अनुसार, ''जब किसी वस्तु की मांग और पूर्ति किसी एक ही कीमत पर सन्तुलन में हो तो वह एकाकी सन्तुलन कहलाता है।'' (When demand and supply of any commodity are in equilibrium only at a single price, it denotes singel equilibrium - Kaldor). एकाकी सन्तुलन की स्थिति को चित्र 5 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

चित्र 5 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर इस वस्तु की कीमत मापी गई है। DD मांग वक्र तथा SS पूति वक्र हैं जो E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं तथा दूसरे के समान हैं। मांग तथा पूर्ति में E बिन्दु पर सन्तुलन केवल OP कीमत पर ही होता है। OP1 तथा OP2 कीमतों पर मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित नहीं होता है। ऐसी स्थिति में जहां एक ही अवस्था में सन्तुलन होता है वह एकाकी सन्तुलन कहलाता है।

2. **बहु-सन्तुलन (Multiple Equilibrium):** जब सन्तुलन अनेक अवस्थाओं में स्थापित हो सकता हो तो उसे बहु-सन्तुलन (Multiple Equilibrium) कहा जाता है। जैसे कीमत, मांग और पूर्ति के अनेक समूह हो सकते हैं जो सभी सन्तुलन की अवस्थाओं को प्रकट कर सकते हैं। प्रो. स्टिगलर के अनुसार, ''बहु-सन्तुलन उस समय होता है जब कीमतों तथा मात्राओं के विभिन्न समूह सन्तुलन की शर्तों को सन्तुष्ट करते हैं।'' (Multiple positions of equilibrium exist when serval different sets of prices and qunatities meet the equilibrium conditions - Stigler). बहु-सन्तुलन उस समय होता है जब मांग व पूर्ति वक्र सरल रेखीय (Linear) न होकर टेढ़े-मेढ़े (Non-Linear) हों। इसको चित्र-6 द्वारा दर्शाया गया है:

चित्र-6 में SS पूर्ति वक्र तथा DD मांग वक्र टेढ़ी-मेढ़ी (Nonilinear) ढाल वाले दर्शाए गऐ हैं। मांग तथा पूर्ति की स्थितियां E, E1 तथा E2 पर सन्तुलन की स्थितियां हैं, क्योंकि इन बिन्दुओं पर मांग तथा पूर्ति एक दूसरे के बराबर हैं।

E बिन्दु पर स्थाई (Stable Equilibrium) है, क्योंकि यदि कीमत OP से कम या अधिक होती है तो वह दोबारा OP पर पुनः मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित कर देती हैं परन्तु E1 तथा E2 दोनों अस्थिर सन्तुलन को दर्शाते हैं। अतः ध्यान देने की बात यह है कि चित्र-6 में दर्शाई गई आकृतियों वाले मांग तथा पूर्ति वक्र अनेक सन्तुलन बिन्दु स्थापित कर सकते हैं जिनको बहु-सन्तुलन (Multiple Equilibrium) कहा जाता है।

3. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन (Short Run and Long Run Equilibrium)

अर्थशास्त्र में अल्पकाल तथा दीर्घकाल किसी निश्चित समय अवधि को व्यक्त नहीं करते हैं। इनका संबंध तो चरों की व्यवस्था से होता है। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन की धारणाओं का प्रतिपादन करने वाले प्रथम अर्थशास्त्री डॉ. मार्शल हैं। इनकी व्याख्या निम्नलिखित हैः

A. **अल्पकालीन सन्तुलन (Short Run Equilibrium):** अल्पकाल में स्थापित होने वाला सन्तुलन अल्पकालीन सन्तुलन कहलाता है। अल्पकाल समय की अवधि का अर्थ एक घण्टा या दो घण्टे या एक दिन आदि नहीं होता बल्कि एक ऐसी अवस्था है जिसमें इतना समय नहीं होता कि किसी आर्थिक घटना को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों में परिवर्तन किया जा सके। उदाहरणतः उत्पादन में अल्पकाल के दौरान कम-से-कम एक साधन अवश्य स्थिर रहता है। जैसे उत्पादन की मांग बढ़ने पर उत्पादन में व द्धि करने के लिए कच्चे माल तथा श्रमिकों की मात्रा तो बढ़ाई जा सकती है परन्तु मशीनों और भवन की संख्या में व द्धि करने के लिए पर्याप्त समय नही होता है। इस प्रकार उत्पादन केवल श्रमिक तथा कच्चे माल की मात्रा में व द्धि करके बढ़ाया जा सकता है और बढ़ी हुई मांग को सन्तुष्ट किया जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति में मांग तथा पूर्ति के मध्य तो सन्तुलन स्थापित होता है वह अल्पकालीन सन्तुलन कहलाता है। अल्पकाल के अन्तर्गत पूर्ति को बढ़ने का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि सभी साधनों को नहीं बढ़ाया जा सकता। इसलिए उस वस्तु की कीमत अधिक बढ़ जाती है तथा मांग और पूर्ति के बीच अल्पकालीन सन्तुलन ऊंची कीमत पर स्थापित होता है। चित्र - 7 में DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र प्रारम्भिक वक्र हैं जो OP कीमत पर सन्तुलन स्थापित करते हैं जिसको E बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। अब यदि मांग बढ़ कर D1D1 हो जाती है तो अल्पकालीन सन्तुलन S1S1 अल्पकालीन पूर्ति वक्र (Short Run Supply Curve) की सहायता से OP1 कीमत पर स्थापित होता है जिसको E1 बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है।

B. **दीर्घकालीन सन्तुलन (Long Run Equilibrium):** दीर्घकाल मे स्थापित होने वाला सन्तुलन दीर्घकालीन सन्तुलन कहलाता है। दीर्घकाल समय की अवधि का अर्थ एक वर्ष या दस वर्ष नही होता बल्कि एक ऐसी अवस्था है जिसमें किसी आर्थिक घटना के सभी तत्वों को परिवर्तित करने का पर्याप्त समय होता है। उदाहरणतः उत्पादन में सभी उत्पादन के साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा मांग के बढ़ने पर पूर्ति को बढ़ाने के लिए सभी तत्वों (श्रमिक, कच्चा माल, मशीन, भवन आदि) की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। चित्र-7 में जब मांग वक्र DD से बढ़कर D1D1 हो जाता जो दीर्घकालीन पूर्ति वक्र SS के साथ मिलकर E2 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करता है तथा OP11 तथा कीमत निध ार्ारित होती है। OPII कीमत OP1 अल्पकालीन कीमत से कम है। इसका कारण यही है कि दीर्घकालीन सन्तुलन में पूर्ति को अल्पकालीन सन्तुलन की अपेक्षा अधिक बढ़ाया जा सकता है।

4. स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैनिक तथा गत्यात्मक सन्तुलन (Static, Comparative Static and Dynamic Equilibrium)

A. **स्थैतिक सन्तुलन (Static Equilibrium):** जैसा हम देख चुके हैं कि सन्तुलन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। माचलप के अनुार किसी सैद्धान्ति मॉडल मे कुछ चुने हुए परस्पर संबंधित चरों का समूह होता है जो एक-दूसरे से इस प्रकार समन्वयित (Adjusted) होते हैं कि उनमें परिवर्तन की नीहित प्रव त्ति नहीं होती है। इस परिभाषा में कुछ शब्द महत्वूपर्ण हैंः (1) इसमें चुने हुए चर से अभिप्राय है कि सन्तुलन का संबंध मॉडल मे चुने गए या शामिल किए गए चरों से ही है अन्य चरों से नहीं। जैसे किसी मॉडल में मांग, पूर्ति कीमत चुने हुए चर हो सकते हैं, (2) इसमें परस्पर संबंधित चर से अभिप्राय है कि मॉडल में सम्मिलित सभी चर साथ-साथ सन्तुलन प्राप्त करते हैं अर्थात् विराम की अवस्था मे होते हैं, तथा (3) इसी प्रकार इसमें नीहित शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अभिप्राय यह है कि सन्तुलन या स्थिरावस्था मॉडल के केवल आन्तरिक चरों (जिनको मॉडल में ही निर्धारित किया जाता है) में ही होता है न कि बाह्म चरों (जो मॉडल के बाहर निर्धारित होते हैं) में सन्तुलन होता है। बाह्म चरों जैसे जनसंख्या, जलवायु, तकनीकी आदि को स्थिर माना जाता है।

स्थैतिक सन्तुलन वह सन्तुलन है जो किसी एक समय बिन्दु पर किसी निश्चित मॉडल में पाया जाता है तथा चरों में बदलने की प्रव त्ति नहीं होती या वे स्थिरावस्था में होते हैं। यह स्थिरावस्था ही स्तैनिक सन्तुलन का धातक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न बाह्म चर जैसे आय, संबंधित वस्तुओं की कीमतें, श्रम, पूँजी, तकनीक, जनसंख्या आदि जो सन्तुलन को प्रभावित कर सकते हैं वे सभी स्थिर रहते हैं। उनके स्थिर रहने के कारण किसी वस्तु के मांग व पूर्ति वक्र भी स्थिर रहते हैं तथा सन्तुलन की अवस्था ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। इसको स्थिर पर सन्तुलन कहा जाता है।

जब किसी आर्थिक विश्लेषण में हमारा ध्यान किसी समय पर सन्तुलन बिन्दु पर ही केन्द्रित होता है वह स्थैतिक सन्तुलन कहलाता है। इसके अन्तर्गत इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करने

मेंकितना समय लगाा, किन-किन चरों को बदलना पड़ा आदि। इसकी बजाय यह कल्पना की जाती है कि सन्तुलन को निर्धारित करने वाले प्रत्यक्ष चर जैसे मांग तथा पूर्ति और अप्रत्यक्ष चर जा मांग और पूर्ति को प्रभावित करते हैं। जैसे कुल उपभोग, निवेश, श्रम पूर्ति, तकनीक आदि सभी स्थिर रहते हैं।

हैरोड (Harrod) के अनुसार, ''स्थैतिक उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उत्पादन की दर स्थिर रहती है, अर्थात् सभी आर्थिक चर जैसे जनसंख्या साधन, संगठन, तकनीक, पूंजी स्टॉक, रूचि आदि समान दर पर बने रहते हैं ताकि आर्थिक प्रणली में अनिश्चित उत्पन्न न हो। ''अतः अर्थिक स्थैतिक किसी समय बिन्दु पर सन्तुलन की वह अवस्था है जिसमें सन्तुलन निर्धारित करने वाले चरों को स्थिर माना गया है। ध्यान रहे स्थैतिक सन्तुलन का सम्बन्ध किसी समय बिन्दु से होता है। जैसे कि चित्र-8 में दर्शाया गया हैः-

चित्र-8 में E बिन्दु पर मांग व पूर्ति के बीच स्थैतिक सन्तुलन है जिस पर OP कीमत निर्धारित होती है। इससन्तुलन की अवस्था में कीमत, मांग तथा पूर्ति में बदलने की प्रव त्ति नहीं है।

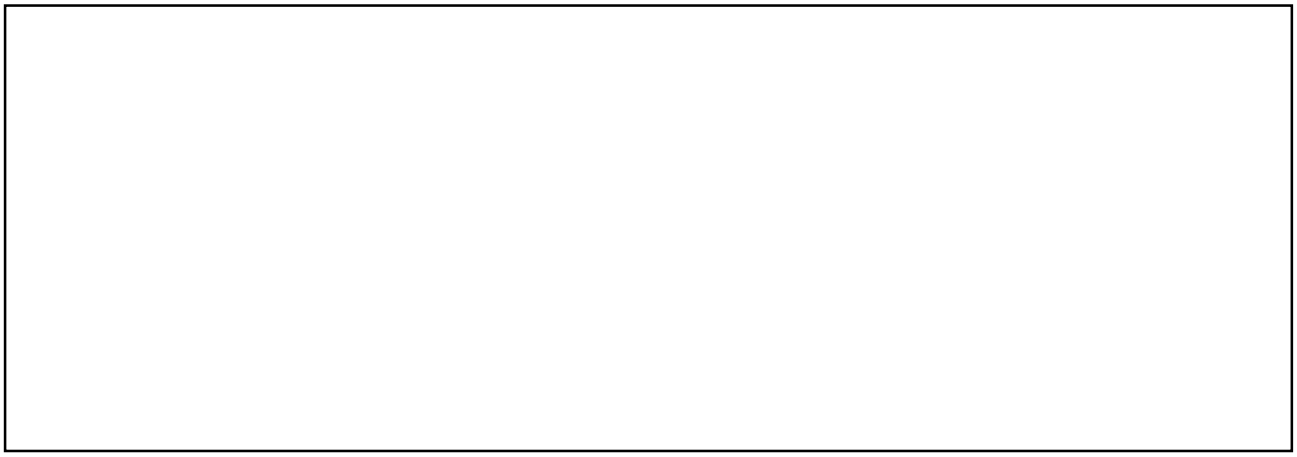

मान्यताए (Assumption): व्यष्टि अर्थशास्त्र में स्थैतिक सन्तुलन की कुछ मान्यताएं निम्न हैं:

1. आय स्थिर रहती है।
2. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
3. जनसंख्या स्थिर रहती है।
4. तकनीकी स्थिर रहती है।
5. विज्ञापन आदि स्थिर रहते हैं।
6. जलवायु, लोागं की रूचि, फैशन आदि स्थिर रहते हैं।
7. सन्तुलन प्राप्त करने वाली आर्थिक इकाई विवेकशील है।
8. उत्पादन साधनों में परिवर्तन नहीं होता है।

स्थैतिक सन्तुलन की सीमाएं
(Limitation of Static Equilibrium)

स्थैतिक सन्तुलन का अध्ययन करते समय हमारा पूरा ध्यान मॉडल के आन्तरिक चरों मे सन्तुलन प्राप्त करने पर केन्द्रित रहता है। ऐसे विश्लेषण में एक आधारभूत तथ्य की अवेहलना हो जाती कि इसके अन्तर्गत चरों में वास्तव में समवय या पुनर्समन्वय कैसे होता जिससे सन्तुलन की अवस्था प्राप्त होती है। स्थैतिक सन्तुलन से यह तो ज्ञात होता है कि सन्तुलन की अवस्था में चरों के क्य मूल्य होंगे, परन्तु यह मालूम नही होता है कि इस अवस्था तक पहुंचने तकक्याा-क्या घटित हुआ तथा कितना

समय लगा है।

इसलिए स्थैतिक सन्तुलन दो महत्त्वपूर्ण समस्याओं का ध्यान नहीं रख सकाः

1. स्थैतिक सन्तुलन किसी समय बिन्दु पर प्राप्त होने वाले सन्तुलन तक सीमित है। परन्तु वास्तव में सन्तुलन अवस्थ प्राप्त होने में काफी लम्बा समय लग सकता है। इतने लम्बे समय में यह सम्भव है कि वह सन्तुलन की अवस्था जिसको प्राप्त करना चाहते है। अपना महत्त्व ही खो दें। क्योंकि हो सकता है मॉडल के बाह्य चरों में इस दौरान परिवर्तन होने से अब हमारे लिए वहसन्तुलन जिसको हम प्राप्त करना चाहते थे। अर्थहील बन गया हो। अर्थात् अब कोई अन्य सन्तुलन बिन्दु महत्त्वपूर्ण बन गया है।
2. चरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने से वे सन्तुलन की अवस्था को पर कर सकते हैं तथा अन्य सन्तुलन बिन्दुओं की ओर अग्रसर होते रहते हैं, जैसा किहमने अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium) की अवस्था में देखा है।
3.. मॉडल के बाह्य चरों में परिवर्तन होत रहने से सन्तुलन की स्थिति विवर्तित (Shift) होती रहती है, जिसको हम तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन (Comparativ Statics) के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं। इतना ही नहीं सन्तुलन बिन्दुओं में परिवर्तन होते रहने के कारण हम अध्ययन करते कि कौन-कौन से सन्तुलन प्राप्त हो सकते हैं तथा उनमें स्थिरता (Stability) कैसे आ सकती है, इनका अध्ययन हम गत्यात्मक सन्तुलन (Dynamic equilibrium) के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं।

2. तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन
(Comparative Static Equilibrium)

विभिन्न सन्तुलन अवस्थओं, जो बाह्य चरोंको विभिन्न मूलस ये सम्बन्धित होते हैं, का अध्ययन तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण कहलाता है। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए महमए एक प्रारम्भिक सनतुलन स्थिति की कल्पना करते हैं। अब किसी बाह्य चर में परिवर्तन होने से मॉडल में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तथा सम्बन्धित चरों, जैसे कीमत, मांग, पूर्ति में परिवर्तन होकर एक नया सन्तुलन बिन्दु प्राप्त हो जाताै तथा आन्तरिक चरों में समन्वय होता है। नये सन्तुलन बिन्दु के चरों की तुनान प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु के चरों से की जाती है तथा इसी को तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन कहा जाता है। इसकी व्याख्या आगे दिये गया चित्र की सहायता से की जा सकती हैः

इस चित्र में प्रारम्भिक सन्तुलन E बिन्दु पर स्थापित होता है। मान लो जनसंख्या में व द्धि होने से कुल मांग (D) बढ़कर D_1 हो जाती है तथा नया सन्तुलन बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है। E बिन्दु पर मॉडल के चरों (P,D,S) की तुलना E_1 सन्तुलन बिन्दु के चरों $P_1, D_1, S_1 (Q_1)$ से की जाती है तो यह तुलनात्मक सन्तुलन कहा जायेगा।

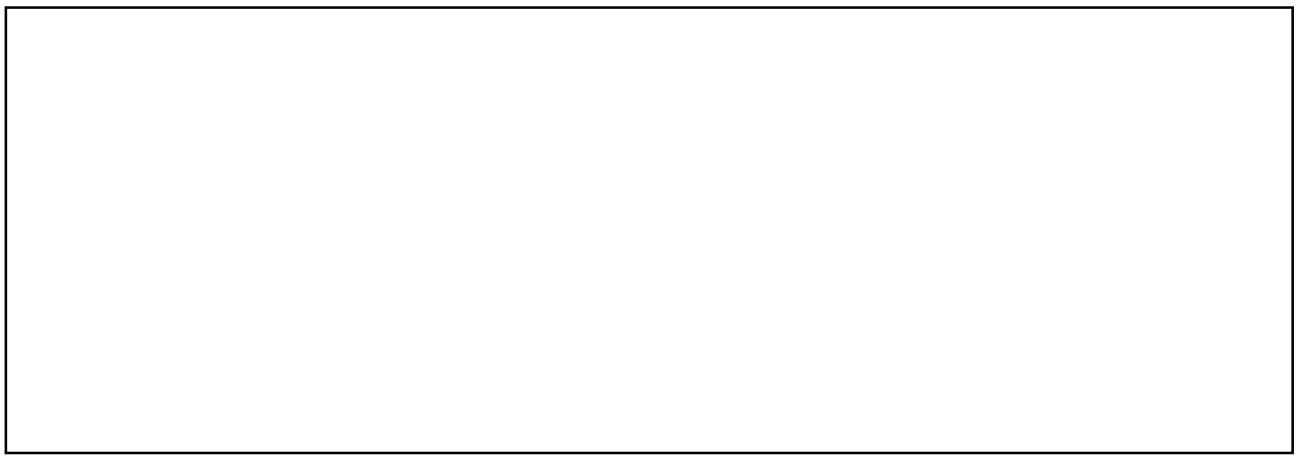

इस मॉडल में बाह्य चर (जनसंख्या में परविर्तन) होने से कीमत, मांग, तथा पूर्ति कितनी बदलती है इसका अध्ययन Derivative की सहायता से किया जाता है। इससे हिम परिवर्तन की दर ज्ञात कर सकते हैं। इस सन्तुलन से परिवर्तन की दर का अध्ययन होता है।

सीमाएं (Limitations)—तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन की सीमाएं निम्न हैं:-

1. आन्तरिक चरों में परिवर्तन की प्रक्रिया का ज्ञान नहीं हो पाता है।
2. सन्तुलन के विवर्तन का ज्ञान भी नहीं होता कि आगे होया या नहीं।

3. गयात्मक सन्तुलन

(Dynamic Equilibrium)

एक अर्थिक सन्तुलन से दूसरे आर्थिक सन्तुलन को कैसे प्राप्त किया जाता है यह मत्यात्मक अर्थशास्त्र का विषय है। गत्यात्मक सन्तुलन के अन्तर्गत किसी समय अवधि में चरों में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। इस समय अवधि में सभी आर्थिक चरों को परिवर्तनशील माना जाता है। आर्थिक चरों में समय के साथ-साथ एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक पहुंचन में जो गति और परिवर्तन होता है। उसका विश्लेषण गत्यात्मक विश्लेषण कहलाता है।एक सन्तुलन बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक चरों में समय के साथ समन्वय (adjustment) कैसे और कितना होता है यह गत्यात्मक विश्लेषण के अध्ययन का विषय है।

इस विश्लेषण की आधारभूत विशेषता हय है कि इसमें चरों के साथ समय (dating) अंकित किया जाता है। यह दा प्रकार र से किया जाता है, समय निरन्तर (Continouous) या भिन्न (Discerete) हो सकता है। पहली अवस्था में चर निरन्तर बदर रहा होता है। जैस राष्ट्रीय उत्पादन। दूसरी अवस्था में चर अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न होता है। जैस राष्ट्रीय उत्पदन की गणना हर वर्ष के अन्त में करना आदि। व्यापार चक्रों (Business Cycles) का अध्ययन गत्यात्मक अर्थशास्त्र का ही भा है। इसकी व्याख्या चित्र-10 के माध्यम से की जा सकती है।

चित्र-10 दर्शा रहा है कि प्रारम्भ में E बिन्दु पर सन्तुलन तथा OP कीमत निर्धारित होती है। अब यदि मांग वक्र DD से बढ़कर D_1D_1 हो जाता है तो अति अल्पकाल में पूर्ति नही बढ़ सकती तथा अति अल्पकाल के दौरान पूर्ति ES_1 का रूप धारण करेगी जो D_1D_1 से साथ मिलकर E_1 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करती है तथा OP_1 कीमत निर्धारित करती है। इसके बाद समय अवधि कुछ लम्बी या अल्पकाल होने पर कुछ उत्पादन के साधनों की मात्रा को बढ़कार उत्पादन या पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है। इस कारण पूर्ति वक्र की आक ति ES_2 हो जाती है जो E_2 पर सन्तुलन स्थापित करती है तथा OP_2 कीमत पर निर्धारित करती है इसके उपरान्त यदि समय अवधि और भी लम्बी या दीर्घकाल होती है, जिसमें उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है, ता पूर्ति वक्र का आकार ES बन जायेगा। ES पूर्ति वक्र D_1D_1 मांग वक्र के साथ मिलकर E_3 पर सन्तुलन स्थापित करता है तथा OP_3 कीमत निर्धारित होती है। अतः सन्तुलन बिन्दु E से E_1, E_1 से E_2 तथा E_2 से E_3 गत्यात्मक सन्तुलन का निर्माण करता है।

महत्त्व (Significance)-

1. एक सन्तुलन बिन्दु से दूसरे सन्तुलन बिन्दु पर पहुंचन में जो प्रक्रिया होती है, उसका ज्ञान गत्यात्मक सन्तुलन से प्राप्त होता है, जो हमें तुलनात्मक सन्तुल से नहीं होता है। प्रारम्भिक सन्तुलन में परिवर्तन किसी बाह्य चर या किसी स्थिर

मूल्य (Parameter) में परिवर्तन के कारण हो सकता है।

2. गत्यात्मक विश्लेषण से हमे यह भी ज्ञात हो जाता है कि प्रारम्भिक सन्तुलन में परिवर्तन आने पर चर दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक पहुंचने में सरल या टेढ़ा-मेढ़ा या उतार-चढ़ाव वाला रास्ता अपनाता है।

3. गत्यात्मक सन्तुलन के अन्तर्गत चरों में जो समन्वय (Adjustment) होती है, उसका ज्ञान भी हमें प्राप्त हो जाता है।

4. किसी चर में समय के साथ परिवर्तन की दर की भी जानकारी केवल गत्यात्मक सन्तुलन विश्लेषण से ही होती है।

5. यह विश्लेषण वास्तविकता के अधिक नजदीक है क्योंकि इसमें सभी चरों को परिवर्तनशील माना गया है।

सीमाएं
(Limitations)

गत्यात्मक विश्लेषण की कुद सीमाएं भी हैं जो निम्न प्रकार हैंः-

1. गत्यात्मक मॉडल प्रायः सरल रेखीय समीकरणों (Linear equations) के रूप में तैयार किये जाते हैं जो वास्तविकता से दूर होते हैं। चरों में परिवर्तन अधिकतर टेढ़ी-मेढ़ी रेखा (Non-Linear) का पालन करते हैं न कि सरल रेखा का।

2. गत्यात्मक मॉडलों के समीकरणों जो स्थिर गुणक (Co-efficient constants) की कल्पना की जाती है, वह भी वास्तविकता से दूर है, क्योंकि इनमें भी परिवर्तन आता रहता है।

3. गत्यात्मक सन्तुलन विश्लेषण जटिल है क्योंकि इससे सभी चर परिवर्तनशील होने के कारण निष्कर्ष निकालने कठिन है।

5. आशिक तथा सामान्य सन्तुलन
(Partial and General Equilibrium)

आंशिक सन्तुलन (Partial Equilibrium): अर्थव्यवस्था अनेक आर्थिक इकाइयों का समूह होती है। सारी अर्थव्यवस्था सन्तुलन में न होकर जब कोई एक आर्थिक इकाई सन्तुलन में होती तो ऐसी अवस्था को आंशिक सनतुलन (Partial Equilibrium) कहा जाता है। जैसे कोई एक उपभोक्ता एक उत्पादक या फर्म, एक उद्योग, एक वस्तु का बाजार आदि के सन्तुलन का अध्ययन किया जाये तो वह आंशिक सन्तुलन का अध्ययन कहा जायेगा। किसी आंशिक सन्तुलन का अध्ययन करते समय सम्बन्धित अन्य तत्त्वों को स्थिर (Other things being equal) माना जाता है तथा केवल एक ही आर्थिक तत्त्व को परिवर्तनशील (variable) माना जाता है। किसी वस्तु की मांग और पूर्ति के बीच हुआ सन्तुलन उस वस्तु की कीमत का निध ार्ारण करता है। यह आंशिक सन्तुलन का एक उदाहरण है। इस आंशिक सन्तुलन में उस वस्तु की मांग व पूर्ति को प्रभावित करने वाले कीमत को छोड़ कर अन्य सभी तत्त्वों, जैसे आय, तकनीकी जनसंख्या आदि को स्थिर माना गया है। ये अन्य सभी तत्त्व स्थिर रहते हुए केवल वस्तु की कीमत में उतार-चढ़ाव उस वस्तु के बाजार में या उस वस्तु की मांग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करता है। इसको ही आशिक सन्तुलन कहा जाता है।

प्रो० स्टिगलर के अनुसार, ''एक आंशिक सन्तुलन वह होता है जो केवल सीमित तत्वों पर आधारित होता है। किसी एक वस्तु कीकीमत का निर्धारण इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस विश्लेषण के अन्तर्गत अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखा जाता है।'' (A partial equilibrium is one which is based only on a restricted range of data, the tandard example is the price of a single product, the prices of all otherproducts being held fixed during theanalysis—Stigler)

आंशिक सन्तुलन को एक बाजार मॉडल या किसी प थक किये हुए बाजार में कीमत निर्धारण के मॉडल के रूप में दर्शाय जा सकता है। इस बाजार मॉडल में आंशिक सन्तुलन की मुख्य समस्या आन्तरिक चरों (जैसे कीमत, मांग व पूर्ति) के मूल्यों के उस समूह (Set) की प्राप्त करने की होती है, जो इसमें सन्तुलन की शर्तो को सन्तुष्ट करता हो। किसी एक बाजार मॉडल में एक ही वस्तु बाजार मॉडल में एक ही वस्तु कीमत का निर्धारण होता है। इसलिए इसमें तीन चर होते हैंः उस वस्तु की कीमत (P), वस्तु की मांगी गई मात्रा (Q_d), वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा (Q_s), ये तीनों चर मॉडल के आन्तरिक चर (Endagenous variable) कहलाते हैं क्योंकि इनका निर्धारण मॉडल के अन्दर ही होता है। इन तीनों चरों के सन्तुलन मूल्य (equilibrium values) ज्ञात करने के लिए हमें कुछ पूर्वकल्पनाएं करनी होंगी। हमारी पूर्व कल्पना है कि बाज़ार में सन्तुलन केवल उस समय प्राप्त होगा जब बाज़ार में मांग पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती है या मांग पूति के बराबर होने से मांग अधिक्य (Excess demand)

शून्य (Q_d-Q_s = O) होता है। यह सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हम आगे कल्पना करते हैं कि मांग कीमत का गिरता फलन या नकारात्मक ढाल वाला (Negatively sloped) वक्र है, अर्थात् कीमत गिरने से मांग बढ़ती है या कीमत बढ़ने पर मांग गिरती है। इसके विपरीत पूर्ति कीमत का बढ़ता फलन या घनात्मक ढाल (positively sloped) वाला वक्र माना गया है। अब हम उपरोक्त तीनों चरों के सन्तुलन मूल्यों (Equilibrium values) को निम्न चित्र की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं:

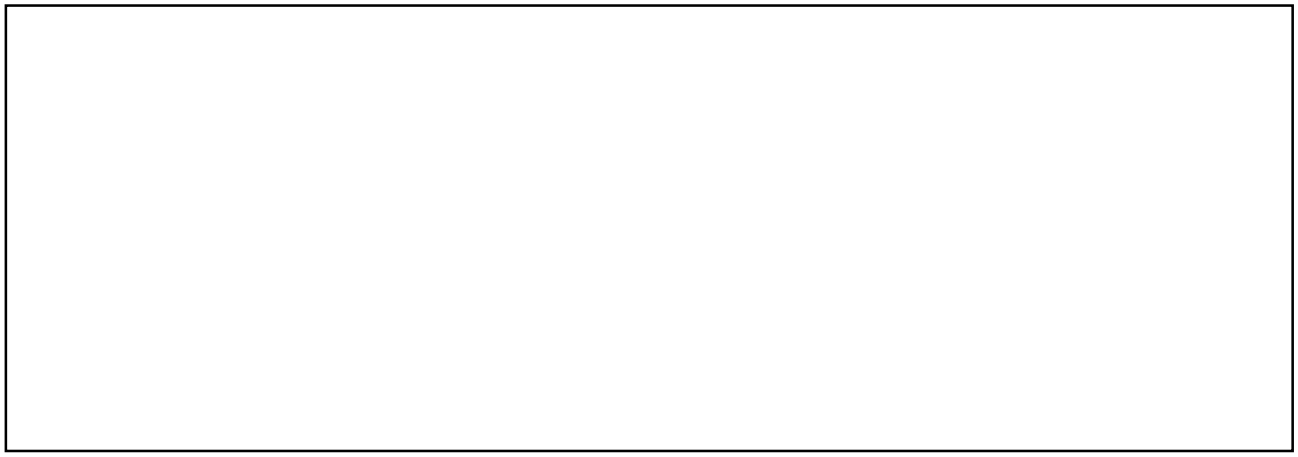

निम्न चित्र से मान लीजिए प्रारम्भि कीमत P1 है जिस पर मांगी गई मात्रा (Q_d) है तथा पूर्ति (Q_s) पूर्ति की मांग पर अधिकता होने के कारण कीमत गिरेगी तथा गिरती रहेगी जब तक कीमत P_0 पर स्थापित नहीं हो जाती है। जहां वस्तमु की मांग व पूर्ति परस्पर बराबर ($Q_d = Q_s$) हैं इसके विपरीत मान लो कीमत P_2 है जिस पर मांग Q'_d की पूर्ति Q'_s पर अधिकता होने के कारण कीमत बढ़ती है तथा बढ़ती रहती है जब तक यह बढ़कर P_0 कीमत स्थापित नहीं हो जाती है, जहां मांग व पूर्ति बराबर है। इस प्रकार चित्र में E_0 सन्तुलन बिन्दु है जहां P_0 सन्तुलित कीमत, Q_0 मांग तथा Q_0 पूर्ति परस्पर बराबर होने के कारण सन्तुलन में हैं अतः इस मॉडल के उपरोक्त तीनों चरों के मूल्य ज्ञात किए जा सकते हैं:

मान्यताएं (Assumptions):

1. अन्य वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
2. जनसंख्या स्थिर रहती है।
3. लोगों की रुचि, फैशन आदि स्थिर रहते हैं।
4. उत्पादन तकनीक स्थिर रहती है।
5. आय स्थिर रहती है।
6. एक बन्द अर्थव्यवस्था की कल्पना की गई है।
7. जलवायु स्थिर रहती है।

इन्हीं मान्यताओं के आधार पर एक उपभोक्ता के सन्तुलन का अध्ययन कि वह अपनी सीमित आय को, अन्य बातें समान रहते हुए किसी एक या विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। इसी प्रकार एक फर्म का सन्तुलन भी अन्य बातें समान रहने की पूर्व कल्पना पर आधारित है। ये सभी आंशिक सन्तुलन कहे जाते हैं।

आंशिक सन्तुलन विश्लेषण की सीमाएँ व आलोचनाएँ
(Limitations or Criticism of Partial Equilibrium Analysis)

आंशिक सन्तुलन की मुख्य सीमाएं व आलोचनाएं निम्न प्रकार से हैं:

1. आंशिक सन्तुलन विश्लेषण मे अन्य चरों या बातों का स्थिर माना (Other things remaining the same) गया है। परन्तु वास्तविक जगत में सम्बन्धित चर (जनसंख्या, अन्य वस्तुओं की कीमतों, जलवायु आदि) बदलते रहते हैं। इसलिए यह विश्लेषण अवास्तविक है।

2. आंशिक सन्तुलन के अन्तर्गत उपभोक्ता के सन्तुलन का भी अध्ययन किया जाता है, जिसमें प्रमुख मान्यता यह होती है कि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है। परन्तु उपभोक्ता की आय इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितने श्रम तथा अन्य उत्पादन के साधनों के साधनों का स्वामी है तथा इन साधनों (श्रम, पूँजी, भूमि आदि) की बाज़ार कीमत (मज़दूरी, ब्याज लगान आदि) क्या है। साधन कीमतें साधन बाज़ार में निर्धारित होती हैं जो बदलती रहती हैं। परन्तु इस विश्लेषण में इनको स्थिर माना गया है।

3. इसी प्रकार आंशिक सन्तुलन विश्लेषण में उत्पादन तकनीक को स्थिर माना गया है, परन्तु तकनीकी प्रगति होती रहती है, जो उत्पादन लागत को कम कर देती है। इससे वस्तु का पूर्ति वक्र परिवर्तित या विवर्तित होता है। परन्तु इस विश्लेषण मे पूर्ति वक्र स्थिर माना गया है, जो उचित नहीं है।

4. बाज़ारों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है परन्तु आंशिक सन्तुलन बाज़ारों का एक-दूसरे से प थक या स्वतंत्र मान कर विश्लेषण किया जाता है।

5. साधन बाज़ारों में साधनों की मांग व पूर्ति में परिवर्तन होते रहते हैं जिससे साधनों की कीमतें (मज़दूरी आदि) परिवर्तित होती रहती हैं इससे वस्तुओं की उत्पादन लागत तथा पूर्ति वक्र विवर्तित होती रहती हैं। इससे वस्तुओं का उत्पादन लगान या पूर्ति वक्र विवर्तित होते हैं, परन्तु आंशिक सन्तुलन में इन सबको स्थिर माना गया है।

6. वस्तु बाज़ार व साधन बाज़ार की परस्पर निर्भरता (interdependence) की भी इस विश्लेषण में अवहेलना की गई है जबकि इनमें गहरा संबंध पाया जाता है।

7. यह विश्लेषण सैद्धान्तिक अधिक तथा व्यवहारिक कम है।

संक्षेप में, इस विश्लेषण की आधारभूत विशेषता यह है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई के बाज़ार में सन्तुलित कीमत व मात्रा का निर्धारण उसकी मांग व पूर्ति वक्र द्वारा उस आधार पर होता है कि अन्य सभी बातें स्थिर रहती है।

सामान्य सन्तुलन
(General Equilibrium)

जब किसी अर्थव्यवस्था की सभी आर्थिक इकाई या सारी अर्थव्यवस्था सन्तुलन की स्थिति में होती है तो वह स्थिति सामान्य सन्तुलन (General equilibrium) की स्थिति कहलाती है। सामान्य सन्तुलन में यह माना जाता है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई प्रत्येक दूसरी इकाई को प्रभावित कर रही होती है। अतः आर्थिक इकाइयों की परस्पर निर्भरता (Mutual interdependence) के आधार पर अर्थव्यवस्था में जब सभी आर्थिक इकाइयां सन्तुलन में होती हैं तो वह स्थिति सामानय सन्तुलन की स्थिति होती है। प्रो. लेफ्टविच के अनुसार, ''किसी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सामान्य सन्तुलन केवल तभी हो सकता है जब किसी आर्थिक इकाइयां अपना आंशिक सन्तुलन एक साथ प्राप्त कर लें।'' (General Equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneous partial equilibrium adjustment -Leftwitch)

सामान्य सन्तुलन का प्रथम विश्लेषण प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लियाने वालरस (Leon Walras) के समीकरणों की सहायता से किया। इसके बाद सामान्य सन्तुलन का एक अन्य महत्वपूर्ण विश्लेषण नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. लियोन्टीफ (Leontief) द्वारा उपादान-उत्पादन विश्लेषण (Input-output Analysis) की सहायता से किया गया है।

व्याख्या (Explanation): सामान्य सन्तुलन का सार (essence) यह है कि किसी भी आर्थिक व्यवस्था (economic Systejm) में इसके विभिन्न अंग परस्पर अन्तरनिर्भर (interdependent) होते हुए सभी सन्तुलन में होते हैं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं के बाज़ार तथा सभी उत्पादन साधनों के बाज़ार एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं तथा सभी बाज़ारों में वस्तुओं व साध ानों की कीमतें एक साथ निर्धारित होती हैं। जैसे विभिन्न वस्तु व सेवाओं के लिए उपभोक्ता की मांग उनकी आय पर निर्भर करती है तथा उपभोक्ताओं की आय उनके अपने साधनों की मात्रा तथा इन साधनों की कीमतों पर निर्भर करते हैं- साधनों की कीमतें उनकी मांग व पूर्ति पर निर्भर करते हैं- साधनों की मांग उन द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं की मांग पर निर्भर करती है - वस्तुओं की मांग उपभोक्ताओं की आय पर निर्भर करती है तथा आय उनके साधनों का मांग व साधन कीमत पर निर्भर करती है इस प्रकार वस्तु व सेवाओं के बाज़ार तथा साधनों के बाज़ार तथा इनकी कीमतें परस्पर जुड़ी हुई हैं तथा

एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। किसी आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं की यह चक्रीय निर्भरता (circular interdependence) को एक साधारण अर्थव्यवस्था के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो इस अर्थव्यवस्था के केवल दो क्षेत्र (Two sectos) हैः

(1) उपभोक्ता क्षेत्र (Consumer sector) जिसमें ग हस्थी (households) लोग हैं तथा (2) व्यावसायिक क्षेत्र (business sector) जिसमें फर्में (Firms) हैं।

यहां कल्पना की गई है किः (a) सभी वस्तुओं का उत्पादन व्यावसायिक क्षेत्र में होता है, (b) सभी साधनों पर ग हस्थियों (households) का स्वामित्व होता है, (c) सभी साधनों को पूर्ण रोज़गार प्राप्त होता है तथा (d) सारी अर्जित आय खर्च कर दी जाती है।

ऐसी व्यवस्था में उपभोक्ता क्षेत्र तथा व्यावसायिक क्षेत्र के बीच आर्थिक क्रियाएं दो प्रकार के प्रवाहों को जन्म देती हैंः एक वास्तविक प्रवाह (flow) तथा दूसरा मौद्रिक प्रवाह (monetary flow), जैसा कि चित्र द्वारा दर्शाया गया हैः

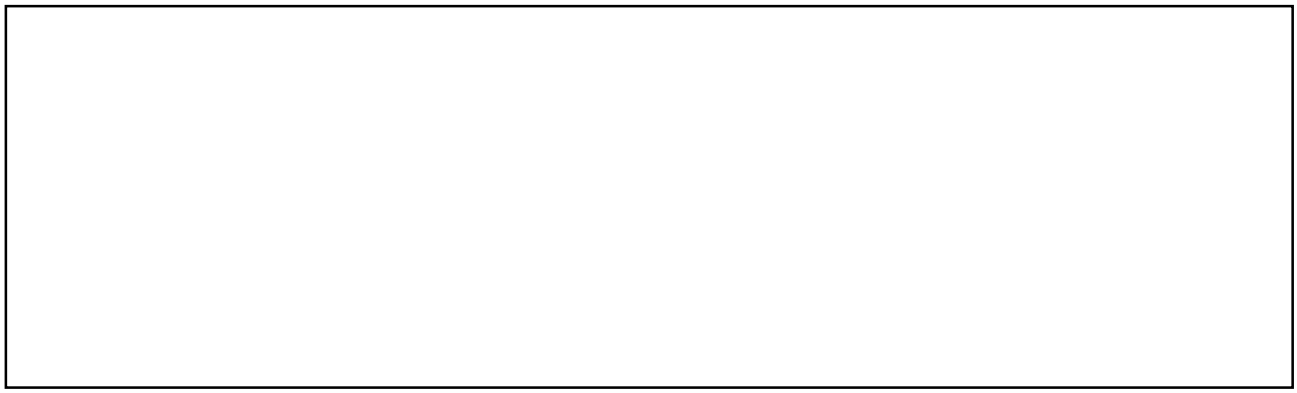

चित्र में वास्तविक प्रवाह दर्शाता है कि वस्तुओं का साधन-सेवाओं के बदले लेन-देन या विनिमय हो रहा होता है, जिसमें फर्में वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तथा उपभोक्ताओं को बेचती हैं तथा उपभोक्ता साधनों के स्वामी होने के कारण साधन सेवाओं को बेचते हैं।

वास्तविक प्रवाह को मुद्रा के रूप में व्यक्त करने से यह मौद्रिक प्रवाह (monetary flow) कहलाता है। इस प्रवाह में उपभोक्ता अपने साधनों की सेवाएं व्यावसायिक क्षेत्र को बेचकर मौद्रिक आय कमाते हैं तथा यह सारी आय उपभोक्ता व्यावसायिक क्षेत्र से वस्तुओं की खरीद पर खर्च कर देते हैं।

ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों विरोधी दिशाओं में प्रवाहित होते हैं। वस्तुओं की कीमतें तथा साधन सेवाओं की कीमतें इन दोनों क्षेत्र को परस्पर जोड़ती हैं। यह आर्थिक व्यवस्था उस समय सामान्य सन्तुलन में कही जाएगी जब वस्तु कीमतों के किसी समूह तथा साधन कीमतों के किसी समूह पर व्यावसायिक क्षेत्र से उपभोक्ता क्षेत्र का आय के प्रवाह का आकार उस मुद्रा खर्च के प्रवाह आकार के बराबर होगाजो उपभोक्ता क्षेत्र से व्यावसायिक क्षेत्र की ओर प्रवाहित होता है।

आंशिक सन्तुलन में बाज़ारों की अन्त निर्भरता को एक कर विश्लेषण किया जाता है जो वास्तविकता से दूर है। वस्तुतः विभिन्न वस्तुओं व साधारण सेवाओं के क्रेता तथा विक्रेता करोड़ों होते हैं जो अपने स्वहित को ध्यान में कर निर्णय लेते हैं तथा इनके निर्णय एक-दूसरे बाज़ार को प्रभावित कर रहे होते हैं।

सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त की समस्या यह जांच करना है कि प्रत्येक व्यक्तिगत, उपभोक्ता, उत्पादक, व्यापारी आदि प्रत्येक अपने-अपने स्वहित में निर्णय लेते हुए क्या ऐसी स्थिति (position) को प्राप्त कर सकते हैं जिसमें सभी सन्तुलन में हों। अब हम सामान्य सन्तुलन को परिभाषित कर सकते हैं। सामान्य सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें सभी बाज़ार तथा आर्थिक इकाइयां साथ-साथ सन्तुलन में होते हैं। सामान्य सन्तुलन की समस्या का समाधान वालरा (Walra) जैसे अर्थशास्त्रियों ने

साथ-साथ समीकरण वाले मॉडल (simultaneous equation model) का प्रयोग करके करने का प्रयास किया है।

वालरा का मॉडल (The Walrasian Model)

लीओन वालरा (Leon Walra) ने अपने प्रसिद्ध लेख 'Elements of Pure Economics' ;१८७४द्ध में अपने सामान्य सन्तुलन सम्बन्धी विचार व्यक्त किए थे। उन्होंने तर्क दिया कि सभी बाज़ारों में सभी कीमतें तथा मात्राएं (quantities) एक दूसरी को प्रभावित (interaction) करते हुए साथ-साथ निर्धारित होती है। इसके लिए उसने साथ-साथ समीकरणों वाली व्यवस्था (system of simultaneous equations) का प्रयोग किया, जिसमें उसने सभी बाजारों में व्यक्तिगत विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अन्त क्रिया की व्याख्या की तथा सिद्ध करने का प्रयास किया कि सभी बाज़ारों में सभी वस्तुओं व साधनों की कीमतें तथा मात्राएं, साथ-साथ निर्धारित की जा सकती है।

वालरा के मॉडल मे प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता या प्रत्येक व्यक्तिगत निर्णायक (each individual decision maker) के व्यवहार को समीकरणों के समूह द्वारा पेश किया गया है। यह व्यक्तिगत निर्णायक एक उपभोक्ता, एक फर्म या एक क्रेता कोई भी हो सकता है। उदाहरणतः प्रत्येक उपभोक्ता की दोहरी भूमिका (double role) होती है, क्योंकि वह फर्मों को साधनों की सेवाएं बेचकर आय कमाता है तथा उससे वस्तुएं खरीदता है। इस प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता का अपना एक समीकरणों का समूह (set subset) होते हैं। इनमें से एक उसकी विभिन्न वस्तुओं की मांगों को व्यक्त करता है, और दूसरा समीकरणों का उपसमूह उसके साधनों की पूर्तियों को प्रकट करता है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक फर्म (firm) का व्यवहार उसके अपने समीकरणों के समूह जिसमें दो उपसमूह होते हैं के द्वारा व्यक्त किया जाता है। इनमें से एक उपसमूह फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं की पूर्तियों को व्यक्त करता है तथा दूसरा प्रत्येक उत्पादित की गई वस्तु के लिए साधनों की मांगों को प्रकट कर रहा होता है।

इस समीकरणों की महत्वपूर्ण विशेषता इनका साथ-साथ परस्पर अन्तरनिर्भरता (interdependence) होना है। हम जानते हैं कि अर्थव्यवस्था में करोड़ो उपभोक्ताओं तथा फर्में होती है जिनके अरबों समीकरण हो सकते हैं। इन अरबों साथ-साथ समीकरणों की व्यवस्था का हल (solution) मॉडल को अज्ञातों (unknows) को परिभाषित करता है। ये अज्ञात (unknowns) सभी वस्तुओं तथा साधनों की कीमतें तथा मात्राएं (quantities) होती हैं।

वालरा द्वारा प्रस्तुत समान्य समीकरण की व्यवस्था में उतने ही बाज़ार होते हैं, जितने कि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं उत्पादन के साधनों की संख्या होती है। प्रत्येक बाज़ार (Market) में तीन प्रकार के फलन (function) होतेः मांग फलन (demand function), पूर्ति फलन (Supply function) तथा मांग-पूर्ति में समानता (D-S = O) का समीकरण जो व्यक्त करता है कि मांगी गई मात्रा पेश की गई पूर्ति की मात्रा के समान है।

वस्तु बाज़ार (commodity market) में मांग फलनों की संख्या फर्मों की संख्या को उन द्वारा उत्पादित वस्तुओं की संख्या से गुणा करने पर जो संख्या आती है उसके समान होती है। पूर्ति फलनों की संख्या उपभोक्ताओं जो साधनों के स्वामी है। कि संख्या के बराबर होती है।

वालरा ने आगे तर्क दिया कि किसी सामान्य सन्तुलन के लिए एक अनिवार्य (पर्याप्त नहीं) शर्त यह है कि व्यवस्था में इतना ही स्वतन्त्र समीकरण (independent equations) होने चाहिए जितने की अज्ञातों की संख्या है। इस प्रकार सामान्य सन्तुलन को स्थापित करने के लिए प्रथम कार्य अर्थव्यवस्था का विवरण समीकरणों की व्यवस्था (system of equations) के रूप में करना चाहिए, जो यह बताएगा कि व्यवस्था के हल के लिए कितने समीकरणों की जरूरत है।

उदाहरण के रूप में मान लो एक अर्थव्यवस्था में A तथा B दो उपभोक्ता हैं जिनके पास K तथा L अपने उत्पादन के साधन है। ये साधन X तथा Y वस्तु का उत्पादन करने वाली दो फर्मों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। यह एक सरल 2 x 2 x 2 सामान्य सन्तुलन मॉडल है जिसमें कल्पना की गई है कि प्रत्येक फर्म एक-एक वस्तु का उत्पादन करती है, तथा प्रत्येक उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की कुछ मात्रा खरीदते हैं। यह कल्पना भी की गई है कि दोनों उपभोक्ता दोनों साधनों की कुछ-कुछ मात्रा के स्वामी हैं तथा उनका साधनों पर स्वामित्व का बंटवारा मॉडल के बाहर निर्धारित होता है। इस सरल मॉडल में हमारे पास निम्न अज्ञात (unknowns) हैंः

उपभोक्ताओं द्वारा X तथा Y वस्तु की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
उपभोक्ताओ द्वारा K तथा L की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
फर्मों द्वारा K तथा L की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
फर्मों द्वारा X तथा Y की गई पूर्ति की मात्रा	:	2
X तथा Y वस्तुओं की कीमतें	:	2
K तथा L साधनों की कीमतें	:	2
कुछ अज्ञातों (unknowns) की संख्या	**:**	**18**

इन अज्ञातों को ज्ञात करने के लिए समीकरणों की निम्न संख्या तैयार की जा सकती है:

उपभोक्ताओं के मांग फलन	:	2 x 2 = 4
साधनों के पूर्ति फलन	:	2 x 2 = 4
साधनों के मांग फलन	:	2 x 2 = 4
वस्तुओं के पूर्ति फलन	:	2
वस्तुओं की मांग-पूर्ति में समानता	:	2
साधनों की मांग-पूर्ति में समानता	:	2
समीकरणों की कुल संख्या	**:**	**18**

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समीकरणों की संख्या अज्ञातों की संख्या के समान है। इसलिए सामान्य सन्तुलन का हल हो सकता है। परन्तु समीकरणों की संख्या तथा अज्ञातों की संख्या में समानता सामान्य सन्तुलन की शर्त न तो अनिवार्य है तथा न ही पर्याप्त है। वालरा के मॉडल में समस्या यह है समीकरणों में से एक समीकरणों से स्वतंत्र नहीं है। इसलिए स्वतंत्र समीकरणों की संख्या से अज्ञातों की संख्या अधिक हो जाती है। व्यवस्था में एक समीकरण बहुतायत (Redundant equations) में हो जाता है जो व्यवस्था को सामान्य सन्तुलन के हल से दूर रखता है। इस मॉडल में निरपेक्ष कीमत स्तर (absolute level of prices) निर्धारित नहीं हो सकता इसके हल के लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने मनमाने ढ़ंग से किसी एक वस्तु को कीमत की गणना के रूप में स्वीकार है तथा बाकि सभी कीमतें इस वस्तु के रूप में आंकी हैं। इस तरीके से वस्तुओं की कीमतों को अनुपातों में मापा है। इससे अज्ञातों की संख्या भी 17 रह जाती है क्योंकि X तथा Y वस्तु की कीमतें एक-दूसरे में निर्धारित होने से 2 के स्थान पर 1 (एक) अज्ञात रह जाता है।

परन्तु स्वतंत्र समीकरणों की संख्या तथा अज्ञातों की संख्या में समानता होने पर भी सामान्य सन्तुलन संभव नहीं है। सामान्य सन्तुलन को सिद्ध करना बड़ा कठिन है। स्वयं वालरा सामान्य सन्तुलन की विद्यमानता को कभी भी सिद्ध नहीं कर सके। बाद में 1954 में ऐरो तथा डैबरू ने पूर्ण प्रतियोगी बाज़ारों में सामान्य की विद्यमानता का सबूत पेश किया है।

मान्यताएं ;Assumptions): सामान्य सन्तुलन की कुछ मुख्य मान्यताएं निम्न हैं:

1. वस्तु बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
2. वस्तुओं की विभाजनशीलता पाई जाती है।
3. साधन बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
4. मुद्रा रहित अर्थव्यवस्था की कल्पना की गई।
5. 2 x 2 x 2 मॉडल की कल्पना की गई है।
6. उत्पादन में पैमाने का स्थिर प्रतिफल लागू होता है।

महत्व (Significance)

1. बाज़ारों के परस्पर अन्तः निर्भर होने के कारण आर्थिक जगत की व्यवस्था कितनी जटिल है। इस बात का ज्ञान

सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से होता है।

2. कुछ विशेष परिस्थितियों में सामान्य सन्तुलन संभव हो सकता है। जिससे विश्व के साधनों का ईष्टतम बंटवारा होता है।
3. बाज़ारों के अध्ययन से यह तुलना की जा सकती है कि वास्तविक जगत् सामान्य सन्तुलन की आदर्श स्थिति से कितना दूर है।
4. सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से समष्टि आर्थिक समस्याओं का हल हो सकता है।
5. इसके आधार पर समष्टि सिद्धांतों की तुलना की जा सकती है।

सीमाएं (Limitations): सामान्य सन्तुलन एक जटिल समस्या है। सामान्य सन्तुलन स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों तथा सीमाओं का सामना करना पड़ता है। कुछ मुख्य सीमाएं इस प्रकार हैं:

1. अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों (कीमतें, मांगें, पूर्तिया आदि) की परस्पर अन्तः निर्भरता (mutually interdependence) का सही-सही ज्ञान नहीं हो सकता। इस कारण सामान्य सन्तुलन ज्ञात करना तथा स्थापित करना असम्भव कार्य है।
2. पूर्ण प्रतियोगिाता बाज़ार की विद्यमानता वास्तविक जगत् में नहीं है जोकि सामान्य सन्तुलन की प्रमुख मान्यता है।
3. सामान्य सन्तुलन में वस्तु तथा साधनों को विभाजनशील माना है। परन्तु अनेक वस्तुएं तथा साधन विभाजनशील नहीं होते हैं।
4. इसमें उत्पादन में पैमाने के प्रतिफल की कल्पना की गई है। परन्तु वास्तविक जगत में अधिकतर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।
5. सामान्य सन्तुलन एक अवास्तविक धारणा है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग निरन्तर बदल रहे होते हैं।

क्या सन्तुलन वास्तव में प्राप्त किया जा सकता है?
(Can Equilibrium be actually attained?)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार सन्तुलन की धारणा काल्पनिक है तथा यह वास्तविक जीवन में नहीं पाई जाती है। कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक शक्तियां सन्तुलन प्राप्त करने का प्रयास कर रही होती हैं तथा वे वास्तव में सन्तुलन को प्राप्त होती हैं। परन्तु आर्थिक शक्तियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण वह सन्तुलन अस्थिर सन्तुलन ही होता है। यदि सन्तुलन प्राप्त करने के बाद आर्थिक शक्तियाँ (मांग व पूर्ति) समान अनुपात से परिवर्तित होती हैं तो दीर्घकाल तक सन्तुलन की स्थिति विद्यमान् रह सकती है।

सभी आर्थिक इकाइयों के लिए सन्तुलन एक आदर्श स्थिति होती है। क्योंकि वे इस स्थिति में अपने उ द्देश्य को प्राप्त कर रही होती हैं। सन्तुलन की अवस्था में फ़र्म अधिकतम लाभ अर्जित करती है, उपभोक्ता अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करता है आदि। सन्तुलन प्राप्त करने के प्रयास में किसी समय वे अवश्य सफल होती हैं। क्या सन्तुलन का अध्ययन महत्वपूर्ण है?

सन्तुलन का महत्त्व इस बात में नहीं है कि यह कैसे प्राप्त किया जाता है। सन्तुलन वास्तव में प्राप्त किया जाता है या नही बल्कि इस बात में है कि यह आर्थिक शक्तियों को सही दिशा प्रदान करता है। लेफ्टविच के अनुसार , ''सन्तुलन की धारणाओं का महत्व इस कारण नहीं है कि वास्तव में सन्तुलन कभी प्राप्त किया जाता है, बल्कि इस कारण है कि वे हमें उन दिशाओं को स्पष्ट करती हैं जिनकमी ओर आर्थिक परिवर्तन अग्रसर होते हैं।'' (Equilibrium concepts are important, not because equilibrium is ever infact attained but because they show us the directions in which economic changes proceed - Leftwitch)

सन्तुलन का महत्व (Significance of Equilibrium)

आर्थिक विश्लेषण में सन्तुलन की धारणा का बहुत अधिक महत्व है। इसका मुख्य महत्व निम्न प्रकार से है:

1. आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य (Goal of Economic Activities): सभी आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य सन्तुलन प्राप्त करना होता है। इसका कारण यह है कि सन्तुलन का आदर्श (Optimum) स्थिति स्वीकार किया गया है। इससे आर्थिक

क्रियाओं को सही दिशा में निर्देशित किया जा सकता है। सन्तुलन की अवस्था का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात हो सकता है कि कोई आर्थिक इकाई अपने लक्ष्य (Goal) से कितना दूर है तथ उसे प्राप्त करने के लिए कितने आर्थिक प्रयासों की जरूरत है।

2. कीमत निर्धारण (Price Determination): बाज़ार में किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण (Price Determination) उस वस्तु की मांग तथा पूर्ति के बीच सन्तुलन की अवस्था से होता है। मांग व पूर्ति के सन्तुलन द्वारा जो कीमत निर्धारित होती है, वह स्थाई कीमत होती है। मांग या पूर्ति वक्र में परिवर्तन से सन्तुलन की अवस्था परिवर्तित हो जाती है तथा कीमत भी बदल जाती है।

3. अधिकतम सन्तुष्टि (Maximum Satisfaction): प्रत्येक उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि सन्तुलन की अवस्था में ही प्राप्त होती है। अतः सन्तुलन की धारणा उपभोक्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण धारणा है।

4. अधिकतम लाभ (Maximum Profit): उत्पादन के अंतर्गत फ़र्म, उद्योग आदि सभी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। इन आर्थिक इकाइयों को अधिकतम लाभ केवल सन्तुलन की अवस्था में ही प्राप्त हो सकता है।

5. साधन कीमत निर्धारण (Factor Price Determination): श्रम, भूमि, पूँजी आदि सभी उत्पादन के साधनों की कीमतों (मज़दूरी, लगान, ब्याज आदि) का निर्धारण भी साधन-बाज़ार में सन्तुलन की अवस्था में ही निर्धारण होता है। इसलिए साधन-कीमत निर्धारण में ही सन्तुलन का महत्व कम नहीं है।

6. आर्थिक समस्याओं का कारण (Cause for Economic Problems): सन्तुलन की धारण से विभिन्न आर्थिक समस्याओं के कारणों का ज्ञान भी प्राप्त होात है। अति-उत्पादन, बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति मन्दी आदि आर्थिक समस्याएं सन्तुलन की अवस्था प्राप्त न होने (असन्तुलन) के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

7. नीति निर्धारण में महत्व (Importance in Policy Determination): उत्पादन निवेश, बचत, निर्यात आदि में व द्धि करने सम्बन्धी सरकारी नीति का निर्धारण उनकी सन्तुलन की अवस्था को ध्यान में रखते हुए ही किया जाता है। उचित नीति की परख यही होती है कि यह विभिन्न आर्थिक इकाइयों को सन्तुलन की ओर ले जाने वाली होती है।

8. पारस्परिक निर्भरता का ज्ञान (Knowledge of Inter-dependence): सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग या तत्व एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। यह जानना कितना महत्वपूर्ण है कि एक तत्व में परिवर्तन होता है तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसलिए सामान्य सन्तुलन को ध्यान में रखते हुए आर्थिक क्रियाएं की जानी चाहिए।

9. आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धांतों का आधार (Basis of Economic Analysis and Theories): सभी आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धांतों का निर्माण आर्थिक सन्तुलन को मद्देनज़र रखते हुए ही किया जाता है। इस प्रकार सन्तुलन का महत्व केवल व्यावहारिक ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक महत्व भी है।

10. वित्तीय बाज़ार में महत्व (Importance in Financial Market): मुद्रा-बाज़ार तथा पूँजी बाज़ार, जिनको मिलाकर वित्तीय बाज़ार कहा जाता है इन में सन्तुलन की धारणा का विशेष महत्व है। इन बाज़ारों में असन्तुलन होने से कीमतें, ब्याज-दरों आदि में परिवर्तन होता है जिनके अनेक आर्थिक प्रभाव होते हैं।

सन्तुल की धारणा केवल काल्पनिक तथा सैद्धान्तिक हो सकती है क्योंकि वास्तविक जगत् में इसको प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसका कारण यह है कि वास्तविक जगत् में आर्थिक परिस्थितियां निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं, परन्तु फिर भी सन्तुलन एक आदर्श स्थिति होने के कारण इसका आर्थिक विश्लेषण में विशेष महत्व है। आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में यह केन्द्र-बिन्दु (Focal Point) का कार्य करता है।

प्रश्न
(Questions)

1. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. Explain the meaning of equilibrium as used in economics. What are its kinds? Give its siginificance in economic analysis.

   अर्थशास्त्र मं सन्तुलन की व्याख्या कीजिए। वह कितने प्रकार का होता है? आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व बताओ।

2. What do you mean by concept of equilibrium? Explain its significance in economic analysis.
3. Explain walrarian Model of General Equilibrium.
4. What is general equilibrium? How the different parts of an economy are inter-related?

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. What is meant by the concept of equilibrium and disequilibrium.

   सन्तुलन तथा असन्तुलन की धारणा की व्याख्या कीजिए।

2. Explain the following types of Equilibrium with the help of a diagram and example.

   (1) Stable (2) Unstable (3) Neutral

   सन्तुलन के निम्न प्रकारों की रेखाचित्र तथा उदाहरण की सहायता से व्याख्या करें (1) **स्थिर** (2) **अस्थिर** (3) **तटस्थ।**

3. Differentiate between stable and unstable equilibrium.

   स्थिर तथा अस्थिर सन्तुलन में विभेद कीजिए।

5. Write shorts notes on (i) Partial Equilibrium (ii) General Equilibrium (iii) Multiple Equilibrium.

   सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (i) **आंशिक सन्तुलन** (ii) **सामान्य सन्तुलन** (iii) **अनेक वित्तीय सन्तुलन।**

6. Differentiate between Static and Dynamic Equilibrium.

   अगत्यात्मक तथा गत्यात्मक सन्तुलन में अन्तर बताइए।

7. Differentiate between Static and comparative static equilibrium.

   स्थैतिक तथा तुलनात्मक स्थैतिक में अन्तर बताएँ।

8. How are different parts of an economy interdependent?

   अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग कैसे अन्तःनिर्भर हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions and their Answers)

1. State if the following Statement are true or false.

1 Theequilibrium is unstable if the initial position is not regained after the change.

यदि परिवर्तन के पश्चात् प्रारम्भिक अवस्था पुनः प्राप्त होती है तो सन्तुलन स्थायी होता है।

2. The equilibrium is said to tbe unstable if the system moves away further and further from its initial position.

यदि कोई व्यवस्था अपनी प्रारम्भिक स्थिति से हटाने के पश्चात् उस स्थिति से दूर होती है जाती है तो यह स्थिति अस्थिर सन्तुलन की है।

3. General Equilibrium is a situation in which no economic unit hs a tendency to change.

सामान्य सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें किसी आर्थिक इकाई में परविर्तन की प्रव त्ति नहीं पाई जाती।

4. Partial Equilibrium is a situation in which all economic unit are in equilibrium.

आंशिक सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें सभी आर्थिक इकाइयां सन्तुलन में होती है।

5. In Economics equilibrium means absence ofthe tendence of change in movement.

अर्थशास्त्र में सन्तुलन से अभिप्राय गति में परिवर्तन की प्रव त्ति की अनुपस्थिति से है।

6. The term equilibrium has been derived from two Latin words, Acquus and Libra

सन्तुलन शब्द दो लैटिन शब्दों Acquus **तथा** Libra **से लिया गया है।**

अध्याय-
आय तथा कीमतों में परिवर्तन के उपभोग पर प्रभाव
(Effects of changes in income prices on consumption)

पूर्व अध्याय में उपभोक्ता संतुलन के निर्धारण संबंधी हमारी यह मान्यतां थीं कि उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता। परंतु वास्तविक जगत में उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिनए इस अध्याय में तटस्थता वक्रों की सहायता से यह अध्ययन किया गया है कि उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन के उपभोक्ता संतुलन व मांग पर क्या-क्या प्रभाव पड़ते हैं? इसके साथ ही इस अध्याय में तटस्थता वक्रों के महत्त्व, तटस्थता वक्रों की तुटिगुण विश्लेषण से तुलना, तटस्थता वक्रों का मूल्यांकन या अलोचनात्मक समीक्षा आदि की जांच भी की गई है।

आय तथा कीमतों में परिवर्तन से उत्पन्न प्रभावों को निम्न तीन प्रभावों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता हैः

1. **आय प्रभाव** (Income Effect)
2. **प्रतिस्थापन प्रभाव** (Substitution Effect)
3. **कीमत प्रभाव** (Price Effect)

1. **आय प्रभाव** (Income Effect): केवल उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण जो उपभोक्ता संतुलन व वस्तुओं की मांग पर प्रभाव पड़ते हैं, उनका आय प्रभाव कहा जाता है। अन्य शब्दों में दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता संतुलन या दोनों वस्तुओं की मांग पर जो प्रभाव पड़ता है, उसको आया प्रभाव कहते हैं। (The Income effect is the effect on demand or on the consumer equilibrium caused by changes in income, if prices of goods remain constant) ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है उपभोक्ता की कीमत रेखा ऊपर की ओर समानांतर रूप से सरकती जाती है तथा उपभोक्ता ऊंचे-ऊंचे तटस्थता वक्रों पर संतुलन प्राप्त करता जाता है। इसके विपरीत ज्यों-ज्यों आय घटती जाती है तो वह नीचे वाले तटस्थता वक्रों पर संतुलन प्राप्त करता जाता है तथा उसका संतुष्टि स्तर गिरता जाता है और दोनों वस्तुओं की मांग गिरती जाती है।

आय प्रभाव की मान्यताएं (Assumption of Income Effect):

तटस्थता वक्र विश्लेषण की सामान्य मान्यताओं के अतिरिक्त आय प्रभाव की कुछ विशेष मान्यताएं निम्न प्रकार से हैंः

1. उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है।
2. उपभोग की जाने वाली दोनों वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।
3. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् उसका तटस्थता मानचित्र यथावत् बना रहता है।

आय प्रभाव की व्याख्या निम्न चित्र 1 द्वारा की जा सकती है। चित्र 1 में OX- अक्ष पर X वस्तु तथा OY- अक्ष पर Y- वस्तु की मात्रा मापी गई है। AB प्रारम्भिक कीमत रेखा है जो IC1 तटस्थता वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है तथा E बिन्दु उपभोक्ता का प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है। उपभोक्ता X वस्तु की OM तथा Y वस्तु की OL मात्रा का उपभोग तथा मांग करता है। मान लो उपभोक्ता की आय में व द्धि हो जाती है तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। इसके फलस्वरूप कीमत रेखा ऊपर सरक कर A_{11}, B_{11} बन जाती है जो IC_{11} तटस्थता वक्र को E_{11} पर स्पर्श करती है। अब E_{11} उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु है। पहले की अपेक्षा उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ गया है क्योंकि अब वह ऊंचे वाले तटस्थता वक्र पर संतुलन में है तथा दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा (X की OM_{11} तथा Y की OL_{11}) का उपभोग या मांग कर रहा है। इसके विपरीत यदि आय कम हो जाती है तो दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए कीमत रेखा नीचे सरक कर $A_1 B_1$ बन जाती है। $A_1 B_1$ कीमत रेखा तटस्थता वक्र IC को E_1 बिन्दु पर स्पर्श करती है। इसलिए अब उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है तथा उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की मांग या उपभोग कम कर देता है। अब वह X- वस्तु की OM1 तथा Y- वस्तु की OL मात्रा का उपभोग कर रहा है तथा उसका संतुष्टि स्तर पहले से कम हो जाता है क्योंकि E_1 नीचे वाले तटस्थता वक्र IC पर स्थित है।

आय में परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए विभिन्न उपभोक्ता संतुलन बिन्दुओं जैसे E, E1, E11 को मिलाने वाली रेखा आय उपभोग वक्र (Income consumption Curve) कहलाती है। ICC (Income Consumption Curve) वक्र आय में परिवर्तन के कारण उपभोग तथा दोनों वस्तुओं की मांग पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यक्त करती या दर्शाती है।

आय प्रभाव के प्रकार
(Kinds of Income Effect)

वस्तुओं के उपभोग या मांग पर पड़ने वाले प्रभाव के द ष्टिकोण से आय प्रभाव दो भागों में बंट जाता है (1) धनात्मक आय प्रभाव (2) ऋणात्मक आय प्रभाव। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

A. धनात्मक आय प्रभाव (Positive Incoe Effect): उपभोक्ता का आय में व द्धि होने से वस्तु की मांग बढ़े तथा आय में कमी होने से वस्तु की मांग कम हो जाए तो आय प्रभाव घनात्मक होता है। उपरोक्त चित्र में दोनों वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक है। जिन वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक होता है वे वस्तुएं सामान्य वस्तुएं (Normal Goods) कहलाती है। उपरोक्त चित्र में दोनों वस्तुएं सामान्य वस्तुएं हैं।

B. ऋणात्मक आय प्रभाव (Negative Income Effect): ऋणात्मक आय प्रभाव उसे कहा जाता है जब आय में व द्धि से वस्तु की मांग कम हो जाए। घटिया वस्तुओं (Inefior Goods) के मामले में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है। आय उपभोग वक्र (ICC) घटिया वस्तु की ओर अर्थात् पूर्णतया बाईं ओर (Extreme Left) या पूर्णतया दाईं ओर (Extreme Right) झुका हुआ होता है। इसका कारण यह है कि आय बढ़ने पर उपभोक्ता घटिया वस्तु की पहले से कम मात्रा मांग करता है तथा बढ़िया वस्तु की मांग बढ़ा देता है। निम्न चित्र 8.24 में दर्शाया गया है कि यदि Y- वस्तु घटिया वस्तु है तो ICC वक्र नीचे दांई ओर मुड़ता हुआ होगा। चित्र 3 में दर्शाया गया है कि यदि X- वस्तु घटिया वस्तु है तो ICC वक्र ऊपर बाईं ओ मुड़ा हुआ होगा।

चित्र 3 में ICC वक्र दर्श रहा है कि E बिन्दु से आगे E_1 तथा E_{11} और आगे भाग में Y वस्तु घटिया वस्तु (Inferior good) है तथा X- वस्तु सामान्य वस्तु है। आय बढ़ने से कीमत रेखा समानांतर रूप से ऊपर सरकती है तथा उपभोक्ता Y घटिया वस्तु की मांग कम करता जाता है तथा X की मांग बढ़ाता जाता है जैसे कि E_1 तथा E_{11} संतुलन बिन्दुओं से बिल्कुल स्पष्ट हो रहा है। E, E_1 तथा E_{11} को मिलाने से तटस्थता वक्र नीचे झुकता जाता है।

चित्र 3 में X वस्तु घटिता दर्शाई गई है। आय में व द्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E से इस प्रकार ऊपर सरकता है कि X वस्तु की मांग कम होती जाती है। जैसा कि ICC बाईं ओर मुड़ता जाता है।

ध्यान देने की बात है कि आय के एक निश्चित स्तर से आगे ही आय प्रभाव ऋणात्मक होता है क्योंकि प्रारंभ में आय के बहुत कम स्तर से जब आय बढ़ने लगती है तो घटिया वस्तु की मांग भी बढ़ती है या आय प्रभाव धनात्मक होता है इसलिए मूल बिन्दू से जब ICC वक्र निकलता है तो दोनों वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक होता हैं एक सीमा के बाद आय बढ़ने पर घटिया वस्तु की मांग कम होती जाती है। अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक दशा में ICC मूल बिन्दु से शुरू होकर इसके ढाल भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। जैसा कि निम्न चित्र 4 में दर्शाया गया है।

चित्र 3 में ICC वक्र दर्शाता है कि L बिन्दु के बाद X वस्तु घटिया वस्तु है तथा आय प्रभाव ऋणात्मक है। ICC1 वक्र पर M बिन्दु के बाद Y वस्तु घटिया वस्तु है तथा इस वस्तु पर आय प्रभाव ऋणात्मक है।

ऐंजिल वक्र (Enhgle's Curve): ऐंजिल वक्र का प्रतिपादन जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ऐंजिल द्वारा किया गया था। यह एक ऐसा वक्र होता है जो आय के विभिन्न स्तरों पर किसी वस्तु के उपभोग की विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिनसे उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है। वस्तुतः ऐंजिल वक्र उपभोक्ता की आय तथा किसी वस्तु के उपभोग के उन संयोगों या बिन्दुओं को मिलाने से प्राप्त होता है जो उसके संतुलन को प्रकट करते हैं। यह वक्र व्यक्त करता है कि एक उपभोक्ता अपनी आय के विभिन्न स्तरों पर किसी वस्तु की कितनी-कितनी मात्रा उपभोग करे ताकि वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके। यह अवस्था आय तथ किसी वस्तु के उपभेग से संबंधित उपभोक्ता के संतुलन को प्रकट करती है। (An Engel's curve represents the points of equilibrium of a consumer relating his income and quantity of some goods.) आय उपयोग वक्र (ICC) एक प्रकार से ऐंजिल वक्र को ही प्रकट करता है। ऐंजिल वक्र को निम्न चित्र 5 की सहायता से दर्शाया जा सकता है।

चित्र 5 में OX- अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY- अक्ष पर उपभोक्ता की आय मापी गई है। E बिन्दु दर्शाता है कि जब उपभोक्ता की आय OM है तो वह X वस्तु की OQ मात्रा का उपभोग करता है। जब आय का स्तर बढ़कर OM1 हो जाता है तो X वस्तु का उपभोग भी बढ़कर OQ1 हो जाता है। E तथा E1 बिन्दुओं को मिलाने से ऐंजिल वक्र प्राप्त होता है। चित्र में आय की तुलना में उपभोग कम बढऋ रहा हैं जीवन की अनिवार्य वस्तुओं जैसे अनाज

आदि के संबंध में ऐसा ही होता हैं एंजल वक्र का ढाल निम्न बातों पर निर्भर करता है।

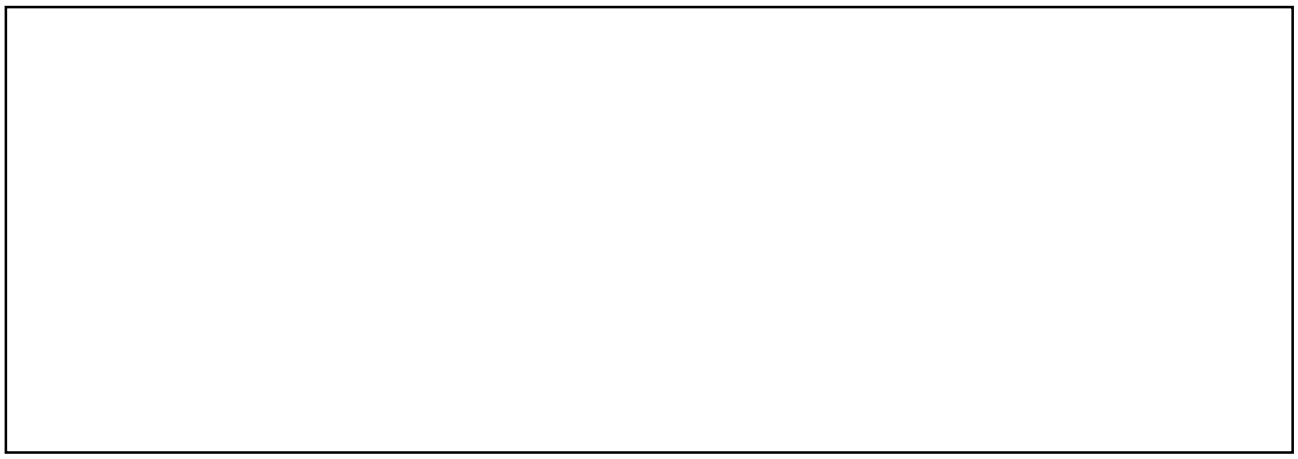

1. ***विलासपूर्ण वस्तुएं*** *(Luxury Goods):* विलासपूर्ण वस्तुओं (Luxury Goods) के संदर्भ में ऐंजिल वक्र का ढाल (Slope) कम होगा अर्थात् आय बढ़ने पर विलासपूर्ण वस्तुओं की मांग अधिक बढ़ती है। चित्र 6 में दर्शाया गया है कि आय बढ़ने पर विलासपूर्ण वस्तुओं की मांग अपेक्षाकृत अधिक बढ़ती है। जब आय M से बढ़कर M1 हो जाती है तो उपभोक्ता की इष्टतम पसंदगी (Optimal Choice) या संतुलन बिन्दु इस प्रकार परिवर्तित होता है कि X वस्तु की मांग आय की तुलना में अधिक बढ़ती है जो बढ़ कर Q1 हो जाती है।

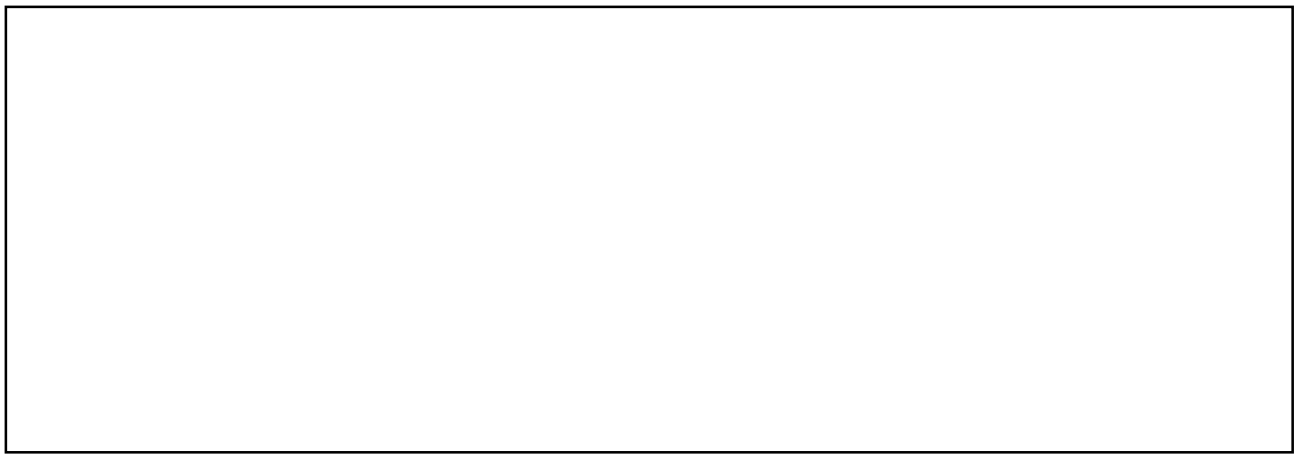

2. ***पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुएं*** *(Perfect Substitutes):* पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुओं के संदर्भ में ऐंजिल वक्र की आकृति निम्न चित्र 7 द्वारा दर्शाई गई है। यदि X वस्तु Y वस्तु से सस्ती ($P_X < P_Y$) है तो उपभोक्ता X वस्तु का ही उपभोग करेगा तथा E बिन्दु पर संतुलन में होगा। क्योंकि दोनों पूर्ण प्रतिस्थापन हैं। ज्यों उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो वह X वस्तु का उपभोग बढ़ाएगा। इस प्रकार आय उपभोग वक्र (ICC or Income Offer Curve) क्षतीज अक्ष पर ही OX- अक्ष में सम्मिलित होगा। (A) तथा (B) चित्रों से स्पष्ट होता है कि X वस्तु की मांग आय (M) की X वस्तु की कीमत (P_X) से भाग देने ($D_x = M/P_x$) से ज्ञात होगी। ऐंजिल वक्र : $M = P_X D_X$ इसका ढाल $= P_X$ होगा।

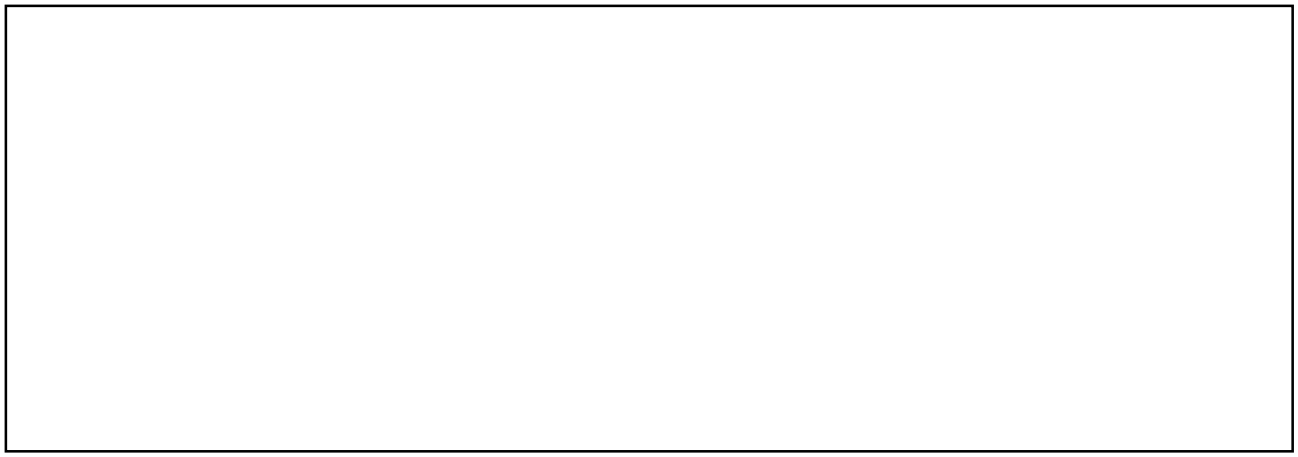

3. ***पूर्ण पूरक पदार्थ*** *(Perfect Complements):* ऐंजिल वक्र के अनुसार पूर्ण पूरक पदार्थों की मांग पर आय परिवर्तन का प्रभाव निम्न चित्र 8 द्वारा व्यक्त किया गया हैं आय बढ़ने पर हमेशा दोनों पूरक पदार्थों की मांग क्योंकि समान रूप से बढ़ती है इसलिए आय उपभोग वक्र चित्र अनुसार ऊपर उठता हुआ होगा। ऐंजिल वक्र भाग B में दर्शाया गया है।

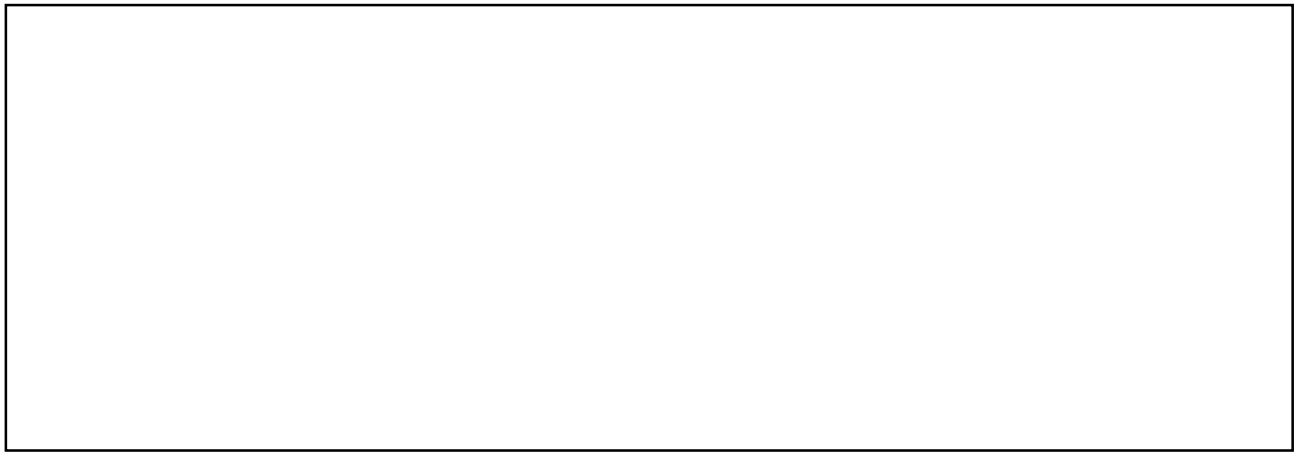

X वस्तु की मांग है क्योंकि दोनों पूर्ण पूरक पदार्थ हैं।

2. **प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect):** उपभोक्ता द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं में से किसी एक वस्तु कीमत में परिवर्तन होने के कारण दोनों वस्तुओं की सापेक्ष कीमतें (एक दूसरे से संबंधित) परिवर्तित हो जाती हैं। उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रखते हुए वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के फल स्वरूप उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मांग पर या उसकी संतुलन स्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है उसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं। (The substitution effect shows the change in the amout of the goods purchased due to change in the relative prices alone while real income remains constant.) जब एक वस्तु की कीमत कम हो जाती है तथा दूसरी वस्तु की कीमत स्थिर रहती है,जो दोनों वस्तुओं की कीमतों में सापेक्ष परिवर्तन (Relative Change in Prices) यह होगा कि एक वस्तु दूसरी से महंगी हो जाती है। एक वस्तु की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती

है क्योंकि उपभोक्ता पहले की अपेक्षा वस्तुओं की अधिक मात्रा खरीद सकता है। उसकी वास्तविक आय स्थिर रखने के लिए उसकी बढ़ी हुई आय उससे ले ली जाए तो दोनों वस्तुओं की खरीद में इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि उपभोक्ता महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु की कुछ मात्रा प्रतिस्थापित करता है। इसी को प्रतिस्थापन्न प्रभाव कहते हैं।

मान्यताएं (Assumptions):

1. उपभोक्ता की वास्तविक आय में कोई परिवर्तन नहीं होता।
2. सापेक्षितक कीमतों में परिवर्तन होता है।
3. संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहता है।
4. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

उदाहरणार्थ मान लीजिए उपभोक्ता की आय 100 रु. है जिससे वह 4 किलों दूध और 2 किलो सेब खरीदता है। दूध की कीमत 15 रु. प्रति किलो तथा सेव की कीमत 20 प्रति किलो है। अब यदि दूध की कीमत कम हो कर 10 रु. प्रति किलो हो जाए तो उपभोक्ता पहले जितने वस्तुएं अर्थात् 4 किलो दूध तथा 2 किलो सेब 80 रु. में खरीद सकेगा। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय 20 रु. बढ़ गई है। अब यदि उपभोक्ता से 20 रु. किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ले लिए जाए तो उसकी वास्तविक आय (4 kg. Milk + 2K Apples) पहले जितनी रह जाती है, परंतु दूध की सापेक्ष कीमत (Relative Price) कम हो जाने से दूध सेब की तुलना में सस्ता तथा सेब दूध कीतुलना में महंगा हो गया है। इसलिए उपभोक्ता सेब की कम मात्रा तथा दूध की अधिक मात्रा खरीदेगा। जब उपभोक्ता महंगी वस्तु के स्तान पर सस्ती वस्तु को प्रतिस्थापित करता है। तो यह प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) कहलाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव से प्रो. हिक्स के अनुसार उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहता है। अर्थात् वह उसी तटस्थता वक्र पर ही संतुलन प्राप्त करता है। प्रतिस्थापन्न प्रभाव को अग्र चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है:

चित्र 8 में PL प्रारंभिक बजट रेखा, IC प्रारम्भिक तटस्थता वक्र है तथा E उपभोक्ता का प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है। दूध सस्ता हो जाने के कारण नई बजट रेखा PL_1 बाईं ओर नीचे इस प्रकार से सरकती है कि यह प्रारम्भि तटस्थता वक्र IC को E_1 पर स्पर्श करती है। अतः अब उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E_1 पर निर्धारित होता है जिसमें दूध की QQ_1 अधिक मात्रा तथा qq_1 सेब की पहले से कम मात्रा है अर्थात् उपभोक्ता ने qq_1 सेब, जो अब दूध की अपेक्षा महंगा है, को दूध की QQ1 मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित इस प्रकार किया कि उसका संतुष्टि स्तर पहले जितना (f) ही बना रहा।

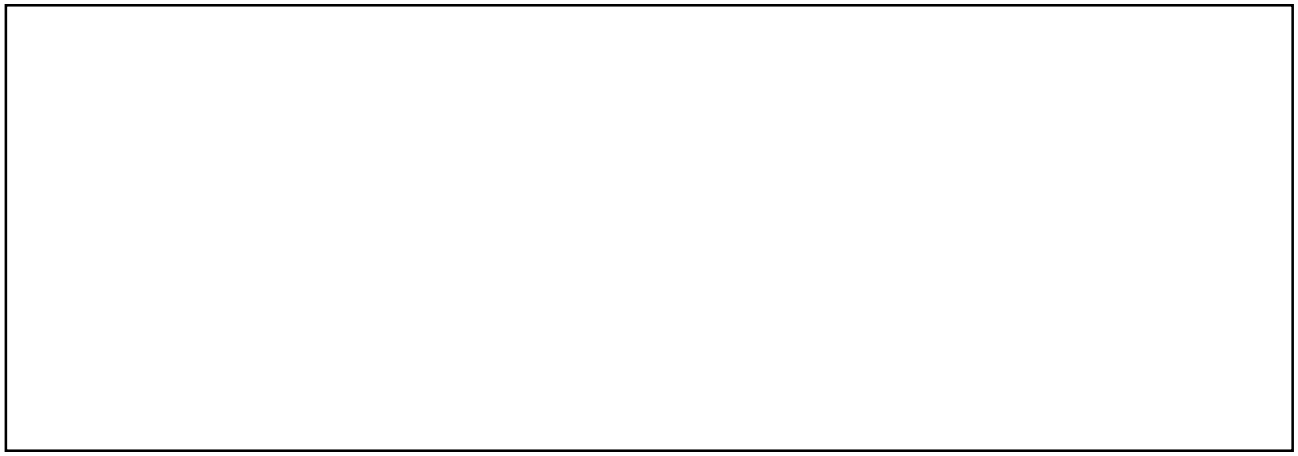

प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तु की मांग पर धनात्मक (Positive) पड़ता है क्योंकि उपभोक्ता हमेशा सस्ती वस्तु की मांग बढ़ाता

है तथा महंगी की मांग घटाता है, परंतु वाटसन आदि अर्थशास्त्री इसको ऋणात्मक प्रभाव कहते हैं। उनका कहना है कि X वस्तु की कीमत गिरने (Negative) पर इसकी मांग बढ़ी हे इसलिए यह संबंध नकारात्मक (Negative) है। अतः सुविधा के लिए हम इसको धनात्मक कहेंगे।

3. **कीमत प्रभाव (Price Effect):** उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा एक वस्तु की कीमत स्थिर रहते हुए किसी दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के संतुलन पर जो प्रभाव पड़ता है उसको कीमत प्रभाव कहा जाता है। यदि इस दूसरी वस्तु की कीमत में पवित्तन इस प्रकार का होता है कि इसकी कीमत गिर जाती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ने के कारण वह पहले से अच्छी स्थिति में होगा और उसका संतुष्टि स्तर बढ़ जाएगा। इसके विपरीत यदि इसकी कीमत बढ़ जाती है तो उसका संतुष्टि स्तर गिर जाएगा तथा वह नीचे वाले तटस्थता वक्र पर संतुलन प्राप्त करेगा। प्रो. लिप्सी के अनुसार, ''कीमत प्रभाव दर्शाता है कि जब उपभोक्ता की आय स्थिर रहे तथा उपभोग की जाने वाली दो वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत स्थिर रहे और दूसरी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होजाए तो दोनों वस्तुओं के उपभोग में परिवर्तन के कारण संतुष्टि स्तर कैसे परिवर्तित होता है।'' (The price effect shows how satisfaction of the consumer varies due to the change in the consumption of two goods as the price of one changes, the price of the other and money income remains constant. -Lipsey)

कीमत प्रभाव की मान्यताएं (Assumption of Price Effect):

1. कीमत प्रभाव से संबंधित कुछ मान्यताएं निम्न प्रकार हैं:
2. उपभोक्ता की मौद्रिक आय स्थिर रहती है, परंतु वास्तविक आय बदलती है।
3. उपभोग की जाने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तथा दूसरी वस्तु की कीमत स्थिर रहती है
4. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

कीमत प्रभाव को निम्न चित्र 9 की सहायता से प्रकट किया गया है। चित्र में PL प्रारम्भिक कीमत रेखा तथा E उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु है। E बिन्दु पर X वस्तु की OQ तथा Y वस्तु की OL मात्रा का उपयोग किया जाता है। अब X वस्तु की कीमत गिरने से नई बजट रेखा PL1 बन जाती है तथा उपभोक्ता E1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है। E1 बिन्दु दर्शाता है कि कि X वस्तु की सापेक्ष कीमत गिरने के कारण इसकी मांग OQ1 से बढ़ जाती है तो Y वस्तु की सापेक्ष कीमत बढ़ने के कारण इसकी मांग या उपभोग LL1 मात्रा से कम हो जाता है। इसके साथ ही ध्यान देने की बात यह है कि उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ जाता है क्योंकि E1 बिन्दु E से ऊंचे तटस्थता वक्र पर स्थित है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ जाता है। E तथा E1 बिन्दुओं को मिलाने से कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve or

PCC) प्राप्त होता है। यह वक्र बताता है कि जब एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता संतुलन या वस्तुओं की मांग तथा उपभोग पर क्या प्रभाव पड़ता है।

PCC का झुकाव किधर होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिस वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है उस वस्तु की प्रकृति कैसी है? यदि यह वस्तु सामान्य वस्तु है तो PCC का झुकाव उसी अक्ष की ओर होता है जिस पर यह वस्तु मापी जाती है। परंतु यदि यह वस्तु घटिया वस्तु (Inferior goods) या गिफ्न वस्तु (Giiffen Goods) है तो इस वस्तु की मांग पर आय प्रभाव नकारात्मक होगा तथा प्रतिस्थापन प्रभाव सकारात्मक होगा। वस्तु कीमत प्रभाव (PE) इन दोनों प्रभावों का जोड़ है। गिफ्फन या घटिया X वस्तु की कीमत गिरने पर PCC वक्र ऊपर उठता हुआ कम या अधिक ढाल वाला होता है क्योंकि इस वस्तु की मांग पर आय प्रभाव नकारात्मक पड़ता है तथा प्रतिस्थापन प्रभाव धनात्मक होता हैं।

PE = +ve Income Effect + ve Substitution Effect

सामान्य वस्तु के संदर्भ में PCC की आकृति कीमत गिरने वाली वस्तु की ओर झुकी होती है या समानांतर हो सकती है क्योंकि इस वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग पर आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों धनातमक होते हैं।

चित्र 11 से स्पष्ट हो रहा है कि PCC_I, PCC_{II} तथा PCC_{III} दर्शाते हैं कि X वस्तु सामान्य पदार्थ है। जबकि PCC_{IV} तथा PCC_V के अनुसार X वस्तु घटिया या गिरफ्फन पदार्थ हैं कीमत प्रभाव के निम्न विस्त त अध्ययन से यह प्रश्न और भी स्पष्ट हो जाता है।

1. कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है (Price Effect is a Combination of Income Effect and Substitution Effect): कीमत प्रभाव व्यक्त करता है कि जब उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है परंतु एक सामान्य वस्तु X की कीमत गिर ती है तो X वस्तु की मांग या उपभोग बढ़ जाता है। X वस्तु की मांग में यह व द्धि क्यों होती है? X वस्तु की मांग में यह व द्धि निम्न दो प्रभावों का परिणाम है:

   (i) आय प्रभाव (Income Effect): ज्यों X वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप वह X वस्तु की पहले से अधिक मात्रा खरीदता है या मांग करता हैं यह आय प्रभाव कहलाता है।

   (ii) प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect): ज्यों X वस्तु की कीमत गिरती है तथा Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है तो दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों (Relative Prices) में परिवर्तन इस प्रकार से होता है कि X वस्तु Y की अपेक्षा सस्ती तथा Y वस्तु X की अपेक्षा महंगी हो जाती है। इसलिए उपभोक्ता सस्ती वस्तु X की मांग बढ़ा देता है तथा Y वस्तु की मांग कम कर देता है। अर्थात् वह Y के स्थान पर X को प्रतिस्थापित करता है।

इसको प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं।

अतः किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उपरोक्त दोनों प्रभाव उत्पन्न होते हैं। इसलिए कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों का योग होता हैः

कीमत प्रभाव = आय प्रभाव + प्रतिस्थापन प्रभाव

Price Effect = Income Effect + Substitution Effect

PE = IE + SE

कीमत प्रभाव की व्याख्या निम्न दो विधियों के आधार पर की जा सकती हैः

1. हिक्सीयन विधि
2. स्लटस्की विधि

1. हिक्सीयन विधि (Hicksian Method): प्रो. हिक्स केअनुसार कीमत प्रभाव कैसे आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापनन प्रभाव का जोड़ है इसकी व्याख्या निम्न चित्र 11 के माध्यम से की जा सकती है।

निम्न रेखाचित्र 12 में AB प्रारंभिक बजट रेखा पर उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा IC_1 वक्र उसके संतुष्टि स्तर को प्रकट कर रहा है। अब मान लीजिए X वस्तु की कीमत गिर जाती है जिसके परिणामस्वरूप AB_1 नई बजट रेखा पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है। उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E से E_1 पर सरक जाता है जो कीमत प्रभव (Price Effect) को प्रकट करता है। कीमत प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग OQ से बढ़ कर OQ_1 हो जाती है।

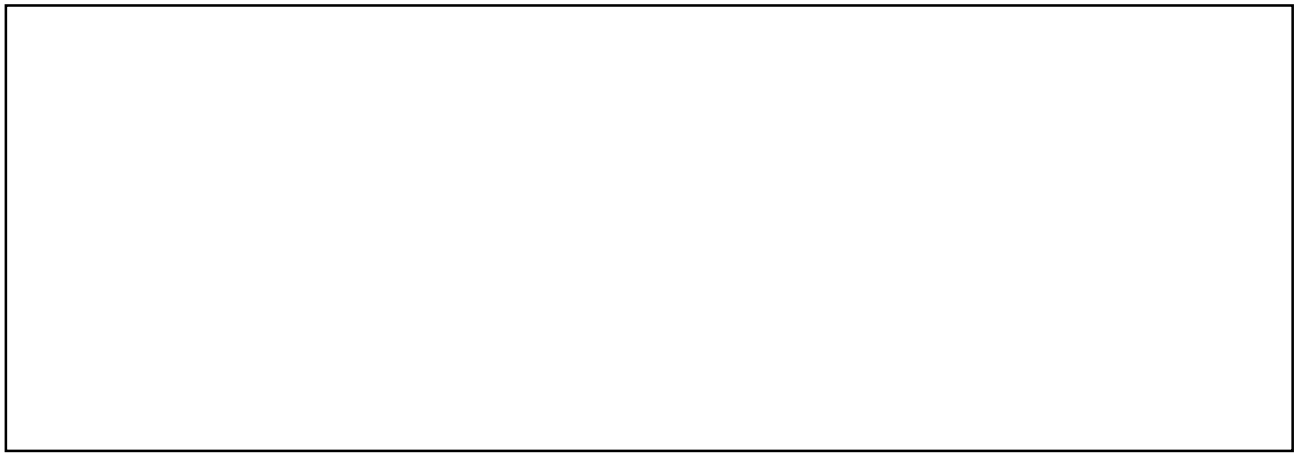

X वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ गई है। यदि बढ़ी हुई आय उससे कोई व्यक्ति ले लेता है तो उपभोक्ता अपने पहले वाले संतुष्टि स्तर पर होता है अर्थात् उसकी AB1 कीमत रेखा नीचे की ओर इस प्रकार समानांतर रूप से सरकरती है कि यह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र IC_1 को छूती है, जैसे कि यह E_{11} पर स्पर्श कर रही है। इस प्रकार E तथा E_{11} पर समान संतुष्टि प्राप्त होती है। यदि Y वस्तु मौद्रिक आय हो तो हम कह सकते हैं कि मौद्रिक आय में AA_1 की कमी हो चुकी है। अतः IC1 पर E से E11 बिन्दु पर पहुंचना प्रतिस्थापन प्रभाव को दर्शाता है तथा उपभोक्ता X वस्तु की मांग में QQ11 मात्रा की व द्धि प्रतिस्थपना प्रभाव के कारण होती है। अब यदि उपभोक्ता को AA1 आय वापिस दे दी जाए तो कीमत रेखा A1 B11 ऊपर सरक कर AB1 में समा जाएगी तथा उपभोक्ता E1 बिन्दु पर संतुलन में पहुंच जाएगा। उपभोक्ता संतुलन का E11 से E1 पर पहुंचना आय प्रभाव के कारण होता है। अतः कीमत प्रभाव दो भागों या प्रभावों का जोड़ हैः

कीमत प्रभाव = स्थानापन्न प्रभाव के कारण हुई वस्तु की मांग में व द्धि + आय प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग में व द्धिः

QQ1 = QQ11 + Q11 Q1

2. स्ल्टस्की विधि (Slutsky Method): कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव में विभजन 1.915 ई. में एक स्लटस्की नामक रूसी अर्थशास्त्री द्वारा भी किया गया। स्लटस्की विधि द्वारा कीमत प्रभाव की व्याख्या हिक्स विधि से कुछ भिन्न है। दोनों में यह भिन्नता प्रतिस्थापन्न प्रभाव की व्याख्या करने में हैं। स्लटस्की विधि द्वारा कीमत प्रभाव की व्याख्या निम्न चित्र की सहायता से की जा सकती हैः

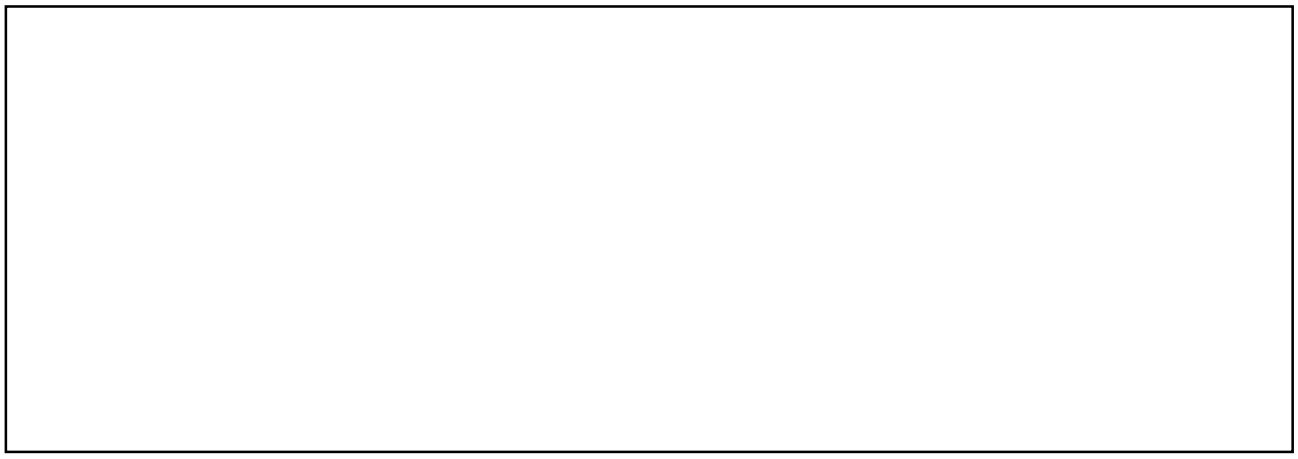

रेखाचित्र 13 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा पर उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलिन में है जहां IC_1 तटस्थता वक्र उसे स्पर्श करता है। यदि X वस्तु की कीमत गिर जाती है तो उपभोक्ता नई कीमत रेखा AB_1 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होगा, जहां IC_3 वक्र AB रेखा को स्पर्श करता है। E से E_1 पर पहुंचना कीमत प्रभाव को दर्शाता है। X की कीमत गिरने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ी है। बढ़ी हुई वास्तविक आय समाप्त हो जाएगी यदि नीचे सरकाई गई कीमत रेखा E संतुलन बिन्दु से गुजरती है जैसे कि A_1B_{11} रेखा ताकि वह पहले वाला E संयोग क्रय कर सके। अतः बढ़ी हुई वास्तविक आय समाप्त हो जाएगी यदि उपभोक्ता अपनी पहले वाली स्थिति में पहुंच जाता है तथा A_1B_{11} बजट रेखा पर संतुलन में होता है। इसके विपरीत हिक्स के अनुसार उसकी बढ़ी हुई वास्तविक आय उस समय समाप्त होगी जब बजट रेखा नीचे सरक कर IC, को स्पर्श करती है।

अब उपभोक्ता A_1B_{II} बजट रेखा पर E_{II} बिन्दु पर संतुलन में होगा जहां इसे IC_2 तटस्थता वक्र स्पर्श करता है। वह E की अपेक्षा E_{11} को पसंद करेगा क्योंकि X वस्तु Y की अपेक्षा सस्ती हो गई है। इतना ही नहीं E_{11} बिन्दु E की अपेक्षा ऊंचे तटस्थता वक्र IC_2 पर स्थित है। E से E_{11} पर पहुंचना स्लटस्की के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रकट करता है जिस कारण X वस्तु की मांग QQ_{II} से बढ़ जाती है। अब यदि उपभोक्ता से ली गई आय वापिस उसको दे दी जाए तो A_1B_{11} कीमत रेखा ऊपर सरक कर A_1B_1 कीमत रेखा में समा जाएगी तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होगा। इसलिए E_{11} बिन्दु पर पहुंचना उसके आय प्रभाव को प्रकट करता है जिस कारण X वस्तु की मांग $Q_{11}Q_1$ से बढ़ जाती है। अतः स्लटस्की के अनुसारः

कीमत प्रभाव = स्थानापन्न प्रभाव + आय प्रभाव

कीमत प्रभाव के कारण X की मांग में व द्धि = स्थानापन्न प्रभाव के कारण X की मांग में व द्धि + आय

प्रभाव के कारण X की मांग में व द्धि

$QQ_1 = QQ_{11} + Q_{11}Q_1$

स्लटस्की तथा हिक्स की विधियों में अंतर (Difference between Hicksian and Slutsky's Methods): उपरोक्त विश्लेषण तथा चित्र 11 तथा 12 से स्पष्ट है कि दोनों विधियों में अंतर केवल स्थानापन्न प्रभाव के निर्धारण का है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की वास्तविक आय समान रखने के लिए उससे इतनी मौद्रिक आय ले लेनी चाहिए ताकि वह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र पर पहुंच जाए (चित्र 11) हिक्स का मत है कि पहले वाले उसी तटस्थता वक्र पर गति करना स्थानापन्न प्रभाव को दर्शाता है। इसके विपरीत स्लटस्की के अनुसार उपभोक्ता की वास्तविक आय समान या पहले जितनी बनाए रखने के लिए उससे मौद्रिक आय इतनी मात्रा में ले लेनी चाहिए ताकि वह पहले वाले संयोग (चित्र 12 में E बिन्दु) को प्राप्त कर सके। । अर्थात् कीमत रेखा को इतना सरकारया जाए जिससे यह प्रारम्भि संयोग (E) से गुजर सके। इसके परिणामस्वरूप स्थानापन्न प्रभाव के कारण उपभोक्ता ऊंचे वाले तटस्थता वक्र पर पहुंच सकता है। तथा उसका संतुष्टि स्तर बढ़ सकता है।

दूसरा अंतर व्यवहारिकता के आधार पर किया जा सकता है। उपभोक्ता को पहले वाली आर्थिक स्थिति में पहुंचाने के लिए उससे कुछ मौद्रिक आय ले लेनी पड़ती है या उसकी कुछ मौद्रिक आय कम करनी पड़ती है। यह मौद्रिक आय कितनी कम की जाए? इसका निर्धारण स्लटस्की के अनुसार उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी कम करनी चाहिए ताकि वह कम से कम प्रारम्भिक संयोग का क्रय कर सके। इसका निर्धारण आसानी से किया जा सकता है। परंतु हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी कम करनी चाहिए ताकि वह पहले वाले तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सके। इसका निर्धारण काल्पनिक है क्योंकि तटस्थता वक्र कल्पना पर आधारित होता है। इसलिए हिक्स की विधि ा कम व्यवहारिक है।

घटिया वस्तुओं एवं गिफ्फन वस्तुओं पर कीमत प्रभाव
(Pridce Effect on Inferior Goods and Giffen's Goods)

घटिया वस्तुओं और गिफ्फन वस्तुओं पर पड़ने वाले कीमत प्रभाव में अंतर पाया जाता है जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार है:

1. घटिया वस्तुएं (Inferior Goods): घटिया वस्तुओं की विशेषता यह है कि इन वस्तुओं पर आय प्रभाव ऋणात्मक होता है अर्थात् आय बढ़ने पर इनकी मांग कम होती है तथा आय कम होने पर इनकी मांग बढ़ती है। उपभोग की जाने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत गिरने से उपभोक्ता की आय बढ़ती है जो आय प्रभाव उत्पन्न कर देती है। घटिया वस्तुओं पर यह प्रभाव ऋणात्मक होता हैं परंतु स्थानापन्न प्रभाव हमेशा धनात्मक होता है अर्थात् उपभोक्ता हमेशा महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन करता हैं तथा इस कारण सस्ती वस्तु की मांग बढ़ जाती है। घटिया वस्तुओं के मामले में इन दोनों का शुद्ध अंतर कीमत प्रभाव पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ता है क्योंकि ध नात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक प्रभावी होता है:

   $PE = — IE + SE$

   घटिया वस्तुओं के संदर्भ में आय प्रभाव ऋणात्मक (—IE) तथा स्थानापन्न प्रभाव धनात्मक (+SE) होने के परिणाम धनात्मक कीमत प्रभाव होता है। इसकी व्याख्या निम्न चित्र की सहायता से की गई है:

   रेखाचित्र 13 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा पर E बिन्दु प्रारम्भिक उपभोक्ता संतुलन बिन्दु है। उपभोक्ता X वस्तु जो इस विश्लेषण में घटिया वस्तु है, की OQ मात्रा खरीदता है तथा वह IC1 तटस्थता वक्र प्राप्त करता है। घटिया वस्तु X की कीमत में कमी होने पर नई कीमत रेखा AB1 बनती है जिस पर उपभोक्ता E1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है जो कीमत प्रभाव है। कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभावों में बांटने के लिए नई कीमत रेखा AB1 को समानांतर रूप से नीचे इस प्रकार सरकाया जाता है कि यह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र IC1 को छू सके, हिक्स की पद्धति अनुसार जो चित्र में E11 पर छू रही है। अतः उपभोक्ता का E से E11 प्राप्त करना स्थानापन्न प्रभाव तथा

E11 से E1 पर पहुंचना आय प्रभाव को प्रकट करता है। चित्र 14 में स्पष्ट है कि सकारात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग Q11Q1 मात्रा से कम हो गई है।

चित्र से स्पष्ट है कि ऋणात्मक आय प्रभाव (—IE) की शक्ति धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव (+SE) से कम है। इसलिए इस दोनों का शुद्ध कीमत प्रभाव धनात्मक होता है। अतः X वस्तु की कीमत गिरने पर अब इसकी QQ1 मात्रा खरीदी जाती है जो OQ से अधिक है। अतः घटिया वस्तुओं पर मांग का नियम लागू होता है।

2. गिफ्फन वस्तुएं (Giffen's Goods): गिफ्फन वस्तुओं के संदर्भ में ऋणात्मक आय प्रीााव धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव से अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए कीमत प्रभाव भी ऋणात्मक आय प्रभाव धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव से अधिक प्रभावशाली होता है। गिफ्फन वस्तुओं की कीमत घटने पर इनकी मांग व इनका उपभोग कम हो जाता है। अर्थात् कीमत प्रभाव नकारात्मक —PE) होता है। मांग का नियम इन वस्तुओं पर लागू नहीं होता है।

गिफ्फन वस्तुओं की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

इन वस्तुओं का ऋणात्मक आय प्रभाव शक्तिशाली होता है।

इन वस्तुओं का स्थानापन्न प्रभाव कमज़ोर होता है

इन वस्तुओं को उपभोग करने वाला व्यक्ति निम्न आय वर्ग से संबंधित होता है।

इन वस्तुओं की खरीद पर उपभोक्ता की आय का बड़ा भाग खर्च होता है।

गिफ्फन वस्तुाओं के संदर्भ में कीमत प्रभाव की विस्त त व्याख्या निम्न रेखा चित्र 14 द्वाा की गई है:

रेखाचित्र 15 में दर्शाया गया है कि E बिन्दु उपभोक्ता का प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु है जहां IC1 तटस्थता वक्र AB कीमत रेखा को स्पर्श कर रहा हैं X वस्तु मान लीजिए गिफ्फन पदार्थ है, जिसकी उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था में OQ मात्रा उपभोग या मांग कर रहा है। X वस्तु की कीमत गिरने पर उपभोक्ता की नई कीमत रेखा AB1 बन जाती है। AB1 कीमत रेखा पर वह E1 बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है। E से E1 कीमत प्रभाव को प्रकट करता है। इसको आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभाव में तोड़ने या बांटने के लिए AB1 कीमत रेखा को नीचे समानान्तर रूप से इस प्रकार सरकाया गया है कि यह प्रारंभिक तटस्थता वक्र IC1 को स्पर्श कर सके। ऐसा करने से A1B11 कीमत रेखा प्राप्त होती है जिस पर उपभोक्ता EII पर संतुलन प्राप्त करता है। E से E11 प्रतिस्थापन्न प्रभाव को प्रकट करता है जो धनात्मक है। इस कारण X वस्तु की मांग QQII बढ़ती है, परंतु आय प्रभाव काफी नकारात्मक है जिसको चित्र में E11 से EI द्वारा प्रकट किया गया है। मांग की QIIQI मात्रा कम हो जाती है।

स्थापन्न प्रभाव के कारण मांग केवल QQII से बढ़ती है परंतु नकारात्मक आय प्रभाव के कारण मांग QIIQI से गिर जाती है जो QQ11 व द्धि से काफी अधिक है। परिणामतः कीमत प्रभाव नकारात्मक है अर्थात अब OQ की अपेक्षा OQ_1 मात्रा की मांग की जाती है। X वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग भी गिर गई। अतः गिफ्फन पदार्थो पर मांग का नियम लागू नहीं होता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा मांग वक्र निकालना
(Derivation of DemandCurve withthe help of Indifference Curves)

मांग वक्र किसी वस्तु की कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित मांगी गई मात्राओं के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्त करती है। तटस्थात वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत भी किसी वस्तु की कीमत तथा दसके उपभोग या उसकी मांग में सम्बन्ध देखा जा सकता है। यह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रूप से कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve) द्वारा व्यक्त किया जाता है। कीमत उपभोग वक्र (PCC) किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उस वस्तु के उपभोग की मात्रा में परिवर्तन का व्यक्त करताहै, परन्तु कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा मांग वक्र (Demand Curve) में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं। इनकी व्याख्या अग्र प्रकार से की गई है-

मांग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में अन्तर
(Difference between Demand Curve and Price Consumtion Curve)

1. मांग वक्र के चित्र में OX-अक्ष पर वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा OY-अक्ष पर उस वस्तु की कीमत मापी जाती है। जबकि कीमत उपभोग वक्र के चित्र में OX-अक्ष पर एक वस्तु तथा OY-अक्ष पर दूसरी वस्तु या मुद्रा या आय को मापा जाता है।
2. मांग वक्र किसी वस्तु की कीमत और उसकी मांग में प्रत्यक्ष सम्बन्ध (Direct Relationship) को बताती है। जबकि PCC इन दोनों के बीच केवल अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect Relationship) को प्रकट करती है।
3. मांग वक्र आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभावों की अलग-अलग नहीं करती है। इसके विपरीत कीमत उपभोग वक्र कीमत प्रभाव के आय तथा स्थानापन्न प्रभावों की अलग-अलग व्याख करती है।

   उपरोक्त अन्तर के होते हुए भी कीमत उपभोग वक्र (PCC) से मांग वक्र निकाला जा सकता है क्योंकि इन दोनों में कीमत तथा मांग से सम्बन्धित आधारभूत समानता है।

मांग वक्र निकालना
(Derivation of Demand Curve)

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा मांग वक्र ज्ञात करने के लिए पहले कीमत उपभोग वक्र (PCC) निकालना होगा जैसा कि निम्न चित्र में किया गया है-

मांग तालिका

कीमत रेखा	कीमत	मांग की मात्रा
MB	$\frac{OM}{OB}=P$	OQ
MB_1	$\frac{OM}{OB_1}=P_1$	OQ_1
MB_{11}	$\frac{OM}{OB_{11}}=P_2$	OQ

रेखाचित्र 16 के (A) भाग में कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा (B) भाग में मांग वक्र निकाला गया है। भाग (A) में OX- अक्ष पर X वस्तु तथा OY-अक्ष पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय (M) मापी गई है। प्रारम्भ में MB उपभोक्ता की बजट रेख है जिसे IC_1 तटस्थता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। इसलिए E बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है जिसमें वह X वस्तु की OQ मात्रा तथा मुद्रा की OM मात्रा का संयोग प्राप्त करता है। प्रारम्भिक कीमत पर वह X की OQ मात्रा मांग करता है। मान लो

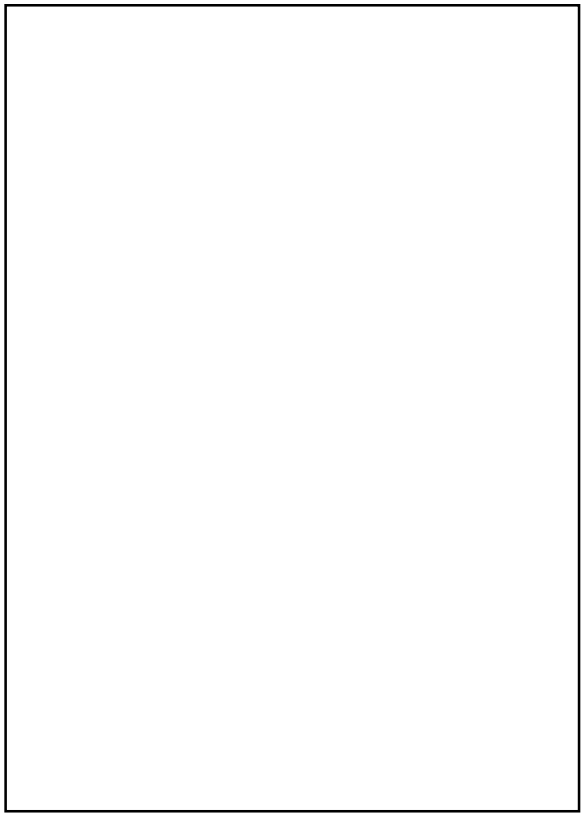

X वस्तु की कीमत कम हो जाती है, कारण बजट रेखा MB_1 बन जाती हैं तथा सन्तुलन बिन्दु E_1 निर्धारित होता है। X वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग वढ़ कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार X वस्तु की कीमत और गिरने पर नई बजट रेखा MP_{11} बनती है तथा उपभोक्ता सन्तुलन E_{11} पर निर्धारित होता है और X वस्तु का उपभोग बढ़ कर QO_{11} हो जाता है। E, E_1 और E_{11} सन्तुलन बिन्दुओं को मिलाने सेकीमत उपभोग वक्र (PCC) प्राप्त होता है।

PCC के आधार पर मांग तालिका और मांग वक्र निकाला गया है। मांग तालिका में दर्शाया गया है कि MB बजट रेख से ज्ञात होता है कि कुल मौद्रिक आय (M) को कुल X वस्तु (OB) जो सारी मुद्रा खर्च करे खरीदी जा सकती है इससे भाग देने पर X वस्तु की कीमत निकाली जा सकतीहै जिसका तालिका में P द्वारा दर्शाया गया है। कीमत गिरने पर MB_1 बजट रेखा प्राप्त होती है। अब इसी प्रकार M को OB_1 से भाग देने पर P_1 कीमत प्राप्त होती है। ध्यान रहे कि P_1 हमेशा

P कीमत से कम होगी क्योंकि $\frac{OM}{OB_1}$ $\frac{OM}{OB}$ है। ठीक इसी प्रकार आगे कीमत गिरने पर MB_{11} कीमत रेखा प्राप्त होती है।

तथा $\frac{OM}{OB_{11}}$ द्वारा कीमत ज्ञात की जा सकती है जो तालिका मे P_2 है। P_2 कीमत P_1 कम होगी क्योंकि

$\frac{OM}{OB_1}$ $\frac{OM}{OB}$ है।

अब मांग तालिका के आधार पर मांग वक्र आसानी ज्ञात किया जाता सकता है। चित्र के भाग (B) में उपभोक्ता X वस्तु की P कीमत पर OQ मात्रा, P_1 कीमत पर OQ_1 मात्रा मांग करता है। मांग बिन्दुओं को मिलाने से DD मांग वक्र निकल आता है। भाग (B) में DD मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वज है जो किसी एक उपभोक्ता के उपभोस से सम्बन्धित है। इसी आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा बाजार मांग वक्र भी निकाला जा सकता है।

गिफ्फन वस्तुओं की मांग वक्र निकालना

(Derivation od DemandCurvefor Giffen Goods)

तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से गिफ्फन वस्तुओं का मांग वक्र भी निकाला जा सकता है। हम जानते है कि गिफ्फन वस्तु की कीमत तथा इसकी मांग में धनात्मक सम्बन्ध (Positive Relationship) पाया जाता है, अर्थात् इन वस्तुओं कीकीमत वढ़ती है तो इनकी मांग भी बढ़ती है तथा कीमत गिरने पर इनकी मांग भी कम होती है। इसलिए इन वस्तुओं की मांग वक्र बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता हुआ होता है। यह मांग वक्र निम्न चित्र की सहायता से निकाला जा सकता है-

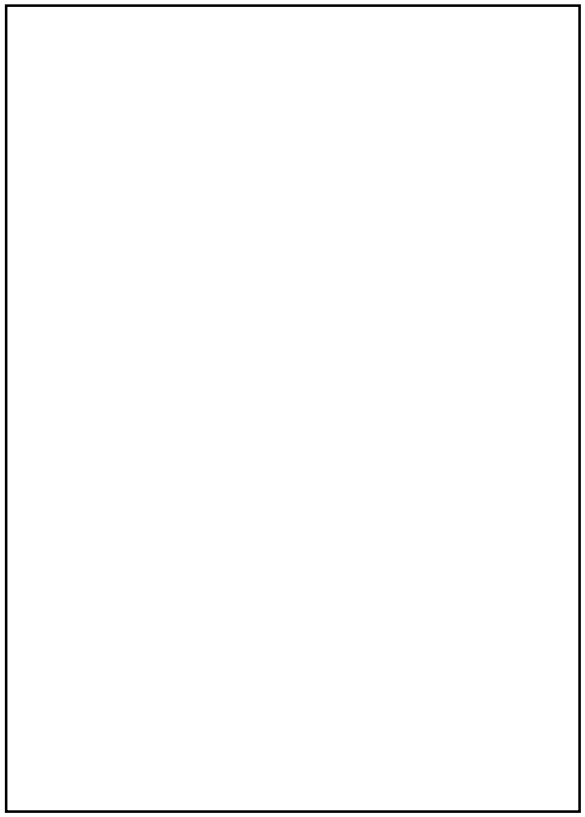

मान लीजिए उपभोक्ता के पास OM मौद्रिक आय है जिससे वह गिफ्फन पदार्थ X वस्तु की कुछ मात्रा तथा कुछ मौद्रिक आय का संयोग प्राप्त करना चाहता है। चित्र 17 के भाग (A) में कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा भाग (B) में मांग तालिका से मांग वक्र निकाला गया है। भाग (A) दर्शाता है कि AB प्रारम्भिक बजट रेखा है तथा उपभोक्ता E बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करके X वस्तु की OQ मात्रा खरीद रहा है। इसके बाद X वस्तु की कीमत गिरती है तो नई कीमत रेखा AB_1 बन जाती है तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है तथा X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार X की और कीमत गिरने पर AB_{11} कीमत रेखा बनाती है और उपभोक्ता E_{11} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा वह X वस्तु की OQ_{11} मात्रा खरीदता है।

मांग तालिका

कीमत रेखा	कीमत	मांग की मात्रा
MB	$\frac{OM}{OB}=P$	OQ
MB_1	$\frac{OM}{OB_1}=P_1$	OQ_1
MB_{11}	$\frac{OM}{OB_{11}}=P_2$	OQ

विभिन्न कीमत रेखाओं के आधार पर मांग तालिका तैयार की गई है।

तालिका में $P > P_1 > P_{11}$ है क्योंकि क्र $P_1 \frac{OM}{OB} \triangleright \frac{OM}{OB_1} \triangleright \frac{OM}{OB_1}$ है। चित्र का भाग (B) दर्शाता है कि P कीमत का सम्बन्ध OQ मांग से, P_1 कीमतका सम्बन्ध OQ_1 मांग तथा P_{11} का सम्बन्ध OQ_{11} मांग से है मांग बिन्दुओं को मिलाने से ऊपर की ओर उठता हुआ DD मांग वक्र प्राप्त होता है।

उपरोक्त मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्र है। गिफ्फन पदार्थ की बाजार मांग वक्र निकालना कठिन है क्योंकि एक वस्तु सबसे लिए गिफ्फन वस्तु हो यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह भिन्न-भिन्न लोगों के आय स्तर पर निर्भ करती है।

अब यह कहा जा सकता है तटस्थता वक्र प्रणाली द्वारा प्राप्त कया गया मांग वक्र तुष्टिगुण विश्लेषण द्वारा प्राप्त कियो गये मांग वक्र से श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि तटस्थता वक्र प्रणाली में कीमत गिरने से मांग पर पड़ने वाले आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभाव दोनों वक्र की आक ति (Shape) तथा स्थिति (Situation) का निर्धारण करते हैं। तुष्टिगुण विश्लेषण में इन प्रभावों की अवहेलना की गई है। इतना ही नहीं तटस्थता वक्र द्वारा गिफ्फन वस्तुओं कीमांग वक्र भी निकाल जा सकता है।

16. तटस्थता वक्र के उपयोग एवं महत्त्व

(User of Significanceof Indifference Curve Analysis)

विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान मे तटस्थता वक्र प्रणाली का व्यापक प्रयोग किया जाता है, निम्न आर्थिक क्षेत्रों में इस प्रणाली का उपयोग अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ हैः

1. **उपभोग के क्षेत्र में उपयोग (Use in the Field of Consumption):** वास्तव में तटस्थता वक्र प्रणाली का आविष्कार उपभोक्ता के व्यवहार का सही-सही अध्ययन करने के लिए ही किया गया था। तटस्थता वक्र प्रणाली का उपयोग करके उपभोक्ता के संतुलन का निर्धारण बड़ी आसानी से किया जा सकता है। इस विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता वहां संतुलन में होता है जहां तटस्थता वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करता है जैसा कि चित्र 18 में दर्शाया गया है। चित्र में उपभोक्ता का संतुलन E बिन्दु निर्धारित होता है जहां उसकी AB कीमत रेखा IC1 तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है।

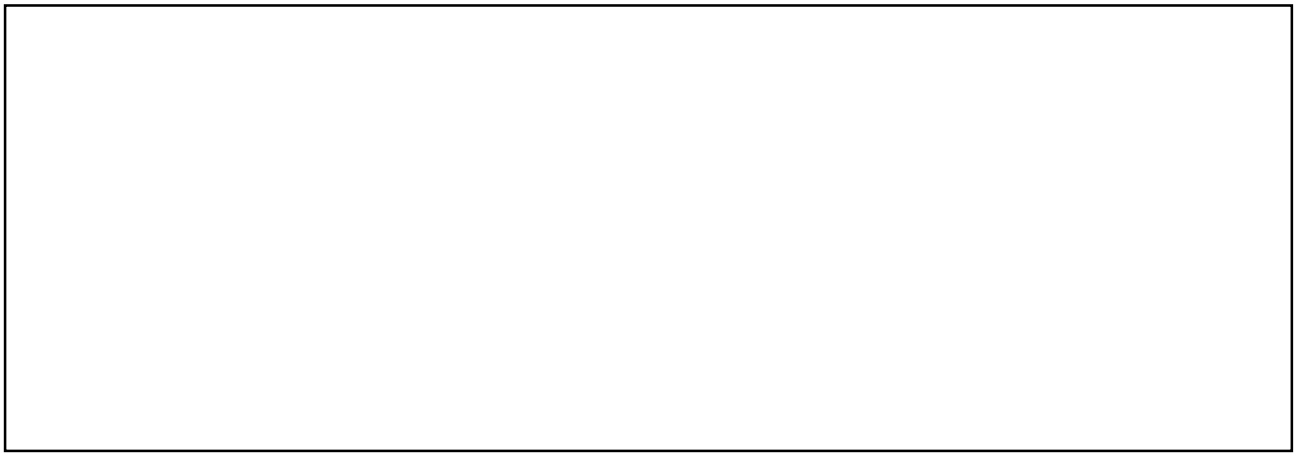

2. **मांग वक्र की पूर्ण व्याख्या (Complete Explanation of Demand Curve):** तटस्थता वक्र विश्लेषण के माध्यम से कम पूर्वकल्पनाओं के आधार पर मांग वक्र निकाला जा सकता है। इसमें कीमत प्रभाव, आय प्रभाव, स्थानापन्न प्रभाव आदि की व्याख्या की गई है। इससे पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि मांग वक्र क्यों ऊपर से नीचे झुका होता है तथा गिफ्फन पदार्थों के लिए यह क्यों नीचे से ऊपर दाईं ओर उठा होता है।
3. **उपभोक्ता की बचत का माप (Measurement of Consumer's Surplus):** जब उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार है परंतु वह वस्तु उसको कम कीमत से प्राप्त हो जाती है तो इन दोनों का अंतर उपभोक्ता

की बचत या बेशी कहलाती है। प्रो० हिक्स ने तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रयोग करके अधिक सही ढंग तथा कम पूर्वकल्पनाओं के आधार पर उपभोक्ता की बचत का माप किया है।

4. उत्पादन के क्षेत्र में उपयोग (Use in the field of Production): उत्पादक का संतुलन भी तटस्थता वक्र प्रणाली का प्रयोग करके निर्धारित किया जा सकता है। उत्पादन के क्षेत्र में तटस्थता वक्र को सम उत्पाद वक्र (Iso Product Curve or Isoquant curve) कहा जाता है उत्पादक उस बिन्दु पर संतुलन में होता है जिस पर सम लागत रेखा (Iso-cost Line) सम उत्पाद वक्र (Iso-Product Curve) को स्पर्श करती है जैसा कि चित्र 19 में दर्शाया गया है कि AB सम लागत रेखा IQ सम उत्पाद वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है। उत्पाद E बिन्दु पर संतुलन में होता है तथा OL श्रम तथा OK पूंजी की मात्रा उपयोग करता है।

5. विनिमय में महत्व (Useful in Exchange): वस्तुओं का परस्पर लेन-देन या विनिमय किस दर पर होता है इसका निध ार्रण भी तटस्थता वक्रों की सहायता से किया जा सकता हैं सर्वप्रथम प्रो. एजवर्थ ने अपने Box Diagram में तटस्थता वक्र प्रणाली का प्रयोग वस्तुओं के विनिमय दर निर्धारण करने के लिए किया था। इसकी व्याख्या एक उदाहरण द्वारा की जा सकती हैः

मान लो भारत के पास चावल की अधिकता है ओर गेहूं की कमी है। दूसरा देश जापान के पास गेहूं की अधिकता तथा चावल की कमी है। दोनों देश गेहूं तथा चावल का विनिमय करना चाहते हैं ताकि ये अधिक सन्तुष्टि या ऊंचे वाले तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सकें। स्पष्ट है भारत चावल देकर गेहूं लेना चाहता है तथा जापान गेहूं देकर चावल लेना चाहता है। यह विनिमय या लेन-देन कितना तथा किस दर पर हो ताकि दोनों या किसी एक देश का सामाजिक कल्याण बढ़ सके? इसके लिए निम्न शर्त संतुष्ट होना जरूरी हैः

$$MRS_{XY} \text{ for India} = MRS_{XY} \text{ for Japan}$$

यह शर्त तभी पूरी हो सकती है जब दोनों देशों के तटस्थता वक्र परस्पर स्पर्श कर रहे हों।

रेखाचित्र 20 में O_1 भारत का उद्‌गम स्थान है तथा OX अक्ष पर चावल तथा OY- अक्ष पर गेहूं की मात्रा मापी गई है। भारत के तटस्थता वक्रों को IC_1, IC_2, IC_3, IC_4 आदि द्वारा प्रकट किया गया है। जापान का उद्‌गम स्थान O1 है तथा OX' गेहूं तथा OY' अक्ष पर चावल मापे गए हैं। जापान के तटस्थता वक्रों को IC'_1, IC'_2, IC'_3 आदि द्वारा प्रकट किया गया है।

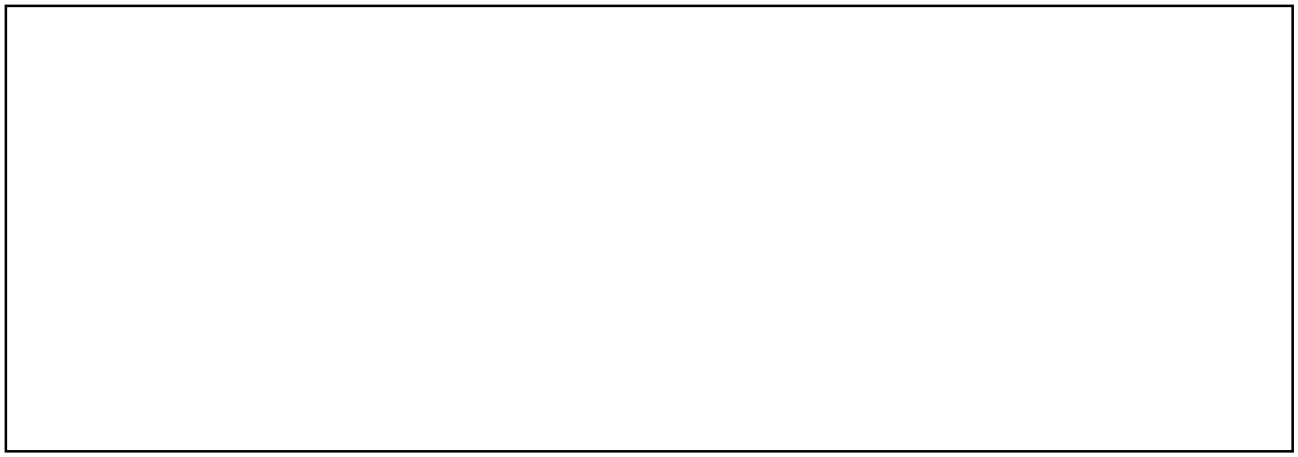

मान लो प्रारम्भ में व्यापार से पहले दोनों देश E बिन्दु पर स्थित हैं। E बिन्दु दर्शाता है कि भारत के पास W_0 गेहूं तथा R_0 चावल हैं और जापान के पास W'_0 गेहूं तथा R'_0 चावल हैं। भारत अपने IC_1 तथा जापान अपने IC'_2 पर स्थित है। दोनों देश अपने-अपने ऊंचे तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सकते हैं यदि वे व्यापार करें। उदाहरणतः वे विनिमय या व्यापार के द्वारा B बिन्दु को प्राप्त कर सकते हैं जिससे भारत अपने ऊंचे तटस्थता वक्र IC_2 तथा जापान अपने ऊंचे तटस्थता वक्र IC_3 को प्राप्त कर सकते हैं। B बिन्दु पर दोनों देशों के तटस्थता वक्र एक दूसरे को स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् B बिन्दु पर दोनों देशों के तटस्थता वक्रों का ढाल समान है जैसा कि aa रेखा द्वारा प्रकट किया गया है। aa रेखा का ढाल ही विनिमय दर को व्यक्त करता है। मान लो X = Rice तथा Y = wheat है। aa रेखा पर MRS_{XY} for India - MRS_{XY} for Japan. अतः B बिन्दु पर भारत गेहूं का निर्यात तथा चावल का आयात कर रहा है तथा जापान चावल का निर्यात तथा गेहूं का आयात कर रहा है। यह सौदा चित्र में दर्शाई गई CC रेखा पर कहीं भी हो सकता है क्योंकि A, C तथा D आदि बिन्दुओं पर भी उनके तटस्थता वक्रों का ढाल समान है। वे किस बिन्दु पर विनिमय करेंगे यह इन देशों के बीच समझौते पर निर्भर करता है। इसलिए CC रेखा को सौदा रेखा (Contract Line) भी कहते हैं।

6. **करो के क्षेत्र में महत्व (Importance in Taxation):** तटस्थता वक्रों की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है कि अप्रत्यक्ष करों (बिक्री कर आदि) का समाज पर भार प्रत्यक्ष करों (आय कर आदि) की तुलना में अधिक पड़ता है। एक निश्चित राशि अप्रत्यक्ष करों से तथा उतनी ही राशि प्रत्यक्ष करों से एकत्रित की जाए तो अप्रत्यक्ष करों का करादाताओं पर है।

रेखाचित्र 21 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा है जिस पर E बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है तथा उपभोक्ता IC_3 के अनुसार अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है। अब यदि X वस्तु पर बिक्री कर (जो अप्रत्यक्ष कर है) लगा दिया जाता है तो यह वस्तु महंगी हो जाती है। इसलिए सारी आय खर्च करके इसकी कम मात्रा खरीदी जा सकती है तथा नई कीमत रेखा AB_1 बन जाती है। AB_1 कीमत रेखा पर वह E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां AB_1 रेखा IC_{II} को स्पर्श करती है। इसके विपरीत अब यदि उतनी ही राशि आयकर (प्रत्यक्ष कर) लगा कर एकत्रित की जाती है तो उपभोक्ता E_1 बिन्दु के संयोग को प्राप्त कर सकता है यदि AB कीमत रेखा को समानान्तर नीचे इस प्रकार सरकाया जाए कि यह E_1 बिन्दु से हो कर गुजरे। इसका अभिप्राय यह है कि आय कर या प्रत्यक्ष कर लगने के उपरान्त नई कीमत रेखा A_IB_{II} अवश्य ही E_1 बिन्दु से होकर गुजरेगी। A_IB_{II} कीमत रेखा पर उपभोक्ता E_{II} बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां IC_{III} तटस्थता वक्र इस कीमत रेखा को स्पर्श करता है। अतः निष्कर्ष यह है कि यदि अप्रत्यक्ष कर संतुलन में होता है जहां IC_{III} तटस्थता वक्र इस कीमत रेखा को स्पर्श करता है। अतः निष्कर्ष यह है कि यदि अप्रत्यक्ष लगता है तो उपभोक्ता E1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है तथा IC_{II} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा IC_{III} तटस्थता वक्र पर पहुंच सकता है। IC_{III} तटस्थता वक्र IC_{II} से ऊंचा है। इसलिए हम कह सकते हैं कि करदाताओं का अप्रत्यक्ष

कर का भार प्रत्यक्ष करों की तुलना में अधिक होता हैं। इसलिए सरकार को प्रत्यक्ष करों को प्राथमिकता (Preference) देनी चाहिए।

7. **राशनिंग में सहायक (Helpful in Rationing):** अनेक बार वस्तुओं की पूर्ति कम होने पर सरकार उनकी राशनिंग कर देती है तथा उपभोक्ताओं को इन वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा ही मिल सकती है। जैसे चीनी तथा चावल की उपभोक्ता एक निश्चित मात्रा ही क्रय कर सकते हैं, परंतु प्रायः ऐसा होता है कि उपभोक्ता को कोई एक वस्तु की ज़रूरत से कम तथा दूसरी ज़रूरत से अधिक मिल जाती है। ऐसी अवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं का परस्पर अदला-बदला या विनिमय करके अपने सन्तुष्टि स्तर को बढ़ाते हैं तथा ऊंचे तटस्थता वक्रों को प्राप्त हो सकते हैं। इसकी व्याख्या रेखाचित्र 22 में द्वारा की गई है:

रेखाचित्र 22 में दर्शाया गया है कि L तथा R दो उपभोक्ता हैं जो राशन डिपो से चीनी (Sugar) की OS मात्रा तथा चावल (Rice) की OR मात्रा प्राप्त करते हैं। मान लो L उपभोक्ता चीनी अधिक पसंद करता है तथा चावल कम। इसके विपरीत M उपभोक्ता चावल अधिक पसंद करता है तथा चीनी कम। इसके विपरीत M उपभोक्ता चावल अधिक पसंद करता है तथा चीनी कम। यदि वे आपस में चीनी और चावल की अदला-बदली नहीं करते तो वे रेखाचित्र में E बिन्दु पर स्थापित होते हैं। L उपभोक्ता IC_1 तथा M अपने IC_1 पर सन्तुलन में हैं। E संयोग या बिन्दु उनके पसन्द का संयोग न होने के कारण यह अधिकतम सन्तुष्टि वाला बिन्दु नहीं कहा जा सकता है। अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अदला-बदली शुरू हो जाती है।

L उपभोक्ता A बिन्दु पर सन्तुलन में होगा तथा RII R0 चावल देकर S0 S1 चीनी M उपभोक्ता से प्राप्त करता है तथा ऊंचे तटस्थता वक्र IC_{II} को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार M उपभोक्ता B बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा S_0S_{II} चीनी L उपभोक्ता को देकर R_0R_1 चावल उससे प्राप्त करता है। M का भी सन्तुष्टि स्तर बढ़ जाता है क्योंकि B बिन्दु ऊंचे तटस्थता वक्र IC_{II} पर स्थित है। अतः तटस्थता वक्रों की सहायता से राशनिंग की अवस्था में लेन-देन करके उपभोक्ता अपने-अपने सन्तुष्टि स्तर को बढ़ा सकते हैं।

8. **मूल्य सूचकांकों में परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या (Explanation of the Effect ofChanges in Price Induxes):** लोगों की आय में परिवर्तन हुए बिना यदि वस्तुओं के कीमत सूचकांकों में परिवर्तन हो जाए तो उनके जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है। यदि कीमत सूचकांक में व द्धि होती है तो उपभोक्ता नीचे वाले तटस्थता वक्र पर पहुंच जाते हैं तथा उनके जीवन स्तर में गिरावट आ जाती है। इसके विपरीत यदि आय में परिवर्तन हुए बिना कीमत सूचकांक गिर जाता है तो लोग ऊंचे तटस्थता वक्र पर पहुंच जाते हैं तथा उनके जीवन-स्तर में व द्धि होती है। इसकी व्याख्या निम्न चित्र द्वारा की गई हैः

रेखाचित्र 23 में दर्शाया गया है कि उपभोक्ता की प्रारम्भिक बजट रेखा AB है तथा वह E बिन्दु पर सन्तुलन में है जहां IC1 तटस्थता वक्र कीमत रेखा को छू रहा है। मान लो X वस्तु तथा Y वस्तु दोनों वस्तुओं की कीमतों में व द्धि हो जाती है अर्थात् कीमत सूचकांक बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता की कीमत रेखा नीचे की ओर सरक कर A0B0 हो जाती है तथा उपभोक्ता E0 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा वह नीचे वाले तटस्थता वक्र IC0 पर पहुंच जाता है जो जीवन स्तर में गिरावट का सूचक है। इसके विपरीत यदि कीमत सूचकांक गिर जाता है अर्थात् दोनों वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं तो उपभोक्ता की बजट रेखा ऊपर की ओर सरक कर A1B1 बन जाती है। A1B1 कीमत रेखा पर वह E1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा वह ICII तटस्थता वक्र पर पहुंच जाता है। उपभोक्ता का सन्तुष्टि स्तर बढ़ने से जीवन-स्तर में व द्धि होती है।

श्रम की पूर्ति वक्र निकालने में सहायक (Helpful in the Derivation of the Labour's Supply Curve): तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से श्रमिकों का पूर्ति वक्र भी निकाला जा सकता है। हम जानते हैं कि श्रमिक अपने समय को कार्य तथा आराम में विभक्त करता है। मजदूरी दर बढ़ने का श्रम की पूर्ति या उसके कार्य के घण्टों पर क्या प्रभाव पड़ता है इस प्रश्न का हल निम्न चित्र की सहायता से किया जा सकता हैः

चित्र 24 में OX- अक्ष पर कार्य तथा अवकाश में 24 घण्टे समय का विभाजन किया गया है तथा OY- अक्ष पर कुल मौद्रिक मज़दूरी को मापा गया है। TW1, TW2, TW3 मजदूरी रेखाएं हैं। TW3 पर मजदूरी दर सबसे अधिक TW2 पर मज़दूरी दर उससे कम तथा TW1 पर मजदूरी दर TW2 पर मजदूरी दर से कम है। प्रारम्भिक मज़दूरी दर श्रमिक E1 बिन्दु पर सन्तुलन में है तथा वह T1T घण्टे कार्य तथा OT1 घण्टे आराम करता है। इसके बाद ज्यों मज़दूरी बढ़ती है तथा श्रमिक TW2 मज़दूरी रेखा पर E11 बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा और ऊंचे सन्तुष्टि स्तर पर

होता है। अब वह कार्य के घण्टे और कम करके TTIII कर देता है तथा आराम के घण्टे बढ़ा कर OTIII कर देता है। चित्र में KK मजदूरी पेश वक्र (Wage offer curve) है जो व्यक्त करती है कि ज्यों-ज्यों मज़दूरी दर बढ़ती जाती है श्रमिक कार्य की अपेक्षा आराम को अधिक पसंद करता जाता है। इसी कारण श्रम पूर्ति वक्र ऊपर बाईं ओर झुका हुआ (Leftward Sloping Supply Curve) होता है। ऊंची मज़दूरी दरों पर इसी कारण श्रमिक बच्चों तथा अपनी पत्नियों से कार्य नहीं करवाते।

10. **सरकारी नीतियों का कल्याण पर प्रभाव (Effects of Government Policies of Welfare):** सरकार की विभिन्न व्यय समबन्धी नीतियों का लोगों के कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसको भी तटस्थता वक्रों की सहायता से मापा जा सकता है। यदि किसी सार्वजनिक व्यय संबंधी नीति लागू करने के उपरान्त लोगों का तटस्थता वक्र बढ़ जाता है तो उनके कल्याण में व द्धि होती है। अन्यथा नहीं।

11. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्व (Useful in International Trade):** व्यक्तिगत तटस्थता वक्रों के आधार पर सामाजिक तटस्थता वक्र ज्ञात किए जा सकते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं के समाधान तथा प्रभावों की व्याख्या करने में उपयोगी हैं। संक्षेप में, तटस्थता वक्र प्रणाली अनेक आर्थिक क्षेत्रों में लागू होती है। इसलिए यह अत्यंत उपयोगी विश्लेषण कहा जा सकता है।

तुष्टिगुण विश्लेषण तथा तटस्थता वक्र विश्लेषण में तुलना
(Comparision between Utility and Indifference Curve Analysis)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार तटस्थता वक्र विश्लेश्ज्ञण तुष्टिगुण का सुधरा हुआ रूप है। जबकि कुछ अर्थशास्त्री तटस्थता वक्र विश्लेष्ज्ञण को नई बोतलों में पुरानी शराब मानते हैं। इस वाद-विवाद का आधार यह रहा है कि कुछ बातों में ये दोनों समान हैं तथा कुछ बातों में तटस्थता वक्र विश्लेषण श्रेष्ठ है। इनकी व्याख्या दो भागों में निम्न प्रकार से की गई है:

समानताएं (Similarities):

1. **विवेकशील उपभोक्ता की मान्यता (Assumptions of Rational Consumers):** दोनों विश्लेषणों में यह कल्पना की गई है कि उपभोक्ता विवेकशील है। विचार या विवेक के आधार पर दोनों विश्लेषणों में उपभोक्ता का उद्देश्य अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करना है।

2. **घटता सीमान्त तुष्टिगुण (Diminishing Marginal Utility):** तुष्टिगुण विश्लेषण में घटती सीमान्त तुष्टिगुण का नियम तथा तटस्थता विश्लेषण में घटते सीमान्त प्रतिस्थापन की दर का नियम दोनों ही इस मान्यता पर आधारित हैं कि उपभोक्ता ज्यों कसी वस्तु की अधिक मात्रा उपयोग करता जाता है तो उससे प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है।

3. **भावगत विश्लेषण (Subjective Analysis):** दोनों विश्लेषणों में तुष्टिगुण को भावगत (Subjective) माना गया है अर्थात् वस्तु में तुष्टिगुण की अपनी इच्छा पर निर्भर होता माना गया है। तटस्थता वक्र विश्लेषण में यह माना गया है कि प्रत्येक उपभोक्ता का अपना तटस्थता मानचित्र होता माना गया है। तटस्थता वक्र विश्लेषण में यह माना गया है कि प्रत्येक उपभोक्ता का अपना तटस्थता मानचित्र होता है तथा उनकी संयोगों के प्रति प्राथमिकता या पसंदगी (Preferences) अपनी-अपनी होती है। इसलिए तटस्थता वक्र विश्लेषण भावगत है। इसी प्रकार तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण को व्यक्ति की वस्तु के लिए अपनी इच्छा पर निर्भर होता माना गया है।

तुष्टिगुण विश्लेषण में कुल तुष्टिगुण किसी वस्तु की उपभोग की गई विभिन्न इकाइयों से प्राप्त तुष्टिगुणों का जोड़ माना गया है।

TUX = (UX1 + UX2 + UX3 + ... + UXn)

अर्थात् किसी वस्तु X से प्राप्त कुल तुष्टिगुण (TUX) इसकी विभिन्न इकाइयों के उपभोग से प्राप्त तुष्टिगुणों (UX1 + UX2 आदि) का जोड़ होता है।

ठीक इसी प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता को प्राप्त कुल संतुष्टि या तुष्टिगुण वस्तुओं के उपभोग की मात्रा पर निर्भर करता है:

TU = + (A, B, C,......, Z)

कुल तुष्टिगुण उपभोग की गई विभिन्न वस्तुओं की मात्राओं या संयोगों पर निर्भर करता है।

सन्तुलन की समान शर्तें (Same Equilibrium :Conditions):

गहराई से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तुष्टिगुण विश्लेषण दोनों मे उपभोक्ता सन्तुलन की शर्तें समान हैं:

तुष्टिगुण विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता सन्तुलन की शर्त यह है कि वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगगुण का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होना चाहिए।

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_X}{P_Y} \text{ or } \frac{MY_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y} \qquad \text{(i)}$$

हिक्स के अनुसार तटस्थता वक्र विश्लेषण में जब तक हम गणनावाचाक सीमान्त तुष्टिगुण को मान नहीं लेते उस समय तक हम MRSXY को व्यक्त नहीं कर सकते। एक ही तटस्थता वक्र पर जब हम एक संयोग से दूसरे संयोग पर जाते हैं तथा एक वस्तु की मात्रा बढ़ाते हैं और दूसरी की कम करते हैं तो जो हमें हानि होती है उसकी क्षतिपूर्ति (Compensation) अवश्य होनी चाहिए। इसलिए प्रो. हिक्स ने MRSXY को दोनों वस्तुओं के सीमान्त तुष्टिगुणों के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया है:

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y} \qquad \text{.....(ii)}$$

सीमान्त तुष्टिगुणों का यह अनुपात तभी मापा जा सकता है जब तुष्टिगुण को गणनावाचक माना जाए। इसलिए सिद्धांत रूप से तटस्थता विश्लेषण तुष्टिगुण को गणनावाचक मानता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के सन्तुलन की शर्तः

$$MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y} \qquad \text{...(iii)}$$

समीकरण (ii) को समीकरण (iii) में शामिल करते हुएः

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{P_Y} = \frac{MU_Y}{P_Y} \quad .....(iv)$$

समीकरण (i) तथा समीकरण (iv) को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि दोनों विश्लेषणाों में सन्तुलन की शर्तें समान हैं।

B. तटस्थता वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता (Superiority of Indifference curve Analysis)

निम्न तथ्यों के आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण को तुष्टिगुण विश्लेषण की तुलना में अधिक श्रेष्ठ माना जाता हैः

1. **तुष्टिगुण का क्रमवाचक माप (Ordinal Measurement of Utility):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में तुष्टिगुण का क्रमवाचक माप जैसे प्रथम, द्वितीय, त तीय आदि तटस्थता वक्रों के रूप में किया जाता है जो अधिक व्यावहारिक है। इस विश्लेषण में तुष्टिगुण की तुलना तो हो सकती है क एक तटस्थता वक्र के संयोग अन्य तटस्थता वक्र से कम या अधिक तुष्टिगुण देते हैं, परन्तु यह नहीं बताते कि कितनी इकाई कम या अधिक। इसके विपरीत तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण का 1, 2, 3, 4 आदि इकाइयों में माप किया जाता है जो सम्भव नहीं है। इस आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण को श्रेष्ठ माना जाता है।

2. **मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर माने बिना मांग की व्याख्या (Analysis of Demand without assuming Constant Marginal Utility of Money):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठता यह है ि इसमें मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण की तरह मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर नहीं माना गया हैं वास्तव में मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता है क्योंकि मुद्रा भी अन्य वस्तुओं की तरह एक वस्तु है। मार्शल ने मुद्रा को तुष्टिगुण मापने का स्थिर पैमाने बनाने के लिए इसकी सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहने की मान्यता करनी पड़ी। तटस्थता वक्र विश्लेषण में इस मान्यता के बिना ही मांग का नियम या मांग वक्र निकाला है। इसलिए तटस्थता वक्र प्रणाली अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है।

3. **कीमत प्रभाव का गहराई से अध्ययन (Greater insight into Price Effect):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की एक श्रेष्ठता इस बात से भी प्रकट होती है कि इसमें कीमत परिवर्तन का मांग पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव के रूप में खुल कर व्याख्या की गई है। इससे हमे ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की कीकमत बदलने से उस वस्तु की मांग में कितना परिवर्तन आय प्रभाव तथा कितना परिवर्तन प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) के कारण होता है। इस प्रकार की व्याख्या मार्शल द्वारा प्रस्तुत तुष्टिगुण विश्लेषण में नहीं पाई जाती। अतः इस द ष्टिकोण से भी तटस्थता वक्र विश्लेष्ज्ञण श्रेष्ठ माना जाता है।

4. **गिफ्फन विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of Giffen's Paradox):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की तुष्टिगुण विश्लेष्ज्ञण से श्रेष्ठता इस बात में भी है कि यह गिफ्फन विरोधाभास की पूर्ण व्याख्या करने में सक्षम है। तटस्थता वक्र इन वस्तुओं की मांग की व्याख्या करता है कि इन वस्तुओं का ऋणात्मक स्थानापन प्रभाव धनात्मक आय प्रभाव से अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए इन गिफ्फन वस्तुओं की कीमत गिरने पर इनकी मांग गिरती है तथा कीमत बढ़ने पर इनकी मांग बढ़ जाता है (जैसा कि गिफ्फन पदार्थों के सन्दर्भ में कीमत प्रभाव की व्याख्या कर चुके हैं)। इसी को गिफ्फन विरोधाभास कहा जाता है। मार्शल का तुष्टिगुण विश्लेषण इस विरोधाभास की व्याख्या नहीं कर सका है।

5. **अधिक वास्तविक (More Realistic):** तटस्स्थता वक्र विश्लेषण को तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ इस कारण भी माना जाता है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। जबकि मार्शल का तुष्टगुण विश्लेषण अधिक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जैसे तुष्टिगुण को इकाइयों में मापा जा सकता है,

पमुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है, वस्तुओं के तुष्टिगुण स्वतंत्र होते हैं आदि। ऐसी अवास्तविक मान्यताओं का तटस्थता वक्र विश्लेषण में त्याग कर दिया गया है।

6. **मांग का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Demand):** तटस्थता वक्र विश्लेषण मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ इस कारण भी माना जाता है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण सामान्य वस्तुओं, घटिया वस्तुओं तथा गिफ्फन पदार्थों की मांग की खुल कर व्याख्या करता है। जबकि मार्शल का तुष्टिगुण विश्लेषण केवल सामान्य वस्तुओं की मांग की व्याख्या करता है। तटस्थता वक्र विश्लेषण यह कार्य आय प्रभाव तथ प्रतिस्थापन प्रभावों की व्याख्या करके कर सकता है।

7. **स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं का अध्ययन (Study of Substitutes and Complementary Goods):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं की मांग का अध्ययन भी किया जा सकता है। जबकि मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेष्ज्ञण में केवल स्वतन्त्र वस्तुओं (Independent goods) जिनका तुष्टिगुण एक-दूसरे के तुष्टिगुण को प्रभावित नहीं करता, उनका ही अध्ययन किया जाता है।

8. **कल्याण के माप में सहायक (Helpful in the Measurement of Welfare):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से कीमतों में परिवर्तन तथा सरकारी नीतियें में परिवर्तन से लोगों के कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों को मापा जा सकता है। हिक्स ने तटस्थता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बेशी का अधिक उचित माप प्रस्तुत किया। इस कारण भी यह प्रणाली श्रेष्ठ मानी जाती है।

9. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायक (Helpful in International Trade):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं तथा इसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके आधार पर व्यापार तटस्थता वक्रों (Trade Indfference Curvees), सामाजिक तटस्थता वक्रों (Social Indifference Curves) आदि को भी निकाला जा सका है जो विभिन्न राष्ट्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

10. **मांग का अधिक वास्तविक सिद्धान्त (More Realistic Theory of Demand):** तटस्थता वक्र विश्लेषण पर आध ाारित मांग का सिद्धांत अधिक वास्तविक है क्योंकि यह डॉ. मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण पर आधारित मांग के सिद्धांत की अपेक्षा अधिक वास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

अतः हम कह सकते हैं कि कुछ समानताओं के होते हुए भी तटस्थता वक्र विश्लेषण मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण से अधिक श्रेष्ठ प्रणाली है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण की आलोचना
(Criticism of Indifference Curve Analysis)

तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ होते हुए भी इसकी अनेक आलोचनाएं की गई हैं:

1. **पूर्ण ज्ञान की अवास्तविक धारणा (Unrealistic Assumption of Perfect Knoweldge):** यह तर्क दिया गया कि मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण के संख्यात्मक माप की समस्या को दूरे करने के लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण प्रस्तुत किय गया था, परंतु तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह धारणा कि उपभोक्ता को दोवस्तुओं के असंख्य संयोगों की प्राथमिकता क्रम (Scale of Preference) या अपनेतटस्थता मानचित्र (Indifference Map) की पूर्ण जानकारी होती है यह एक असंभव तथा अवास्तविक धारणा है। इस संबंध में प्रो. आहुजा ने ठीक ही कहा है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण आसमान से गिरा तथा खजूर में अटका। The Indifference curve approach so to say, falls from the frying pan into the fire. -Prof. H.L. Ahuja)

2. **हास्यास्पद संयोग (Laughable Combination):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में जब हम दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों पर विचार करते हैं तो अनेक बार ऐसे संयोग सामने आते हैं जिनका वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं होता तथा उन पर हंसी भी आती है। जैसे एक संयोग जिससे 8 कमीज और दो जोड़े जूते हैं यह वास्तविक जीवन में महत्व रखता है। परंतु एक अन्य संयोग जिसमें 2 कमीज तथा 8 जोड़े जूते हैं, उपभोक्ता अपने वास्तविक जीवन में ऐसा योंग नहीं रखता है। यदि किसी उपभोक्ता के पास 8 जोड़े जूते तथा 2 कमजी हों तो बड़ा हास्यस्पद सा लगता है।

परंतु तटस्थता वक्र विश्लेषण में ऐसे अनेक संयोग सामने आते हैं। अतः इस आधार पर भी इसकी आलोचना की जाती है।

3. **नई बोतल में पुरानी शराब (Old Wine in a New Bottle):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह भी आलोचना की जाती है कि इसमें केवल पुरानी धारणाओं को नई शब्दावली दी गई है। जैसे तुष्टिगुण के स्थान पर प्राथमिकता (Preference), मात्रात्मक संख्याओं 1, 2, 3 आदि के स्थान पर क्रमवाचक संख्याएं-प्रथम, द्वितीय, त तीय आदि। सीमान्त तुष्टिगुण के स्थान पर सीमांत प्रतिस्थापन की दर, घटते सीमान्त तुष्टिगुण के स्थान पर घटती सीमान्त प्रतिस्थापन्न की दर का नियम आदि। इसी कारण प्रो. राबर्टसन ने तटस्थता वक्र विश्लेषण को नई बोतलन में पुरानी शराब (Old Wine in a New Bottle) का नाम दिया है।

4. **जटिल विश्लेषण (Complex Analysis):** जब उपभोक्ता दो वस्तुओं का उपयोग करता है तो यह विश्लेषण उपभोक्ता सन्तुलन का सरलता से अध्ययन करता है। परन्तु जब उपभोक्ता तीन या चार या इससे भी अधिक वस्तुओं का उपभोग कर रहा होता है तो रेखाचित्र की सहायता से इसकी व्याख्या असम्भव हो जाती है। उस अवस्था में केवल समीकरणों की सहायता से ही उपभोक्ता सन्तुलन का अध्ययन किया जा सकता है जो एक कठिन तथा जटिल कार्य है।

5. **आत्म-अवलोकन विधि (Introspection Method):** तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण की तरह विश्लेषण की आत्म अवलोकन विधि पर ही आधारित है। अर्थात् यह उपभोक्ता की अपनी मानसिक स्थिति के आधार पर उपभोक्ता सन्तुलन की व्याख्या करती है जिसकी परीक्षा (Test) नहीं हो सकती। इसलिए इस विध को वैज्ञानिक नहीं माना जाता। इसके स्थान प्रो. सैम्यूलसन ने उपभोक्ता सन्तुलन का अध्ययन उपभोक्ता के व्यवहार (Behaviour) के आधार पर प्रकट अधिमान सिद्धान्त (The Theory of Revealed Preference) द्वारा किया जिसकी बार-बार परीक्षा (Test) की जा सकती है।

6. **तर्कसंगति का अभाव (Lack of Transitivity)** तटस्थता वक्र की परिभाषा के अनुसार यह वक्र दो वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है। परन्तु प्रो. आर्मस्ट्रांग ने इस परिभाषा को तर्कसांगत नहीं पाया है। उनका विचार है कि उपभोक्ता तटस्थता वक्र के दो बिन्दुओं A और B के बीच इसलिए तटस्थ नहीं होता कि वह इसको महसूस नहीं कर पाता है। अन्य बिन्दुओं जैसे B और C के बीच भी अन्तर बहुत कम होने के कारण इनमें भिन्नता को महसूस नहीं कर पाता। परन्तु दो संयोगों जिनके बीच अन्तर अधिक हो जाता है तो उनमें भिन्नता को उपभोक्ता आसानी से महसूस कर सकता है। जैसा कि चित्र 25 में A तथा C का अन्तर अधिक है। आर्मस्ट्रांग के अनुसार उपभोक्ताया तो A को C से या C को A संयोग से अधिक पसन्द करेगा। इसलिए उनके अनुसार उपभोक्ता इन दोनों संयोगों के बीच तटस्थ नहीं रह सकता। इस आधार पर उपभोक्ता A तथा B के बीच तटस्थ रह सकता है, परन्तु वह A तथा C के बीच तटस्थ नहीं रह सकता क्योकि इनके बीच अन्तर अधिक हो जाता है। यदि हम तटस्थता वक्र की इस तर्कसंगति की कमी स्वीकार कर लेते हैं तो इस विश्लेषण का आधार ही समाप्त हो जाता है।

7. **विवेकपूर्ण व्यवहार (Rational Behaviour):** तटस्थता वक्र विश्लेषण इस धारणा पर आधारित है कि उपभोक्ता बड़ा विचारवान होता है तथा वह वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। परन्तु वास्तव में उपभोक्ता आदत तथा सामाजिक रीति-रिवाजों में फंस कर इस प्रकार खर्च करता है कि उसका सन्तुष्टि स्तर अधिकतम नहीं हो पाता। अतः तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह धारणा कि उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण होता है। वास्तकिव नहीं है।

8. **गलत नामकरण (Misnomer):** कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार तटस्थता या अनाधिमान वक्र विश्लेषण का नाम अधि ामान वक्र विश्लेषण (Preferenece Curve Analysis) होना चाहिए था। इसका कारण यह है कि इस विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता उस संयोग को चुनता (Prefer) है जिससे उसकी सन्तुष्टि अधिकतम होती है। अतः संयोग के चुनने (Preference) पर अधिक बल दिया गया है न कि तटस्थता या अनाधिमान रहने पर।

9. **उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं (Consumer is not so Calculating):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता को बहुत हिसाबी माना गया है कि वह कम्प्यूटर की तरह हमेशा यह निर्णय करता रहता है कि उसे कौन सा संयोग

खरीदना चाहिए ताकि सन्तुष्टि अधिकतम हो सके। परन्तु वास्तविक जीवन में उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं होता तथा न ही उसके पास इतना समय है।

10. **घटते सीमान्त तुष्टिगुण का छुपा प्रयोग (Hidden use of Diminishing Marginal Utility):** वास्तव में घटते हुए सीमान्त प्रतिस्थापन (MRS_{XY}) की दर की व्याख्या घटते हुए सीमान्त तुष्टिगुण के बिना असम्भव है। प्रो. आर्मस्ट्रांग के अनुसार, ''सीमान्त तुष्टिगुण के मंच का उपयोग किए बिना, हिक्स द्वारा बनाए गए घटते सीमान्त प्रतिस्थापन की दर के सिद्धान्त तक पहुंचना असम्भव है।''

11. **अवास्तविक मान्यताएं (Unrealistic Assumptions):** तटस्थता वक्र विश्लेष्ज्ञण अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। उदाहरणः वस्तुएं विभाजनशील होती हैं, वस्तु की सभी इकाइयां समरूप होती हैं, बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है आदि।

तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण की अपेक्षा मांग के सिद्धान्त या उपभोक्ता के व्यवहार का एक सुधरा हुआ रूप है। परन्तु इसमें भी अेनक कमियां हैं जिनके आधार पर विश्लेषण की उपरोक्त आलोचनाएं की गई हैं। इसके स्थान पर प्रो. सैम्यूलसन ने प्रकट अधिमान विश्लेषण (Revealed Preference Analysis) का प्रातिपादन किया है जो अधिक व्यावहारिक तथा यथार्थपूर्ण है।

प्रश्न
(Questions)

I. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type questions)

1. Show the shits in consumer's equilibrium due to:
   (a) Income Effect, (b) Price Effect and (c) Substitution Effect.
2. Explain how price effect is a combination of income effect and substituion effect.
3. Show shifts in consumer equilibrium under Hicbsian Approach and Slutsky Approach.
4. How would you draw an Engel's curve? Explain.
5. Show price effect in case of inferior good and Giffen's good.
6. Compare utility analysis with indifference curves and how the latter is a superior technique. Also show the uses and criticism of I.Cs.

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. Distinguish between Income Effect and Substitution Effect.

   आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में अन्तर बताइए।

2. Mention the differences between (1) Normal goods and inferior goods (2) Inferior and Giffen's goods.

   (1) सामान्य तथा घटिया वस्तुओं (2) घटिया तथा गिफ्फन पदार्थों में अन्तर बताइए।

3. What is the basic difference between Ordinal Utility Approach and Cardinal Utility Approach?

   क्रमवाचक तथा गणनावाचक द ष्टिकोणों में क्या आधारभूत अन्तर हैं?

4. Explain the meaning of price, income and substitution effects and show that price effect is the sum total of the other two.

   कीमत, आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों का अर्थ दीजिए तथा दर्शाइए कि कीमत प्रभाव शेष दो प्रभावों का योग होता है। (M.D.U. 1992, K.U. 1993)

5. What are two conditions of consumers equilibrium in indifference curve analysis.

तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता सन्तुलन की दो शर्तें कौन-सी हैं? (K.U. 1996)

6. Give main criticisms of indiffernce curve analysis.

तटस्थता वक्र विश्लेषण की मुख्य आलोचनाओं का वर्णन करें।

7. Draw a diagram to illustrate the derivation of a deamand curve through indifference curves. What is the difference between a demand curve and price consumption curve.

तटस्थता वक्रों की सहायता से मांग वक्र ज्ञात करने के लिए एक रेखाचित्र बनाइए। मांग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में क्या अन्तर है?

8. Mention the main points of differences between Indifference analysis and utility analysis.

तटस्थता वक्र विश्लेषण तथा उपयोगिता विश्लेषण के मुख्य अन्तर का वर्णन करें।

9. In what way Indifference Curve Analysis is superior to Utility Analysis.

तटस्थता वक्र विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण से किस प्रकार श्रेष्ठ हैं? (K.U. 2998)

10. Write short note on Edgeworth Box diagram.

ऐजवर्थ बाक्स रेखाचित्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें। (M.D.U. 1998)

11. Write short note on price effect.

कीमत प्रभाव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें। (M.D.U. 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions and their Answers)

1. State whether the following statements are true of false.

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत हैं।

(1) Income Effect in indifference curve analysis arises when income and prices change.

तटस्थता वक्र विश्लेषण में आय प्रभाव उस समय उत्पन्न होता है जब आय तथा कीमतें दोनों में परिवर्तनप आता है।

(2) The demand for inferior goods increasesas household income increases.

निकृष्ट पदार्थों की मांग आय के बढ़ने के सथ बढ़ती जाती है। (K.U. 1998)

3. The slope of an indifference curve at any point shows the maximum satisfaction.

तटस्थता वक्र के ढ़लान के किसी बिन्दु द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्रकट होती है।

4. Cardinal Approach is based on measurement of marginal utility of money.

गणनावाचक विश्लेषण सीमान्त उपयोगिता के माप पर आधारित है।